महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अन्तर्गत स्थापित केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त / Accredited with 'A' Grade by NAAC

भाषाविज्ञान

एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम

चतुर्थ सेमेस्टर

तृतीय पाठ्यचर्या (अनिवार्य)

पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 21

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

भाषाविज्ञान

प्रधान सम्पादक

प्रो॰ गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास
अनुसंधान अधिकारी एवं पाठ्यक्रम संयोजक– एम. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक मण्डल

प्रो॰ आनन्द वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर एडजंक्ट, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास

प्रकाशक

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र, पिन कोड : 442001

© महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रथम संस्करण : मई 2018

पाठ-रचना

डॉ० अनिल कुमार सिंह
वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पी. जी. डी. ए. वी. कॉलेज (सांध्य), नेहरू नगर, नई दिल्ली

खण्ड – 1 : इकाई – 1
खण्ड – 4 : इकाई – 4

प्रो० ठाकुरदास
पूर्व प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

खण्ड – 1 : इकाई – 2, 3 एवं 6
खण्ड – 2 : इकाई – 2, 3, 4 एवं 5
खण्ड – 3 : इकाई – 3
खण्ड – 5 : इकाई – 4

डॉ० धनजी प्रसाद
असिस्टेंट प्रोफेसर, भाषाविज्ञान एवं भाषा प्रौद्योगिकी विभाग, भाषा विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

खण्ड – 1 : इकाई – 4 एवं 5
खण्ड – 2 : इकाई – 1
खण्ड – 3 : इकाई – 1 एवं 2

डॉ० गोविन्द स्वरूप गुप्त
अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, भाषाविज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

खण्ड – 4 : इकाई – 1 एवं 5
खण्ड – 5 : इकाई – 1, 2, 3 एवं 5

डॉ० शमीम फ़ातमा
असिस्टेंट प्रोफेसर, सूचना एवं भाषा अभियांत्रिकी केंद्र भाषा विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

खण्ड – 4 : इकाई – 2 एवं 3

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन
आवरण, रेखांकन, पेज डिज़ाइनिंग, कम्पोज़िंग ले-आउट एवं प्रूफ़-रीडिंग

पुरन्दरदास

कार्यालयीय सहयोग

श्री विनोद रमेशचंद्र वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

टंकण कार्य सहयोग (खण्ड – 4 : इकाई – 1 एवं 5 तथा खण्ड – 5 : इकाई – 1, 2, 3 एवं 5)

सुश्री राधा सुरेश ठाकरे
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आवरण पृष्ठ पर संयुत विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर स्थित गांधी हिल स्थल का छायाचित्र इंटरनेट से साभार प्राप्त

http://hindivishwa.org/distance/contentdtl.aspx?category=3&cgid=77&csgid=65

- यह पाठ्यसामग्री दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में प्रवेशित विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ उपलब्ध करायी जाती है।
- इस कृति का कोई भी अंश लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
- पाठ में विश्लेषित तथ्य एवं अभिव्यक्त विचार पाठ-लेखक के अध्ययन एवं ज्ञान पर आधारित हैं। पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- इस पुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन एवं अद्यतन रूप से प्रकाशित करने के सभी प्रयास किये गए हैं तथापि संयोगवश यदि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि रह गयी हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए पाठ-लेखक, पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा।
- किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र वर्धा, महाराष्ट्र ही होगा।

पाठ्यचर्या विवरण

चतुर्थ सेमेस्टर
तृतीय पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 21
पाठ्यचर्या का शीर्षक : भाषाविज्ञान

क्रेडिट – 04

खण्ड – 1 : भाषा और भाषाविज्ञान

- इकाई – 1 : भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण
- इकाई – 2 : भाषाओं का वर्गीकरण तथा उनके आधार और आकृतिमूलक वर्गीकरण
- इकाई – 3 : पारिवारिक वर्गीकरण तथा भारतीय भाषाएँ
- इकाई – 4 : भाषाविज्ञान : स्वरूप और व्याप्ति; भाषाविज्ञान के अंग
- इकाई – 5 : भाषाविज्ञान की शाखाएँ : वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान
- इकाई – 6 : भाषा परिवर्तन : स्वरूप, कारण एवं दिशाएँ

खण्ड – 2 : ध्वनि विज्ञान

- इकाई – 1 : वाग्यंत्र, वाग्यंत्र का वर्गीकरण
- इकाई – 2 : स्वर-व्यंजन, वैदिक संस्कृत ध्वनियाँ, हिन्दी ध्वनियाँ, हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण, स्वरों का वर्गीकरण, व्यंजनों का वर्गीकरण
- इकाई – 3 : स्वनिम – परिभाषा, स्वनिम तथा संस्वन, स्वनिम निर्धारण की विधि, संस्वन निर्धारण की विधि, स्वनिम के भेद – (क) खंडीय स्वनिम (ख) खंडेतर स्वनिम, हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था
- इकाई – 4 : ध्वनि विज्ञान और स्वनिम विज्ञान, निष्पादक स्वनिम विज्ञान, निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा प्रभेदक लक्षण, हिन्दी की स्वनिमिक समस्याएँ – अ लोप की समस्या, उत्क्षिप्त ध्वनियाँ, नासिक्य ध्वनियों की समस्या, महाप्राण ध्वनियों की समस्या
- इकाई – 5 : ध्वनि परिवर्तन : कारण, परिवर्तन तथा ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ

खण्ड – 3 : रूपविज्ञान (पदविज्ञान)

- इकाई – 1 : रूपविज्ञान (पदविज्ञान) : स्वरूप एवं विषयवस्तु
- इकाई – 2 : पद और शब्द, पद और सम्बन्धतत्त्व, पद विभाग : अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का संयोग, पद, पदबंध और वाक्य
- इकाई – 3 : रूप परिवर्तन की दिशाएँ और रूप परिवर्तन के कारण

खण्ड – 4 : वाक्य विज्ञान

इकाई – 1 : वाक्य विज्ञान का स्वरूप, पद और वाक्य (अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद)

इकाई – 2 : वाक्य की परिभाषा, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व

इकाई – 3 : वाक्य और पदक्रम, वाक्यों के प्रकार

इकाई – 4 : उपवाक्य और उसके प्रकार

इकाई – 5 : पदिम

खण्ड – 5 : अर्थ विज्ञान

इकाई – 1 : अर्थ का लक्षण, शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

इकाई – 2 : अर्थबोध (संकेतग्रह) के साधन, अर्थबोध (संकेतग्रह) के बाधक तत्त्व

इकाई – 3 : एकार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय, नानार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय

इकाई – 4 : अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ तथा कारण

इकाई – 5 : अर्थिम, अर्थतत्त्व, अर्थिम और रूपिम में सम्बन्ध

सहायक पुस्तकें :

01. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान : सिद्धान्त और प्रयोग, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
02. आधुनिक भाषाविज्ञान, राजमणि शर्मा
03. भाषा, ब्लूमफील्ड, अनुवादक : विश्वनाथप्रसाद, मोतीलाल बनारसीदास, पटना
04. भाषा और समाज, रामविलास शर्मा , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
05. भाषा का समाजशास्त्र, राजेन्द्रप्रसाद सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
06. भाषाविज्ञान, कपिलदेव द्विवेदी, भारतेन्दु द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
07. भाषाविज्ञान, भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद
08. भाषाविज्ञान, सं. : राजमल बोरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
09. भाषाविज्ञान एवं भाषा-शास्त्र, कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
10. भाषाविज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि, रामदेव त्रिपाठी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
11. भाषाविज्ञान की भूमिका, देवेन्द्रनाथ शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
12. भाषाविज्ञान कोश, सं. : भोलानाथ तिवारी, ज्ञानमंडल प्रा. लि., वाराणसी
13. भाषाविज्ञान : सैद्धान्तिक चिन्तन, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
14. भाषा-शिक्षण, रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
15. भाषा-शिक्षण : सिद्धान्त और प्रविधि, मनोरमा गुप्ता, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
16. भारतीय भाषाविज्ञान, किशोरीदास वाजपेयी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
17. सामान्य भाषाविज्ञान, बाबूराम सक्सेना, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद

❖❖❖

पाठानुक्रमणिका

क्र.सं.	खण्ड	इकाई	पृष्ठ क्रमांक
01.	खण्ड – 1	इकाई – 1	08 – 30
02.	खण्ड – 1	इकाई – 2	31 – 43
03.	खण्ड – 1	इकाई – 3	44 – 57
04.	खण्ड – 1	इकाई – 4	58 – 73
05.	खण्ड – 1	इकाई – 5	74 – 88
06.	खण्ड – 1	इकाई – 6	89 – 101
07.	खण्ड – 2	इकाई – 1	102 – 114
08.	खण्ड – 2	इकाई – 2	115 – 127
09.	खण्ड – 2	इकाई – 3	128 – 139
10.	खण्ड – 2	इकाई – 4	140 – 155
11.	खण्ड – 2	इकाई – 5	156 – 169
12.	खण्ड – 3	इकाई – 1	170 – 182
13.	खण्ड – 3	इकाई – 2	183 – 192
14.	खण्ड – 3	इकाई – 3	193 – 204
15.	खण्ड – 4	इकाई – 1	205 – 224
16.	खण्ड – 4	इकाई – 2	225 – 244
17.	खण्ड – 4	इकाई – 3	245 – 271
18.	खण्ड – 4	इकाई – 4	272 – 288
19.	खण्ड – 4	इकाई – 5	289 – 303
20.	खण्ड – 5	इकाई – 1	304 – 317
21.	खण्ड – 5	इकाई – 2	318 – 329
22.	खण्ड – 5	इकाई – 3	330 – 343
23.	खण्ड – 5	इकाई – 4	344 – 356
24.	खण्ड – 5	इकाई – 5	357 – 369

खण्ड – 1 : भाषा और भाषाविज्ञान

इकाई – 1 : भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

इकाई की रूपरेखा

1.1.00 उद्देश्य
1.1.01 प्रस्तावना
1.1.02 भाषा के विविध रूप
    1.1.02.1 मौखिक भाषा
    1.1.02.2 लिखित भाषा
    1.1.02.3 सांकेतिक भाषा
1.1.03 भाषा की परिभाषा
1.1.04 भाषा का अभिलक्षण
    1.1.04.01 यादृच्छिकता (Arbitrariness)
    1.1.04.02 सृजनात्मकता (Creativity)
    1.1.04.03 अनुकरणग्राह्यता (Learnability)
    1.1.04.04 परिवर्तनशीलता
    1.1.04.05 विविक्तता (Discreteness)
    1.1.04.06 अभिरचना द्वित्व (Duality)
    1.1.04.07 विस्थापन (Displacement)
    1.1.04.08 मौखिक-श्रव्य माध्यम
    1.1.04.09 भूमिकाओं की परस्पर परिवर्तनीयता (Interchangebility)
    1.1.04.10 असहजवृत्तिकता
1.1.05 भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार
1.1.06 भाषा का महत्त्व
1.1.07 पाठ-सार
1.1.08 बोधात्मक प्रश्न
1.1.09 कठिन शब्दावली
1.1.10 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1.1.00 उद्देश्य

भाषाविज्ञान पाठ्यचर्या की यह पहली इकाई है । प्रस्तुत पाठ में आप भाषा की परिभाषा और उसके अभिलक्षण से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों का अध्ययन करेंगे । आप सभी सुधी पाठक हैं और भाषा की महता को भलिभाँति समझते हैं । स्वभाविक रूप से आपके मन में यह प्रश्न जरुर उपस्थित होता होगा कि जीवन के विकास के क्रम में मनुष्य के द्वारा भाषा का अर्जन कितना महत्त्वपूर्ण पड़ाव रहा होगा ! यह एक निर्विवाद मान्यता है कि

भाषा मनुष्य के सामूहिक प्रयास का प्रतिफल है और भाषा में होने वाले बदलाव से समाज का प्रत्येक सदस्य न्यूनाधिक प्रभावित होता है। भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण शीर्षक इस इकाई को लिखित रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत करने का हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि इसके अध्ययन के उपरान्त आप कम से कम निम्नलिखित बिन्दुओं को अवश्य जान सकें –

i. भाषा किस प्रकार हमारी अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण माध्यम है ?
ii. मनुष्य की भाषा की विशिष्टता के विविध पक्ष कौन-कौन से हैं ?
iii. भाषा की परिभाषा क्या है ?
iv. भाषा के अभिलक्षण कौन-कौन से हैं ?
v. भाषा से सम्बद्ध अन्य आवश्यक मुद्दे कौन-कौन से हैं ?

1.1.01 प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन के विकास की प्रक्रिया में भाषा की उत्पत्ति एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार भाषा निरन्तर बदलती रही है और इस बदलाव के पीछे मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा सदैव सक्रिय रही। हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल को यदि द्रुत गति से परिवर्तित होनेवाला काल कहा जाता है तो इसे वैचारिक रूप से सम्पन्न और प्रभावकारी बनाने में अभिव्यक्ति की वर्तमान उन्नत भाषिक शक्ति की बड़ी भूमिका रही है। 'आचरण की सभ्यता', 'उत्साह', 'अशोक के फूल', 'भाखा बहता नीर' और 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' जैसे निबन्धों को पढ़ते हुए आपने अनुभव किया होगा कि हिन्दी के लेखक अपने समाज, संस्कृति के साथ-साथ भाषा के प्रति निरन्तर कितने सजग होते गए। इन पाठों के अध्ययन के क्रम में आपने गम्भीर साहित्य सृजन से जुड़े लेखकों द्वारा प्रयुक्त भाषिक विविधता एवं विशिष्टता को समझने का प्रयास किया होगा।

1.1.02 भाषा के विविध रूप

भाषा के मूल में 'भाष्' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसका सामान्य अर्थ 'वाक्' अथवा बोलने की क्रिया से जुड़ा है। इसी आधार पर भाषा को एक ऐसा साधन माना जाता है, जिसके द्वारा मनुष्य बोलकर, सुनकर अपने मन के भावों या विचारों का आदान-प्रदान करता है, लेकिन बाद में इसके अन्तर्गत लिखना-पढ़ना भी जुड़ गया और अब इन क्रियाओं को भी भाषा और सम्प्रेषण से सम्बद्ध कर दिया गया है। अतः जिसके द्वारा हम अपने भावों को लिखित अथवा कथित रूप से दूसरों को समझा सकें और दूसरों के भावों को समझ सकें उसे भाषा कहते हैं।

सार्थक व्यक्त वाणी से शुरू हुई भाषा आज मानवीय व्यवहार के बृहत्तर परिप्रेक्ष्य से जुड़ चुकी है। विज्ञान के द्वारा तकनीकी के कई नवीन क्षेत्रों के विकास के बाद आजकल भाषा-प्रौद्योगिकी की चर्चा की जा रही है और निकट भविष्य में कई अन्य परिवर्तन भी हो सकते हैं।

भाषा की परिभाषा प्रस्तुत करने से पूर्व भाषा के यथासम्भव सभी मान्य अथवा प्रचलित रूपों का उल्लेख करना आवश्यक है ताकि परिभाषा की परिधि में उन सभी भाषिक रूपों को सम्मिलित किया जा सके। मोटे तौर पर भाषा के तीन रूप होते है – मौखिक भाषा, लिखित भाषा और सांकेतिक भाषा।

1.1.02.1 मौखिक भाषा

जीवन में भाषा के मौखिक रूप का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है। इसमें वक्ता बोलकर अपनी बात कहता है व श्रोता सुनकर उसकी बात समझता है, फिर त्वरित अथवा एक अन्तराल के बाद अपनी प्रतिक्रिया देता है। अतः भाषा का वह रूप जिसमें एक व्यक्ति वाणी के माध्यम से विचार प्रकट करता है और दूसरा व्यक्ति सुनकर उसे समझता है, मौखिक भाषा कहलाती है। उदाहरण के लिए – दैनिक जीवन में सामान्य वार्तालाप के अलावा टेलीफ़ोन, दूरदर्शन, भाषण, वार्तालाप, नाटक, रेडियो आदि के द्वारा मौखिक भाषा व्यक्त होती है। यह भाषा का प्राचीनतम रूप है।

1.1.02.2 लिखित भाषा

भाषा का वह रूप जिसमें एक व्यक्ति अपने विचार या भाव लिखकर प्रकट करता है और दूसरा व्यक्ति पढ़कर उसकी बात को समझ लेता है, लिखित भाषा कहलाती है। इस प्रकार की भाषा में अक्षरों, चिह्नों के द्वारा निर्मित शब्दों की सहायता ली जाती है जिनके माध्यम से अपने मन के विचारों को लिखकर प्रकट किया जाता है। पत्र, लेख, पुस्तक, पत्रिका, समाचार-पत्र, कहानी, जीवनी, संस्मरण, तार आदि लिखित भाषा के उदाहरण हैं।

1.1.02.3 सांकेतिक भाषा

जिन संकेतों के द्वारा शिशु, दिव्यांग-व्यक्ति या गोपनीय कार्य से जुड़े लोग अपने मंतव्यों को दूसरों तक पहुँचाते हैं, वे सब सांकेतिक भाषाएँ कहलाती हैं। अपने दैनिक जीवन में विशेष अवस्था में हम संकेतों (इशारों) द्वारा विचार व्यक्त करते हैं, वह भी सांकेतिक भाषा कहलाती है। जैसे – यातायात पुलिस की आंगिक-भाषा, मूक-बधिर व्यक्तियों का वार्तालाप आदि। विचार-अभिव्यक्ति के इस माध्यम का अध्ययन न तो भाषा के व्याकरण में किया जाता है और न ही इसे सैद्धान्तिक दृष्टि से भाषाविज्ञान में सम्मिलित किया जाता है।

मौखिक और लिखित भाषा के विविध प्रयोग क्षेत्रों के आधार पर भाषा के कई अन्य रूपों की चर्चा भी की जाती है। जैसे – क्षेत्रीय भाषाएँ अथवा बोलियाँ, परिनिष्ठित भाषा, राजभाषा आदि।

जिन स्थानीय भाषिक रूपों का प्रयोग देश के विभिन्न गाँव-कस्बों आदि में रहने वाले भाषाभाषी समूह अपने लोक-व्यवहार में करते हैं, उसे बोली (Dialect) कहते हैं। किसी भी देश में बोलियों की संख्या अनेक होती है। भारत में ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मराठी, तेलगु, मलयालम आदि अनेक बोलियाँ प्रयुक्त होती हैं। जब स्थानीय भाषाएँ मानकीकरण एवं परिमार्जन के बाद व्याकरण से नियन्त्रित होने लगती हैं, तब उनका परिष्कृत रूप

विकसित हो जाता है। इस प्रक्रिया के बाद उनका प्रयोग शिक्षा, शासन, साहित्य आदि के क्षेत्र में होने लगता है। बोली को जब व्याकरण से परिष्कृत किया जाता है, तब वह परिनिष्ठित भाषा बन जाती है। खड़ीबोली कभी बोली थी, आज परिनिष्ठित भाषा बन गयी है, जिसका उपयोग आजकल अखिल भारतीय स्तर पर हो रहा है। विद्वानों व शिक्षाविदों द्वारा भाषा में एकरूपता लाने के लिए भाषा के जिस रूप को मान्यता दी जाती है, वह मानक भाषा कहलाती है। भाषा में एक ही वर्ण या शब्द के एक से अधिक रूप प्रचलित हो सकते हैं। ऐसे में उनके किसी एक रूप को विद्वानों द्वारा मान्यता दे दी जाती है। जैसे – गयी-गई (मानक रूप), ठण्ड-ठंड (मानक रूप), अन्त-अंत (मानक रूप)। किसी देश में भाषा की व्यापक स्वीकृति के लिए मानकीकरण की प्रक्रिया बहुत आवश्यक मानी जाती है।

जब कोई भाषा देश के महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक कार्यों में व्यवहृत होकर अपूर्व शक्ति ग्रहण कर लेती है, तब आगे चलकर सर्जनात्मक साहित्य के अतिरिक्त राजनीति, रेडियो आदि के द्वारा जन-जन तक पहुँचने लगती है और एक साथ देश के प्रत्येक क्षेत्र के लोग उसे जानने-समझने लगते हैं। तदनन्तर यह भाषा सभी सीमाओं को लाँघकर अधिक व्यापक और विस्तृत क्षेत्र में विचार-विनिमय का साधन बनकर सारे देश की भावात्मक एकता में सहायक होती है। फिर शासन-व्यवस्था के द्वारा स्वीकृत होकर वह राजभाषा का पद प्राप्त कर लेती है। हमारे देश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद समस्त औपचारिक काम-काज को संचालित करने के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति मिली है। सैद्धान्तिक दृष्टि से आज हिन्दी शासन के सभी कार्यों में प्रयुक्त होती है। यह अध्ययन-अध्यापन की भी भाषा है। वैसे भारत की राजभाषा हिन्दी और अंग्रेजी दोनों हैं। इसी प्रकार इंग्लैंड की राजभाषा अंग्रेजी है। भाषा का एक बहुप्रचलित रूप मातृभाषा है। वह भाषा जिसे कोई बालक अपने परिवार से अपनाता-सीखता है, मातृभाषा कहलाती है। दूसरे शब्दों में, बालक जिस परिवार में जन्म लेता है, उस परिवार के सदस्यों द्वारा बोली जाने वाली भाषा वह सबसे पहले सीखता है। यही मातृभाषा कहलाती है। भाषा व्यवहार का सम्बन्ध विभिन्न व्यवसायों से भी है और विभिन्न व्यवसायों एवं कार्य-क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा एक दूसरे से भिन्न भी होती है। जैसे चिकित्सा, व्यापार, कानून, आनुष्ठानिक विधि-विधान आदि क्षेत्रों की भाषा आम जीवन की भाषा से बिल्कुल अलग होती है। इस भाषा को विशिष्ट भाषा कहा जाता है। आजकल भाषा के एक अन्य रूप अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की भी खूब चर्चा की जाती है। जब कोई भाषा विश्व के दो या दो से अधिक राष्ट्रों द्वारा बोली जाती है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन जाती है। जैसे अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। इसके अतिरिक्त साहित्यिक भाषा, आलंकारिक भाषा, कूटभाषा, अपभाषा, विभाषा, गुप्तभाषा, मिश्रितभाषा जैसे कई विभाजन भी किये जा सकते हैं, किन्तु दूसरी इकाई में इनका विस्तृत विवरण किया जाएगा, इसलिए इस चर्चा को यहीं विराम देते हैं।

स्पष्ट है कि भाषा अपनी प्रकृति में ही अत्यन्त जटिल और बहुस्तरीय नहीं होती बल्कि अपनी प्रयोजन-क्षमता में भी बहुमुखी होती है। भाषा न केवल व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है प्रत्युत वह सामाजिक सम्बन्धों को कायम रखने का उपकरण भी है। भाषा-प्रयोग के ये विविध क्षेत्र भाषा को विभिन्न सन्दर्भों में देखने के लिए बाध्य करते हैं। भाषा को परिभाषित करते समय विभिन्न विद्वान् इन विभिन्न

रूपों को महत्त्व देते हैं। इस पाठ के अगले हिस्से में भाषा के इन सभी रूपों को ध्यान में रखकर भाषा की परिभाषा और उसके स्वरूप को समझने का प्रयास किया जाएगा।

1.1.03 भाषा की परिभाषा

भाषा संस्कृत की भाष् धातु से निष्पन्न है और 'भाष्-व्यक्तायां वाचि' के अनुसार इसका अर्थ है 'व्यक्त वाणी'। भाषण शब्द भी इसी धातु से बना है, किन्तु भाषा और भाषण के अर्थों में पर्याप्त अन्तर है। भाषण व्यक्तिगत होने के कारण वैयक्तिक विशिष्टताओं से युक्त होता है जबकि भाषा सामाजिक वस्तु है और इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज से जुड़ा रहता है। अंग्रेजी में भाषा के लिए लैंग्वेज (Language) शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका सम्बन्ध लैटिन शब्द 'लिंग्वा' (Lingua) – जिह्वा एवं फ्रांसीसी शब्द 'लांग'(Langue) से है। इस अर्थ में लैंग्वेज शब्द अभिव्यक्ति (Human speech) का वाचक माना जाता है। यद्यपि 'भाष्' या 'बोलने' की क्रिया को आधार बनाकर कुछ भाषाशास्त्रियों ने इसे सभी प्रकार की ध्वनियों और सभी प्राणियों के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यमों से जोड़ने का प्रयास किया है। लेकिन ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि अन्य प्राणियों की भाषा को 'अव्यक्त वाक्' कहा गया है। जहाँ मनुष्य की वाणी में उच्चरित ध्वनि-संकेत व्यवस्थित एवं सुगठित होते हैं और उनमें स्पष्टता, असंदिग्धता और सुगमता के गुण पाए जाते हैं, वहीं अन्य जीव-जन्तुओं की भाषा का अध्ययन-विश्लेषण करना अत्यन्त दुरूह है। हाँ ! कई अवसरों पर सर्जनात्मक सन्दर्भ में पशु-पक्षियों के द्वारा उच्चरित ध्वनि रूपों को भाषा या बोली शब्द से सूचित करना लाक्षणिक प्रयोग माना जाता है। जैसे – तोते या बिल्ली की बोली, कौए या कुत्ते की बोली आदि। साहित्य में कवियों ने इस प्रकार के कई लाक्षणिक प्रयोग किए है और प्राणियों के अतिरिक्त प्रकृति के अन्य उपादानों के साथ भी भाषा का प्रयोग किया है। जैसे – नदी, मेघों, खण्डहरों, पत्थरों, फूलों आदि की भाषा। बाल-साहित्य में चूहे, कौवे, गिलहरी, लोमड़ी आदि सभी जीव-जन्तु बोलते हुए वर्णित किये जाते हैं। इस प्रकार लोक-व्यवहार में भाषा का बहुत व्यापक स्तर पर प्रयोग होता है। लेकिन भाषाविज्ञान में भाषा को एक व्यवस्थित माध्यम मानकर उसका अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। इस पाठ में भाषा के इन्हीं पक्षों पर विचार किया जाएगा।

मानव जीवन में विविध रूपों में प्रयुक्त भाषा को एक सर्वमान्य एवं सर्वथा दोषमुक्त परिभाषा में निबद्ध कर पाना बहुत जटिल है। किसी पदार्थ, पद्धति, व्यवस्था आदि की परिभाषा उसकी प्रकृति और उसके प्रयोजन पर आधारित होती है। इस दृष्टि से भाषा की परिभाषा देते समय यह संकट सदैव उपस्थित हो जाता है कि भाषा सिर्फ अपनी प्रकृति में ही अत्यन्त जटिल एवं बहुस्तरीय नहीं होती, बल्कि अपने प्रयोजन में भी असंख्य सम्भावनाओं से युक्त होती है। मसलन एक तरफ यदि भाषा किसी व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों की वाहक है तो दूसरी तरफ वह सामाजिक सम्बन्धों के निष्पादन से जुड़ी अभिव्यक्तियों के लिए उपकरण भी है। यही नहीं, वह हमारी चिन्तन-प्रक्रिया के सन्दर्भ में मानसिक व्यापार है तो सम्प्रेषण-प्रक्रिया के रूप में सामाजिक व्यापार का साधन भी है। इसी प्रकार आन्तरिक प्रकृति के स्तर पर भाषा अपनी विभिन्न संरचनागत इकाइयों के लिए निर्धारित आपसी सम्बन्धों के निर्वहन के लिए बाध्य होती है, तो वहीं प्रयोजनों की विविधता के कारण भाषा में नित्य परिवर्तन का आकांक्षा बनी रहती है। भाषा की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण विद्वानों का एक वर्ग इसे मानव मन की

सर्जनात्मक शक्ति घोषित करता है तो दूसरा वर्ग इसे मानव व्यवहार की सामाजिक शक्ति मानता है। अतः भाषा की सर्वमान्य और निर्विवाद परिभाषा नहीं दी जा सकती। फिर भी अब तक भाषा के लक्षण या परिभाषा के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों के जो मत रहे हैं, यहाँ उनसे आपको अवगत करवाया जाएगा। क्रमशः भारत के प्राचीन आचार्य, पाश्चात्य भाषाविद् और हिन्दी के विद्वानों की परिभाषाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

संस्कृत के प्राचीन विद्वानों ने भाषा को आधार बनाकर कोई गहन अध्ययन-विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया है, किन्तु उनके ग्रन्थों में भाषा से सम्बन्धित कतिपय विचार अवश्य उपलब्ध हैं। विश्वविख्यात संस्कृत वैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी पर विरचित अपने महाभाष्य में महर्षि पतंजलि ने भाषा की परिभाषा देते हुए लिखा कि "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।" अर्थात् जो वाणी में व्यक्त होती है उसे भाषा कहते हैं। यास्क के निरुक्त में भाषा के इन्हीं लक्षणों को आधार बनाकर भाषा के लिए "अणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहरार्थं लोके" कहा गया। आगे 'वाक्यपदीयम्' ग्रन्थ में शब्द की उत्पत्ति और ग्रहण के सन्दर्भ में भर्तृहरि का मानना है –

शब्दः कारणमर्थस्य स हि तेनोपजन्यते।
तथा च बुद्धिविषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते॥

इस कथन में भर्तृहरि का आशय यह है कि शब्द-व्यापार या भाषण-प्रक्रिया दो बुद्धियों के मध्य आदान-प्रदान का माध्यम है। अमरकोश के लिंगानुशासन में "ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर् वाग्वाणी सरस्वती" लिखा गया है, जिसके आधार परभाषा को वाणी का पर्याय कहा जा सकता है। आचार्य दण्डी भाषा को मानव जीवन के लिए बहुत आवश्यक मानते हुए अपने चर्चित ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में यह विचार व्यक्त करते हैं कि –

इदमंधन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

अर्थात् यदि शब्द नाम की ज्योति इस सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित नहीं करती तो यह सम्पूर्ण लोक अँधकारपूर्ण हो जाता। आगे उन्होंने यह भी कहा कि "वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते।" इससे उनका आशय है कि वाणी की कृपा से ही लोकयात्रा चलती है। इन कथनों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत के विद्वानों ने भाषा को मनुष्य की वाणी से सम्बद्ध करते हुए उसे लोक-व्यवहार के लिए आवश्यक माना और ईश्वरीय वरदान घोषित किया।

पाश्चात्य विद्वानों ने भाषा की परिभाषा और उसके विविध रूपों की व्याख्या अपने ढंग से की है। उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

"Language may be defined as the expression of thought by means of speech-sounds."

(Henry Sweet)

अनुवाद : वाक्-ध्वनियों के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति के रूप में भाषा को परिभाषित किया जा सकता है।

"Language is articulate limited organized sound employed in expression."

(Croce)

अनुवाद : भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा सुगठित ध्वनि को कहते हैं, जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है।

"The common definition of speech is the use of articulate sound symbols for the expression of thought."

(A. H. Gardiner)

अनुवाद : सामान्य तौर पर विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उच्चरित ध्वनि-प्रतीकों के प्रयोग को भाषा कहते हैं।

"Language is a purely human and non-instinctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of a system of voluntarily produced symbols. These symbols are, in the first instance, auditory and they are produced by the so-called organ of speech."

(Edward Sapir)

अनुवाद : विचारों, भावनाओं और इच्छाओं को स्वेच्छा से उत्पन्न प्रतीकों के माध्यम से सम्प्रेषित करने की विशुद्ध मानवीय और सायास पद्धति को भाषा कहते हैं। उच्चारण अवयवों से उत्पन्न ये प्रतीक प्राथमिक रूप से श्रवणीय होते हैं।

"A system of communication by sound,i.e. through the organs of speech and hearing, among human beings of a certain group or community, using vocal symbols possessing arbitrary conventional meanings."

(Mario A. Pei & Frank Gaynor)

अनुवाद : किसी वर्ग या समूह विशेष के मनुष्य के द्वारा आपसी व्यवहार के लिए प्रयुक्त वे अभिव्यक्त ध्वनि-संकेत, जिनका अर्थ पूर्व निर्धारित एवं परम्परागत होता है तथा जिनका आदान-प्रदान वाक् एवं श्रवणेन्द्रियों के द्वारा होता है।

"A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group cooperates."

(B. Bloch and G. Trager)

अनुवाद : भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था है, जिसके सहारे कोई सामाजिक समुदाय परस्पर सहयोग करता है।

"A language (is a) symbol system...based on pure or arbitrary Convention... infinitely extendable and modifiable according to the bunging needs and conditions of the speakers."

(R. H. Robins)

अनुवाद : भाषा शुद्ध या यादृच्छिक स्वीकार्यता पर आधारित एक प्रतीक प्रणाली है, जिसे वक्ता अपनी आवश्यकताओं और शर्तों के अनुसार असीमित विस्तार दे सकता है और विविध रूपों में ढाल सकता है।

"From now on I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finite set of elements."

(Noam Chomsky)

अनुवाद : मैं यह मानता हूँ कि भाषा वाक्यों का एक निश्चित अथवा अनिश्चित समुच्चय है, जिसके परिमित अवयवों की संरचना निश्चित घटकों से होती है।

"A language is a device that establishes sound-meaning correlations, pairing meanings with signals to enable people to exchange ideas through observable sequences of sound."

(Ronals W. Langacker)

अनुवाद : भाषा एक ऐसा उपकरण है, जो ध्वन्यात्मक-अर्थ सहसम्बन्धों को स्थापित करती है एवं संकेतों के बीच संसर्ग पैदा करती है ताकि लोग अपने विचारों को ध्वनि के दृश्यात्मक अनुभव के द्वारा आपस में आदान-प्रदान करने में सक्षम हो सकें।

"A language is "audible, articulate human speech as produced by the action of the tongue and adjacent vocal organs... The body of words and methods of combining words used and understood by a considerable community, especially when fixed and elaborated by long usage."

(Webster)

अनुवाद : भाषा मनुष्य के जिह्वा और सम्बद्ध वागेन्द्रियों के सहयोग से उच्चरित एक स्पष्ट श्रवणीय ध्वनि-व्यवस्था है, ... जिसमें प्रयुक्त शब्दों और शब्दों के संयोजन की एक विशेष पद्धति जब तय हो जाती है, तब वह समुदाय लम्बे समय तक उपयोग के लिए उसे परिष्कृत कर लेता है।

"Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by mean of which human being as members of a social group and participants in cultural interact and communicate."

(Encyclopedia Britannica)

अनुवाद : भाषा यादृच्छिक वाक्-प्रतीकों की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मनुष्य एक सामाजिक समूह के सदस्य और प्रतिभागी के रूप में सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सम्प्रेषण करता है।

पाश्चात्य भाषाविदों के साथ ही आधुनिक भारतीय विद्वानों के भाषा सम्बन्धी विचारों को जानना भी आवश्यक है। यहाँ उनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है –

"मनुष्य-मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।"

– डॉ० श्यामसुन्दरदास

"जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।"

– डॉ० बाबूराम सक्सेना

"भाषा वह साधन जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भलि-भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार को स्पष्टतया समझ सकता है।"

– आचार्य कामताप्रसाद गुरु

"अर्थवान् कण्ठोत्पन्न ध्वनि-समष्टि भाषा है।"

– सुकुमार सेन

“Language in its widest sense means the sum-total of such signs of our thoughts and feeling as are capable of external perception and as could be produced and repeated at will.”

अर्थात् अपने व्यापक अर्थ में भाषा के अन्तर्गत ऐसे ध्वनि-संकेतों का पूर्ण योग उपस्थित होता है, जिनके द्वारा हम अपने विचारों और अनुभूतियों को व्यक्त कर सकते हैं तथा जिन्हें अपनी इच्छानुसार उत्पन्न किया या दोहराया जा सकता है।

– पी. डी. गुणे

“विभिन्न अर्थों में संकेतित शब्द-समूह ही भाषा है। इसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट कर सकते हैं।”

– आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

“उच्चरित ध्वनि-संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अथवा जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते है उस यादृच्छिक, रूढ़ ध्वनि-संकेत की प्रणाली को भाषा कहते हैं।”

– आचार्य देवनाथ शर्मा

“भाषा, वागेन्द्रिय द्वारा निस्सृत उन ध्वनि-प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिसके द्वारा किसी भाषा समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को सम्प्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को सूचित करते हैं।”

– रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव

“भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित अध्ययन-विश्लेषणीय यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।”

– भोलानाथ तिवारी

अधिकतर पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त परिभाषाओं में मनुष्य के उच्चारण अवयव, ध्वनि-प्रतीक, यादृच्छिकता, व्यवस्था, सन्देश अथवा सार्थकता, समाज-विशेष आदि लाक्षणिक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। इनके आलोक में भाषा की परिभाषा में विद्यमान भाषा की निम्नलिखित विशिष्टताओं का पता चलता है –

i. आवश्यक रूप से भाषा का सम्बन्ध मनुष्य के उच्चारण अवयव से उत्पन्न ध्वनियों से है। यद्यपि ताली या सीटी आदि बजाकर भी मनुष्य अपने सन्देशों को दूसरे व्यक्तियों तक पहुँचाता है, किन्तु इन्हें भाषा के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किया जाता है।

ii. भाषा में ध्वनि-प्रतीकों का उपयोग किया जाता है, जो सामान्यतः अपनी प्रकृति में रूढ़ और परम्परागत होते हैं, किन्तु सामाजिक विकास के क्रम में आवश्यकतानुसार कुछ नये ध्वनि-प्रतीक भी निर्मित किये जाते हैं।

iii. भाषा में प्रयुक्त ध्वनि-प्रतीक आवश्यक रूप से सार्थक होते हैं। यह और बात है कि इन ध्वनि-प्रतीकों के अर्थ यादृच्छिक और रूढ़िगत होते हैं। इन ध्वनि-प्रतीकों का अध्ययन-विश्लेषण, शिक्षण-प्रशिक्षण और वर्गीकरण किया जा सकता है। ये ध्वनि-प्रतीक मनुष्य के भावों और विचारों के वाहक होते हैं जिनकी पुनरावृत्ति भी हो सकती है। इन ध्वनि-प्रतीकों के माध्यम से वक्ता और श्रोता आपस में भावों और विचारों का विनिमय बड़ी आसानी से करते हैं।

iv. भाषा एक सामाजिक वस्तु है, इसलिए इसका उपयोग उस भाषा-समाज से जुड़े लोग ही कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक समाज एवं वर्ग के ध्वनि-संकेत स्वनिर्मित होने के कारण दूसरे समाज या वर्ग के ध्वनि-संकेतों से पृथक् होते हैं।

v. प्रत्येक भाषा की अपनी एक व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था के कारण ही उस भाषा समाज के सभी सदस्य आपस में भाषा के सन्देशों को सरलता से व्यक्त करने में सक्षम हो पाते हैं। यदि यह व्यवस्था न हो तो भाषा का मनमाना प्रयोग होने लगेगा और कई बार अर्थ का अनर्थ भी हो जाएगा। भाषा की यह व्यवस्था ध्वनि, रूप, पदक्रम आदि भाषा के प्रत्येक स्तर पर कार्य करती है। जैसे – ध्वनि के व्यवस्थित प्रयोग से शब्द, फिर शब्द से वाक्य और वाक्य से प्रोक्ति का निर्माण होता है।

1.1.04 भाषा का अभिलक्षण

मनुष्य जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य से सम्बद्ध होने के कारण भाषा का महत्त्व सर्वोपरि है। आज दुनिया का शायद ही कोई ऐसा भूखण्ड है जहाँ भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता। वर्तमान समय में भाषा के निरन्तर प्रसार एवं विकास ने भाषा को विशिष्ट गरिमा प्रदान की है। प्रत्येक भाषा का अपना वैशिष्ट्य होता है। भाषा मनुष्य जीवन की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, शोध आदि व्यवस्थाओं और गतिविधियों से भी नियन्त्रित होती है। इसके बावजूद भाषा में कुछ ऐसे कारक अन्तर्निहित होते हैं जो विश्व की लगभग सभी भाषाओं में न्यूनाधिक मात्रा में सामान रूप से पाए जाते हैं। इन्हें सामान्यतः भाषा के अभिलक्षण के रूप में उद्धृत किया जाता है। भाषा के इन अभिलक्षणों में यादृच्छिकता, सृजनात्मकता, अनुकरणग्राह्यता, परिवर्त्तनशीलता, विविक्तता, अभिरचना-द्वित्व, विस्थापन, मौखिक-श्रव्य माध्यम, भूमिकाओं की परस्पर परिवर्तनीयता, असहजवृत्तिकता आदि प्रमुख हैं। इनका विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

1.1.04.01 यादृच्छिकता (Arbitrariness)

भाषा की आन्तरिक प्रकृति से सम्बद्ध 'यादृच्छिक' शब्द बहुत ही सारगर्भित माना जाता है । 'यादृच्छिक' भाषा में प्रयुक्त ध्वनि-प्रतीकों की विशिष्टता को प्रकट करता है । मनुष्य की भाषा में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द प्रतीक कहलाता है । प्रतीक का आशय यह है कि भाषा में अर्थवान् उच्चरित खण्डों का अपने वाच्य से प्राकृत या वास्तविक सम्बन्ध न होकर याद्दच्छिक सम्बन्ध होता है । यहाँ 'यादृच्छिकता' का अर्थ है, 'अपनी इच्छा से बनाया गया सम्बन्ध ।' सामान्यतः किसी भाषा में व्यवहृत शब्द द्वारा हमें उस पदार्थ या भाव का बोध होता है, जिससे वह सम्बद्ध हो चुका होता है । शब्द स्वयं पदार्थ नहीं होता, बल्कि उसका प्रतीक होता है । दूसरे शब्दों में कहा जाए तो हम किसी वस्तु को उसके जिस नाम से जानते, पहचानते या पुकारते हैं, उस नाम एवं वस्तु में परस्पर कोई प्राकृत एवं समवाय सम्बन्ध नहीं होता । उनका सम्बन्ध स्वेच्छाकृत मान्य होता है, जिसे एक भाषाभाषी समाज सामूहिक रूप से स्वीकार करता है । इसी कारण किसी भाषा के शब्द स्वतः स्फूर्त नहीं होते, बल्कि हम समाज में रहकर उन्हें सीखते हैं । इसका एक प्रमाण यह है कि एक ही वस्तु, पदार्थ या भाव के लिए अलग-अलग कई ध्वनि-प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है । इसी विशेषता के कारण विश्व में छह हजार से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं । साथ ही यदि शब्द और वस्तु या भाव का सहज-स्वभाविक सम्बन्ध होता हो सभी भाषाओं में प्रायः एक वस्तु के लिए एक ही शब्द होता । जैसे – 'रोटी' के लिए अंग्रेजी में 'ब्रेड' जबकि अरबी में 'खबुस' शब्द का प्रयोग किया जाता है । शब्द के अतिरिक्त व्याकरण के स्तर पर 'रूप-रचना' और 'वाक्य-रचना' में भी यादृच्छिकता की प्रवृति देखी जा सकती है । उदाहरण के लिए अंग्रेजी में कर्त्ता कारक के लिए किसी अतिरिक्त चिह्न का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु हिन्दी में कर्त्ता के साथ 'ने' चिह्न का प्रयोग किया जाता है । जैसे अंग्रेजी में 'Narendra told to mother' बोला या लिखा जाता है जबकि हिन्दी में 'नरेन्द्र ने माँ को बताया' का प्रयोग होता है । इसके अतिरिक्त वाक्य-रचना के लिए हिन्दी में कर्त्ता-कर्म-क्रिया के क्रम (रमेश रोटी खाता है ।) का अनुपालन किया जाता है जबकि अंग्रेजी में कर्त्ता-क्रिया-कर्म का अनुक्रम (Ramesh eat bread.) प्रचलित है । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि व्याकरण सम्बन्धी ये नियम भी यादृच्छिक ही हैं । इन नियमों के पीछे कहीं कोई तर्क-पद्धति कार्य नहीं करती, बल्कि शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में, रूप-रचना में, वाक्य के पदक्रम और अन्वय आदि में कहीं कोई निश्चित तर्क-प्रणाली विद्यमान नहीं है ।

इस प्रकार यादृच्छिकता भाषा का मूलभूत गुण है और यह भाषा-सापेक्ष होता है । संसार की लगभग सभी भाषाओं में यह प्रवृति विद्यमान है । इस यादृच्छिकता की सीमा यह है कि अनुकरणमूलक कतिपय शब्द और उनके अर्थ सहजात भी होते हैं । जैसे जीव-जन्तुओं की बोलियों के लिए प्रयुक्त शब्द – भौं-भौं, काँव-काँव, टाँव-टाँव, कुहू-कुहू, साँय-साँय, सर-सर, फर-फर, ठक-ठक आदि । वैसे एक तो प्रत्येक भाषा में इनकी संख्या सीमित होती है, दूसरे, श्रावणिक ग्रहण में अन्तर की सम्भावना भी सदैव विद्यमान रहती है । उदाहरण के लिए भारतीय लोक-परम्परा में टिटीहरी की बोली को उत्ती-उत्ती के रूप में अनुकृत किया जाता है । इन अनुकरणमूलक शब्दों को यादृच्छिकता की दृष्टि से अपवाद कहा जा सकता है, क्योंकि इन शब्दों से भाषा के सम्पूर्ण दायित्व का निर्वहन सम्भव नहीं है । अतः भाषा को मौलिक रूप से यादृच्छिक ही माना जाता है । इस विवेचन का निष्कर्ष यही है कि

'भाषा' और 'प्रयोजन' में यादृच्छिक सम्बन्ध है और किसी भाषा में शब्दों की संख्या को सीमित नहीं किया जा सकता। वस्तुतः किसी भाषा में शब्द की अभिव्यक्ति सीमा का आकलन सम्भव नहीं है, क्योंकि समय के साथ भाषा में अभिव्यक्ति की नित्य नूतन और असीमित सम्भावनाएँ तलाशी जाती हैं। भाषा की इसी सम्पन्न सम्पदा को आधार बनाकर हॉकेट ने भाषा की 'अर्थवता की असीम क्षमता' का हवाला दिया था। वाकई भाषा में विद्यमान यादृच्छिकता उसकी विशिष्ट शक्ति का सूचक है।

1.1.04.02 सृजनात्मकता (Creativity)

सृजनात्मकता के अभिलक्षण के कारण ही भाषा बदलते समय और ज़रूरतों के अनुरूप अभिव्यक्ति की योग्यता का वहन करने में सक्षम हो पाती है। यद्यपि भाषा में शब्द और रूप प्रायः सीमित होते हैं किन्तु उन्हीं शब्दों या रूपों के आधार पर लोग अपनी-अपनी आवश्यकता एवं प्रसंग के अनुसार सादृश्य के आधार पर नए-नए वाक्यों तथा भाषिक अभिव्यक्तियों का सृजन करते हैं। अक्सर भाषा में कई ऐसे वाक्यों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है जिनका प्रयोग ठीक उसी रूप में पहले कभी नहीं हुआ हो। इस प्रकार का मौलिक प्रयास भाषा में अन्तर्निहित सृजनात्मक क्षमता के कारण होता है। साहित्य के क्षेत्र में भाषा की सृजनात्मकता को आसानी से समझा जा सकता है। आँख, नाक, बाल, वस्त्र, घर, बाग-बगीचे, वन-पर्वत जैसे शब्दों का दैनिक जीवन, विज्ञान और ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों में जिस तरह का प्रयोग किया जाता है, उससे अलग साहित्यिक भाषा में इन शब्दों का अपेक्षाकृत ज्यादा चमत्कारपूर्ण अथवा सौन्दर्ययुक्त प्रयोग किया जाता है। वैसे भाषा का साहित्यिक उपयोग सृजनामकता की दृष्टि से कई बार बेहद जटिल रूप भी धारण कर लेता है, जिसके अर्थ-सूत्रों को पकड़ने में काफी कठिनाई होती है। कबीर की उलटबासियों की भाषा में इसके दिग्दर्शन हो जाते हैं।

कई बार सामान्य भाषिक प्रयुक्तियों में भी भाषा की सृजनात्मकता प्रकट होती है। उदाहरण के लिए अपनी इच्छा से चार-पाँच शब्दों को चुनकर हम कई प्रकार के वाक्य बना सकते हैं। यथा – मैं, तुम, उस, पढ़वाना शब्दों को ही लेकर देखें तो ज्ञात होगा कि इन शब्दों से कम से कम निम्नलिखित वाक्य बनाए जा सकते हैं – मैंने तुम्हें उससे पढ़वाया।; मैंने उसे तुमसे पढ़वाया।; उसने तुम्हें मुझसे पढ़वाया।; उसने मुझे तुमसे पढ़वाया।; तुमने उसे मुझसे पढ़वाया।; तुमने मुझे उससे पढ़वाया।

मनुष्य की भाषा में सृजनात्मकता के फलस्वरूप अभिव्यक्ति के कई विकल्प गढ़े जा सकते हैं। यह गुण मनुष्य की भाषा में ही पाए जाते हैं, जीव-जन्तुओं की भाषा में नहीं। मधुमक्खी आदि की भाषाओं को छोड़कर सभी जीव-जन्तुओं की भाषा में पुनरावृति की प्रवृति देखी जा सकती है। निश्चय ही यह मनुष्य की भाषा का वैशिष्ट्य है। इसे मनुष्य की भाषा की उत्पादन क्षमता (Productivity) भी कहा जाता है।

1.1.04.03 अनुकरणग्राह्यता (Learnability)

भाषा कभी स्वतः प्राप्त नहीं होती, उसे अनुकरण से अर्जित किया जाता है। इस अर्जन की प्रक्रिया को दो स्तरों पर समझा जा सकता है – अनौपचारिक रूप से अर्जन और औपचारिक अर्जन। माता-पिता, भाई-बहन,

मित्र-प्रतियोगी, रिश्तेदार-अभिभावक आदि अनौपचारिक रूप से इस भाषा-शिक्षण में सहयोग करते हैं। बालक बचपन से ही उनके सान्निध्य में रहकर जैसा वे बोलते हैं वैसा ही बोलने का अभ्यास करता है और भाषा के शब्दों को ग्रहण करता जाता है। जैसे दूध के घूँटों से बच्चे के शरीर का विकास होता है, वैसे ही माता-पिता आदि के शब्दों के श्रवण और अनुकरण से बच्चे की भाषिक एवं बौद्धिक क्षमता का विकास होता है। सबसे पहले वह ध्वनियों को सीखता है, फिर शब्दों को बोलता-समझता है और धीरे-धीरे वाक्यों को बनाना शुरु करता है। 'म-म' से 'माँ' फिर 'माँ दू-दूधु' और 'माँ दूध दो' तक की यात्रा पूरी करता है। जब माता-पिता गोद, दूध, पानी, रोटी आदि शब्द बोलते हैं तो उनका अनुकरण करते हुए वह भी इन शब्दों का वाक्य में प्रयोग करना सीख जाता है। आरम्भ में यह नकल या अनुकरण अधूरा एवं अपूर्ण होता है, परन्तु जैसे-जैसे बच्चे की क्षमता बढ़ती जाती है, अनुकरण एवं भाषा-सृजन में वह पारंगत हो जाता है। इस अनुकरण का प्रभाव यह होता है कि प्रदेश-भेद अथवा स्थानीय प्रभाव के कारण भाषा में एक खास तरह की विशिष्टता उत्पन्न हो जाती है। जैसे हिन्दी की भाषिक प्रयुक्ति 'चलता हूँ' को ब्रज बोलने वाला बच्चा 'चलतु हौं', भोजपुरी क्षेत्र का बालक 'चलत हईं' और राजस्थानी बच्चा 'हालूँ' बोलता है। यह और बात है कि अध्ययन के क्रम में वह भाषा के इस विकार को समझने लगता है और मानक भाषा को सीखने का प्रयास करता है। तदनन्तर शिक्षण-प्रशिक्षण की औपचारिक प्रक्रिया के द्वारा शिक्षक-प्रशिक्षक उसे किंचित् जटिल भाषिक अभिव्यक्तियों से युक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त पुस्तकों के द्वारा भी वह परिनिष्ठित भाषा से अवगत होता है और खुद को भाषिक दृष्टि से सम्पन्न करने का प्रयास करता है।

मनुष्य में अनुकरण की यह योग्यता जन्मजात होती है। इस अनुकरणग्राह्यता के परिणामस्वरूप मनुष्य अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य अनेक भाषाओं को सीखने की क्षमता धारण करता है जबकि कुछ अपवाद को छोड़कर अन्य जीव-जन्तुओं में यह क्षमता नहीं होती। मनुष्य की अनुकरण क्षमता के आधार पर ही कई बार भाषा को यत्नज कहा जाता है अर्थात् मनुष्य यत्न करके इसे अर्जित करता है, जन्म के साथ उसे भाषा प्राप्त नहीं होती। उसे सीखने से लेकर भाषा परिष्कृत करने एवं दक्षता हासिल करने के लिए सतत प्रयत्न करना पड़ता है।

1.1.04.04 परिवर्तनशीलता

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार जीवन के अन्य क्षेत्रों की तरह भाषा में भी निरन्तर परिवर्तन होते हैं, किन्तु भाषा में परिवर्तन की गति बेहद मंथर होती है जिसे कई बार लक्षित करना भी सम्भव नहीं होता। भाषा में होने वाले परिवर्तनों को एक दीर्घ अन्तराल के बाद परखा जाता है। भाषा में होने वाले इन परिवर्तनों को ध्वनि, रूप और अर्थ के स्तर पर देखा जा सकता है। जैसे –

अग्नि > अग्गि > आग

कर्म > कम्म > काम

हस्त > हत्थ > हाथ

नयन	>	नइन	>	नैन
लवंग	>	लऊँग	>	लौंग
शत	>	सउ	>	सौ

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि संस्कृत के शब्दों का रूप मध्यकाल में परिवर्तित होते हुए आजकल काफी परिवर्तित हो गया है। भाषा में होने वाले इन परिवर्तनों के लिए लोप, आगम, विपर्यय, समीकरण, स्वतः अनुनासिकता, मुख-सुख आदि कई कारणों की चर्चा की जाती है और यह स्वीकार किया जाता है कि इनके परिणामस्वरूप भाषा की ध्वनि, स्वन, रूप आदि इकाइयों में परिवर्तन हो जाता है। वस्तुतः भाषा की संरचना में ही परिवर्तन के लक्षण विद्यमान हैं। चूँकि भाषा की संरचना उसके स्वन-तत्त्व और अर्थ-तत्त्व के योग से निर्मित होती है और प्रत्येक व्यक्ति का स्वन-यंत्र वैयक्तिक विशिष्टता से युक्त होता है और दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है, इसलिए उच्चारण में भिन्नता की सम्भावना सदैव बनी रहती है। वहीं अर्थ का सम्बन्ध व्यक्ति की मानसिक एवं सांस्कृतिक अवस्था से जुड़ा होता है। जाहिर है युग और भौगोलिक भिन्नता की अवस्था में भाषा भिन्न होगी। इस प्रकार ध्वनि और अर्थ में परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर गतिमान रहती है।

भाषा मूलतः सीखी जाती है। ऐसी स्थिति में अनुकरण चाहे जितना भी परिश्रम या कठिन साधना से किया जाए, वह मूल के जैसा नहीं हो सकता। उसमें कतिपय परिवर्तन और सीखने वाले की निजता का प्रभाव आ ही जाएगा। अतः अनुकरणधर्मी होने के कारण भाषा परिवर्तित होती जाती है। यही चिरपरिवर्तनशीलता मनुष्य की भाषा को अन्य जीवों की भाषा से अलगाती है।

1.1.04.05 विविक्तता (Discreteness)

भाषा में कई इकाइयाँ अन्तर्निहित होती हैं। मनुष्य की भाषा का स्वरूप इन्हीं इकाइयों से मिलकर निर्मित होता है। कई ध्वनियों के योग से शब्द बनता है, फिर एक या अधिक शब्दों के मिलने से वाक्य बनता है। भाषा में विद्यमान यह बहुघटकता, विभाज्यता, विच्छिन्नता भाषा की विविक्तता कहलाती है। यह गुण अन्य प्राणियों की भाषा में नहीं मिलता। कई जीव-जन्तु अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए कुछ विशेष प्रकार के ध्वनि-संकेत पैदा करते हैं और अपनी विशिष्ट शारीरिक भंगिमाओं को प्रदर्शित करते हैं। वे ध्वनि-संकेत अविच्छिन्न रूप से एक ही इकाई होते हैं। उन्हें टुकड़ों में विभाजित करना सम्भव नहीं होता, बल्कि विभाजित करने पर वे ध्वनि-संकेत अपनी विशिष्टता खो देते हैं। लेकिन मनुष्य की भाषा को विभिन्न सार्थक इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है और इनमें से कई इकाइयों का स्वतन्त्र प्रयोग मनुष्य द्वारा किया भी जाता है।

1.1.04.06 अभिरचना द्वित्व (Duality)

एक विशिष्ट क्रम तथा व्यवस्था वाले स्वरूप को 'अभिरचना' (Pattern) कहते हैं। 'द्वित्व' दो का वाचक है। इस प्रकार मनुष्य की भाषा-व्यवस्था में दो भिन्न स्तरों की उपस्थिति को अभिरचना द्वित्व कहा जाता है। सामान्यतः वक्ता भाषा के द्वारा अपने सन्देशों को श्रोता तक पहुँचाता है। सन्देश-सम्प्रेषण की यह क्रिया दो निश्चित स्तरों के माध्यम से सम्पन्न होती है। पहले स्तर का सम्बन्ध कथ्य और उसके अर्थ से होता है। इस स्तर पर वक्ता अपने अविच्छिन्न विचार को अर्थ की दृष्टि से न्यूनतम इकाइयों के सहारे बाँधने का प्रयास करता है। अभिव्यक्ति के अन्तिम चरण अथवा दूसरे स्तर पर वह अभिव्यक्ति के माध्यम (ध्वनि) के अनुरूप इकाइयों का चयन करता है। जैसे यदि वक्ता के विचार की न्यूनतम इकाई 'जल' है तो वह हिन्दी की न्यूनतम ध्वनि इकाइयों में से – ज्+अ+ल्+अ को चुनेगा। यद्यपि ध्वनि की इन चार इकाइयों का अपना कोई अर्थ नहीं होता, किन्तु अपनी रूप-रचना के प्रकार्य के अनुसार हिन्दी में इसे 'जल' शब्द के रूप में ग्रहण किया जाता है। वक्ता को इससे मिलते-जुलते शब्दों यथा – कल, नल, पल, बल आदि में से ध्यानपूर्वक चयन करना पड़ता है। भाषा का यह अभिलक्षण इस बात का द्योतक है कि मानव-भाषा एक साथ दो अभिरचनाओं के प्रतिफलन का परिणाम है, जिसमें पहली अभिरचना विचार की न्यूनतम इकाइयों का और दूसरी प्रभेदन में सम्बद्ध इकाइयों का परिणाम होती है।

भाषा की इस द्विस्तरीय व्यवस्था में पहले स्तर की इकाइयाँ जिनका सम्बन्ध ध्वनियों से है वे निरर्थक होती हैं। जैसे जल शब्द की ज्, अ, ल् और अ ध्वनियों का अपना कोई अर्थ नहीं होता, लेकिन ये आपस में मिलकर भाषा के लिए सार्थक शब्द का निर्माण करती हैं और अर्थभेदक भी होती हैं। इनके विपरीत दूसरे स्तर की इकाइयाँ रूपिम (शब्द, धातु , प्रत्यय, उपसर्ग, कारक-चिह्न आदि) सार्थक होती हैं। इस द्वैतता को अभिरचना की द्वैतता भी कहते हैं, अर्थात् भाषा में एक साथ अर्थद्योतक और अर्थभेदक इकाइयों का मौजूद होना। यह अभिलक्षण भी सिर्फ मानव स्वीकृत भाषा में ही पाया जाता है।

1.1.04.07 विस्थापन (Displacement)

भाषा का यह अभिलक्षण सन्देशों के काल से सम्बद्ध होता है। हम लोग अपनी भाषा-प्रयोग के क्रम में कालान्तरण कर सकते हैं। इस अभिलक्षण को भाषा के विकास के आवश्यक तीन चरणों के सहारे समझा जा सकता है। आरम्भिक चरण की आंगिक भाषा सीमित और स्थूल थी। उसमें भूख, प्यास, क्रोध आदि से जुड़े सामान्य भाव प्रकट हो जाते थे, लेकिन इन भावों की अभिव्यक्ति के क्रम में आंगिक चेष्टाओं को देखना-दिखाना अनिवार्य था, क्योंकि बिना दिखाए अभिव्यक्ति सम्भव नहीं थी। ऐसी स्थिति में सामान्यतः प्रकाश या करीब होने की आवश्यकता होती थी। वाचिक भाषा में ये कठिनाइयाँ दूर हो गईं और सूक्ष्म भाव या विचार भी व्यक्त किये जाने लगे तथा प्रकाश और प्रत्यक्षता भी अनावश्यक हो गई। इसके बावजूद वाचिक भाषा में देश-काल की सीमा से बँधी थी और इसका प्रयोग उतनी ही दूरी तक हो सकती थी, जितनी दूरी तक सुनाई पड़ सकती थी। साथ ही उसी समय तक इसकी अभिव्यक्ति सम्भव थी, जब तक ये बोली जा रही हो। तदनन्तर भाषा का लिखित रूप विकसित हुआ, जिसमें ये सारी परेशानियाँ दूर हो गईं। अपने लिखित रूप में भाषा देश-काल तक बँधी हुई नहीं रह

गई है, बल्कि इसके लिखित रूप को मनचाहे काल या स्थान पर पुनः पढ़ा जा सकता है। अब विज्ञान के असीमित प्रसार काल में रिकार्डिंग की तकनीकी ने इसके लिखित रूप को भी पीछे छोड़ दिया है और अब वक्ता की मूल ध्वनि को जब, जहाँ और जितनी बार चाहें पुनः सुना जा सकता है। इस प्रकार आज की हमारी भाषा में वर्तमानकाल के अतिरिक्त भूतकाल और भविष्यत्काल के सन्देशों को वहन करने की क्षमता विद्यमान है। कई बार मित्रगण पुरानी बातों के जरिये विगत जीवन की स्मृतियों में पहुँचा देते हैं, कई बार वर्षों पुरानी घटनाओं को किसी के मुख से सुनकर हम लोग भावुक-पुलकित भी होते हैं। इसी प्रकार अपने कठिन परिश्रम का निकट भविष्य में मिलने वाले फल की उम्मीद से भी हम प्रसन्न होते हैं। इतिहास की भाषा में भूतकाल में घटित घटनाओं का स्पष्ट दर्शन किया जा सकता है, वहीं विज्ञान की भाषा में भावी आविष्कारों और उत्पादों के रोचक विवरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

कुछ अपवादों को छोड़कर मानवेतर प्राणियों की भाषा में केवल वर्तमान के विषय में सूचना निबद्ध होती है। उदाहरण के लिए अगर किसी पशु को शत्रु सम्बन्धी सूचना दूसरों या अपने समूह तक पहुँचानी होती है तब उसके सामने यह बाध्यता होती है कि वह शत्रु वर्तमान में प्रत्यक्ष हो। वह उसी स्थान या उसके आस-पास के बारे में सूचना दे सकता है, जहाँ भाषा-व्यवहार हो रहा हो, दूसरे या दूर के स्थान के बारे में वह सूचना देने में सक्षम नहीं होता। कुछ अवस्थाओं में उसे प्रत्यक्ष दिखाना पड़ता है। इसके विपरीत मनुष्य काल या स्थान से जुड़ी कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी भाषा का प्रयोग करने में सफल हो जाता है। इस प्रकार भाषा का यह अभिलक्षण इस बात का सूचक है कि मनुष्य की भाषा में 'समय' और 'स्थान' की दृष्टि से सन्देश के विस्थापन की क्षमता मौजूद होती है। सचमुच भाषा मनुष्य के स्मृति-कोश और चिन्तन-प्रक्रिया का आधार है। भाषा के इस वैशिष्ट्य के कारण हम अपनी भाषा में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों की संरचनाएँ प्राप्त कर लेते हैं। भाषा हमें यह सामर्थ्य प्रदान करती है कि हम विगत घटनाओं का परीक्षण-मूल्यांकन करके वर्तमान को समझें और भविष्य के अनिष्टों के प्रति समाज को सजग रखें।

1.1.04.08 मौखिक-श्रव्य माध्यम

मनुष्य अपने भावों, विचारों, सन्देशों आदि को व्यक्त करने के लिए जिस अभिव्यक्ति माध्यम का सहारा लेता है, वह मूलतः मौखिक-श्रव्य माध्यम है। संकेतार्थ के रूप में किसी सन्देश को भेजने के लिए वक्ता सर्वप्रथम अपने मुख विवर से भाषिक-प्रतीकों का उच्चारण करता है। दूसरी तरफ उस सन्देश को ग्रहण करने वाला श्रोता उस सन्देश को अपनी कर्णेन्द्रियों से सुनता है। पुनः वक्ता-श्रोता की भूमिका बदलती है और श्रोता अपनी प्रतिक्रिया देते हुए वक्ता बन जाता है। इसे मौखिक-श्रव्य सरणि भी कहा जाता है। यह भाषा अभिव्यक्ति की सामान्य प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सन्देशों का आदान-प्रदान होता है। यह अभिलक्षण इस बात का द्योतक है कि भाषा मूलतः मौखिक होती है और उसका लिखित रूप इसी मौखिक रूप पर अवलम्बित होता है। मानवेतर प्राणियों में सन्देश भेजने की कई दूसरी पद्धतियाँ होती हैं, यह ज़रूरी नहीं है कि वे मौखिक-श्रव्य माध्यम को ही अपनाएँ। उदाहरण के लिए पेड़-पौधों के पराग और शहद सम्बन्धी सूचना देने के लिए कभी-कभी मधुमक्खियाँ नृत्य का सहारा लेती हैं। मधुमक्खियों द्वारा चयनित सूचना सम्प्रेषण की ध्वनियुक्त नृत्य-माध्यम को 'दृश्य-सरणि'

कहा जा सकता है। इसी प्रकार कुछ जीव-जन्तु अपने शत्रुओं की सूचना अपने शरीर से बदबूदार गन्ध निकालकर प्रकट करते हैं, जिसे 'घ्राण-सरणि' कहा जाता है।

1.1.04.09 भूमिकाओं की परस्पर परिवर्तनीयता (Interchangebility)

भाषा के प्रयोग के समय वक्ता और श्रोता की भूमिकाओं में लगातार परिवर्तन होता है। बातचीत करते समय लगातार एक ही व्यक्ति नहीं बोलता, बल्कि एक समय जो बोल रहा होता है, वही दूसरे समय में सुन रहा होता है। अर्थात् जब वक्ता बोलता है तो श्रोता या श्रोतागण सुनते हैं, फिर श्रोता जब बोलने लगता है तो वह श्रोता से वक्ता की भूमिका ग्रहण कर लेता है और वक्ता श्रोता बनकर सुनने लगता है। यही भूमिकाओं की अदला-बदली या परस्पर परिवर्तनीयता है। वैसे तो कई अन्य प्राणियों में भी भाषा का यह अभिलक्षण पाया जाता है, पर उनमें वार्तालाप की अवधि अपेक्षाकृत छोटी होती है।

1.1.04.10 असहजवृत्तिकता

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि जीवन के आरम्भिक चरण में मनुष्य की भाषा दूसरे जीव-जन्तुओं की तरह सहजवृत्तिक रही होगी और भूख, भय, कामेच्छा आदि की स्थिति में वह भी अपने मुँह से कुछ विशेष प्रकार की ध्वनियाँ निकालता होगा। लेकिन समय के साथ मनुष्य अपनी भावनाओं के तत्क्षण या त्वरित अनियन्त्रित प्रकाशन से मुक्त होता गया और भाषिक अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में संयमित होता गया। आज मानव-भाषा मूलतः असहजवृतिक (Non-Instictive) है। इन अभिलक्षणों के अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने सांस्कृतिक संचारण, वाक्छल, अधिगमता आदि को भी भाषा के अभिलक्षण के रूप सम्मिलित किया है।

1.1.05 भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार

हम अपनी पंच-इन्द्रियों के द्वारा गृहीत और मस्तिष्क में निर्मित परिणाम को वस्तु मान बैठते हैं, जबकि इस बात की सदैव सम्भावना बनी रहती है कि किसी वस्तु से सम्बन्धित रंग, रूप और आकार आदि की सूचनाएँ भ्रम मात्र हों। जैसे रस्सी को साँप समझना या अचानक किसी अँधेरे कोने में किसी आकृति को देखकर डर जाना। इस प्रकार की स्थितियाँ सामान्य जीवन में अक्सर उत्पन्न होती हैं। बादलों में जानवरों की कायिक संरचना या विभिन्न वस्तुओं की आकृतियों के उभर आने या विलीन हो जाने की कल्पना का अनुभव एक प्रकार का मनोरंजक खेल हो सकता है किन्तु इतना सामान्य नहीं जितना हम इसे समझते हैं। आइए इसे हम समझने की कोशिश करते हैं। जब हम बादलों में कोई आकृति देखते हैं तो वह किसी समान लक्षण समूह का एक पुंज प्रतीत होता है, जिसे हम अपने अन्य मित्रों को देखने के लिए कहते हैं। ध्यान रहे उन मित्रों में से जिसके मस्तिष्क में ठीक उसी प्रकार के समान लक्षणों वाला पुंज यदि होगा तो वो उस वस्तु का आभास बादलों के बीच पा लेगा अन्यथा नहीं। हमारे वास्तविक जीवन में भी इस रोचक खेल की तरह ही कई अबूझ स्थितियाँ पैदा होती हैं, जहाँ समान और विशिष्ट लक्षणों के प्रकरण उपस्थित होते रहते हैं। भाषा को यादृच्छिक ध्वनि-संकेतों की संरचनात्मक व्यवस्था कहा जाता है। हम भाषा के संकेतों को इस बादल-क्रीड़ा के साथ जोड़ कर देख सकते हैं कि भाषा एक

माध्यम के रूप में मात्र संकेतों के सहारे कार्य का निष्पादन करती है, जबकि वास्तविकता उससे भिन्न भी हो सकती है। सामान्यतः भाषा और यथार्थ में अन्तर की स्थितियाँ बनी रहती हैं, यद्यपि इनमें समानता होने पर सम्प्रेषण की उच्च सफलता हासिल हो जाती है। लेकिन दो मस्तिष्क एक ही सरणि या चिन्तन मार्ग में सोचें, फिर उसके परिणाम और प्रेरक एक ही प्रकार के हों, यह सम्भव नहीं है। इस तरह हमें यह मानना पड़ेगा कि एक मस्तिष्क के विचार को दूसरे मस्तिष्क में बिना क्षति या परिवर्तन के पहुँचा देना एक कठिन कार्य है, किन्तु सम्प्रेषण के क्रम में इस आदर्श के सन्धान का निरन्तर प्रयास किया जाता है।

जब हम भाषा के व्यावहारिक पक्ष की बात करते हैं तो भाषा को एक वातायन के रूप में देख रहे होते हैं, जबकि भाषा स्वयं किसी अन्य को देखने का माध्यम बन जाती है। एक व्यक्ति (वक्ता) के मस्तिष्क और दूसरे व्यक्ति (श्रोता) के मस्तिष्क के बीच निर्धारित पद-युग्मों के द्वारा एक ही वस्तु की अलग-अलग स्थितियों का संकेत किया जा सकता है ताकि भाषा में स्पष्ट रूप से लक्ष्य और माध्यम को अलग-अलग समझा जा सके। भाषा के व्यवहार का मूल चिन्तन इसी लक्ष्य और माध्यम के अध्ययन-विश्लेषण से सम्बन्धित है। कोई भी पद्धति कुछ आदर्शों अथवा मूल्यों पर आधारित होती है। वे मूल्य या आदर्श उस पद्धति का चिन्तन या दृष्टिकोण कहलाते हैं। भाषा का चिन्तन भी कुछ विशिष्ट दृष्टिकोणों के अधीन विश्लेषित होता रहा है। इन्हीं में से एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण भाषा की व्यवस्था और व्यवहार से सम्बन्धित है, जिसके प्रणयन का श्रेय सस्यूर को दिया जाता है।

20वीं सदी में संरचनात्मक भाषाविज्ञान का उदय हुआ। इसके प्रवर्तक के रूप में स्विस भाषावैज्ञानिक फर्डिनांद द सस्यूर को विशेष ख्याति मिली। सस्यूर का प्रमुख प्रदेय भाषा को मनोविज्ञान और समाजविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करना है। उन्होंने भाषा की आन्तरिक प्रकृति को समझने के लिए प्रतीकविज्ञान (Semiology) की अवधारणा को सामने रखा और प्रतीक की प्रकृति को समझने-समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने भाषा को प्रतीकविज्ञान के नियमों के अधीन एक उपांग के रूप में घोषित किया। भाषा को सस्यूर ने मानव व्यवहार के अन्य क्षेत्रों से भिन्न कभी नहीं देखा, बल्कि प्रतीक की अवधारणा को कार्य-व्यापार की पूरी सरणी में एक ओर मनोविज्ञान से तो दूसरी ओर समाजशास्त्र से जोड़ा। सस्यूर ने स्वयं ही कहा कि भाषा में सब कुछ मूल रूप से मनोवैज्ञानिक है। उन्होंने सर्वप्रथम संवाद सरणी (Speaking-Circuit) के द्वारा भाषा की उपस्थिति के लिए कम से कम दो व्यक्तियों (वक्ता और श्रोता) की अनिवार्य उपस्थिति का प्रारूप रखा। इस तरह सस्यूर ने भाषा को प्रतीक-चिह्न से जोड़ा और एक विचार व ध्वनि का संयोजक बताया। सस्यूर ने दो पक्षों के सम्बन्ध को यादृच्छिक (Arbitrary) माना और इसे भाषिक-समुदाय में सन्निहित माना, क्योंकि समाज में प्रयुक्त अभिव्यक्ति का हर उपकरण एक 'सामूहिक मानक' (Collective Norm) के सिद्धान्त द्वारा नियन्त्रित होता है। इस 'सामूहिक मानक' को ही दूसरे शब्दों में 'रूढ़ि' (Convention) कहा जाता है। सस्यूर का महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि उन्होंने प्रतीकों की व्यवस्था को वस्तुतः प्रतीकों की 'भेदक' व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया और कहा कि प्रत्येक स्थिति में हम (प्रतीकों के माध्यम से) किसी पूर्व निर्धारित संकल्पना का पता नहीं लगाते बल्कि (प्रतीकों की) व्यवस्था से उत्पन्न 'मूल्यों' से परिचित होते हैं। सस्यूर ने भाषाविज्ञान की मूल संकल्पनाओं को

द्विआधारीय प्रतिकूल (Binary Opposition) शब्दयुग्मों में प्रस्तुत किया, जिनमें से भाषा-व्यवस्था (Langue) और भाषा-व्यवहार (Parole) की अवधारणा सर्वप्रमुख है।

सस्यूर से पहले 'भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार' विषय पर कभी विचार नहीं हुआ था। यह उनका भाषा-चिन्तन के क्षेत्र में मौलिक विचार माना जाता है। सरल शब्दों में भाषा-व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जो किसी भाषाभाषी के मस्तिष्क में होती है, जबकि भाषा-व्यवहार उसका उच्चरित, लिखित, व्यक्त या प्रयुक्त रूप है। इस तरह भाषा-व्यवस्था सामाजिक होती है तो वाक् या भाषा-व्यवहार वैयक्तिक। दूसरे शब्दों में भाषा-व्यवस्था भाषा-समाज के मस्तिष्क में उपस्थित पूर्ण मूल्य-व्यवस्था है जबकि भाषा-व्यवहार उस व्यवस्था से जन्मा एक उत्पाद मात्र है। क्योंकि अभिव्यक्ति सामूहिक नहीं बल्कि वैयक्तिक होती है और भाषा-व्यवस्था किसी समुदाय के सभी सदस्यों के मन में अंकित व्यवस्था की सामूहिक राशि होती है। इस तरह सस्यूर ने भाषा की संकल्पना को एक ओर 'समाज' से जोड़ा तो दूसरी ओर उसके प्रयुक्त या व्यवहृत रूप को 'व्यक्ति' विशेष से। व्यक्ति की अपनी क्षमताओं से सम्बद्ध होने के कारण 'वाक्' (Parole / Speech) कोडीकरण की उस प्रक्रिया से बँधा होता है, जहाँ कोई व्यक्ति सन्दर्भ, श्रोता, परिस्थिति आदि के औचित्य का ध्यान रखकर 'चयन के सिद्धान्त' के आधार पर किसी वाक्य या वाक्य-समूह का प्रयोग करता है। वस्तुतः यह पक्ष भाषा के यथोचित नियोजन (Articulation) से जुड़ा है। दूसरी तरफ 'भाषा-व्यवस्था' सामाजिक संस्थान (Social Institution) की उस प्रक्रिया का परिणाम है जिसकी प्रकृति व्यक्ति विशेष की अपनी इच्छा से परे समूहगत अनुबंध (Social Contact) या मानक के अनुरूप होती है। यह सम्प्रेषण व्यापार के लिए आवश्यक रूढ़िपरक (Conventional) लेकिन सांकेतिक भाषिक प्रतीकों की उस व्यवस्था से सम्बद्ध होता है जो किसी भी प्रकार से प्रतीकों के मध्य उपादान (Material / Substance) से बाधित नहीं होता। इस तरह भाषा मूल्यों की व्यवस्था के रूप में कार्य करती है। भाषाविज्ञान में आगे चलकर नॉम चॉम्स्की के भाषा-सामर्थ्य और भाषा-निष्पादन के विचार को भी इन्हीं दो आधारभूत तत्त्वों से सम्बद्ध माना गया।

1.1.06 भाषा का महत्त्व

मनुष्य और भाषा का सम्बन्ध न केवल अत्यन्त प्राचीनकाल से है, वरन् अटूट भी है। मनुष्य के जीवन के आरम्भिक चरण में सम्भवतः भाषा नहीं रही होगी और मानव-समुदाय निरर्थक ध्वनियों एवं संकेतों आदि से काम चलाता होगा, किन्तु अभिव्यक्ति के लिए निरन्तर संघर्ष करते हुए मनुष्य ने अंततोगत्वा एक सक्षम माध्यम के रूप में भाषा का विकास कर ही लिया। तदनन्तर जैसे-जैसे वह समय की चुनौतियों के समानान्तर सभ्यता के विकास के उच्चतर सोपानों पर चढ़ता गया, वैसे-वैसे भाषा और भी समृद्ध एवं सक्षम होती गई। यह मानव के अथक परिश्रम का ही परिणाम है कि आज मनुष्य की भाषा भावाभिव्यक्ति और रचनात्मक दृष्टि से अन्य सभी प्राणियों से श्रेष्ठ और सफल है। मनुष्य आज भी लगातार भाषा के परिमार्जन में दिन-रात संलग्न है। निरन्तर शोध एवं सुधार द्वारा यह प्रयास किया जा रहा है कि भाषा वर्तमान वैज्ञानिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप सशक्त और समृद्ध बने।

भाषा एक सामाजिक सम्पत्ति है। मनुष्य उसे उत्तराधिकार रूप में प्राप्त करता है, फिर उसमें अपने परिश्रम का योग देकर उसे और भी सम्पन्न तथा नवीन बनाने का प्रयास करता है। जीवन और जगत् से जुड़ी भाषा मानव जाति की अमूल्य सम्पदा है। उसका स्वायत्त अध्ययन व्यक्ति को अपनी पहचान बनाने में सहायक होता है। मनुष्य बचपन में शिक्षा-प्राप्ति हेतु और युवावस्था में आजीविका हेतु भाषा के औपचारिक रूप को अपनाता है। जीवन के इस विशेष पड़ाव पर भाषा की शक्ति उसे विशिष्ट पद और सामाजिक गरिमा प्रदान करती है। भाषा के महत्त्व को ध्यान में रखकर इन औपचारिक उपयोग के कुछ क्षेत्रों को समझा जा सकता है। वस्तुतः भाषा को जानना और समाज में उसके सफल प्रयोग की जानकारी सम्प्रेषण एवं भाव-बोध दोनों ही दृष्टियों से ज़रूरी है। भाषा के प्रति सजग चेतना और उसकी प्रकृति की समझ इसमें सहायक सिद्ध होती हैं क्योंकि भाषा मानव समाज के आन्तरिक भेदों की अभिव्यक्ति का सशक्त और सक्षम माध्यम है। यह भी स्मरणीय है कि अपने प्रयोग में जहाँ भाषा नई सर्जनात्मक सम्भावनाओं से युक्त लचीली और नव्यता लिए हुए होती है, वहीं मानवीय विशेषता के रूप में भाषा जाति-विशिष्ट और सर्जनात्मक-अनुकरण से युक्त भी होती है। हमारी चिन्तन-प्रक्रिया, भाव-बोध और विचारों की अभिव्यक्ति का साधन होकर भाषा हमारे भाव जगत् और बाह्य जगत् के बीच तादात्म्य स्थापित करती है। अपने प्रयोजन में बहुमुखी भाषा मन की सर्जनात्मक तथा व्यवहार की सामाजिक शक्ति के साथ जुड़कर लोगों के समक्ष उपस्थित होती है। साहित्य के क्षेत्र की भाषा सर्वाधिक रचनात्मक एवं हृदय के करीब होती है। यह रचनाकारों को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करती है। साहित्यकार अपनी विशिष्ट भाषा-सामर्थ्य से अपनी रचनाओं में आत्मीय चित्र उकेरते हैं, जिससे पाठक अभिभूत हो जाते हैं। हिन्दी में प्रेमचंद, निराला, प्रसाद, बच्चन, पंत, शमशेर, दिनकर, मोहन राकेश, अज्ञेय, नरेन्द्र शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि साहित्यकारों का महत्त्व और सामाजिक स्वीकार्यता उनकी विशिष्ट भाषा के कारण ही हासिल हुई है।

1.1.07 पाठ-सार

प्रस्तुत पाठ के आरम्भ में भाषा का सामान्य परिचय और उसके विविध रूपों का उल्लेख किया गया है ताकि भाषा की परिभाषा प्रस्तुत करने से पहले भाषा के उन सभी पक्षों को समझा जा सके जिन्हें परिभाषा की परिधि में समाहित किया गया है। इसके उपरान्त भाषा की परिभाषा पर विचार किया गया है, जिसमें संस्कृत के विद्वानों, पश्चिम के भाषाविदों तथा आधुनिक भारतीय भाषाशास्त्रियों की भाषा सम्बन्धी परिभाषाओं को उद्धृत किया गया है। प्रस्तुत पाठ में भाषा के आवश्यक कारकों को स्पष्ट किया गया है और उनके माध्यम से भाषा की विशिष्टता को भी उद्घाटित किया गया है। प्रस्तुत पाठ में भाषा के अभिलक्षणों को उदाहरणसहित विश्लेषित किया गया है। यहाँ भाषा के बाह्य और आभ्यान्तरिक विशिष्टताओं का विस्तार से परिचय दिया गया है। अभिलक्षणों की व्याख्या में संसार की सभी भाषाओं के गुण-धर्मों को समाहित किया गया है। प्रस्तुत पाठ में 'भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार' शीर्षक आधुनिक अवधारणा पर गहनतापूर्वक विचार किया गया है। पाठ के अन्तिम हिस्से में भाषा के महत्त्व पर दृष्टिपात किया गया है।

1.1.08 बोधात्मक प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा का आशय स्पष्ट करते हुए उसकी परिभाषा लिखिए।
2. भाषा के अभिलक्षणों को संक्षेप में लिखिए।
3. भाषा-व्यवस्था और भाषा-व्यवहार की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए सामाजिक जीवन में भाषा के महत्त्व पर विचार कीजिए।

टिप्पणी लिखिए –

1. ध्वनि-प्रतीक
2. यादृच्छिकता
3. मौखिक-श्रव्य माध्यम
4. सृजनात्मकता
5. परिवर्तनशीलता

1.1.09 कठिन शब्दावली

वागेन्द्रिय : वाक् + इन्द्रिय; वाक् उच्चारण या बोलने की क्रिया को कहते हैं और इन्द्रिय शरीर का अंग है। इस प्रकार वागेन्द्रिय का अर्थ है – मनुष्य के उच्चारण अवयव या अंग, अर्थात् भाषा के ध्वनियों को उच्चरित करने वाले अंग; मुख विवर।

सम्प्रेषण : भेजना; पहुँचाना; एक स्थान या एक व्यक्ति से दूसरे स्थान या दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना; स्थानान्तरित करना; भाषा के प्रयोग करके मनुष्य अपने सन्देश को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषित करता है।

ध्वनि-प्रतीक : प्रतीक को प्रतिरूप भी कहते हैं, सामान्यतः ऐसे वस्तु, दृश्य, तथ्य आदि का सूचक होता है जिसे किसी अन्य, अदृश्य या समतुल्य वस्तु या तथ्य के अनुरूप होने के कारण उसके प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है; भाषा की महत्त्वपूर्ण इकाई ध्वनि भी प्रतीक रूप में स्वीकृत की जाती है, यहाँ प्रतीक और वस्तु के बीच किसी प्रकार का वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता, बल्कि समाज द्वारा स्वीकृत सम्बन्ध होता है।

सृजनात्मकता : रचना-शक्ति की क्षमता, उत्पन्न करने की मेधा-शक्ति, निर्माण अथवा बनाने की कला में निपुण होना, नवीन उद्भावनाओं में समर्थ होना।

रूढ़िपरक : प्रचलित; ख्याति-प्राप्त; प्रसिद्ध; परम्परागत एवं समाज स्वीकृत; प्रथा या रीतिसूचक; ऐसी मान्यताएँ या अवधारणाएँ जिसे किसी समाज ने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया हो और जिसके सन्दर्भ में तर्क-विवेक आदि के लिए स्थान गौण हो।

1.1.10 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

01. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान : सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0.
02. गुरु, कामताप्रसाद, (2009), हिंदी व्याकरण, दिल्ली-2, प्रकाशन संस्थान, 81-7714-329-8.
03. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन.
04. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल.
05. शर्मा, डॉ० राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7.
06. शर्मा, डॉ० हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9.
07. सिंह, डॉ० कर्ण, (1992), भाषाविज्ञान, मेरठ, शिक्षा साहित्य प्रकाशक
08. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर, पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी
09. MHD-7, पाठ-सामग्री, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, दिल्ली
10. एम.ए. हिंदी, पूर्वार्द्ध, प्रश्नपत्र-8, भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा, पाठ-सामग्री, पत्राचार पाठ्यक्रम एवं अनुवर्ती शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-7

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : भाषा और भाषाविज्ञान

इकाई – 2 : भाषाओं का वर्गीकरण तथा उनके आधार और आकृतिमूलक वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

1.2.1 उद्देश्य
1.2.2 प्रस्तावना
1.2.3 आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधार
1.2.3.1 स्वनिमिक
1.2.3.2 रूपिमिक या संरचनात्मक
1.2.3.3 वाक्यविन्यासीय
1.2.4 स्वनिमिक : खंडीय एवं खंडेतर स्वनिम, तान
1.2.5 रूपिमिक या संरचनात्मक आधार पर वर्गीकरण
1.2.5.1 अयोगात्मक भाषाएँ
1.2.5.2 योगात्मक भाषाएँ
1.2.5.3 अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ
1.2.5.4 श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ
1.2.5.5 प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ
1.2.6 वाक्यविन्यासीय शब्दक्रम
1.2.7 पाठ-सार
1.2.8 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
1.2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.2.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप यह जान सकेंगे कि –

i. भाषा वर्गीकरण से क्या तात्पर्य है !
ii. आकृतिमूलक वर्गीकरण से क्या तात्पर्य है और यह किन आधारों पर किया जाता है !
iii. आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधार पर भाषाओं के कौन-कौन से भेद-प्रभेद किये जाते हैं !
iv. आकृतिमूलक वर्गीकरण के अन्तर्गत संसार की किन-किन भाषाओं को एक साथ रखा जा सकता है !
v. क्या आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं !

1.2.2 प्रस्तावना

भाषाओं को किन्हीं लक्षणों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। भाषाविदों ने विश्व की भाषाओं के वर्गीकरण के दो मुख्य आधारों की चर्चा की है – आकृति अथवा रचना तथा पारिवारिक अथवा आनुवांशिक सम्बन्ध। रचना तत्त्व या आकृति के आधार पर किये गए वर्गीकरण को आकृतिमूलक वर्गीकरण की संज्ञा दी जाती है। कुछ भाषाएँ आपस में आनुवांशिक आधार पर जुड़ी होती हैं, इस आधार पर किये गए वर्गीकरण को पारिवारिक वर्गीकरण कहा जाता है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण को रूपात्मक, रचनात्मक और पदात्मक वर्गीकरण भी कहा जाता है। आकृति और रूप का अर्थ लगभग समान है। इसी प्रकार पद का सम्बन्ध भी रचना से ही है। इस प्रकार 'आकृतिमूलक' के पर्याय के तौर पर रूपात्मक, पदात्मक या रचनात्मक शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषाओं का वर्गीकरण अट्ठारहवीं शताब्दी से किया जाता रहा है। ये वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किये गए हैं। मोटे तौर पर भाषाओं के वर्गीकरण के दो आधार माने गए हैं – आकृतिमूलक और पारिवारिक।

आकृतिमूलक वर्गीकरण का विकास रूपिमिक वर्गीकरण पर आधारित है जिसका विकास 19वीं शताब्दी के जर्मन भाषाविदों – श्लेगल, श्टाइनथाल, हुंबोल्ट एवं श्लाइखर द्वारा किया गया। अमेरिकी भाषाविद् ऐडवर्ड सपीर ने इसको व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया। आगे चलकर अमेरिकी भाषाविद् जोसेफ़ ग्रीनबर्ग, चेक भाषाविद् विंसेंट स्कालिद्का और रूसी भाषाविद् उपेंस्की ने इसका प्रयोग भाषाओं के रूपिमिक या रचनात्मक वर्गीकरण के लिए किया।

भाषा में दो प्रकार के तत्त्व होते हैं – संरचना तत्त्व और अर्थ तत्त्व। केवल संरचना के आधार पर किया गया वर्गीकरण ही आकृतिमूलक वर्गीकरण कहलाता है जबकि संरचना तत्त्व और अर्थ तत्त्व के सम्मिलित आधार पर किया गया वर्गीकरण पारिवारिक या ऐतिहासिक वर्गीकरण कहलाता है। इस प्रकार भाषा संरचना के किसी भी पक्ष के आधार पर किया गया वर्गीकरण आकृतिमूलक वर्गीकरण कहलाएगा। स्वनिमिक रचना, रूपिमिक रचना या शब्द अथवा पद रचना, वाक्य-रचना को आधार बनाकर आकृतिमूलक वर्गीकरण किया जाता है। यूँ तो रंगों की शब्दावली, स्वरों और व्यंजनों की संख्या को भी आधार बनाकर वर्गीकरण किया जा सकता है और वह भी आकृतिमूलक वर्गीकरण ही कहलाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन भाषाओं में पदों या वाक्यों की रचना का ढंग एक जैसा होता है, उन्हें एक वर्ग में रखा जाता है।

1.2.3. आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधार

विभिन्न आधारों पर आकृतिमूलक वर्गीकरण करने के प्रयास किये गए हैं। वर्गीकरण के लिए मुख्यतया निम्नलिखित तीन प्रमुख आधारों का प्रयोग किया जाता है –

1.2.3.1. स्वनिमिक

इसके अन्तर्गत भाषा की ध्वनि व्यवस्था के आधार पर कई पैरामीटरों पर वर्गीकरण किया जाता है। ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं – खंडीय और खंडेतर। अधिकांशतया खंडेतर ध्वनियों के आधार पर भाषाओं के वर्गीकरण किये गए हैं। कुछ भाषाओं में तान स्निमिक होती है। तिब्बती-बर्मी भाषाओं तथा चीनी भाषा में तान के आधार पर अर्थ भेद किया जाता है, इसीलिए इन्हें तान वाली भाषाएँ कहते हैं। आर्य भाषाओं में पंजाबी तान वाली भाषा है।

1.2.3.2. रूपिमिक या संरचनात्मक

इसके अन्तर्गत शब्द की आन्तरिक संरचना के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। कुछ भाषाओं में शब्द को रूपिमों में नहीं तोड़ा जा सकता। ऐसी भाषाओं को अयोगात्मक भाषाएँ कहा जाता है। इसके विपरीत जिन भाषाओं में पद रचना मूल शब्दों के साथ उपसर्ग एवं प्रत्यय जोड़कर की जाती है, ऐसी भाषाओं को योगात्मक भाषाएँ कहा जाता है।

1.2.3.3. वाक्यविन्यासीय

इसके अन्तर्गत भाषाओं को प्रमुख रूप से शब्दक्रम को आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। कुछ भाषाओं में क्रिया वाक्य के अन्त में आती है तो कुछ भाषाओं में मध्य में। इसी आधार पर कुछ भाषाओं को कर्त्ता-क्रिया-कर्म वाली भाषाएँ कहा जाता है तो किन्हीं को कर्त्ता-कर्म-क्रिया वाली। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन भाषाएँ कर्त्ता-क्रिया-कर्म (SVO) वाली भाषाएँ हैं और हिन्दी, बांग्ला, मराठी, तमिल, कन्नड़ आदि भाषाएँ कर्त्ता-कर्म-क्रिया (SOV) वाली भाषाएँ हैं। अब इन सबके वारे में विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे –

1.2.4. स्वनिमिक आधार पर वर्गीकरण : खंडीय एवं खंडेतर स्वनिम, तान

आकृतिमूलक वर्गीकरण का तीसरा आधार स्वनिमिक रचना है। इसके अन्तर्गत स्वनिमों को खंडीय तथा खंडेतर के रूप में विभाजित किया जाता है। स्वर और व्यंजन खंडीय स्वनिम हैं। कुछ भाषाओं जैसे हिन्दी में स्वर-दीर्घता स्वनिमिक है जबकि अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश आदि में स्वर-दीर्घता स्वनिमिक नहीं है। इसी प्रकार नासिक्य व्यंजनों की संख्या, प्राणत्व, मूर्धन्यता आदि के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है। हिन्दी में प्राणत्व (अल्पप्राण, महाप्राण), मूर्धन्यता, घोषत्व आदि स्वनिमिक हैं, अर्थ में अन्तर करने का आधार बनती हैं।

खंडेतर स्वनिमों में तान, बलाघात, अनुनासिकता आदि प्रमुख लक्षण होते हैं, जिनके आधार पर भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। चीनी, बर्मी आदि भाषाओं में तान स्वनिमिक है। स्वनिमिक आधार या पैरामीटर पर वर्गीकरण करने के लिए खंडीय स्वनिमों की अपेक्षा खंडेतर स्वनिमों का महत्त्व अधिक होता है। शब्दों में सुर

परिवर्तन को तान कहा जाता है। तान वाली भाषाओं में अनेकार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय में स्वर या तान का प्रयोग किया जाता है। जैसे येन् शब्द के कई अर्थ हैं – धुआँ, नमक, आँख, हंस। इसी प्रकार अफ़्रीका के बंतु परिवार की भाषाओं में भी स्वर-भेद या तान से अर्थ-भेद होता है।

1.2.5. रूपिमिक या संरचनात्मक आधार पर वर्गीकरण

रूपिमिक या संरचनात्मक पैरामीटर को समझने के लिए शब्द और पद की रचना-प्रक्रिया पर विचार करना आवश्यक है। शब्दों की रचना के लिए दो तत्त्व – प्रकृति और प्रत्यय या अर्थ तत्त्व और रचना तत्त्व ज़रूरी होते हैं। कभी-कभी तीसरा तत्त्व – उपसर्ग भी काम में लाया जाता है। प्रकृति मूल तत्त्व है जो अर्थ को आधार प्रदान करती है, प्रत्यय उसको स्पष्ट करने वाला अंश होता है। उपसर्ग प्रकृति-प्रत्यय के योग से उत्पन्न शब्दार्थ का रूपान्तरक होता है। इस प्रकार शब्दों की निष्पत्ति के लिए पहले दोनों का या तीनों का होना ज़रूरी होता है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण में उन भाषाओं को एक वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता है जिनमें पदों, वाक्यों या ध्वनियों की रचना का ढंग एक जैसा होता है। आकृतिमूलक वर्गीकरण के रूपिमिक आधार पर भाषाओं के दो प्रमुख भेद किये जाते हैं – अयोगात्मक और योगात्मक भाषाएँ।

1.2.5.1. अयोगात्मक भाषाएँ

अयोगात्मक भाषाएँ वे होती हैं जिनमें प्रत्येक शब्द की सत्ता स्वतन्त्र होती है। प्रकृति-प्रत्यय जैसी कोई चीज़ नहीं होती। वाक्य में प्रयुक्त होने पर उसमें कोई बदलाव नहीं होता। ऐसी भाषाओं में शब्दों का विभाजन व्याकरणिक कोटियों – संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण आदि के रूप में नहीं किया जाता है। एक ही शब्द स्थान भेद से संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि कुछ भी हो सकता है। अयोगात्मक भाषाओं का प्रतिनिधित्व, सही मायने में, चीनी और वियतनामी भाषाएँ करती हैं।

चीनी भाषा में 'जिन' शब्द का अर्थ है 'मनुष्य', 'तो' अनेक या समूहवाचक प्रत्यय है। दोनों को मिलाकर 'तोजिन' शब्द बना, जिसका अर्थ है 'बहुत मनुष्य'। चीनी में बहुवचनसूचक प्रत्यय नहीं होते, किसी समूहवाचक शब्द के प्रयोग से बहुवचन का बोध हो जाता है। हिन्दी में भी इसके काफ़ी उदाहरण मिल जाते हैं। हिन्दी में लोग या गण शब्द के प्रयोग से बहुवचन का बोध होता है। जैसे – हम लोग, अध्यापकगण, वक्तागण।

अयोगात्मक भाषाओं में स्थान का विशेष महत्त्व होता है। स्थान में परिवर्तन से वाक्यों का अर्थ बदल जाता है। अंग्रेजी और हिन्दी भाषा में भी इसके कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। अंग्रेजी के इन दो वाक्यों को देखें –

Ramesh hits Suresh.

Suresh hits Ramesh.

इन दोनों वाक्यों में शब्दों या पदों में कोई अन्तर नहीं है, केवल उनका स्थान बदल दिया गया है। पहले वाक्य में 'रमेश' कर्त्ता है और 'सुरेश' कर्म। दूसरे वाक्य में स्थान बदल जाने से 'सुरेश' कर्त्ता और 'रमेश' कर्म बन गए हैं। कर्त्ता और कर्म का कोई भी भेदक-चिह्न शब्दों के साथ लगा हुआ नहीं मिलता। हिन्दी में भी इसी तरह के कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे –

साँप नेवला पकड़ता है।

नेवला साँप पकड़ता है।

यहाँ भी कर्त्ता और कर्म का निर्णय केवल स्थान से ही हो रहा है। पहले वाक्य में 'साँप' कर्त्ता है और 'नेवला' कर्म। दूसरे वाक्य में 'नेवला' कर्त्ता है और 'साँप' कर्म।

अयोगात्मक भाषाओं में एक ही शब्द संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि के रूप में प्रयुक्त होता है। अब अंग्रेज़ी का यह उदाहरण देखें – अंग्रेजी के Post शब्द को लेते हैं।

Open the Post box.

Post these letters.

The post has not come so far..

उपर्युक्त तीनों वाक्यों में Post शब्द क्रमशः विशेषण, क्रिया और संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अयोगात्मक भाषाओं में एक ही शब्द विभिन्न व्याकरणिक कोटियों के तौर पर काम करता है। हिन्दी में भी कुछ ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं।

उसका यहाँ से जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। (संज्ञा)

आज मत जाओ, कल सुबह जाना। (क्रिया)

अयोगात्मक भाषाओं में चीनी तथा वियतनामी के अतिरिक्त तिब्बती, बर्मी, स्यामी, अनामी, सुडानी आदि भाषाएँ भी आती हैं। अयोगात्मक भाषाओं की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

i. अयोगात्मक भाषाओं में पदक्रम का बहुत महत्त्व होता है। पदक्रम में परिवर्तन से वाक्य का अर्थ बदल जाता है। अंग्रेज़ी और हिन्दी के सन्दर्भ में इसके कुछ उदाहरण हम ऊपर देख चुके हैं। अब एक उदाहरण चीनी भाषा से लेते हैं।

न्गो (मैं) ता (मारना) नी (तुम) – मैं तुम्हें मारता हूँ।

नी (तुम) ता (मारना) न्गो (मैं) – तुम मुझे मारते हो।

ऊपर शब्दों के रूप ज्यों के त्यों हैं किन्तु स्थान भेद से उनके अर्थ बदल गए हैं।

ii. शब्दों में अर्थ परिवर्तन का आधार स्वर होता है। स्वर भेद से एक ही शब्द कई अर्थ प्रकट करता है। इसके उदाहरण चीनी भाषा में बहुत मिलते हैं, जिनमें एक शब्द आरोह-अवरोह के स्वर परिवर्तन से कई अर्थ देता है। उदाहरण के तौर पर 'मु' शब्द को लें। इस शब्द के कई अर्थ हैं – माता, जंगल आदि।

iii. अयोगात्मक भाषाओं में प्रत्यय तथा विभक्तियाँ नहीं होतीं। समूहवाचक शब्द का प्रयोग करके बहुवचन का बोध कराया जाता है। ऊपर हम चीनी तथा हिन्दी भाषा के उदाहरण देख चुके हैं।

iv. अयोगात्मक भाषाओं में एक ही शब्द संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि के रूप में प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए चीनी भाषा के शब्द 'ता' को ले सकते हैं। इसके अनेक अर्थ हैं – महत्ता (संज्ञा), महान् (विशेषण), महान् होना (क्रिया) और महत्तापूर्वक (क्रियाविशेषण)

v. अयोगात्मक भाषाओं में अधिकांश शब्द एकाक्षरी या निरवयवी या अव्ययहीन होते हैं। इन शब्दों का अवयवों या प्रकृति-प्रत्यय में विभाजन नहीं किया जा सकता।

1.2.5.2. योगात्मक भाषाएँ

योगात्मक भाषाओं में शब्द-निर्माण प्रकृति और प्रत्यय के योग से होता है तथा उन्हें अलग किया जा सकता है। योगात्मक भाषाओं के तीन प्रमुख भेद किये जाते हैं –

1.2.5.3. अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

इन भाषाओं में प्रकृति के साथ प्रत्यय या उपसर्ग का योग होता है जो स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इस वर्ग की प्रमुख भाषा के रूप में तुर्की का उदाहरण दिया जाता है। हिन्दी में भी इसके काफ़ी उदाहरण मिल जाते हैं – जैसे हिन्दी शब्दों मे सीधा-पन, कटु-ता, सम-ता, अ-समान, कु-पुत्र, वि-योग, अ-सुविधा-जनक आदि। दूसरे शब्दों में अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं।

अब तुर्की भाषा से एक उदाहरण लेते हैं –

एव = धर, एव-इम = मेरा घर, एव-देन = घर से, एव-इम-देन = मेरे घर से

सेव = प्यार, सेव-एर = प्यार करने वाला, सेव-एर-इम = मैं प्यार करने वाला हूँ

ऐसी भाषाओं में प्रकृति के साथ प्रत्यय या रचना तत्त्व कभी पहले जुड़ता है, कभी मध्य में, कभी अन्त में और कभी पूर्वान्त में जुड़ता है। इस प्रकार अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के आगे चार भेद किये जाते हैं –

(i) **पूर्वयोग** – इसके उदाहरण बंटू परिवार की काफ़िर तथा ज़ुलू भाषाओं में काफ़ी मात्रा में मिलते हैं।

काफ़िर भाषा में –

कु = के लिए, ति = हम, नि = उन, कुति = हमारे लिए, कुनि = उनके लिए

ज़ुलू भाषा का एक उदाहरण देखें –

उमु = एकवचन सूचक, अब = बहुवचन सूचक, न्तु = मनुष्य

उमुन्तु = एक मनुष्य, अबन्तु = बहुत मनुष्य

हिन्दी में अ-समय, वि-भाग, प्र-कार, सु-पुत्र, आ-जीवन आदि शब्दों को पूर्वयोग के उदाहरणों के रूप में लिया जा सकता है।

(ii) **मध्ययोग** – इसके उदाहरण संथाली भाषा में प्रायः मिल जाते हैं। जैसे –

मंझि = मुखिया, प = बहुवचनसूचक प्रत्यय, मपंझि = मुखिए

दल = मारना, प = परस्पर, दपल = परस्पर मारना

(iii) **अन्तयोग** – तुर्की भाषा में इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।

एव = घर, लेर = बहुवचन सूचक, एवलेर = बहुत घर

देन = से, इम = मेरा, एव-इम-देन = मेरे घर से

भारतीय भाषाओं में द्रविड़ परिवार की भाषाओं में इसके अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। जैसे – कन्नड़ भाषा में 'सेवक" शब्द के विभिन्न कारकों में इस प्रकार रूप मिलते हैं। मलयालम में भी विभक्तियाँ शब्द के अन्त में लगती हैं।

कर्त्ता :	सेवक-नु (सेवक ने)	सेवक-रु (सेवकों ने)
कर्म :	सेवक-नन्नु (सेवक को)	सेवक-रन्नु (सेवकों को)
करण :	सेवक-निंद (सेवक से)	सेवक-रिंद (सेवकों से)
सम्प्रदान :	सेवक-निगे (सेवक के लिए)	सेवक-रिगे (सेवकों के लिए)

सम्बन्ध :	सेवक-न (सेवक का)	सेवक-र (सेवकों का)
अधिकरण :	सेवक-नल्लि (सेवक पर)	सेवक-रल्लि (सेवकों पर)

(iv) **पूर्वान्तयोग** – इस वर्ग की भाषाओं में प्रकृति से पूर्व और अन्त में प्रत्यय या रचना तत्त्व लगते हैं। पूर्वान्तयोग के उदाहरण न्यूगिनी की नफ़ीरं भाषा में मिलते हैं। जैसे –

म्नफ़ = सुनना, ज़ = मैं, उ = तुम, ज़ – म्नफ़ – उ = मैं सुनता हूँ।

1.2.5.4. श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

इनमें प्रत्यय के जुड़ने से प्रकृति तत्त्व में कुछ परिवर्तन हो जाता है। हिन्दी के नैतिक, भौगोलिक तथा दैविक शब्दों को लीजिए। नीति + इक = नैतिक, भूगोल + इक = भौगोलिक, देव + इक = दैविक आदि। यहाँ इक प्रत्यय के योग से प्रकृति या अर्थतत्त्व में परिवर्तन हो गया है। इसी प्रकार अरबी भाषा में भी इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। अरबी में धातु या प्रकृति तत्त्व क-त-ब का अर्थ है लिखना। इससे कई शब्द बनते हैं। जैसे – किताब (पुस्तक), कुतुब (किताबें), कातिब (लिखनेवाला), मकतब (जहाँ लिखना सिखाया जाता है), मकतूब (लिखित) आदि। इसी प्रकार क़-त-ल धातु से क़त्ल, क़ातिल, इ-श-क़ से इश्क़, आशिक़ आदि शब्द श्लिष्ट योगात्मकता के उदाहरण हैं।

भारोपीय परिवार तथा सामी परिवार की भाषाएँ इसी वर्ग में आती हैं। संस्कृत के अतिरिक्त लैटिन, ग्रीक, रूसी आदि भाषाओं की रचना व्यवस्था भी एक जैसी है। श्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में क्रमश योगात्मक से वियोगात्मक होने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। संस्कृत से हिन्दी, लैटिन से फ्रांसीसी तथा स्पैनिश का विकास इसके प्रमाण हैं। संस्कृत योगात्मक थी, विभक्तियाँ शब्दों के साथ लिखी जाती थीं, किन्तु हिन्दी में विभक्तियाँ या परसर्ग शब्दों के साथ नहीं लगते। यही बात फ्रांसीसी तथा स्पैनिश भाषाओं में भी दिखाई पड़ती है।

1.2.5.5. प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय (अर्थतत्त्व और रचनातत्त्व) का इस प्रकार मिश्रण हो जाता है कि उन्हें अलग करना सम्भव नहीं होता। अनेक अर्थतत्त्व सिमटकर आपस में मिल जाते हैं और एक शब्द बन जाता हैं। ऐसे में एक शब्द पूरे वाक्य का अर्थ देता है।

संस्कृत में हमें प्रश्लिष्ट योगात्मकता के उदाहरण मिलते हैं। निम्नलिखित क्रियारूप से स्पष्ट हो जाता है –

जिगमिषति	=	वह जाना चाहता है।
पिपठिषामि	=	मैं पढ़ना चाहता हूँ।

एस्किमो तथा बास्क भाषाएँ भी इसी कोटि में आती हैं। बास्क के इन उदाहरणों में प्रश्लिष्ट योगात्मकता दिखाई देती है।

दकर्किओत	=	मैं इसे उस तक ले जाता हूँ।
नकार्सु	=	तू मुझे ले जाताहै।
हकार्त	=	मैं तुझे ले जाता हूँ।

1.2.6. वाक्यविन्यास के आधार पर वर्गीकरण : शब्दक्रम

आकृतिमूलक वर्गीकरण का दूसरा प्रमुख पैरामीटर वाक्यविन्यास के स्तर पर शब्दक्रम होता है। वाक्य स्तर पर शब्दक्रम के निम्नलिखित छह साँचे सम्भव हैं जिनके आधार पर भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है।

1. कर्त्ता – क्रिया – कर्म	S V O	(अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पैनिश)
2. कर्त्ता – कर्म – क्रिया	S O V	(हिन्दी तथा अन्य आर्य भाषाएँ)
3. क्रिया – कर्त्ता – कर्म	V S O	(अरबी भाषाएँ)
4. क्रिया – कर्म – कर्त्ता	V O S	(मालागास्कर की मालागासी भाषा)
5. कर्म – कर्त्ता – क्रिया	O S V	(कौकेशिया की कबार्डियन भाषा)
6. कर्म – क्रिया – कर्त्ता	O V S	(ब्राजील की हिस्कारयाना भाषा)

विश्व की अधिकांश भाषाएँ पहले तीन शब्दक्रम वाले साँचों के अन्तर्गत आती हैं। अंग्रेज़ी प्रधानतया कर्त्ता – क्रिया – कर्म (S V O) शब्दक्रम वाली भाषा है। हिन्दी कर्त्ता – कर्म – क्रिया (S O V) शब्दक्रम वाली भाषा है। किन्तु संस्कृत में इस प्रकार की स्थिति नहीं है क्योंकि संस्कृत में विभक्तियों का प्रयोग किया जाता है। वाक्य में पदों को कहीं भी उलट-पुलट कर रख दें तब भी अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। उदाहरणार्थ –

रामः ओदनम् पचति।	(राम चावल पकाता है)
ओदनम रामः पचति।	(राम चावल पकाता है)
पचति रामः ओदनम।	(राम चावल पकाता है)
पचति ओदनम् रामः।	(राम चावल पकाता है)

1.2.7. पाठ-सार

भाषाओं का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है। भाषा में दो तत्त्व होते हैं – रूप तत्त्व और अर्थ तत्त्व। रूप तत्त्व को आधार पर स्वनिमिक, संरचनात्मक तथा वाक्यात्मक तीन भेद हैं। स्वनिमिक आधार पर भाषाओं को खंडीय तथा खंडेतर स्वनिमों के आधार पर भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। तान, बलाघात आदि के आधार पर किया गया वर्गीकरण स्वनिमिक आधार पर आकृतिमूलक वर्गीकरण कहलाएगा। संरचनात्मक या रूपिमिक आधार की चर्चा करते हुए हम देखा कि विश्व की भाषाओं को अयोगात्मक तथा योगात्मक दो भागों में बाँटा जाता है। योगात्मक भाषाओं के आगे तीन भेद किये जाते हैं – अश्लिष्ट, श्लिष्ट और प्रश्लिष्ट योगात्मक। अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के आगे चार उपभेद किये जाते हैं – पूर्वयोग, मध्य योग, अन्त योग तथा पूर्वान्त योग। इन सभी भाषा भेदों के बारे में हमने इस पाठ में सोदाहरण विस्तारपूर्वक जाना। वाक्यात्मक आधार पर विश्व की भाषाओं को छह वाक्य साँचों में बाँटा जाता है, यद्यपि विश्व की अधिकांश भाषाएँ पहले तीन वाक्य साँचों S V O, S O V तथा V S O के अन्तर्गत आती हैं। हिन्दी तथा आर्य एवं द्रविड़ परिवार की भाषाएँ S O V (कर्त्ता-कर्म-क्रिया) वाक्य साँचे वाली भाषा है। अंग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाएँ S V O (कर्त्ता-कर्म-क्रिया) वाक्य साँचे वाली भाषा है।

भाषाविज्ञानी यह मानते हैं कि भाषा-विकास का चक्र अयोगात्मकता से योगात्मकता तथा योगात्मकता से अयोगात्मकता की ओर चलता रहता है। आज की अनेक अयोगात्मक भाषाओं का प्राचीन रूप योगात्मक था। हिन्दी, फ्रांसीसी, स्पैनिश, अंग्रेजी आदि कई भाषाएँ इसके उदाहरण हैं। संरचना के आधार पर विभाजक रेखा खींचना काफी मुश्किल है क्योंकि प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे अंश मिल जाते हैं जो उपर्युक्त दोनों वर्गों में पाए जाते हैं।

आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना काफ़ी कठिन है क्योंकि सभी भाषाओं में अयोगात्मकता और योगात्मकता (अश्लिष्टता, श्लिष्टता और प्रश्लिष्टता) के उदाहरण मिल जाते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि संसार की सभी भाषाओं का अभी तक अध्ययन नहीं हो पाया है। सम्भव है, उनका अध्ययन होने पर और भी आकृतिमूलक विशेषताओं का पता चल सके और आकृतिमूलक वर्गीकरण को वैज्ञानिकता प्राप्त हो सके। अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते।

1.2.8. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का चिह्न लगाइए –

   (i) संरचना तत्त्व के आधार पर किया गया वर्गीकरण आकृतिमूलक वर्गीकरण कहलाता है। (√)

   (ii) अयोगात्मक भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय होते हैं। (X)

(iii) आकृतिमूलक वर्गीकरण को रूपात्मक, पदात्मक या संरचनात्मक वर्गीकरण भी कहा जाता है। (√)

(iv) अयोगात्मक भाषाओं में स्थान का बहुत महत्त्व होता है। (√)

(v) वाक्यात्मक आधार पर आकृतिमूलक वर्गीकरण में पदक्रम का बहुत महत्त्व होता है। (√)

(vi) अयोगात्मक भाषाओं में एक ही शब्द संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि अनेक रूपों में प्रयुक्त होता है। (√)

(vii) भाषा-विकास का चक्र अयोगात्मकता से योगात्मकता तथा योगात्मकता से अयोगात्मकता की ओर चलता रहता है। (√)

(viii) हिन्दी कर्त्ता – क्रिया – कर्म शब्दक्रम वाली भाषा है। (X)

(ix) आकृतिमूलक वर्गीकरण के लिए खंडीय स्वनिमों की अपेक्षा खंडेतर स्वनिमों का महत्त्व अधिक होता है। (√)

(x) संस्कृत भाषा मुक्तशब्दक्रम वाली भाषा है। (√)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(1) किस प्रकार की भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं ?

(क) अश्लिष्ट योगात्मक भाषा

(ख) योगात्मक भाषा

(ग) अयोगात्मक भाषा

सही उत्तर (ग)

(2) हिन्दी तथा अन्य आर्य भाषाओं में कौन-सा शब्दक्रम मिलता है ?

(क) कर्म – कर्त्ता – क्रिया

(ख) कर्त्ता – कर्म – क्रिया

(ग) कर्त्ता – क्रिया – कर्म

सही उत्तर (ख)

(3) स्वनिमिक आधार पर अधिकांशतः किसे वर्गीकरण का आधार बनाया जाता है ?

(क) शब्दक्रम

(ख) खंडेतर स्वनिम

(ग) व्याकरणिक कोटियाँ

सही उत्तर (ख)

(4) संस्कृत में इनमें से किसका प्रयोग किया जाता है ?

(क) प्रत्यय

(ख) विभक्तियाँ

(ग) खंडेतर स्वनिम

सही उत्तर (ख)

(5) इनमें से कौनसी अयोगात्मक भाषा है ?

(क) चीनी

(ख) तुर्की

(ग) हिन्दी

सही उत्तर (क)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) अश्लिष्ट योगात्मक भाषा

(ii) अन्तयोग

(iii) अयोगात्मक भाषा के लक्षण

(iv) आकृतिमूलक वर्गीकरण का संरचनात्मक आधार

(v) खंडीय और खंडेतर स्वनिम

1.2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. Comrie, B. (1989). Language universals and linguistic typology : Syntax and morphology. Oxford : Blackwell,
02. Greenberg, J. The Languages of Africa. Bloomington-The Hague, 1966.
03. Home, K. M. Language Typology : 19th and 20th Century Views. Washington, 1966.
04. Song, J.J. (ed.) The Oxford Handbook of Linguistic Typology. Oxford : Oxford University Press. 2011
05. Whaley, L.J. Introduction to Typology : The unity and diversity of language. Newbury Park : Sage 1997
06. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (तेरहवाँ संस्करण) 2012
07. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
08. बोरा, राजमल (सं.), भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2000
09. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2014

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

01. Linguistictypology-Wikipedia, the free encyclopedia en.wikipedia.org/wiki/Linguistic_typology
02. Languages, Classification of definition of Languages ... encyclopedia2.thefreedictionary.com/Languages,+Cl...
03. LINGUISTIC TYPOLOGY - Encyclopedia.com www.encyclopedia.com › ... › January 1998
04. [DOC]Classification of Human Languages - UCLA Compilers Group compilers.cs.ucla.edu/.../HumanComputerLanguages..
05. Typology 1 - Linguistics @ HKU www.linguistics.hku.hk/program/Typology1.html
06. 2.1 Aspects of typological classification in spoken languages www.linguisticsinamsterdam.nl/.../text-idx?...
07. [PDF]Language Classification and Language Families ... www.pmcbrine.com/courses/cover5.pdf
08. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
09. http://www.hindisamay.com/
10. http://hindinest.com/
11. http://www.dli.ernet.in/
12. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : भाषा और भाषाविज्ञान

इकाई – 3 : पारिवारिक वर्गीकरण तथा भारतीय भाषाएँ

इकाई की रूपरेखा

1.3.01 उद्देश्य
1.3.02 प्रस्तावना
1.3.03 भाषा परिवार की संकल्पना
1.3.04 पारिवारिक वर्गीकरण के आधार
1.3.04.1 स्थान समीपता
1.3.04.2 शब्द समानता
1.3.04.3 व्याकरण समानता
1.3.04.4 ध्वनि समानता
1.3.04.5 अर्थ समानता
1.3.05 पारिवारिक वर्गीकरण की संदिग्धता
1.3.06 आन्तरिक पुनर्रचना एवं तुलनात्मक पुनर्रचना
1.3.07 पारिवारिक वर्गीकरण और भारतीय भाषाएँ
1.3.07.1 आर्य भाषा परिवार की भाषाएँ
1.3.07.2 द्रविड़ भाषा परिवार
1.3.07.3 तिब्बती-बर्मी (चीनी-तिब्बती) भाषा परिवार
1.3.07.4 आस्ट्रो एशियाई (मुंडा) परिवार
1.3.08 पाठ-सार
1.3.09 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
1.3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.3.01. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

(i) भाषा परिवार की संकल्पना को समझ सकेंगे।
(ii) पारिवारिक वर्गीकरण से क्या तात्पर्य है ?
(iii) पारिवारिक वर्गीकरण और आकृतिमूलक वर्गीकरण में क्या अन्तर है ?
(iv) पारिवारिक वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाता है ?
(v) पारिवारिक वर्गीकरण की संदिग्धता के बारे में जान पाएँगे।
(vi) आन्तरिक पुनर्रचना एवं तुलनात्मक पुनर्रचना से क्या तात्पर्य है और उन दोनों में क्या अन्तर है ? यह समझ सकेंगे।

(vii) पारिवारिक वर्गीकरण के आधार पर भारतीय भाषाओं के परिवारों तथा उनके भाषावैज्ञानिक आधारों की भी चर्चा करेंगे।

1.3.02. प्रस्तावना

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का प्रमुख विषय है भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण। इस विषय पर पिछले डेढ़-दो सौ वर्षों में काफ़ी काम हुआ है और विश्व की भाषाओं को विभिन्न भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया गया है। पारिवारिक वर्गीकरण पर विचार करने से पहले हमें भाषा परिवार की संकल्पना को समझना होगा।

कुछ विद्वानों का मानना है कि भाषा परिवार की अवधारणा का सूत्र हमें ईसाई चिन्तन में मिलता है। इसके अनुसार एक आदम से पूरी मानवता का विकास हुआ। इसी प्रकार एक भाषा से कई भाषाओं का विकास हुआ। इस अवधारणा को वैज्ञानिकता प्रदान करने का श्रेय सर विलियम्स जोंस को जाता है। वैसे तो इस सच्चाई को विलियम्स जोंस से पहले भी कई पादरियों ने अनुभव किया था कि संस्कृत भाषा का यूरोप की अनेक भाषाओं – लैटिन, ग्रीक आदि से गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। इस सम्बन्ध को आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। विलियम्स जोंस ने यह प्रतिपादित किया कि भारत और यूरोप की भाषाओं का ग्रीक आदि से गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है और भारत और यूरोप की भाषाएँ किसी प्राचीन भाषा की संतान हैं। इसी से एक भाषा से अनेक की उत्पत्ति और अनेक से अनेकानेक की उत्पत्ति की अवधारणा विकसित हुई। इससे ही भाषा परिवार की अवधारणा का आरम्भ माना जा सकता है।

किन्तु विलियम्स जोंस से बहुत पहले संस्कृत के वैयाकरण भी यह मत प्रकट कर चुके थे कि संस्कृत से ही पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि का विकास हुआ है और आधुनिक भाषाएँ अपभ्रंशों से निकलीहैं। अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में भाषाओं के ऐतिहासिक आधार पर अध्ययन किये गए। इन अध्ययनों में आधुनिक भाषाओं के किसी प्राचीन भाषा से विकसित होने की बात सामने आई। इस बात का आधार आधुनिक यूरोपीय भाषाओं तथा संस्कृत के कई शब्दों में समानता का पाया जाना था। इसी ने एतिहासिक भाषाविज्ञान की नींव रखने का काम किया।

विश्व की विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक पद्धति के आधार पर पारिवारिक वर्गीकरण किया गया है तथा विभिन्न भाषा परिवारों की स्थापना की गई है। जैसे भारत-यूरोपीय (भारोपीय) परिवार, द्रविड़ परिवार, चीनी परिवार, आस्ट्रेलियाई परिवार, अमरीकी परिवार आदि। भाषाविदों ने विश्व के 18 प्रमुख भाषा परिवारों का वर्णन किया है।

जब कई भाषाओं की तुलना की जाती है तो कुछ भाषाओं के बीच समानता पाई जाती है। यह समानता दो आधारों पर हो सकती है। एक है पारिवारिक समानता और दूसरी होती है भाषाई सम्पर्क के कारण समानता। इस पाठ में हम पारिवारिक समानता के आधारों की सोदाहरण चर्चा करेंगे।

विद्वानों ने पारिवारिक वर्गीकरण के कुछ आधार बताए हैं। ये हैं, स्थान समीपता, शब्द समानता, व्याकरण समानता और ध्वनि समानता। इनके सम्बन्ध में इस पाठ में विस्तार से चर्चा की जाएगी। पारिवारिक वर्गीकरण से प्राप्त निष्कर्ष कितने विश्वसनीय हैं, इस सम्बन्ध में भी हम जानने का प्रयत्न करेंगे।

पारिवारिक वर्गीकरण के लिए तुलनात्मक पद्धति का सहारा लिया जाता है। तुलनात्मक पद्धति सम्बद्ध भाषाओं की तुलना करने की एक पद्धति है, जिसके अन्तर्गत सम्बद्ध भाषाओं से तुलनात्मक सामग्री के आधार पर भाषाओं के मूल रूप तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है। यहाँ तुलनात्मक सामग्री से तात्पर्य आधारभूत शब्दावली से है, जिसके अन्तर्गत रिश्ते-नाते की शब्दावली (माता, पिता, भाई, बहन आदि), संख्यावाचक शब्द (एक, दो, तीन, चार आदि), सर्वनाम शब्दों (मैं, तुम, वह आदि) तथा आधारभूत क्रियाएँ (आना, जाना, खाना, सोना, पीना आदि) को लिया जाता है। यह माना जाता है कि इस प्रकार के शब्दों में परिवर्तन अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। यदि इन शब्दों में समानता मिलती है तो पारिवारिक रूप से सम्बद्ध होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसी से सम्बन्धित तुलनात्मक पुनर्रचना तथा आन्तरिक पुनर्रचना के सिद्धान्त भी हैं, जिनके सम्बन्ध में भी इसी पाठ में चर्चा की जाएगी।

अन्त में हम पारिवारिक वर्गीकरण के आधार पर भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे तथा उनके भाषावैज्ञानिक आधारों को भी समझेंगे।

1.3.03. भाषा परिवार की संकल्पना

भाषा परिवार से तात्पर्य किसी सामान्य पूर्वज या प्राक् भाषा से निकली हुई तथा आनुवांशिक सम्बन्ध से जुड़ी हुई भाषाओं से है। इस आधार पर पारिवारिक वर्गीकरण को आनुवांशिक एवं ऐतिहासिक वर्गीकरण की संज्ञा भी दी जाती है। विश्व की विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक पद्धति के आधार पर पारिवारिक वर्गीकरण किया गया है तथा विभिन्न भाषा परिवारों की स्थापना की गई है जैसे भारत-यूरोपीय (भारोपीय) परिवार, द्रविड़ परिवार, चीनी-तिब्बती परिवार, आस्ट्रेलियाई परिवार, अमरीकी परिवार आदि। भाषाविदों ने विश्व के 18 प्रमुख भाषा परिवारों का वर्णन किया है, जिनमें से भारोपीय भाषा परिवार का महत्त्व सबसे ज़्यादा है। इसके अनेक कारण हैं – एक तो जनसंख्या की दृष्टि से इसके बोलने वालों का संख्या सर्वाधिक हैं और दूसरे इस परिवार की भाषाएँ बहुत बड़े भूभाग में बोली जाती हैं। इस परिवार से सम्बद्ध भाषाएँ यूरोप तथा एशिया के काफ़ी बड़े भाग में बोली जाती हैं। साहित्यिक दृष्टि से भी इन भाषाओं का साहित्य उत्कृष्ट है और इनका सर्वाधिक अध्ययन हुआ है।

भारोपीय भाषा परिवार को 'केंटुम' और 'शतम' वर्गों के रूप में भी जाना जाता है। यह विभाजन पश्चिमी और पूर्वी भाषाओं के रूप में भी किया गया है। पूर्वी भाषाएँ 'शतम' वर्ग और पश्चिमी भाषाएँ 'केंटुम' वर्ग से सम्बन्धित मानी गई हैं। शतम वर्ग को भारत-ईरानी, आर्य भाषा परिवार के रूप में भी जाना जाता है। भारत की आर्य भाषाएँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं।

भाषाओं के बीच पारिवारिक सम्बन्ध को सांस्कृतिक संचरण के रूप में भी परिभाषित किया जाता है। सभी भाषाओं में समय के साथ परिवर्तन होता है और अधिक समय बीतने पर अधिक परिवर्तन होता है। जब किसी भाषा का कई पीढ़ियों तक सांस्कृतिक संचरण होता रहता है तब उसमें काफ़ी परिवर्तन आ जाता है और वह मूल भाषा या प्राक्-भाषा से काफ़ी अलग हो जाती है। कभी-कभी तो उसका नाम भी अलग हो जाता है। उदाहरण के लिए आइबेरिया प्रायद्वीप में बोली जाने वाली भारोपीय परिवार की भाषा लैटिन का स्वरूप बदलकर स्पेनिश हो गया। इसी प्रकार इंग्लैंड में प्राक्-जर्मैनिक भाषा विकसित होकर एंग्लो-सैक्सन अथवा अंग्रेज़ी बन गई।

यदि हम स्पेनिश, पुर्तगाली, इतालवी, रोमानियाई भाषाओं की तुलना करें तो हमें इन भाषाओं में एक प्रकार की 'पारिवारिक समानता' मिलती है। जर्मन और फ्रांसीसी भाषा की तुलना करते समय यह 'पारिवारिक समानता' प्रकट नहीं होती किन्तु अंग्रेजी, डच, स्वीडिश या डेनिश, जर्मन की तुलना की जाए तो इन भाषाओं के बीच एक प्रकार की 'आनुवांशिक समानता' दिखाई देती है। इसी प्रकार, ऐसी स्थिति हमें हिन्दी, बांग्ला, असमिया, उड़िया. मराठी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं के सन्दर्भ में भी मिलती है। यदि इन भाषाओं की तुलना करें तो हमें ये सभी भाषाएँ किसी एक स्रोत से निकलती हुई मिलती हैं। इस कारण, इनमें एक प्रकार की आनुवांशिक समानता मिलती है। ये सभी भाषाएँ आर्य भाषा परिवार से सम्बन्ध रखती हैं। किन्तु यदि हम मराठी या बांग्ला या हिन्दी की तुलना तेलुगु या तमिल से करें तो हमें इनमें कोई समानता नहीं मिलती क्योंकि ये भिन्न परिवार की भाषाएँ हैं। मराठी, बांग्ला ओर हिन्दी आर्य परिवार की भाषाएँ हैं तो तेलुगु और तमिल द्रविड़ परिवार की।

इस प्रकार हम पूर्वज भाषा से विकसित वंशज भाषाओं के बीच परिवारिक या आनुवांशिक सम्बन्ध की बात कर सकते हैं। पारिवारिक रूप से सम्बद्ध भाषाओं के बीच सम्बन्ध समीपस्थ अथवा दूरस्थ भी हो सकता है।

1.3.04. पारिवारिक वर्गीकरण के आधार

पारिवारिक वर्गीकरण के सामान्यतया निम्नलिखित पाँच आधार माने जाते हैं – स्थान समीपता, शब्द समानता, व्याकरण समानता, ध्वनि समानता, अर्थ समानता।

1.3.04.1. स्थान समीपता

आम तौर पर एक परिवार से सम्बद्ध भाषाएँ स्थान की दृष्टि से एक दूसरे के समीप होती हैं। इससे उन भाषाओं की एक परिवार से सम्बद्ध होने की सम्भावना बढ़ जाती है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी, पंजाबी, बांग्ला, गुजराती आदि ऐसी भाषाएँ हैं जो एक परिवार में आती हैं। इनमें स्थान समीपता भी पाई जाती है। परन्तु स्थान समीपता पारिवारिक वर्गीकरण का एकमात्र आधार नहीं बन सकती। कुछ भाषाएँ एक दूसरे के समीप होकर भी एक परिवार में सम्मिलित नहीं होतीं, जैसे तेलुगु, मराठी, कन्नड़ स्थान की दृष्टि से समीप हैं किन्तु भिन्न परिवार की भाषाएँ हैं जबकि जर्मन, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत आदि स्थान के आधार पर दूर होकर भी एक परिवार – भारोपीय

परिवार के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार स्थान समीपता पारिवारिक समानता या वर्गीकरण की द्योतक तो है किन्तु निर्णायक आधार नहीं है।

1.3.04.2. शब्द समानता

इसके अन्तर्गत भाषाओं में आधारभूत शब्दावली सम्बन्धी समानता को लिया जाता है। इसमें शब्द की आकृति के साथ-साथ अर्थ को भी विचार में लिया जाता है। यदि एकाधिक शब्दों में शब्द समानता मिलती है तो यह पारिवारिक दृष्टि से सम्बद्ध होने की ओर संकेत देती है। शब्द समानता के लिए आधारभूत शब्दावली पर ही विचार किया जाता है, जिसके अन्तर्गत रिश्ते-नाते की शब्दावली (माता, पिता, भाई, बहन आदि), संख्यावाचक शब्द (एक, दो, तीन, चार आदि), सर्वनाम शब्द (मैं, तुम, वह आदि) तथा आधारभूत क्रियाओं (आना, जाना, खाना, सोना, पीना) आदि को लिया जाता है, क्योंकि इस प्रकार के शब्दों में परिवर्तन अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। यदि इन शब्दों में समानता मिलती है तो उन भाषाओं के पारिवारिक रूप से सम्बद्ध होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

इसी आधार पर संस्कृत, फ़ारसी, ग्रीक, लैटिन, जर्मन, अंग्रेज़ी और हिन्दी के कुछ आधारभूत शब्दों में पारिवारिक समानता दिखाई पड़ती है। इसी आधार पर इन भाषाओं को भारोपीय परिवार के अन्तर्गत रखा गया है।

संस्कृत	फ़ारसी	ग्रीक	लैटिन	जर्मन	अंग्रेज़ी	हिन्दी
मातृ	मादर	Mater	Mater	Mutter	Mother	माता
पितृ	पिदर	Pater	Pater	Vater	Father	पिता
भ्रातृ	बिरादर	Frater	Frater	Bruder	Brother	भ्राता
सप्त	हफ़्त	Hepta	Septem	Sieben	Seven	सात

शब्द समानता के सम्बन्ध में काफ़ी सतर्कता बरतने की आवश्यकता होती है। कई बार आगत शब्दों के कारण भी शब्द समानता हो सकती है। जैसे हिन्दी तथा चीनी भाषा में कुछ शब्दों के आधार पर दोनों को एक परिवार से सम्बद्ध नहीं माना जा सकता। हिन्दी तथा तुर्की भाषा में सैकड़ों शब्द अरबी-फ़ारसी के माध्यम से आए हुए शब्द हैं, इसके आधार पर हिन्दी और तुर्की को एक परिवार के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

कई बार विभिन्न परिवारों की भाषाओं में भी आंशिक शब्द समानता मिलती है, जैसे संस्कृत में जाल्म: शब्द (निर्दयी, अत्याचारी), अरबी में ज़ालिम (ज़ुल्म या अत्याचार करनेवाला), भोजपुरी में नियरे (समीप) तथा अंग्रेज़ी में नियर आदि शब्दों में आकस्मिक साम्य को इन भाषाओं में पारिवारिक या ऐतिहासिक समानता का द्योतक नहीं माना जा सकता। अनुकरणमूलक शब्दों में अक्सर शब्द समानता मिलती है – जैसे हिन्दी में म्याउँ, चीनी में म्याउँ किन्तु इसे परिवारिक समानता का आधार नहीं माना जा सकता।

1.3.04.3. व्याकरण समानता

इसके अन्तर्गत पद रचना और वाक्य-रचना में समानता पर विचार किया जाता है। यह पारिवारिक सम्बन्धों का पुष्ट आधार होता है। प्रत्येक भाषा की पद रचना और वाक्य-रचना बहुत हद तक स्वतन्त्र होती हैं। इनमें बहुत कम परिवर्तन होता है। इस स्तर पर क्रिया शब्दों, उनकी धातुओं, प्रत्ययों के जुड़ने के स्वरूप, प्रत्यय धातु के आदि, मध्य या अन्त में कहाँ लगते हैं तथा वाक्य की रचना किस प्रकार से होती है – इन मुद्दों पर विचार किया जाता है।

1.3.04.4. ध्वनि समानता

यदि विवेच्य भाषाओं की प्रयुक्त ध्वनियों में समानता होती है तो उनमें पारिवारिक सम्बन्ध होने की सम्भावना बढ़ जाती है। किसी भाषा की ध्वनियों में विकास-क्रम में परिवर्तन होते रहते हैं। उदाहरण के तौर पर संस्कृत की ऋ, ष, ज्ञ, ऐ, औ आदि का मूल उच्चारण आज नहीं मिलता। संस्कृत, फ़ारसी, रूसी, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज़ी आदि भाषाएँ भारोपीय परिवार की भाषाएँ हैं। संस्कृत में ज़ ध्वनि नहीं थी जबकि अन्य भाषाओं में यह ध्वनि है। संस्कृत में 'ट'वर्ग ध्वनियाँ थीं, किन्तु अन्य भारोपीय भाषाओं में ये ध्वनियाँ नहीं है। संस्कृत में ड़, ढ़ ध्वनियाँ नहीं है किन्तु उससे विकसित भारतीय आर्य भाषाओं में ये ध्वनियाँ मिलती हैं। कई बार विदेशी भाषाओं के सम्पर्क के साथ विदेशी ध्वनियाँ आ जाती है, जैसे अरबी-फ़ारसी के सम्पर्क से हिन्दी में क़, ख़, ग़, फ़, ज़ आदि ध्वनियाँ भी आ गईं। फिर विदेशी शब्दों को आत्मसात करने से मूल अरबी-फ़ारसी ध्वनियों में परिवर्तन हो गया।

1.3.04.5. अर्थ समानता

अर्थ की स्थिति भी ध्वनि या शब्द समानता की तरह अनिश्चित होती है, अर्थ परिवर्तन भी भाषा की सामान्य विशेषता है। जैसे संस्कृत में 'मृग' शब्द का अर्थ 'कोई भी पशु' था, किन्तु बाद में यह 'पशु विशेष' के रूप में विकसित हो गया। फ़ारसी में 'मृग' शब्द के साथ दो परिवर्तन घटित हुए – एक ध्वनि परिवर्तन जिससे यह 'मृग' से 'मुर्ग' हो गया और दूसरा अर्थ परिवर्तन जिससे यह पशु से पक्षी के अर्थ में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अर्थ भी स्थिर रहने वाली वस्तु नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ध्वनि समानता भी पारिवारिक सम्बन्ध का पुष्ट आधार नहीं है। सबसे विश्वसनीय आधार व्याकरण समानता होती है, दूसरे आधार उसे पुष्ट करने में सहायक हो सकते हैं।

1.3.05. पारिवारिक वर्गीकरण की संदिग्धता

भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण की संदिग्धता के कई कारण मिलते हैं। यथा –

(1) सामग्री की कमी के कारण किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। सामग्री की कमी का मुख्य कारण यह है कि विश्व की अनेक भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं। कुछ भाषाओं के कुछ ही शब्द बच पाए हैं।

अतः अपूर्ण सामग्री के आधार पर सही निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते । अलिखित होने के कारण, अधिकांश भाषाओं में पर्याप्त सामग्री नहीं मिल पाती ।

(2) भाषाओं के इतिहास में समकालिकता का अभाव भी कठिनाई उत्पन्न करता है । जो प्राचीन भाषाएँ ज्ञात हैं उनमें ऐतिहासिक दृष्टि से हज़ारों वर्षों का अन्तर मिलता है । पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार सबसे प्राचीन भाषा सुमेरी 4000 वर्ष ई.पू. की मानी जाती है । मिस्री 2,800 वर्ष ई.पू., भारोपीय 2000 वर्ष ई.पू., चीनी 1500 वर्ष ई.पू., द्रविड़ 500 वर्ष ई.पू., ग्रीक 800 वर्ष ई.पू., तुर्की 800 वर्ष ई.पू. आदि की मानी जाती हैं । भारोपीय परिवार में भी भारत-इरानी का समय 2000 से 1500 वर्ष ई.पू., हित्ती का 1850 वर्ष ई.पू., इटैलियन का 700 वर्ष ई.पू., स्लाविक का 900 वर्ष ई.पू., बाल्टिक का 1500 वर्ष ई.पू. माना जाता है । इस प्रकार काल-भेद के कारण भी भाषाओं के पारिवारिक सम्बन्धों के अन्वेषण में काफ़ी कठिनाई होती है ।

(3) संसार की सभी भाषाओं का समान रूप से अध्ययन भी नहीं हो पाया है । कुछ भाषाओं का अध्ययन संतोषप्रद है तो कुछ का बिल्कुल नहीं । भाषा परिवारों की संख्या के सम्बन्ध में भी एकरूपता नहीं मिलती ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रामाणिक सामग्री की कमी, ऐतिहासिक समकालिकता का अभाव तथा अध्ययन की अपूर्णता भाषाओं के बीच सम्बन्ध-स्थापन में समस्या पैदा करते हैं ।

1.3.06. आन्तरिक पुनर्रचना एवं तुलनात्मक पुनर्रचना

आन्तरिक पुनर्रचना एक पद्धति है जिसके माध्यम से किसी भाषा के वर्तमान रूपों के आधार पर उसके प्राचीन रूपों की पुनर्रचना की जा सकती है । आन्तरिक पुनर्रचना में एक ही भाषा के विभिन्न रूपों (परिवर्तों) की तुलना की जाती है और यह मानकर चला जाता है कि ये परिवर्तन एक मूल रूप से विकसित हुए हैं । वर्तमान संरूपिमों को भी एक रूपिम से विकसित माना जाता है । आन्तरिक पुनर्रचना की आधारभूत धारणा यह है कि विभिन्न परिवेशों में दो या दो से अधिक सार्थक रूपों का सम्बन्ध किसी प्राचीन रूप से हो सकता है ।

तुलनात्मक पुनर्रचना में विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध समानार्थी शब्दों की तुलना करके उस के प्राक् रूप को पुनर्रचित किया जाता है । इसके अन्तर्गत यह मानकर चला जाता है कि ये भाषाएँ किसी एक पूर्वज या प्राक् भाषा से विकसित हुई है । जिस प्रकार तुलनात्मक पुनर्रचना द्वारा पुनर्रचित भाषा को प्राक्-उपसर्ग द्वारा द्योतित किया जाता है, उसी प्रकार आन्तरिक पुनर्रचना द्वारा पुनर्रचित भाषा रूप को पूर्व-उपसर्ग द्वारा प्रकट किया जाता है । जैसे – प्राक्-भारोपीय भाषा या प्राक्-आर्य भाषा । इसी प्रकार प्राक्-आर्य भाषा के पूर्व रूप को पूर्व-प्राक्-आर्य भाषा कहा जाता है ।

आन्तरिक पुनर्रचना को तुलनात्मक पुनर्रचना द्वारा पुनर्रचित प्राक् भाषाओं पर भी लागू किया जा सकता है । दूसरी ओर किसी भाषा के पुनर्रचित रूप के बाद तुलनात्मक पुनर्रचना लागू की जा सकती है । परन्तु इसमें

सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि तुलनात्मक पुनर्रचना लागू करने से पहले आन्तरिक पुनर्रचना लागू करने से भाषा के पूर्व रूपों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण साक्ष्य मिट सकते हैं और इस प्रकार पुनर्रचित प्राक् भाषा की प्रामाणिकता संदिग्ध हो सकती है।

तुलनात्मक पुनर्रचना के आधार पर कई भारतीय आर्य भाषाओं के अध्ययन किये गए हैं। इनमें देवीप्रसन्न पट्टनायक का उड़िया-असमिया-बांग्ला-हिन्दी का अध्ययन है, जिसमें उक्त चारों भाषाओं की 200 शब्दों की आधारभूत शब्दावली के आधार पर इन भाषाओं के विकास के आधारों की चर्चा की गई है। यह शोधपरक अध्ययन अमेरिका के कार्नेल विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था।

इसी सिद्धान्त के आधार पर ठाकुर दास (वर्तमान इकाई लेखक) का कश्मीरी-लहंदा-पंजाबी-हिन्दी का अध्ययन है, जिसमें वर्तमान कश्मीरी-लहंदा-पंजाबी-हिन्दी की 200 आधारभूत शब्दावली तथा नियन्त्रित तुलनात्मक पुनर्रचना के आधार पर इन भाषाओं के पुनर्रचित प्राक्-रूप से इन भाषाओं के विकास-क्रम को दर्शाया गया है। यह अध्ययन वर्ष 1969 में दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.लिट्ट (भाषाविज्ञान) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था।

आगे चलकर वर्ष 1976 में पी-एच.डी. की उपाधि के लिए पूर्वी हिन्दी तथा बिहारी भाषाओं का सम्बन्धपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। इसमें पूर्वी हिन्दी की अवधी तथा छत्तीसगढ़ी, बिहारी की तीन भाषाओं – मगही, मैथिली और भोजपुरी तथा हिन्दी के लगभग 2500 आधारभूत शब्दों के आधार पर उक्त भाषाओं के प्राक-रूप की पुनर्रचना की गई तथा इन भाषाओं में परस्पर-सम्बन्धों की व्याख्या की गई और उनमें हुए ध्वनि परिवर्तनों के आधार पर भाषाओं का विकास दिखाया गया है। प्राक् भाषा से भाषा या भाषा-वर्ग के विकास का आधार किसी एक भाषा में या भाषा-वर्ग में समान ध्वनि नियम का विकास रहा है।

1.3.07. पारिवारिक वर्गीकरण और भारतीय भाषाएँ

भारत एक बहुभाषी देश है। यहाँ विभिन्न भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। सन् 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं। ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक पद्धति के अनुसार एवं पारिवारिक वर्गीकरण के आधार पर भारतीय भाषाओं को चार भाषा परिवारों में विभक्त किया जाता है। ये भाषा परिवार हैं – आर्य भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार, तिब्बती-बर्मी (चीनी-तिब्बती) भाषा परिवार, मुंडा (ऑस्ट्रो-एशियाई) भाषा परिवार।

देश का कोई भी क्षेत्र या राज्य किसी एक भाषा परिवार की भाषा तक सीमित नहीं है। मोटे तौर पर उत्तर तथा मध्य भारत में आर्य परिवार की भाषाएँ, दक्षिण भारत में द्रविड़ परिवार की भाषाएँ, पूर्वोत्तर भारत में तिब्बती-बर्मी परिवार की भाषाएँ, झारखंड में मुंडा भाषाएँ बोली जाती हैं। भाषाविद् मेघालय में बोली जाने वाली खासी भाषा को मुंडा से भिन्न ऑस्ट्रो-एशियाई परिवार की भाषा मानते हैं।

1.3.07.1. आर्य भाषा परिवार की भाषाएँ

संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, कश्मीरी, डोगरी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, बांग्ला, उड़िया, असमिया, लहंदा, सिंधी, बिहारी तथा पूर्वी हिन्दी की भाषाएँ आर्य भाषा परिवार से सम्बन्ध रखती हैं । आर्य भाषाओं को निम्नलिखित पाँच शाखाओं में विभक्त किया जाता है –

(1) उत्तरी-पश्चिमी शाखा : लहंदा, पंजाबी, सिंधी, कश्मीरी, नेपाली आदि।
(2) दक्षिणी-पश्चिमी शाखा : गुजराती, राजस्थानी, भीली आदि।
(3) दक्षिणी शाखा : मराठी, कोंकणी, सिंहली, माल्दीवी आदि।
(4) पूर्वी शाखा : असमिया, बांग्ला, उड़िया आदि।
(5) मध्य देशीय शाखा : हिन्दी, मैथिली, भोजपुरी, अवधी आदि।

भाषाविदों ने इन भाषाओं को एक परिवार में रखने को लिए कई भाषावैज्ञानिक आधारों की चर्चा की है।

ध्वनि व्यवस्था के स्तर पर सभी आर्य भाषाओं में स्वरों में उनके उच्चारण-स्थान के आधार पर भेद किया जाता है। सभी आर्य भाषाओं में मौखिक तथा अनुनासिक स्वर मिलते हैं। सभी आर्यभाषाएँ व्यंजनों में घोष, अघोष, अल्पप्राण तथा महाप्राण के रूप में चौमुखी भेद करती हैं।

रूप व्यवस्था और शब्द रचना की दृष्टि से सभी आर्य भाषाएँ विभक्ति-प्रधान हैं। सामान्यतया आर्य भाषाओं में चार प्रकार के शब्द – तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी पाए जाते हैं। आर्य भाषाओं में दो वचन तथा दो लिंगों का प्रावधान है। कोंकणी, मराठी तथा गुजराती इसके अपवाद हैं। विशेषण संज्ञा से पहले प्रयुक्त होते हैं।

वाक्यविन्यास की दृष्टि से आर्य परिवार की भाषाओं का शब्दक्रम कर्त्ता – कर्म – क्रिया है। क्रिया पदबंध में सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के बाद प्रयुक्त होती है। कश्मीरी इसका अपवाद है। कश्मीरी में शब्दक्रम कर्त्ता – क्रिया – कर्म है।

1.3.07.2. द्रविड़ भाषा परिवार

दक्षिण भारत में बोली जाने वाली अधिकांश भाषाएँ द्रविड़ परिवार की भाषाएँ हैं। इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ हैं, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम। द्रविड़ परिवार की भाषाओं को – उत्तरी शाखा, मध्य शाखा और दक्षिणी शाखा – तीन शाखाओं में बाँटा जाता है। इनके अन्तर्गत निम्नलिखित भाषाओं को रखा जाता है –

(1) उत्तरी शाखा : कुड़ुख, माल्तो, ब्राहुई।
(2) मध्य शाखा : तेलुगु, कुई, गोंडी, कोलामी, पारजी आदि।
(3) दक्षिणी शाखा : तमिल, कन्नड़, मलयालम, तुलु, तोडा, कोटा आदि।

यह माना जाता है कि द्रविड़ परिवार भारत में आर्यों के आने से पहले भी मौजूद था। इसी परिवार की एक भाषा ब्राहुई आज भी ईरान में बोली जाती है।

द्रविड़ भाषाओं की भाषावैज्ञानिक विशेषताओं के अन्तर्गत ध्वनि व्यवस्था के स्तर पर ह्रस्व और दीर्घ स्वर पाए जाते हैं। 'ए' तथा 'ओ' स्वरों के भी दीर्घ रूप मिलते हैं। इन भाषाओं में अनुनासिकता और घोष महाप्राण ध्वनियों का अभाव है।

रूप व्यवस्था तथा शब्द रचना के स्तर पर इन भाषाओं की प्रवृति योगात्मक है। ये परसर्ग प्रधान भाषाएँ हैं। इनमें लिंग दो प्रकार का होता है – निर्जीव और सजीव। प्रथम पुरुष बहुवचन सर्वनाम भी दो प्रकार के मिलते हैं। एक में केवल वक्ता और दूसरे में वक्ता तथा श्रोता दोनों का बोध होता है।

वाक्यविन्यास की दृष्टि से सभी द्रविड़ भाषाओं में आर्य परिवार की भाँति क्रिया वाक्य के अन्त में आती है।

1.3.07.3. तिब्बती-बर्मी (चीनी-तिब्बती) भाषा परिवार

सबसे पहले इन भाषाओं पर जार्ज ग्रियर्सन ने काम किया था। इन भाषाओं में परस्पर बोधगम्यता नहीं के बराबर है। सन् 1955 में रॉबर्ट शेफ़र ने सबसे पहले इन भाषाओं का वर्गीकरण किया। बोडो, अंगामी, आओ, भोटिया, मेइते (मणिपुरी), लाहोली, किन्नौरी, डाफ़ला, काबुई, मिज़ो आदि पर काफ़ी शोध हुआ है।

इन भाषाओं की कुछ भाषिक विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(i) ध्वनि व्यवस्था : ये सभी तान भाषाएँ हैं। तान के आधार पर शब्दों में अर्थ-भेद किया जाता है। स्वर संयोगों की प्रचुरता दिखाई देती है। मणिपुरी में 'मरुओयो' (महत्त्वपूर्ण), 'आइन' (नियम) आदि। घोष स्पर्श व्यंजन शब्दान्त में प्रयुक्त नहीं होते।

(ii) रूप एवं शब्द रचना : ये भाषाएँ अयोगात्मक प्रवृति की भाषाएँ हैं। अनुकरणात्मक शब्दों की बहुलता है। संज्ञा तथा क्रियाओं में भेद परसर्गों की सहायता से होता है। जैसे – मणिपुरी में 'चा' का अर्थ 'भोजन' तथा 'भोजन करना' है। 'चा-बा' संज्ञा है और 'चा-ली' क्रिया।

(iii) वाक्य विन्यास : इन भाषाओं का शब्दक्रम है :– कर्त्ता – कर्म – क्रिया। काल विभाजन भविष्य तथा भूत के रूप में किया जाता है। क्रियाविशेषण भेदक का काम करते हैं।

(iv) चूँकि इन भाषाओं में कारक चिह्न शब्दों के साथ लगते हैं, अतः शब्दक्रम में परिवर्तन सम्भव है। जैसे मणिपुरी में –

ड.राड.	अई	सिनेमा अदू	येड.-य
कल	मैं	सिनेमा वो	देखा

कल	मैंने	सिनेमा	देखा।
ड.सी	अई	सिनेमा अदू	येड.-य
आज	मैं	सिनेमा वो	देखा
आज	मैं	सिनेमा	देख रहा हूँ।
आई – ना	तोम्बा – दा	लाइरीक अमा पी	
मैं – कर्त्ता	तोंबा – को	किताब एक दे	

तोम्बा दा आई ला लाइरिक.. भी बोला जा सकता है।

1.3.07.4. आस्ट्रो एशियाई (मुंडा) परिवार

भाषाविदों का मत है कि ऑस्ट्रो-एशियाई जातियाँ ही सही मायने में भारतीय हैं। बाकी अन्य जातियाँ, आर्य, द्रविड़ तथा तिब्बती-बर्मी बाहर से भारत में आईं। वे आर्यों तथा द्रविड़ों के सामने टिक नहीं पाईं और बिहार, बंगाल, उड़ीसा और मध्यप्रदेश तथा झारखंड के गाँवों तक सिमट कर रह गईं। इसकी एक उप शाखा मॉन ख्मेर के नाम से जानी जाती है। इसकी दो भाषाएँ, एक खासी, जो मेघालय में बोली जाती है और दूसरी निकोबारी, जो अंडमान द्वीप समूह में बोली जाती है।

(i) ध्वनि व्यवस्था : इन भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों का अभाव है। भाषा सम्पर्क के कारण अब सभी भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों का प्रयोग होने लगा है। अनुनासिकता स्वनिमिक है। स्वर संगति (Vowel Harmony) की प्रचुरता है।

(ii) रूप व्यवस्था तथा शब्द रचना : इसके अन्तर्गत कहा जा सकता है कि ये भाषाएँ योगात्मक प्रकृति की हैं। हर व्याकरणिक सूचना को अलग करके देखा जा सकता है। इन भाषाओं में शब्द-निर्माण में मध्य प्रत्ययों का अधिक प्रयोग किया जाता है। शब्दों में लिंग निर्णय सजीव-निर्जीव के रूप में होता है। पुनरुक्त शब्दों की व्यवस्था इन भाषाओं की प्रमुख विशेषता है।

(iii) वाक्यविन्यास : ये सभी भाषाएँ कर्त्ता – क्रिया – कर्म शब्दक्रम का अनुसरण करती हैं। इन भाषाओं का वाक्यविन्यास काफ़ी सरल और पारदर्शी है, जिससे इन भाषाओं को सीखना काफ़ी आसान होता है।

1.3.08. पाठ-सार

इस पाठ में हमने पारिवारिक वर्गीकरण तथा आकृतिमूलक वर्गीकरण के अन्तर को समझा और उनके आधारों के बारे में चर्चा की। विगत डेढ़-दो सौ वर्षों में विश्व की अनेक भाषाओं का अध्ययन किया गया है और उन्हें आनुवांशिक सिद्धान्तों अथवा तुलनात्मक पद्धति के आधार पर विभिन्न भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया गया है। पारिवारिक वर्गीकरण के आधारों की चर्चा करते हुए हमने देखा कि स्थान-समीपता, व्याकरणिक समानता, शब्द समानता, ध्वनि समानता तथा अर्थ समानता के आधारों पर भाषाओं में पारिवारिक वर्गीकरण की बात की जाती है किन्तु इनमें से कोई भी आधार असंदिग्ध रूप से विश्वसनीय नहीं है। यही कारण है कि पारिवारिक वर्गीकरण की विश्वसनीयता को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है।

इधर तुलनात्मक तथा आन्तरिक पुनर्रचना पद्धतियों के विकास के साथ आधुनिक भाषाओं के आधार पर उनके प्राक्-रूप का पुनर्निर्माण किया जाता है। आन्तरिक पुनर्रचना में एक ही भाषा के विभिन्न सम्बद्ध रूपों की तुलना करके उसके पूर्व रूप की पुनर्रचना की जाती है जबकि तुलनात्मक पुनर्रचना के अन्तर्गत विभिन्न सम्बद्ध भाषाओं के सम्बद्ध रूपों की तुलनाकर पूर्वज या प्राक् रूप की पुनर्रचना की जाती है। तुलनात्मक पुनर्रचना के सिद्धान्त के आधार पर आधारभूत शब्दावली की सामग्री लेकर भाषाओं के प्राक् रूप की पुनर्रचना करके भाषा-सम्बन्धों की व्याख्या भी की जाती है। तुलनात्मक तथा आन्तरिक पुनर्रचना सिद्धान्त के आधार पर कुछ अध्ययनों की चर्चा की गई है। पाठ के अन्त में चार मुख्य भाषा परिवारों के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

1.3.09. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए।

(i) रचना तत्त्व और अर्थ तत्त्व के आधार पर किया गया वर्गीकरण पारिवारिक वर्गीकरण कहलाता है। (√)

(ii) अनुकरणमूलक शब्दों में समानता को पारिवारिक सम्बन्ध का आधार माना जा सकता है। (X)

(iii) भाषाओं के बीच पारिवारिक सम्बन्ध को सांस्कृतिक संचरण के रूप में भी पारिभाषित किया जा सकता है। (√)

(iv) शब्दों में आकस्मिक साम्य को पारिवारिक सम्बन्ध का आधार नहीं माना जा सकता। (√)

(v) भाषाओं के बीच समानता का एकमात्र पुष्ट आधार है – आनुवांशिकसमानता। (X)

(vi) प्रामाणिक सामग्री की कमी, ऐतिहासिक समकालिकता का अभाव तथा अध्ययन की अपूर्णता भाषाओं के बीच सम्बन्ध-स्थापन में समस्या पैदा करते हैं। (√)

(vii) प्राचीन संस्कृत में ड़ एवं ढ़ ध्वनियाँ उपलब्ध थीं। (X)

(viii) हिन्दी, बांग्ला, असमिया, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में आनुवांशिक समानता मिलती है । (√)

(ix) भारत की सभी भाषाएँ आर्य परिवार से सम्बद्ध हैं। (X)

(x) पारिवारिक सम्बन्ध का सबसे पुष्ट आधार व्याकरण समानता है, दूसरे आधार उसे पुष्ट करने में सहायक हो सकते हैं। (√)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(i) पारिवारिक वर्गीकरण के लिए इनमें से कौन-सा आधार अधिक विश्वसनीय है ?

(क) ध्वनि समानता
(ख) व्याकरणिक समानता
(ग) शब्द समानता

सही उत्तर (ख)

(ii) इनमें से कौन-सी भाषाएँ आर्य परिवार की भाषाएँ हैं ?

(क) अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन
(ख) तेलुगु, तमिल, मलयालम
(ग) गुजराती, मराठी, हिन्दी

सही उत्तर (ग)

(iii) भाषाओं में पारिवारिक सम्बन्ध के लिए किस प्रकार की समानता विचारणीय होती है ?

(क) आनुवांशिक समानता
(ख) भाषा सम्पर्क के कारण समानता
(ग) अनुकरणात्मक समानता

सही उत्तर (क)

(iv) विश्व की प्राचीनतम भाषा कौन-सी मानी जाती है ?

(क) चीनी
(ख) संस्कृत
(ग) सुमेरी

सही उत्तर (ग)

(v) पारिवारिक वर्गीकरण की संदिग्धता का इनमें से कौनसा कारण नहीं है ?

(क) संसार की भाषाओं का अपर्याप्त अध्ययन
(ख) भाषाओं के इतिहास में समकालिकता का अभाव
(ग) भाषाओं में उपलब्ध लिखित सामग्री

सही उत्तर (ग)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) आकृतिमूलक तथा पारिवारिक वर्गीकरण में अन्तर
(ii) भाषाओं में ऐतिहासिक सम्बन्ध
(iii) पारिवारिक वर्गीकरण की संदिग्धता के कारण
(iv) पारिवारिक वर्गीकरण का आधार
(v) भारत के भाषा परिवार

1.3.10. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. Anthony Fox, Linguistic Reconstruction : An Introduction to Theory and Method, Oxford University Press (1995).
02. Campbell, Lyle (2004). Historical Linguistics : An Introduction (2nd ed. ed.). Cambridge (Mass.) : The MIT Press.
03. J. Kuryłowicz, On the Methods of Internal Reconstruction, Proceedings of the Ninth International Congress of Linguists (1964).
04. Lehmann, W. P. Historical Linguistics : An Introduction. New York, 1962.
05. Pattanayak, D.P A Controlled Historical Reconstruction of Oriya-Assamese-Bengali-Hindi, Mouton, The Hague, 1966
06. T. Givón, Internal reconstruction : As method, as theory, Typological Studies in Language (2000).
07. Thakur Dass, A Controlled Comparative Reconstruction of Kashmiri-Lahnda-Punjabi –Sindhi, Unpublished M.Litt Disertation, Delhi University, 1969
08. Thakur Dass, Position of Hindi and Bihari Dialects in Indo-Aryan : A study in Language Relationship. Unpublished Ph.D thesis, Delhi University 1977
09. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (तेरहवाँ संस्करण) 2012
10. देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966
11. बोरा, राजमल (सं.), भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2000
12. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2014

❖❖❖

खण्ड – 1 : भाषा और भाषाविज्ञान

इकाई – 4 : भाषाविज्ञान : स्वरूप और व्याप्ति ; भाषाविज्ञान के अंग

इकाई की रूपरेखा

1.4.0 उद्देश्य
1.4.1 प्रस्तावना
1.4.2 भाषाविज्ञान : स्वरूप
1.4.3 भाषाविज्ञान के प्रकार
  1.4.3.1 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
  1.4.3.2 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
  1.4.3.3 तुलनात्मक भाषाविज्ञान
1.4.4 भाषाविज्ञान के अंग
  1.4.4.1 स्वनविज्ञान
  1.4.4.2 स्वनिमविज्ञान
  1.4.4.3 रूपविज्ञान
  1.4.4.4 वाक्यविज्ञान
  1.4.4.5 प्रोक्तिविज्ञान
  1.4.4.6 अर्थविज्ञान
1.4.5 अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान
  1.4.5.1 अंतरानुशासनिक अनुप्रयोग
  1.4.5.2 व्यावहारिक अनुप्रयोग
  1.4.5.3 तकनीकी अनुप्रयोग
1.4.6 पाठ-सार
1.4.7 बोधात्मक प्रश्न
1.4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.4.0. उद्देश्य

भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा मनुष्य विचार करता है और विचारों का आपस में आपस में आदान-प्रदान करता है। भाषाविज्ञान में 'भाषा' का सभी प्रकार से सुव्यस्थित, सुसंगठित अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। इस क्रम में भाषा की सैद्धान्तिकी के अलावा अनेक अन्य प्रकार के (अंतरानुशासनिक, व्यावहारिक और तकनीकी) पक्ष भी इसमें समाहित हो जाते हैं। इन सभी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत पाठ में दिया जा रहा है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. भाषाविज्ञान के स्वरूप का परिचय पा सकेंगे।
ii. भाषाविज्ञान के प्रकारों को जान सकेंगे।
iii. भाषाविज्ञान के अंगों को समझ सकेंगे।
iv. भाषाविज्ञान के अनुप्रयुक्त पक्ष से परिचित हो सकेंगे।

1.4.1. प्रस्तावना

'विज्ञान' का तात्पर्य 'विशिष्ट ज्ञान' से है। 'विज्ञान' कोई वस्तु या ज्ञान का कोई क्षेत्र नहीं है बल्कि किसी भी वस्तु, क्षेत्र या विचार के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने की एक पद्धति है। इस पद्धति की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं; यथा - इस पद्धति में क्रमबद्धता, सुनिश्चितता और वस्तुनिष्ठता होती है। इस पद्धति से प्राप्त किया गया ज्ञान प्रयोगों और बार-बार किये गए परीक्षणों पर आधारित होता है जिसे काल और स्थान की सीमा से निरपेक्ष रूप से कभी भी पुनः सत्यापित किया जा सकता है आदि। अतः 'विज्ञान' स्वयं एक ज्ञान न होकर 'ज्ञान' को प्राप्त करने की एक पद्धति मात्र है, जिसके द्वारा किसी विषय, वस्तु या क्षेत्र का अध्ययन-विश्लेषण करते हुए उसके बारे में ज्ञान अर्जित किया जाता है।

वर्तमान में जिन क्षेत्रों में वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जा रहा है उन्हें मोटे तौर पर तीन वर्गों में रखा जा सकता है :

(i) भौतिक / प्राकृतिक विज्ञान (Physical Sciences) : इस वर्ग के विज्ञानों की विषयवस्तु के रूप में समस्त जड़ पदार्थ आते हैं।
(ii) प्राणी विज्ञान (Bio- sciences) : इन विज्ञानों की विषयवस्तु के रूप में 'चेतन' (पदार्थ) आते हैं जिन्हें प्राणिमात्र की संज्ञा दी गई है। उनका भौतिक अस्तित्व तो जड़ पदार्थों की तरह होता है किन्तु उनमें 'चेतना' पाई जाती है।
(iii) मानव विज्ञान (Human sciences) : इस वर्ग के विज्ञानों की विषयवस्तु के रूप में 'मानव' होता है जिसका भौतिक अस्तित्व जड़ पदार्थ की तरह होता है और इसमें चेतना के साथ-साथ 'संवेदना' भी होती है।

'भाषाविज्ञान' भाषा का विज्ञान है। एक ओर भाषा ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसे भौतिक विज्ञानों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। दूसरी ओर भाषा का सम्बन्ध मनुष्य से है। यह मानव मस्तिष्क में रहती है। इसलिए इसे मानव विज्ञान के अन्तर्गत रखा जा सकता है, किन्तु 'संवेदना' द्वारा भाषा की संरचना प्रभावित नहीं होती, किन्तु भाषिक अभिव्यक्तियों का रूप बदल जाता है। इसी कारण उपर्युक्त वर्गीकरण के सन्दर्भ में भाषाविज्ञान सभी मानवविज्ञानों में सबसे अधिक प्राकृतिक (वैज्ञानिक) और सभी प्राकृतिक विज्ञानों में सबसे अधिक मानवीय है। (Linguistics is the most scientific among human sciences and most human among the sciences.) प्रस्तुत इकाई में इसके स्वरूप एवं प्रकारों की चर्चा की जाएगी।

1.4.2. भाषाविज्ञान : स्वरूप

सरलतम शब्दों में, "भाषाविज्ञान भाषा का विज्ञान है।" 'भाषाविज्ञान' शब्द का विश्लेषण इस प्रकार से किया जा सकता है : 'भाषा' + 'वि' + 'ज्ञान'। इसमें 'ज्ञान' मूल शब्द (Root Word) है; 'वि' उपसर्ग जोड़कर इसे 'विशिष्ट या वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त ज्ञान' बना दिया गया है। 'भाषा' शब्द का सामासिक योग करते हुए इसे विशेषीकृत कर दिया गया है कि वह ज्ञान 'भाषा' का ही होना चाहिए। अतः वह विज्ञान जिसमें भाषा के अंगों, भाषा की संरचना और व्यवस्था का वस्तुनिष्ठ दृष्टिसे अध्ययन किया जाता है, भाषाविज्ञान है। भाषाई अध्ययन के दो पक्ष हैं – भाषा मात्र का अध्ययन और भाषा विशेष का अध्ययन। भाषा मात्र के अध्ययन से तात्पर्य विश्व की किसी भी मानव भाषा का अध्ययन करने से है। भाषा विशेष का अध्ययन किसी एक ही भाषा जैसे – हिन्दी, अंग्रेजी आदि के अध्ययन पर केन्द्रित होता है। भाषाविज्ञान में ये दोनों ही पक्ष समाहित हैं। भाषा के अभिव्यक्ति पक्ष के आधार 'ध्वनि' के उच्चारण, संवहन और श्रवण का अध्ययन तथा अनुभावक पक्ष (अर्थ) का अध्ययन सार्वभौमिक होता है, जबकि भाषा के संरचनात्मक पक्ष का अध्ययन एक-एक भाषा या भाषा परिवार को केन्द्रित करके किया जाता है।

भाषा के बारे में कहा गया है कि भाषा वह शक्ति है जो मनुष्य को मनुष्य (अन्य प्राणियों के सापेक्ष) बनाती है। अर्थात् यदि भाषा न हो हम आज भी आपस में सम्प्रेषण नहीं कर पाएँगे, या जो सम्प्रेषण कर पाएँगे वह अन्य प्राणियों की तरह ही बहुत सीमित होगा। किन्तु यह किसी को नहीं पता कि मनुष्य के पास भाषा कहाँ से आई। समय-समय पर विभिन्न भाषावैज्ञानिकों द्वारा इस दिशा में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयास किये जाते रहे हैं। इसके लिए भाषाओं का अध्ययन वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक सभी दिशाओं से होता रहा है।

अध्ययन किसी भी दिशा से किया जाए कहीं-न-कहीं हम भाषा के अंगों को ही केन्द्र में रखते हैं जो ध्वनि (स्वन), स्वनिम, रूपिम, शब्द (पद), पदबंध, उपवाक्य, वाक्य, प्रोक्ति और अर्थ हैं। इन सभी का अध्ययन भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में किया जाता है जो ध्वनिविज्ञान (स्वनविज्ञान) से लेकर अर्थविज्ञान तक हैं। इसी प्रकार भाषा को अन्य विषयों से सम्बन्धित करके भी देखा जाता है। ये सभी बातें भाषाविज्ञान के ही अन्तर्गत आती हैं। आज के तकनीकी विकास से भाषा भी अछूती नहीं है अतः भाषाविज्ञान के तकनीकी क्षेत्र भी उदित हुए हैं, जो मशीन में भाषाई अनुप्रयोग की दिशा में कार्य कर रहे हैं।

1.4.3. भाषाविज्ञान के प्रकार

भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषा का अध्ययन विविध प्रकार से किया जाता है। वैसे तो समय, तुलना और अनुप्रयोग के आधार पर भाषावैज्ञानिक अध्ययन के प्रकारों के कुछ युग्म भी देखे जा सकते हैं, जैसे – 'एककालिक भाषाविज्ञान एवं बहुकालिक भाषाविज्ञान', 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान एवं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' तथा 'सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान एवं अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान'। किन्तु मूल रूप से भाषाविज्ञान के तीन प्रकार किये गए हैं – वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान।

1.4.3.1. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक एफ.डी. सस्यूर (F.D. Sassure) द्वारा सर्वप्रथम भाषा के एककालिक और कालक्रमिक (Synchronic and Diachronic) अध्ययन की बात की गई। भाषा का एककालिक अध्ययन किसी काल-बिन्दु विशेष पर किया जाता है। अर्थात् किसी एक ही समय विशेष में भाषा का अध्ययन एककालिक अध्ययन कहलाता है। इस प्रकार का अध्ययन वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान अन्य दोनों प्रकार के भाषाविज्ञानों का आधार है क्योंकि अन्य दोनों ही प्रकार के अध्ययन के लिए भाषाओं के वर्णनात्मक ज्ञान की आवश्यकता होती है।

1.4.3.2. ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में एक ही भाषा का अध्ययन विभिन्न काल बिन्दुओं पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह भाषा का कालक्रमिक अध्ययन है। प्रायः कुछ भाषिक रूप ऐसे होते हैं जिनका नया रूप पुराने रूप से भिन्न हो जाता है। रूपों के इस परिवर्तन (नए रूपों के विकास) का विश्लेषण करना ही ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का उद्देश्य है। इसी कारण अध्ययन की ऐतिहासिक प्रणाली को सस्यूर द्वारा गत्यात्मक या विकासात्मक कहा गया है। इसके विपरीत वर्णनात्मक प्रणाली को स्थित्यात्मक कहा गया है।

1.4.3.3. तुलनात्मक भाषाविज्ञान

तुलनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत एक से अधिक भाषाओं का अध्ययन तुलनात्मक रूप से किया जाता है। यह तुलना एककालिक या कालक्रमिक दोनों प्रकार की हो सकती है। इसीलिए अधिकांश विद्वानों का मानना है कि तुलनात्मक भाषाविज्ञान में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकारों का अन्तर्भाव हो जाता है।

वास्तव में सर्वप्रथम भाषावैज्ञानिक अध्ययन की शुरुआत ही तुलनात्मक विश्लेषण से हुई जब 18वीं शताब्दी में सर विलियम जोन्स द्वारा संस्कृत, ग्रीक और लैटिन में काफी समानता होने की बात की गई।

1.4.4. भाषाविज्ञान के अंग

भाषाविज्ञान भाषा का विज्ञान है। भाषा में कई स्तरों पर स्तरित इकाइयाँ पाई जाती हैं। इन अलग-अलग स्तरों का अध्ययन भाषाविज्ञान की अलग-अलग शाखाओं में किया जाता है, जो इस प्रकार हैं –

स्वन (ध्वनि)	-	स्वनविज्ञान (ध्वनिविज्ञान)
स्वनिम	-	स्वनिमविज्ञान

रूपिम	-	रूपविज्ञान
शब्द / पद	-	
पदबंध	-	वाक्य विज्ञान
उपवाक्य	-	
वाक्य	-	
प्रोक्ति	-	प्रोक्तिविज्ञान
अर्थ	-	अर्थविज्ञान

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

1.4.4.1. स्वनविज्ञान (Phonetics)

स्वनविज्ञान स्वनों के उच्चारण, संवहन और श्रवण के आधार पर अभिव्यक्ति रूपों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। इसका भाषा विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं होता और इसमें भाषा ध्वनियों का अध्ययन भाषा-व्यवस्था की इकाई के रूप में नहीं बल्कि भाषा व्यवहार की अभिव्यक्ति सामग्री के रूप में किया जाता है। इसके तीन प्रकार हैं –

(i) उच्चारणात्मक स्वनविज्ञान (Articulatory Phonetics)
(ii) भौतिक स्वनविज्ञान (Acoustic Phonetics)
(iii) श्रौतिक स्वनविज्ञान (Auditory Phonetics)

1.4.4.2. स्वनिमविज्ञान (Phonemics)

इसे स्वनिमी एवं स्वनप्रक्रिया भी कहा गया है। स्वनिमविज्ञान किसी भाषा विशेष के स्वनिमों के वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन, वर्णन तथा विश्लेषण का विज्ञान है। इसके द्वारा किसी एक भाषा की व्यवस्था में पाए जाने वाले स्वनिमों का निर्धारण तथा वर्गीकरण किया जाता है। इसके अन्तर्गत आने वाले मुख्य विषय स्वनिम, संस्वन, व्यतिरेकी एवं परिपूरक वितरण, विभेदक लक्षण एवं स्वनिम प्रतिरूपण आदि हैं।

लेखिमविज्ञान (Graphemics) :

लेखन अभिव्यक्ति का दूसरा माध्यम है। इसमें कुछ चित्रात्मक प्रतीकों की सहायता से भाषा के वाचिक रूप का ही अनुकरण किया जाता है। इसलिए इसके अध्ययन का शास्त्र 'लेखिमविज्ञान' प्रत्यक्षतः भाषाविज्ञान का अंग न होकर स्वनिमविज्ञान के समानान्तर एक पूरक विज्ञान है।

1.4.4.3. रूपविज्ञान (Morphology)

रूपविज्ञान में रूपिमों और उनकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। इसमें भाषा-व्यवस्था के दो स्तरों 'रूपिम' और 'शब्द / पद' का अध्ययन किया जाता है जिसमें दो प्रक्रियाएँ मुख्य होती हैं : शब्द-निर्माण[4] एवं रूपविश्लेषण[5];

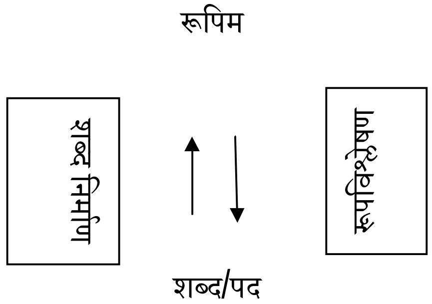

रूपविज्ञान की विषयवस्तु के अन्तर्गत रूपिम, संरूप, शब्द-निर्माण रूपविश्लेषण एवं रूपिम के प्रकार आदि आते हैं। रूपिम मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं : व्युत्पादक (जिनसे कोशीय शब्दों का निर्माण किया जाता है) और रूपसाधक (जिनसे व्याकरणिक शब्दों (पदों) का निर्माण किया जाता है)। इसके आधार पर रूपविज्ञान के मुख्यतः दो प्रकार किये गए हैं :

(i) व्युत्पादक रूपविज्ञान (Derivational Morphology)
(ii) रूपसाधक रूपविज्ञान (Inflectional Morphology)

यहाँ पर एक बात उल्लेख्य है कि रूपविज्ञान में रूपों और रूपिमों (Morphs and Morphemes) का अध्ययन सभी सम्भव दिशाओं में किया जाता है। इसमें शब्द-निर्माण, रूप परिवर्तन आदि प्रक्रियाएँ भी आती हैं। दो रूपों के मिलने से जब नए शब्द निर्मित होते हैं तो कुछ प्रक्रियाओं जैसे – सन्धि, आगम, लोप, समीकरण, विषमीकरण एवं तालव्यीकरण आदि में दोनों रूपिमों या किसी एक रूपिम में स्वनात्मक परिवर्तन भी हो जाता है। इस प्रकार के परिवर्तनों का अध्ययन 'रूपविज्ञान' और 'स्वनिमविज्ञान' के योग से बने 'रूपस्वनिमविज्ञान' (Morphophonemics) में किया जाता है।

1.4.4.4. वाक्य विज्ञान (Syntax)

वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत वाक्य-रचना के घटकों और उनकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। वाक्य भाषा की मूल सम्प्रेषणात्मक इकाई है। आधुनिक भाषावैज्ञानिकों (चॉम्स्की आदि) ने 'वाक्य' को भाषा-विश्लेषण' के मूल में रखा है। वाक्य का निर्माण पदबंधों के मिलने से होता है। 'पदबंध' और 'वाक्य' के बीच में आने वाली भाषिक इकाई 'उपवाक्य' है। अतः वाक्य विज्ञान में अध्ययन के तीन मुख्य विषय इस प्रकार हैं –

(i) पदबंध संरचना(Phrase Structure)
(ii) उपवाक्य-संरचना (Clause Structure)
(iii) वाक्य-संरचना (Sentence Structure)

इनके अतिरिक्त 'वाक्य के अंग' (उद्देश्य, विधेय), वाक्य के प्रकार, मूल वाक्य-रूपान्तरित वाक्य, आन्तरिक संरचना और बाह्य संरचना आदि भी वाक्य विज्ञान की विषयवस्तु में मुख्य हैं। शब्दों का वाक्य में प्रयोग करने पर कभी-कभी प्राप्त होने वाले उनके विशिष्ट रूपों के अध्ययन के लिए 'रूपवाक्य विज्ञान' (Morphosyntax) की अवधारणा भी उभरकर सामने आई है।

1.4.4.5. प्रोक्तिविज्ञान (Pragmatics)

प्रोक्ति आधुनिक भाषाविज्ञान की एक नवीन अवधारणा है। यह भाषा की सबसे बड़ी इकाई है जो वाक्य से भी बड़ी होती है। कोई भी भाषाई संरचना जिसके किसी भाग को समझने के लिए अन्य या बाह्य सन्दर्भ की आवश्यकता नहीं होती, प्रोक्ति है। कोई भी एक पूरी रचना, जैसे – कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, फिल्म, धारावाहिक आदि एक प्रोक्ति है। एक प्रोक्ति में कई वाक्य, कई पैराग्राफ, कई अध्याय या यहाँ तक कि कई खण्ड हो सकते हैं। एक पूरी रचना एक प्रोक्ति होती है। उसमें वर्णित घटनाओं अथवा कुछ तथ्यों का सन्दर्भ एकाधिक वाक्यों में हो सकता है। इन सभी प्रकार के सन्दर्भों और सम्बन्धों का अध्ययन प्रोक्तिविज्ञान में किया जाता है।

1.4.4.6. अर्थविज्ञान (Semantics)

भाषा में अर्थ का सर्वोच्च स्थान है। भाषिक इकाइयों में 'रूपिम' से लेकर प्रोक्ति तक अर्थ का विस्तार पाया जाता है। अर्थविज्ञान के अन्तर्गत अर्थ के विविध रूपों और शब्द-अर्थ सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इसके मुख्य विवेच्य विषय हैं : अर्थ क्या है ?, शब्द-अर्थ सम्बन्ध, अर्थ-बोध, अर्थ-बोध के साधन, अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ (अर्थविस्तार, अर्थसंकोच, अर्थादेश) आदि।

भाषाविज्ञान की उपर्युक्त शाखाओं में भाषा का अध्ययन व्यवस्थित रूप से किया जाता है। इसे 'अभिव्यक्ति व्यवस्था' और 'कथ्य व्यवस्था' में विभक्त करके भी देखा जा सकता है। ये व्यवस्थाएँ सम्पूर्ण भाषा

का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके भाषाविज्ञान में किए जाने वाले अध्ययन को निम्नलिखित आरेख द्वारा समझा जा सकता है :

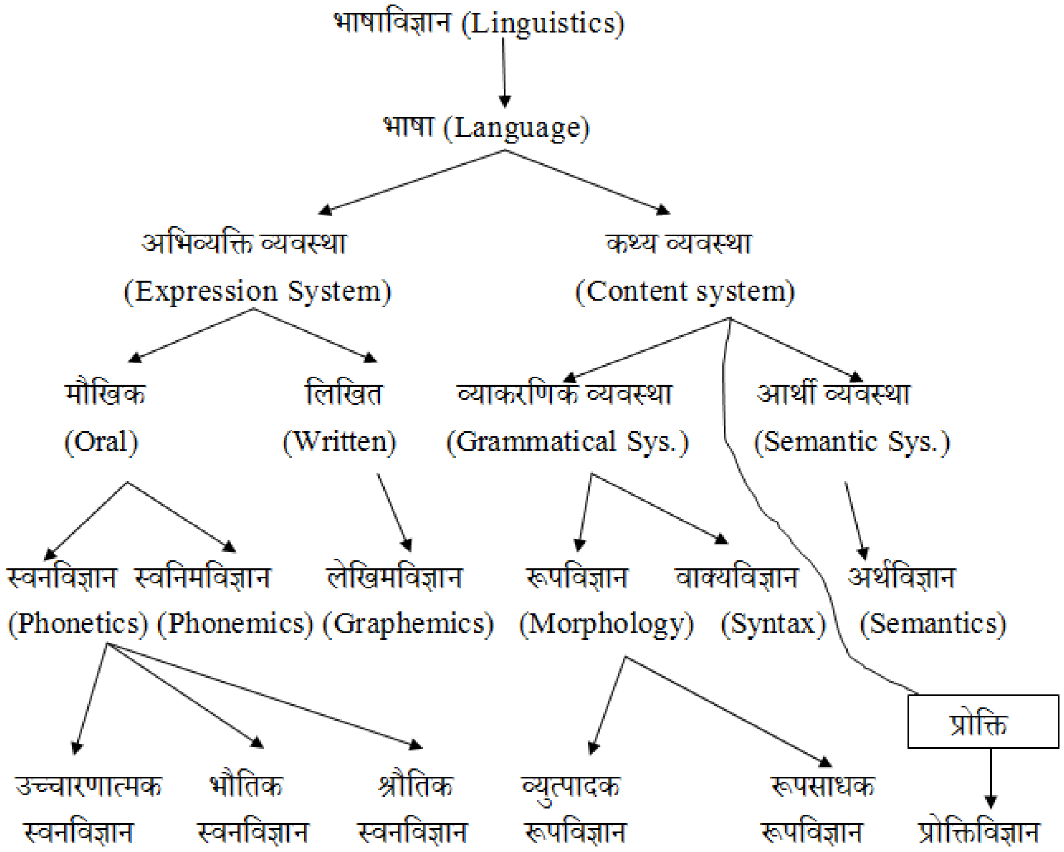

1.4.5. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान के अनुप्रयुक्त पक्ष के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि इसके विभिन्न अंगों द्वारा भाषा-व्यवस्था से सम्बन्धित जो भी ज्ञान अर्जित कर लिया गया है उसकी उपयोगिता क्या है ! भाषा मानव समाज के लगभग सभी कार्यों के लिए आवश्यक होती है। अतः इससे सम्बन्धित ज्ञान स्वतः महत्त्वपूर्ण हो जाता है। किन्तु जब हम भाषाविज्ञान के अनुप्रयुक्त क्षेत्रों की बात करते हैं तो इसके अन्तर्गत वे क्षेत्र ही आते हैं जिनमें भाषा का नहीं बल्कि भाषावैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग किया जाता है। इन सभी क्षेत्रों का विवेचन अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। प्रसिद्ध भारतीय भाषाविद् रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान' (1995) में सन्दर्भ के आधार पर इन क्षेत्रों के तीन वर्ग किए हैं :

(i) ज्ञानक्षेत्र का सन्दर्भ
(ii) विद्या-विशेष का सन्दर्भ
(iii) भाषा-शिक्षण का सन्दर्भ

आगे उन्होंने इनका विवेचन किया है और विविध उपक्षेत्रों जैसे – समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, अनुवादविज्ञान एवं कोशविज्ञान आदि को इनमें वर्गीकृत किया है।

वास्तव में यदि आधुनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो भाषाविज्ञान के सभी अनुप्रयोगों का पूर्णतः विवेचन इस वर्गीकरण द्वारा नहीं किया जा सकता है। भाषाविज्ञान के सभी अनुप्रयोगात्मक क्षेत्रों को उनके प्रयोग, रूप और प्रकृति के अनुसार निम्नलिखित तीन वर्गों में रखा जा रहा है : अंतरानुशासनिक अनुप्रयोग, व्यावहारिक अनुप्रयोग, तकनीकी अनुप्रयोग।

1.4.5.1. अंतरानुशासनिक अनुप्रयोग

इस प्रकार के अनुप्रयोगों को 'ज्ञानार्जन आधारित अनुप्रयोग' भी कहा जा सकता है। भाषाविज्ञान के अंतरानुशासनिक या ज्ञानार्जन आधारित अनुप्रयोग का तात्पर्य 'भाषावैज्ञानिक ज्ञान का प्रयोग अन्य शास्त्रों के साथ मिलकर करते हुए भाषा के सभी पक्षों के बारे में अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करने' से है। भाषा मनुष्य के ज्ञानार्जन और परस्पर व्यवहार का साधन एवं आधार है। इसी कारण भाषा-व्यवस्था अपने आप को मानव मस्तिष्क और व्यवहार के कुछ क्षेत्रों एवं घटकों से सीधे-सीधे जोड़ती है। ऐसे में इन क्षेत्रों और घटकों का अध्ययन करने वाले शास्त्रों के साथ मिलकर यह देखना आवश्यक हो जाता है कि 'उनका भाषा पर' तथा 'भाषा का उन पर' क्या प्रभाव पड़ता है ? इस दृष्टि से देखा जाए तो मुख्यतः तीन ऐसे क्षेत्र प्राप्त होते हैं जिनसे भाषा सीधे-सीधे सम्बन्धित है – समाज, मन और साहित्य। इन तीनों के अध्ययन के शास्त्र क्रमशः सामाजिकविज्ञान, मनोविज्ञान, एवं साहित्यशास्त्र हैं। वर्तमान में भाषाविज्ञान और इन शास्त्रों के योग से चार ऐसी विधाएँ प्राप्त होती हैं जो भाषा का अध्ययन इन क्षेत्रों के सन्दर्भ में करते हुए भाषा के विविध पक्षों की व्यवस्था पर प्रकाश डालती हैं। ये हैं – समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान।

यहाँ पर एक बात महत्त्वपूर्ण है कि इन क्षेत्रों में भी भाषा के सैद्धान्तिक ज्ञान की आवश्यकता होती है, किन्तु ये क्षेत्र भाषावैज्ञानिक ज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग क्षेत्रों की तरह सीधे-सीधे ऐसी वस्तुएँ (या उत्पाद) नहीं प्रदान करते जिन्हें वास्तविक जीवन में देखा जाए और व्यवहार किया जाए; बल्कि इनमें भाषावैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग कर उस क्षेत्र-विशेष और भाषा के सम्बन्ध में और अधिक ज्ञान को अर्जित किया जाता है। इसके साथ ही उन अनुप्रयोगों में मानव विज्ञान के दो स्वतन्त्र क्षेत्र एक साथ जुड़कर कार्य करते हैं और दोनों की सन्धि पर स्थित नई ज्ञानशाखा का विकास करते हैं। इन क्षेत्रों से प्राप्त ज्ञान का भी व्यावहारिक अनुप्रयोग होता है। अतः अंतरानुशासनिक या ज्ञानार्जन आधारित अनुप्रयोग की स्थिति इस प्रकार प्राप्त होती है :

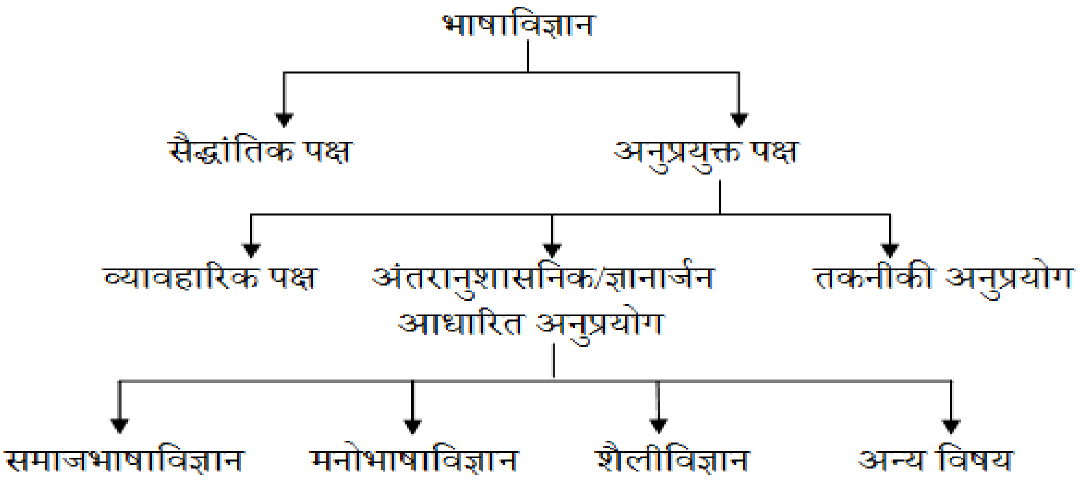

(क) समाजभाषाविज्ञान :

समाजभाषाविज्ञान वह क्षेत्र है जहाँ 'भाषाविज्ञान' और 'समाजशास्त्र' मिलकर यह देखने का प्रयास करते हैं कि 'भाषा' और 'समाज' किस प्रकार से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

(ख) मनोभाषाविज्ञान :

मनोभाषाविज्ञान में 'भाषाविज्ञान' और 'मनोविज्ञान' का संयोग होता है और भाषा तथा मानव मन के सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

(ग) शैलीविज्ञान :

यह 'भाषाविज्ञान' और 'साहित्य' का सन्धि-स्थल है, जिसमें यह देखने का प्रयास किया जाता है कि वे कौन-से शैलीगत लक्षण होते हैं जो किसी सामान्य भाषिक कृति (या पाठ) को साहित्यिक कृति में परिवर्तित कर देते हैं।

(घ) अन्य विषय :

इन तीनों से मुख्य रूप से सम्बन्धित होने के अलावा अनेक अन्य विषयों के साथ भी भाषाविज्ञान का संयोग होता है और कई अंतरानुशासनिक विषयों का जन्म होता है, जिनमें भाषा और उन विषयों की विषयवस्तु को मिलाकर अध्ययन किया जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं – न्यूरोभाषाविज्ञान, संज्ञानात्मक भाषाविज्ञान, भाषा भूगोल, नृतत्ववैज्ञानिक भाषाविज्ञान, फॉरेंसिक भाषाविज्ञान आदि।

1.4.5.2. व्यावहारिक अनुप्रयोग (Practical Application)

यहाँ पर 'व्यावहारिक' शब्द का तात्पर्य 'वास्तविक जीवन में सीधे-सीधे अनुप्रयोग' से है। मानव जीवन के अनेक कार्य ऐसे हैं जिनमें भाषावैज्ञानिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। ये कार्य मुख्यतः भाषा और अध्ययन-अध्यापन से जुड़े हैं; जैसे – अनुवाद का कार्य, कोश-निर्माण का कार्य आदि। इन सभी क्षेत्रों में भाषावैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करते हुए ऐसी वस्तुओं का निर्माण या विकास किया जाता है जिन्हें वास्तविक जीवन में देखा जाता है और प्रयोग में लाया जाता है। जैसे – 'अनुवाद' में दो भाषाओं के भाषावैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग किया जाता है और इसके माध्यम से लक्ष्यभाषा में एक अनूदित पाठ प्राप्त होता है। 'कोशविज्ञान' में विभिन्न भाषाओं के कोशों का निर्माण किया जाता है।

भाषावैज्ञानिक ज्ञान के इन अनुप्रयुक्त क्षेत्रों के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मानव मेधा (human intelligence) की सामान्य विशेषता है, "किसी भी कार्य को व्यवस्थित एवं अधिक से अधिक वैज्ञानिक रूप से करना'। इसी कारण जब वह कोई व्यावहारिक कार्य भी करता है तो उससे सम्बन्धित प्रक्रिया और व्यवस्था का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन और विश्लेषण करने लगता है। इससे वह क्षेत्र भी धीरे-धीरे एक ज्ञानक्षेत्र (विज्ञान) बन जाता है। जैसे – अनुवाद करना एक व्यावहारिक कार्य है। इसके लिए अनुवादक के पास केवल दोनों भाषाओं का ज्ञान और विषय का ज्ञान होना पर्याप्त है। किन्तु वर्तमान में अनुवाद को लेकर अनेक सिद्धान्तों और विधियों को प्रस्तावित करते हुए इसे भी एक ज्ञानक्षेत्र (विज्ञान) के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया है। इस प्रकार प्राप्त अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं :

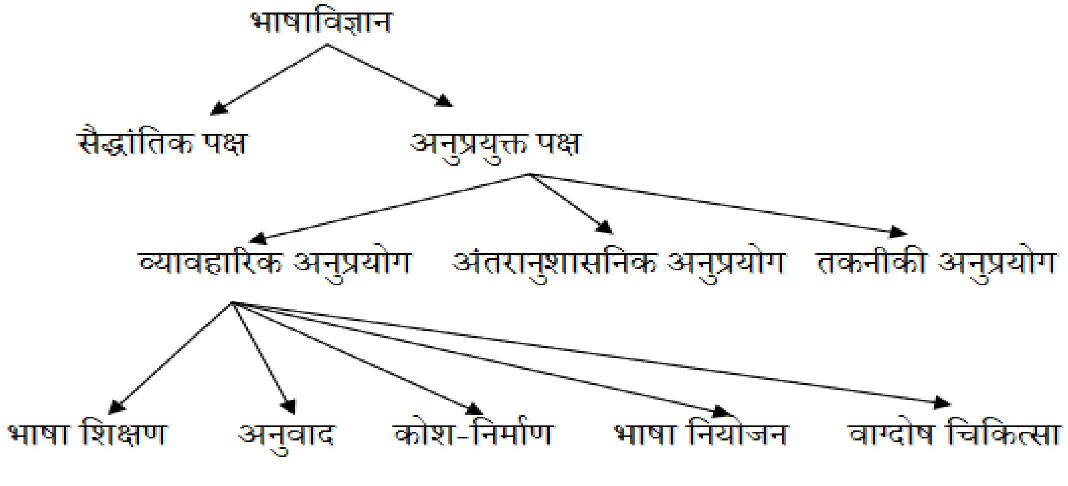

1.4.5.3. तकनीकी अनुप्रयोग (Technological Application)

यह भाषाविज्ञान के अनुप्रयोगात्मक पक्ष का तीसरा वर्ग है। इसमें मुख्यतः तीन बातों को देखा जाना है :

(i) भाषाविज्ञान तकनीकी से अपने आप को किस प्रकार जोड़ता है !

(ii) भाषावैज्ञानिक ज्ञान के तकनीकी क्षेत्र में अनुप्रयोग की विधि क्या है !

(iii) भाषावैज्ञानिक ज्ञान के तकनीकी से सम्बन्धित अनुप्रयोग क्षेत्र कौन से हैं !

भाषावैज्ञानिक ज्ञान का तकनीकी अनुप्रयोग मुख्यतः आधुनिक अविष्कारों संगणक, मोबाइल और अन्य स्वचलित मशीनों से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में भाषाविज्ञान का तकनीकी अनुप्रयोग डिजिटल मशीनों मुख्यतः संगणक से जुड़ा हुआ है। आज अनेक 'सॉफ्टवेयरों और अनुप्रयोग प्रणालियों' (Softwares and Application systems) का विकास किया जा रहा है। ये हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों से जुड़े हुए हैं। इनका प्रयोग करते हुए आज हम पहले की अपेक्षा अधिक सरलता से और तेजी से अपने दैनिक, कार्यालयी एवं व्यवसायिक कार्यों को कर लेते हैं। किन्तु यह सत्य है कि हमारे सभी कार्य किसी न किसी रूप में भाषा से जुड़े हुए हैं। इसीलिए संगणक को और अधिक उपयोगी बनाने के लिए इसमें भाषिक ज्ञान को स्थापित करना आवश्यक हो जाता है।

संगणक के विकास के बाद से ही इसमें भाषिक ज्ञान को स्थापित करने के प्रयास आरम्भ हो गए जो अभी तक चल रहे हैं। धीरे-धीरे इसमें सीमित सफलताएँ भी मिली हैं, किन्तु किसी भी भाषा के संसाधन में पूर्णतः सफलता अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। इस दौरान मोबाइल और अन्य स्वचलित मशीनों का भी तेजी से अविष्कार किया गया है जिनमें भाषाई ज्ञान जितना अधिक होगा उनकी उपयोगिता उतनी ही बढ़ जाएगी। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व में भाषा से जुड़े सॉफ्टवेयरों और अनुप्रयोग प्रणालियों का तेजी से विकास किया जा रहा है। इसके लिए पिछले पाँच दशकों में अनेक ज्ञान क्षेत्र / विधाएँ (Disciplines) उभर कर सामने आए हैं जिनमें तीन मुख्य हैं : संगणकीय भाषाविज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी और भाषा अभियांत्रिकी। इसके साथ ही इस कार्य में एक प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, वह है 'प्राकृतिक भाषा संसाधन'। इस प्रकार भाषा से सम्बन्धित प्रणालीगत ज्ञान (Systematic Knowledge) का उपयोग संगणक से जुड़े विविध भाषिक क्षेत्रों में किया जाता है। इसका आरेख निम्नलिखित है :

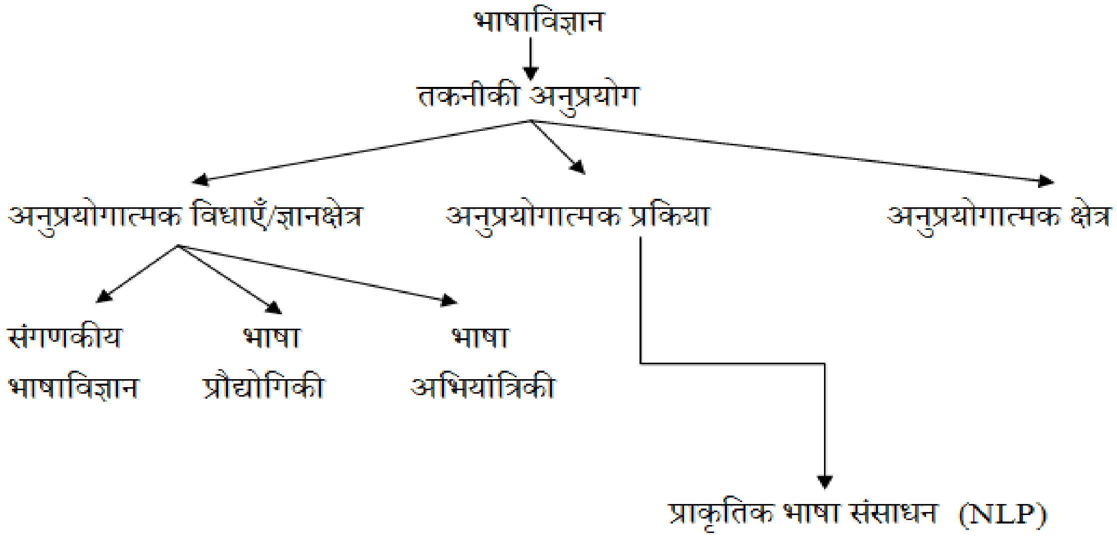

(क) अनुप्रयोगात्मक ज्ञानक्षेत्र / विधाएँ :

भाषाविज्ञान और अन्य तकनीकी शास्त्रों को मिलाकर कुछ ऐसे नए ज्ञानक्षेत्र (या विषय) उत्पन्न हुए हैं जिनमें भाषावैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करते हुए सॉफ्टवेयर आदि विकसित किए जा रहे हैं। इन ज्ञानक्षेत्रों / विषयों में एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी. आदि का अध्ययन-अध्यापन भी हो रहा है। इन विषयों के अन्तर्गत जहाँ एक ओर भाषा का सैद्धान्तिक अध्ययन किया जाता है, वहीं दूसरी ओर इस अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को डेटाबेस और तार्किक अभिव्यक्तियों में ढालकर मशीन हेतु उपयोगी बनाया जाता है और सॉफ्टवेयरों तथा टूलों का विकास किया जाता है। इनमें से तीन मुख्य हैं : संगणकीय भाषाविज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी, भाषा अभियांत्रिकी।

(ख) अनुप्रयोगात्मक प्रक्रिया :

भाषावैज्ञानिक ज्ञान के मशीनी अनुप्रयोग की प्रक्रिया को 'प्राकृतिक भाषा संसाधन' (Natiral Language Processing : NLP) कहते हैं। किसी भी मानव भाषा को मशीन में इस प्रकार से स्थापित करना कि मशीन के माध्यम से भाषा सम्बन्धी कार्य कराए जा सकें, प्राकृतिक भाषा संसाधन है। तकनीकी क्षेत्र में मानव भाषाओं को ही 'प्राकृतिक भाषा' कहते हैं। संसाधन से तात्पर्य है, 'मशीन में स्थापित करना'। इसी के समानान्तर एक दूसरी प्रक्रिया होती है, जिसे प्राकृतिक भाषाबोधन (Natural Language Understanding : NLU) कहते हैं। यह मशीन में भाषाई ज्ञान को इस प्रकार से स्थापित करने की प्रक्रिया है कि उस ज्ञान के आधार पर मशीन स्वतः निर्णय ले सके। इसका मुख्य सम्बन्ध कृत्रिम बुद्धि (Artificial Intelligence : AI) से है, जहाँ मशीनों को मानव की तरह कार्य करने में दक्ष बनाने का प्रयास किया जाता है।

(ग) अनुप्रयोगात्मक क्षेत्र (Applying Areas) :

भाषाई अनुप्रयोग प्रणालियों द्वारा स्वचलित रूप से जो कार्य सम्पन्न किये जाते हैं, उन्हें अनुप्रयोग क्षेत्र कहते हैं। इनमें से कुछ कार्य मानव द्वारा किये जाते रहे हैं, उन्हीं कार्यों को मशीन द्वारा सम्पन्न कराने का प्रयास किया जा रहा है, जैसे – अनुवाद सैकड़ों वर्षों से मनुष्य द्वारा किया जा रहा है, अब मशीन के माध्यम से इस कार्य को सम्पन्न कराना 'मशीनी अनुवाद' है। इसी प्रकार प्रकार कुछ कार्य मशीन के आने से ही उत्पन्न हुए हैं, जैसे – 'प्रकाशिक अक्षर अभिज्ञान'। किसी स्कैन किए हुए पाठ (जो चित्र फाइल के रूप में होता है) को मशीन पठनीय बनाने की प्रक्रिया प्रकाशिक अक्षर अभिज्ञान है। स्कैन किए हुए पाठ को एडिट नहीं किया जा सकता, उसे मशीन पठनीय बनाने का अर्थ हुआ, 'टंकित पाठ जैसा बनाना', जिसे एडिट भी किया जा सकता है। अर्थात् मशीन पठनीय पाठ में शब्दों को जोड़ा, घटाया अथवा उनका आकार-प्रकार बदला जा सकता है। भाषा से तकनीकी अनुप्रयोग के अनेक क्षेत्र प्राप्त होते हैं जिनमें से मुख्य हैं : मशीनी अनुवाद (Machine Translation), प्रकाशिक अक्षर अभिज्ञान (Optical Character Recognition), पाठ से वाक् और वाक् से पाठ (Text to Speech and Speech to Text), सूचना प्रत्ययन (IE/IR), पाठ सारांशीकरण (Text Summarization), संगणकीय

कोशविज्ञान (Computational Lexicology), संगणक साधित भाषा अधिगम (Computer assisted Language Learning), कृत्रिम बुद्धि (Artificial Intelligence)।

1.4.6. पाठ-सार

इस प्रकार भाषाविज्ञान एक ऐसा विषय है जिसमें भाषा का सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है, जिसका विस्तार सैद्धान्तिक और अनुप्रयुक्त से आज तकनीकी जगत् तक हो चुका है। 'भाषा' ध्वनियों, शब्दों और नियमों से निर्मित एक अमूर्त व्यवस्था है और सम्प्रेषण का साधन भी। भाषाविज्ञान में एक भाषा और एकाधिक भाषाओं का अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों दृष्टियों से किया जाता है। अतः ये तीनों भाषाविज्ञान के तीन प्रकार कहलाते हैं। वर्णनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो भाषा में स्वन – स्वनिम – रूपिम – शब्द / पद – पदबंध – उपवाक्य – वाक्य – प्रोक्ति और अर्थ पाए जाते हैं। इन सभी का अध्ययन भाषाविज्ञान के विभिन्न अंगों या शाखाओं – स्वनविज्ञान, स्वनिमविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्य विज्ञान, प्रोक्तिविज्ञान और अर्थविज्ञान में किया जाता है।

सैद्धान्तिक के अलावा अनुप्रयुक्त दृष्टि से भी भाषाविज्ञान में कई पक्ष समाहित हो जाते हैं। इसमें अन्य विषयों के साथ जुड़कर और अधिक ज्ञान अर्जित करने की प्रक्रिया 'अंतरानुशासनिक अनुप्रयोग' है, जिनमें समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान और शैलीविज्ञान प्रमुख हैं। विभिन्न व्यावहारिक क्षेत्रों – अनुवाद, भाषा-शिक्षण आदि में भाषाई ज्ञान का प्रयोग 'व्यावहारिक अनुप्रयोग' के अन्तर्गत आता है और संगणकीय भाषाविज्ञान, भाषा प्रौद्योगिकी तथा भाषा अभियांत्रिकी आदि से जुड़कर भाषा सम्बन्धी तकनीकी प्रणालियों का विकास करना 'तकनीकी अनुप्रयोग' है। इन सभी का समेकित पुंज 'भाषाविज्ञान' है।

1.4.7. बोधात्मक प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन-सा भाषाविज्ञान का एक प्रकार नहीं है ?
   (क) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
   (ख) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
   (ग) तुलनात्मक भाषाविज्ञान
   (घ) वाक्यात्मक भाषाविज्ञान

   सही उत्तर : (घ) वाक्यात्मक भाषाविज्ञान
2. निम्नलिखित में से किसका अध्ययन स्वनिमविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है ?
   (क) स्वनिम
   (ख) शब्द
   (ग) रूपिम

(घ) लेखिम

सही उत्तर : (क) स्वनिम

3. निम्नलिखित में से किसका अध्ययन वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत नहीं किया जाता है ?
   (क) शब्द
   (ख) पदबंध
   (ग) उपवाक्य
   (घ) वाक्य

सही उत्तर : (क) शब्द

4. निम्नलिखित में से कौन-सा अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्तर्गत आता है ?
   (क) स्वनिमिक विश्लेषण
   (ख) अनुवाद
   (ग) वितरण अध्ययन
   (घ) प्रोक्ति विश्लेषण

सही उत्तर : (ख) अनुवाद

5. शैलीविज्ञान किसके अन्तर्गत आता है ?
   (क) सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान
   (ख) मनोभाषाविज्ञान
   (ग) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान
   (घ) व्यक्तिरेकी भाषाविज्ञान

सही उत्तर : (ग) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विज्ञान जगत् के मूलभूत तीन वर्गों में 'भाषाविज्ञान' की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को व्याख्यायित कीजिए।
3. रूपविज्ञान की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
4. समाजभाषाविज्ञान और मनोभाषाविज्ञान को परिभाषित कीजिए।
5. भाषाविज्ञान के तकनीकी अनुप्रयोग क्षेत्रों के नाम बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भाषाविज्ञान क्या है ? इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. भाषाविज्ञान के अंगों की सविस्तार चर्चा कीजिए।
3. भाषाविज्ञान के अंतरानुशासनिक अनुप्रयोग क्षेत्रों पर प्रकाश डालिए।

4. भाषाविज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग क्षेत्रों को सोदाहरण समझाइए।
5. भाषाविज्ञान तकनीकी से अपने आप को किस प्रकार जोड़ता है ? तकनीकी क्षेत्र में भाषावैज्ञानिक ज्ञान के अनुप्रयोग की प्रक्रिया पर टिप्पणी लिखिए।

1.4.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. तिवारी, भोलानाथ (2009) भाषाविज्ञान, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. द्विवेदी, कपिलदेव (2002) भाषाविज्ञान और भाषाशास्त्र, चौक वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
3. पाण्डेय, कैलाश नाथ (2006) भाषाविज्ञान का रसायन, गाजीपुर : गाजीपुर साहित्य संसद।
4. भाटिया, कैलाशचन्द्र (2001) आधुनिक भाषा-शिक्षण, नई दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन।
5. मल्होत्रा, विजय कुमार (2002) कम्प्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
6. रस्तोगी, डॉ० कविता (2000) समसामयिक भाषविज्ञान, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : भाषा और भाषाविज्ञान

इकाई – 5 : भाषाविज्ञान की शाखाएँ : वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

1.5.00 उद्देश्य
1.5.01 प्रस्तावना
1.5.02 भाषाविज्ञान : स्वरूप एवं प्रकार
1.5.03 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
    1.5.03.1 स्वनविज्ञान
    1.5.03.2 स्वनिमविज्ञान
    1.5.03.3 रूपविज्ञान
    1.5.03.4 वाक्यविज्ञान
    1.5.03.5 प्रोक्तिविज्ञान
    1.5.03.6 अर्थविज्ञान
1.5.04 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान और संरचनात्मक भाषाविज्ञान
1.5.05 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
    1.5.05.1 स्वन (ध्वनि) परिवर्तन
    1.5.05.2 रूप परिवर्तन
    1.5.05.3 वाक्य परिवर्तन
    1.5.05.4 अर्थ परिवर्तन
1.5.06 तुलनात्मक भाषाविज्ञान
1.5.07 तुलनात्मक भाषाविज्ञान और व्यतिरेकी भाषाविज्ञान
1.5.08 पाठ-सार
1.5.09 बोधात्मक प्रश्न
1.5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.5.00. उद्देश्य

भाषा ध्वनि-प्रतीकों की ऐसी व्यवस्था है जिसके माध्यम से हम विचार करते हैं तथा उन विचारों का आपस में सम्प्रेषण करते हैं। इसके व्यवस्थित अध्ययन-विश्लेषण का कार्य भाषाविज्ञान में किया जाता है। विश्व में हजारों भाषाएँ हैं। सबकी अपनी-अपनी संरचना और व्यवस्था है। इस संरचना और व्यवस्था का स्वतन्त्र अध्ययन संरचनात्मक या वर्णनात्मक अध्ययन कहलाता है। भाषावैज्ञानिकों द्वारा भाषाओं के अध्ययन में पाया गया है कि कुछ भाषाओं में समानता है तो कुछ में असमानता। इसी प्रकार कुछ भाषाओं में एक प्रकार की चीजें समान हैं तो कुछ में दूसरी प्रकार की। अतः संरचनात्मक अध्ययन के अलावा तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि से

भी भाषाओं के अध्ययन की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। इस क्रम में विकसित भाषाविज्ञान की शाखाओं का परिचय प्रस्तुत पाठ में दिया जा रहा है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. भाषाविज्ञान के स्वरूप का परिचय पा सकेंगे।
ii. भाषाविज्ञान के प्रकारों को जान सकेंगे।
iii. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की विषयवस्तु को समझ सकेंगे।
iv. ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान से परिचित हो सकेंगे।

1.5.01. प्रस्तावना

'भाषाविज्ञान' भाषा का विज्ञान है। भाषा को समझने के तीन पक्ष हैं – संरचनापरक पक्ष, विकासपरक पक्ष और एक भाषा के दूसरे भाषा से सम्बन्धपरक पक्ष। संरचना की दृष्टि से देखा जाए तो भाषा ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न स्तरों पर लगने वाले नियम वाक्यों का निर्माण करते हैं और वाक्यों के माध्यम से सम्प्रेषण किया जाता है। विकास की दृष्टि से देखने के लिए सबसे पहले भाषा की उत्पत्ति पर विचार करना समीचीन होगा। भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई ? इसका कोई वैज्ञानिक या तार्किक उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि चूँकि भाषा का सम्बन्ध मनुष्य द्वारा किए जाने वाले आपसी सम्प्रेषण से है, इसलिए भाषा की उत्पत्ति मानव समाज की उत्पत्ति के बाद की हुई है। पुरातात्विक और शरीर-रचना सम्बन्धी ऐतिहासिक प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मनुष्य की उत्पत्ति एक स्थान पर (अफ्रीका महाद्वीप में) हुई है और वहीं से उसका पृथ्वी के अन्य भागों पर प्रसार हुआ है। ऐसे में स्वयंसिद्ध है कि जब आदिकाल में मनुष्य एक ही स्थान पर एक ही समाज में था तो उसकी भाषा भी एक रही होगी। जैसे-जैसे मनुष्य का पृथ्वी के विभिन्न भागों में प्रसार हुआ है वैसे-वैसे समय और स्थान के साथ उसकी भाषा में भेद उत्पन्न हुआ है। धीरे-धीरे बढ़ते हुए यह भेद आज इतना अधिक बढ़ चुका है कि दो सुदूर की भाषाओं में कोई संरचनात्मक समानता नहीं प्राप्त होती। किन्तु जैसे-जैसे हम इतिहास में पीछे जाते हैं, वैसे-वैसे भाषाओं के बीच समानता का स्तर बढ़ने लगता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो संस्कृत, ग्रीक और लैटिन जैसी क्लासिकल भाषाओं के बीच प्राप्त समानता ने 1780 के दशक में ही भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण के प्रति यूरोपीय समाज को आकृष्ट किया। इस कारण वहाँ किया जाने वाला आरम्भिक अध्ययन ऐतिहासिक और तुलनात्मक ही रहा है, किन्तु बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक एफ.डी. सस्यूर ने स्पष्ट किया कि भाषाओं के ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के बजाए किसी काल बिन्दु विशेष में उनका वर्णनात्मक अध्ययन अधिक उपयोगी और कारगर है। इससे भाषाविज्ञान जगत् के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का उदय हुआ। इस प्रकार आज हमारे समक्ष भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण हेतु तीन पद्धतियाँ उपलब्ध हैं, जिन्हें भाषाविज्ञान की शाखाएँ कहा जाता है – वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक। इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत पाठ में दिया जाएगा।

1.5.02. भाषाविज्ञान : स्वरूप एवं प्रकार

वह विज्ञान जिसमें भाषा की संरचना या व्यवस्था का वस्तुनिष्ठ दृष्टि से अध्ययन किया जाता है, भाषाविज्ञान है। भाषाई अध्ययन के दो पक्ष हैं – भाषा मात्र का अध्ययन और भाषा विशेष का अध्ययन। भाषा मात्र के अध्ययन से तात्पर्य विश्व की किसी भी मानव भाषा का अध्ययन करने से है। भाषा विशेष का अध्ययन किसी एक ही भाषा जैसे – हिन्दी, अंग्रेजी आदि के अध्ययन पर केन्द्रित होता है। पारम्परिक रूप से भाषाविज्ञान को भाषा मात्र और व्याकरण को भाषा विशेष से सम्बद्ध माना जाता रहा है। किन्तु वास्तव में, भाषाविज्ञान में ये दोनों ही पक्ष समाहित हैं। भाषा वह शक्ति है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करती है। अर्थात् यदि भाषा न हो तो हम आज भी अन्य प्राणियों की तरह ही बहुत सीमित मात्रा में विकास कर सकेंगे। मनुष्य आदिमानव से आधुनिक तकनीकी मानव नहीं बन सकेगा। अतः भाषा की महत्ता मानव जीवन में आधारभूत है। भाषाविज्ञान में इसका सर्वांगीण विवेचन वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक सभी दिशाओं से होता रहा है।

भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषा का अध्ययन विविध प्रकार से किया जाता है। वैसे तो समय, तुलना और अनुप्रयोग के आधार पर भाषावैज्ञानिक अध्ययन के प्रकारों के कुछ युग्म भी देखे जा सकते हैं, जैसे – 'एककालिक भाषाविज्ञान एवं बहुकालिक भाषाविज्ञान', 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान एवं व्यतिरेकी भाषाविज्ञान' तथा 'सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान एवं अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान'। किन्तु मूल रूप से भाषाविज्ञान के तीन प्रकार किये गए हैं – (क) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, (ख) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, (ग) तुलनात्मक भाषाविज्ञान। प्रस्तुत पाठ में इन तीनों प्रकारों का परिचय दिया जा रहा है।

1.5.03. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान (Descriptive Linguistics)

आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक एफ.डी. सस्यूर (Ferdinand de Saussure : 1857-1913) द्वारा सर्वप्रथम भाषा के एककालिक और कालक्रमिक (Synchronic and Diachronic) अध्ययन की बात की गई। भाषा का एककालिक अध्ययन किसी काल-बिन्दु विशेष पर किया जाता है। अर्थात् किसी एक ही समय विशेष में भाषा का अध्ययन एककालिक अध्ययन कहलाता है। इस प्रकार का अध्ययन वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान अन्य दोनों प्रकार के भाषाविज्ञानों का आधार है क्योंकि अन्य दोनों ही प्रकार के अध्ययन के लिए भाषाओं के वर्णनात्मक ज्ञान की आवश्यकता होती है।

भाषा में कई स्तरों पर स्तरित इकाइयाँ पाई जाती हैं। इन अलग-अलग स्तरों का अध्ययन वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न शाखाओं में किया जाता है, जो इस प्रकार हैं –

1.5.03.1. स्वनविज्ञान (Phonetics)

स्वनविज्ञान स्वनों के उच्चारण, संवहन और श्रवण के आधार पर भाषाई स्वनों (ध्वनियों) का अध्ययन किया जाता है । इसके तीन प्रकार हैं – उच्चारणात्मक स्वनविज्ञान (Articulatory Phonetics), भौतिक स्वनविज्ञान (Acoustic Phonetics), श्रौतिक स्वनविज्ञान (Auditory Phonetics)।

1.5.03.2. स्वनिमविज्ञान (Phonemics)

इसे स्वनिम एवं स्वनप्रक्रिया भी कहा गया है। इसमें भाषा विशेष के स्वनिमों का विश्लेषण तथा वर्गीकरण किया जाता है।

1.5.03.3. रूपविज्ञान (Morphology)

रूपविज्ञान में रूपिमों और उनकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। इसकी विषयवस्तु के अन्तर्गत रूपिम, संरूप, शब्द-निर्माण, रूप-विश्लेषण एवं रूपिम के प्रकार आदि आते हैं। रूपिम के दो प्रकार हैं : व्युत्पादक (जिनसे कोशीय शब्दों का निर्माण किया जाता है) और रूपसाधक (जिनसे व्याकरणिक शब्दों (पदों) का निर्माण किया जाता है)। इसके आधार पर रूपविज्ञान के दो भेद किये जाते हैं – व्युत्पादक रूपविज्ञान (Derivational Morphology), रूपसाधक रूपविज्ञान (Inflectional Morphology)।

1.5.03.4. वाक्य विज्ञान (Syntax)

वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत वाक्य-रचना के घटकों और उनकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। वाक्य का निर्माण पदबंधों के मिलने से होता है। वाक्य के तीन प्रकार हैं – सरल और मिश्र और संयुक्त। मिश्र और संयुक्त वाक्यों में एक से अधिक 'उपवाक्य' होते हैं। अतः वाक्य विज्ञान में पदबंध, उपवाक्य और वाक्य तीनों का अध्ययन किया जाता है।

1.5.03.5. प्रोक्तिविज्ञान (Pragmatics)

प्रोक्ति भाषाविज्ञान की एक नवीन अवधारणा है। यह भाषा की सबसे बड़ी इकाई है जो वाक्य से भी बड़ी होती है। कोई भी भाषाई संरचना जिसके किसी भाग को समझने के लिए अन्य या बाह्य सन्दर्भ की आवश्यकता नहीं होती, प्रोक्ति है। एक प्रोक्ति में कई वाक्य, कई पैराग्राफ, कई अध्याय या यहाँ तक कि कई खण्ड हो सकते हैं। एक पूरी रचना एक प्रोक्ति होती है। उसमें वर्णित घटनाओं अथवा कुछ तथ्यों का सन्दर्भ एकाधिक वाक्यों में हो सकता है। इन सभी प्रकार के सन्दर्भों और सम्बन्धों का अध्ययन प्रोक्तिविज्ञान में किया जाता है।

1.5.03.6. अर्थविज्ञान (Semantics)

भाषा में अर्थ का सर्वोच्च स्थान है। भाषिक इकाइयों में 'रूपिम' से लेकर प्रोक्ति तक अर्थ का विस्तार पाया जाता है। अर्थविज्ञान के अन्तर्गत अर्थ के विविध रूपों और शब्द-अर्थ सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इसके मुख्य विवेच्य विषय हैं : अर्थ क्या है ?, शब्द-अर्थ सम्बन्ध, अर्थ-बोध, अर्थ-बोध के साधन, अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ (अर्थविस्तार, अर्थसंकोच, अर्थादेश) आदि।

अतः संक्षेप में वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत विविध विविध शाखाओं में वर्णित भाषाविज्ञान के स्तरों को इस प्रकार समझा जा सकता है –

स्वन (ध्वनि)	-	स्वनविज्ञान (ध्वनिविज्ञान)
स्वनिम	-	स्वनिमविज्ञान
रूपिम	-	रूपविज्ञान
शब्द / पद	-	
पदबंध	-	वाक्यविज्ञान
उपवाक्य	-	
वाक्य	-	
प्रोक्ति	-	प्रोक्तिविज्ञान
अर्थ	-	अर्थविज्ञान

1.5.04. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान और संरचनात्मक भाषाविज्ञान

किसी काल बिन्दु विशेष पर भाषा के सभी अंगों के अध्ययन-विश्लेषण को दो नाम दिए जा सकते हैं – वर्णनात्मक भाषाविज्ञान और संरचनात्मक भाषाविज्ञान। किन्तु ये दोनों समान नहीं हैं। इनके बीच सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों से अन्तर है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान भाषा विश्लेषण को सैद्धान्तिक आधार प्रदान करता है और भाषा का अध्ययन-अध्यापन कैसे किया जाए, इसका मार्ग प्रशस्त करता है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान उसे प्रस्तुतिकरण प्रदान करता है। अतः भाषा का संरचनात्मक पक्ष विश्लेषण से सम्बन्धित है तो वर्णनात्मक पक्ष उसकी प्रस्तुति से। किन्तु दोनों की विषयवस्तु समान है, किन्तु संरचनात्मक भाषाविज्ञान अधिक

केन्द्रीय है, जबकि वर्णनात्मक भाषाविज्ञान व्यापक अवधारणा है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की विषयवस्तु संरचनात्मक ही होगी, किन्तु संरचनात्मक भाषाविज्ञान का प्रस्तुतिकरण सदैव वर्णनात्मक होना आवश्यक नहीं है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो दोनों अवधारणाओं के उद्गम स्थल अलग-अलग हैं। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान मूलतः यूरोपीय भाषावैज्ञानिक सम्प्रदायों की अवधारणा है, जिसके मूल में आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक एफ.डी. सस्यूर (F. de Saussure) हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है – सस्यूर ने ही सर्वप्रथम भाषाओं के एककालिक और कालक्रमिक (Synchronic and Diachronic) अध्ययन को अलग-अलग परिभाषित किया तथा एककालिक अध्ययन को ही भाषाविज्ञान की मूल विषयवस्तु बताया। एककालिक अध्ययन की यही अवधारणा विभिन्न यूरोपीय सम्प्रदायों में अलग-अलग सिद्धान्तों के माध्यम से विकसित हुई, जिसे बाद में सामूहिक रूप से वर्णनात्मक भाषाविज्ञान नाम दिया। संरचनात्मक भाषाविज्ञान भाषा अध्ययन के अमेरिकी सम्प्रदाय की देन है। इसके जनक एल. ब्लूमफील्ड (Leonard Bloomfield : 1887-1949) हैं। उन्होंने भाषाविज्ञान अन्य विज्ञानों से अलग एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में परिभाषित किया तथा इसके संरचनात्मक पक्ष के अध्ययन पर बल दिया। उनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'Language' (1933) को इस दिशा में मील का पत्थर माना जाता है।

अतः वर्णनात्मक भाषाविज्ञान और संरचनात्मक भाषाविज्ञान किसी काल बिन्दु विशेष पर भाषा विशेष या भाषा मात्र के अध्ययन-विश्लेषण की पद्धतियाँ हैं। इनकी विषयवस्तु समान है। इसी कारण कुछ विद्वानों द्वारा वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को यूरोपीय संरचनावाद (European Structuralism) तथा संरचनात्मक भाषाविज्ञान को अमेरिकी संरचनावाद (American Structuralism) नाम भी दिया गया है।

1.5.05. ऐतिहासिक भाषाविज्ञान (Historical Linguistics)

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में एक ही भाषा का अध्ययन विभिन्न काल बिन्दुओं पर किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह भाषा का कालक्रमिक अध्ययन है। प्रायः कुछ भाषिक रूप ऐसे होते हैं जिनका नया रूप पुराने रूप से भिन्न हो जाता है। रूपों के इस परिवर्तन (नए रूपों के विकास) का विश्लेषण करना ही ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का उद्देश्य है। इसी कारण अध्ययन की ऐतिहासिक प्रणाली को सस्यूर द्वारा गत्यात्मक या विकासात्मक कहा गया है। इसके विपरीत वर्णनात्मक प्रणाली को स्थित्यात्मक कहा गया है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में भाषा का अध्ययन किसी काल बिन्दु विशेष पर नहीं किया जाता, बल्कि इसमें भाषा को प्रवाहमान मानते हुए उसमें समय के साथ होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। समय के साथ भाषा में परिवर्तन होता रहता है, किन्तु प्रतिदिन, प्रतिमाह या प्रतिवर्ष परिवर्तन के आधार पर हम भाषा में होने परिवर्तनों को चिह्नित नहीं कर सकते। भाषा-परिवर्तन का अध्ययन 50-100 वर्षों के अन्तराल के आधार पर किया जा सकता है।

चार से पाँच सौ वर्षों के बाद एक भाषा का स्वरूप इतना परिवर्तित हो जाता है कि उसकी ध्वनि-व्यवस्था, शब्द एवं रूप-व्यवस्था तथा वाक्य-व्यवस्था आदि में होने वाले परिवर्तनों को रेखांकित किया जा

सकता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में इसी प्रकार से विभिन्न समयान्तरालों में भाषा के रूप में हुए परिवर्तन को उद्घाटित किया जाता है। यह अध्ययन भाषा के सभी स्तरों से सम्बन्धित होता है। अतः ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की विषयवस्तु के रूप में भाषा के विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तन आते हैं, जिन्हें इस प्रकार से देखा जा सकता है –

1.5.05.1.स्वन (ध्वनि) परिवर्तन

कालभेद के कारण किसी भाषा के स्वनों (ध्वनियों) में होने वाला परिवर्तन स्वन (ध्वनि) परिवर्तन है। भाषा व्यवहार की मूलभूत सामग्री 'ध्वनि' है। ध्वनि अनेक प्रकार की होती है। मानव भाषाओं में प्रयुक्त ध्वनियों को 'स्वन' कहते हैं। वाग्यंत्रों के माध्यम से मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण करता है और उनके संयोजन से शब्द तथा वाक्य बनते हैं। भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया जाता है, जैसे – ध्वनि के उच्चारण के समय वायु-प्रवाह में अवरोध न होने या होने के आधार दो आधारभूत वर्ग– 'स्वर' तथा 'व्यंजन' किये गए हैं। इसी प्रकार स्वरों को जिह्वा की स्थिति के आधार पर – अग्र, मध्य और पश्च; होंठों की स्थिति के आधार पर – गोलीय और अगोलीय; तथा मात्रा (दीर्घता) के आधार पर – ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत में वर्गीकृत किया गया है। इसी प्रकार व्यंजनों के उच्चारण स्थान और उच्चारण प्रयत्न के आधार पर अनेक उपभेद किये गए हैं। इनके अलावा भी घोषत्व के आधार पर – घोष-अघोष; प्राणत्व के आधार पर – अल्पप्राण-महाप्राण; नासिक्यता के आधार पर – मौखिक तथा नासिक्य आदि भेदोपभेद प्राप्त होते हैं।

भाषा का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण होता है। यह प्रक्रिया भाषा के उत्पत्ति-काल से चली आ रही है और आज भी जारी है। यदि मनुष्य की जैविक रचना देखी जाए तो किसी भी व्यक्ति की बनावट दूसरे से अलग होती है। यहाँ तक कि आवाज भी अलग होती है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की सीखने की क्षमता भी दूसरे व्यक्ति से अलग होती है। ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं है कि क्या एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी ध्वनियों के उच्चारण को उसी रूप में सीख लेती होगी। वह भी तब जब कोई औपचारिक शिक्षण नहीं किया जाता, बल्कि मानव शिशु स्वयं ही परिवेश से भाषा सीखता है। इसलिए भाषा में स्वन (ध्वनि) परिवर्तन होता है। इसके अलावा ऐतिहासिक और राजनैतिक कारण भी इस परिवर्तन को प्रभावित करते हैं, जैसे – विदेशी आक्रमण, दूसरी भाषा के लोगों के साथ व्यापारिक-सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध आदि।

भाषा में स्वन (ध्वनि) परिवर्तन कई रूपों में होता है, जिसे स्वन (ध्वनि) परिवर्तन की दिशाएँ कहते हैं। स्वन (ध्वनि) परिवर्तन की प्रमुख दिशाएँ इस प्रकार हैं –

i. आगम : जैसे – स्टेशन से इस्टेशन।
ii. लोप : जैसे – स्थाली से थाली।
iii. विकार : जैसे – शती से सदी।
iv. विपर्यय : जैसे – चिह्न से चिन्ह।

v. समीकरण : जैसे – पत्र से पत्ता।

vi. विषमीकरण : जैसे – कंकण से कंगन।

स्वन (ध्वनि) परिवर्तन के कारणों के दो भेद किये गए हैं –

(i) आन्तरिक कारण : इसके अन्तर्गत प्रयत्न लाघव (मुखसुख), बलाघात, बोलने में शीघ्रता आदि आते हैं।

(ii) बाह्य कारण : इसके अन्तर्गत अनुकरण की अपूर्णता, भावातिरेक, सादृश्य, भौगिलिक विभाजन, ऐतिहासिक परिस्थितियाँ आदि आते हैं।

किसी भाषा या भाषा परिवार में एक विशेष परिवेश में होने वाले व्यापक और नियमित स्वन (ध्वनि) परिवर्तनों के आधार पर बनाए गए नियमों को 'ध्वनि-नियम' कहा जाता है। 19वीं शताब्दी में इस प्रकार के अनेक परिवर्तनों की खोज की गई है। इनके खोजकर्त्ताओं के आधार पर इनका नामकरण भी किया गया है, जैसे – ग्रिम नियम, ग्रासमान नियम और वर्नर नियम आदि।

1.5.05.2. रूप परिवर्तन

रूप परिवर्तन का सम्बन्ध रूपिम, शब्द और पद से है। रूप के दो भेद किये जाते हैं – अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व। अर्थतत्त्व के अन्तर्गत वे शब्द आते हैं, जिनका कोशीय अर्थ होता है। मुख्य रूप से संज्ञा, क्रिया, विशेषण तथा क्रियाविशेषण शब्द इसके अन्तर्गत आते हैं। सम्बन्धतत्त्व के अन्तर्गत वे रूपिम (प्रत्यय तथा व्याकरणिक शब्द) आते हैं, जिनका कोई कोशीय अर्थ नहीं होता, बल्कि उनका कार्य कोशीय अर्थ रखने वाले शब्दों को मिलाकर वाक्य का निर्माण करना होता है। परसर्ग (विभक्ति), नकारात्मक शब्द, प्रश्नवाचक शब्द तथा शब्दरूपों का निर्माण करने वाले प्रत्यय आदि सम्बन्धतत्त्व के अन्तर्गत आते हैं। इनके माध्यम से लिंग, वचन, पुरुष, कारक, वाच्य, काल, पक्ष, वृत्ति आदि व्याकरणिक कोटियों सम्बन्धी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। संस्कृत से हुए कुछ रूप परिवर्तनों की ओर संकेत करते हुए श्री जयकुमार जलज (2001) ने कहा है, "संस्कृत में अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त संज्ञाओं के रूप अलग-अलग चलते हैं। षष्ठी विभक्ति एकवचन में क्रमशः उनके रूप हैं – पुत्रस्य, अग्नेः और भिक्षोः। ... प्राकृतकाल तक आते-आते पुत्त्स < पुत्रस्य की अनुरूपता में अन्य दो शब्दों के रूप हो गए – अग्गिस्स < अग्नेः, भिक्खुस्स < भिक्षोः।"

भाषा में ध्वनि की तुलना में रूप-परिवर्तन कम होता है, क्योंकि रूप-स्तरीय व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होती है। समय के साथ कोशीय शब्दों में परिवर्तन होता रहता है। पुराने शब्द लुप्त होते हैं, नए शब्दों का सृजन होता है। जब एक भाषा का किसी नई भाषा से सम्पर्क होता है तो उस भाषा के शब्द भी इस भाषा में मिल जाते हैं। इस कारण कुछ नए रूपिमिक नियम भी जुड़ सकते हैं, किन्तु रूपरचनात्मक परिवर्तन बहुत धीमी गति से होता है। जब कोई ध्वनि परिवर्तित होती है तो उन सभी शब्दों का उच्चारण बदल जाता है, जिनमें वह ध्वनि होती है, जबकि यदि कोई शब्द परिवर्तित होता है तो केवल उसी स्वरूप बदलता है। रूप परिवर्तन में सामान्यतः यह भी

देखा जाता है कि परिवर्तन होने के बाद पुराना रूप भी प्रचलन में रहता है, जबकि ध्वनि परिवर्तन में ऐसा नहीं देखा जाता। अभी तक रूप परिवर्तन के नियम नहीं बनाए जा सके हैं।

रूप परिवर्तन के दो उद्देश्य बताए गए हैं – (i) स्पष्ट अभिव्यक्ति और (ii) प्रयत्न लाघव। वक्ता अपनी अभिव्यक्ति को सदैव स्पष्ट और सम्प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न करता है। इस क्रम में शब्दों की रूपरचना में भी परिवर्तन किये जाते हैं। किसी भाषा का प्रयोक्ता कम प्रयास में अधिक से अधिक बातें कहना चाहता है। यही प्रवृत्ति प्रयत्न लाघव है। इस क्रम में शब्दों के रूपों का सरलीकरण भी किया जाता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भाषाई समाज विभिन्न युक्तियाँ विकसित करता है। ये युक्तियाँ हैं – सादृश्य और नए रूपों का सृजन। इन्हें रूप परिवर्तन का कारण कहा गया है।

1.5.05.3. वाक्य परिवर्तन

वाक्य भाषा की सबसे बड़ी व्याकरणिक इकाई और सबसे छोटी सम्प्रेषणात्मक इकाई है। वाक्य का निर्माण पदों या पदबंधों के योग से होता है। इसमें प्रत्येक पद या पदबंध एक निश्चित प्रकार्य को सम्पन्न करता है। वाक्य-निर्माण के लिए आपस में जुड़ने वाले शब्दों के साथ लिंग, वचन, पुरुष, काल, पक्ष, वृत्ति आदि सम्बन्धी व्याकरणिक सूचनाएँ जुड़ जाती हैं और वह पद बन जाता है। अतः वाक्य विज्ञान में वाक्य-रचना नियमों, पदों (शब्दों) के बीच पारस्परिक सम्बन्धों और आपसी संयोजन के लिए उनके साथ जुड़ने वाली व्याकरणिक सूचनाओं का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत वाक्य स्तर पर इन इकाइयों और व्यवस्थाओं में समय के साथ हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। भाषाओं के आकृतिमूलक वर्गीकरण में चार प्रकार की भाषाओं की बात की गई है – अयोगात्मक, अश्लिष्ट योगात्मक, श्लिष्ट योगात्मक और प्रश्लिष्ट योगात्मक। इस वर्गीकरण का आधार वाक्य के अन्तर्गत पदों के योग की पद्धति ही है। इन्हें संक्षेप में इस प्रकार से देख सकते हैं –

(1) अयोगात्मक

ऐसी भाषाएँ जिनके वाक्यों के निर्माण हेतु शब्दों में रूपिमिक परिवर्तन नहीं होता, बल्कि वाक्य-रचना में प्रत्येक शब्द का स्थान निश्चित होता है और स्थान-परिवर्तन के आधार पर शब्दों के प्रकार्य में परिवर्तन हो जाता है। अर्थात् स्थान बदलने से ही कर्त्ता 'कर्म' बन जाता है और कर्म 'कर्त्ता' आदि। चीनी, तिब्बती आदि भाषाएँ इस वर्ग में आती हैं।

(2) अश्लिष्ट योगात्मक

ऐसी भाषाओं के वाक्यों में शब्दों के साथ सम्बन्धतत्त्व (व्याकरणिक सूचनाएँ देने वाले शब्द या प्रत्यय) भी रहते हैं, किन्तु वे मूल शब्दों से अलग होते हैं और मूल शब्द के रूप को प्रभावित नहीं करते। अतः इसमें शब्दों का स्थान उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता। यूराल अल्टाइक, द्रविड़ भाषाओं में ऐसे वाक्य देखे जा सकते हैं।

(3) श्लिष्ट योगात्मक

ऐसी भाषाओं के वाक्यों में मूल शब्दों के साथ प्रत्यय जुड़ते हैं और उसी में समाहित हो जाते हैं। अतः पदों में मूल शब्दों के साथ उनके होने को तो पहचाना जा सकता है, किन्तु उनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। भारोपीय तथा सेमेटीक, हेमेटिक भाषा परिवार की भाषाओं में ऐसी वाक्य-रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

(4) प्रश्लिष्ट योगात्मक

इस प्रकार की भाषाओं में वाक्य में प्रयुक्त होने वाले शब्द आपस में जुड़कर एक बड़े उच्चारण का रूप ले लेते हैं। इनमें मूल शब्दों के साथ लगने वाले सम्बन्धतत्त्वों को अलग से पहचाना नहीं जा सकता। बास्क भाषा तथा ग्रीनलैंड और अमेरिका के मूल निवासियों की भाषाओं में यह स्थिति प्राप्त होती है।

वाक्य परिवर्तन की दृष्टि से देखा जाए तो भाषाओं में वाक्य प्रश्लिष्ट योगात्मक से अयोगात्मक की ओर उन्मुख प्राप्त होते हैं। इसे संस्कृत से हिन्दी के उदाहरण के माध्यम से देखा जा सकता है। संस्कृत वाक्य अपेक्षाकृत अधिक योगात्मक रहे हैं, जबकि हिन्दी का उसी से विकास हुआ है और वह संस्कृत की तुलना में अधिक अयोगात्मक है। अभिव्यक्ति की स्पष्टता, परिवेश में भिन्नता और अन्य भाषा का प्रभाव आदि वाक्य परिवर्तन के कारण हैं।

1.5.05.4. अर्थ परिवर्तन

जब एक समाज में कोई भाषा स्थापित हो जाती है तो उसमें प्रत्येक शब्द के लिए एक अर्थ निर्धारित हो जाता है। किन्तु सभी शब्दों के वे ही अर्थ सदैव रहें जो आरम्भ में थे, यह आवश्यक नहीं है। देश-काल में परिवर्तन के साथ कुछ शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। शब्दों के अर्थों में बदलाव की यही प्रक्रिया अर्थ-परिवर्तन है। अर्थ परिवर्तन पर अनेक विद्वानों द्वारा किये गए कार्यों में मिशेल ब्रेआल (Michel Bréal : 1832-1915) का वर्गीकरण अधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने अर्थ परिवर्तन की तीन दिशाएँ बताई हैं –

(1) अर्थ-विस्तार (Expansion of Meaning)

जब किसी शब्द का पहले किसी एक वस्तु या सीमित क्षेत्र या अवस्था आदि को व्यक्त करने के लिए प्रयोग होता हो किन्तु बाद में अधिक विस्तृत इकाई या वस्तु का बोध होने लगे तो इस अवस्था को अर्थ-विस्तार कहते हैं। अंग्रेजी में 'lady' का मूल अर्थ था, 'रोटी बनाने वाली स्त्री', किन्तु आज यह किसी भी प्रकार की स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है। 'तटस्थ' का मूल अर्थ है, 'तट पर स्थित' (जो धार में न हो), किन्तु आज यह झगड़े-विवाद आदि से दूर रहने की अवस्था के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार 'तेल' केवल तिल के तेल को ही कहा जाता था, किन्तु अब यह सभी प्रकार के खाद्य और खनिज तेलों के लिए प्रयुक्त होता है।

(2) अर्थ-संकोच (Contraction of Meaning)

प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे भी शब्द होते हैं, जिनका अर्थ पहले विस्तृत क्षेत्र या इकाइयों को व्यक्त करने के लिए किया जाता था, जबकि बाद में वह किसी सीमित क्षेत्र या इकाई को व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए 'मृग' शब्द का प्रयोग पहले सभी प्रकार के जानवरों को व्यक्त करने के लिए किया जाता था, अब यह केवल 'हिरन' को व्यक्त करता है।

(3) अर्थादेश (Tranference of Meaning)

जब किसी शब्द का वर्तमान अर्थ प्राचीन अर्थ से भिन्न हो जाए तो इस अवस्था को अर्थादेश कहते हैं। उदाहरण के लिए 'असुर' शब्द ऋग्वेद में देवता का अर्थ व्यक्त करता था जो बाद में 'राक्षस' का द्योतक हो गया।

इनके अलावा अर्थ के आरम्भिक की तुलना में वर्तमान में उन्नत या श्रेष्ठ होने को 'अर्थोत्कर्ष' तथा इसकी विपरीत स्थिति को'अर्थापकर्ष' भी कहा गया है। आलंकारिक परिवर्तन, परिवेश में परिवर्तन, विनम्रता प्रदर्शन, शोभन, व्यंग्य, भावात्मक बल, अज्ञान, गौण अर्थ की प्रमुखता आदि अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारण हैं।

उपर्युक्त के अलावा 'भाषा की उत्पत्ति' और 'आद्यभाषा का निर्माण' जैसे विषय भी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विवेच्य विषय हैं। चूँकि भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई ? के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक या तार्किक साक्ष्य या सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है, इसलिए इसके बारे में केवल अनुमान ही किये गए हैं। आद्यभाषा का अर्थ है, 'वह भाषा जिससे विश्व की सभी भाषाएँ विकसित हुई हैं।' इसके निर्माण के लिए भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन, मानव सभ्यता का इतिहास, पुरातत्व (Archaeology), पुरालेखशास्त्र (Epigraphy) तथा नृविज्ञान (Anthropology) सभी का ज्ञान आवश्यक है। विश्व की भाषाओं के ऐतिहासिक अध्ययन की महत्त्वपूर्ण उपादेयता 'भाषा परिवार' (Language Family) के रूप में भाषाओं का वर्गीकरण के रूप में रही है। विभिन्न भाषाओं की ध्वनि, रूप एवं वाक्य व्यवस्था में हुए परिवर्तनों तथा उनके बीच प्राप्त समानताओं के आधार पर अध्ययन-विश्लेषण करके ही भाषा परिवारों का निर्धारण एवं वर्गीकरण किया जा सका है।

1.5.06. तुलनात्मक भाषाविज्ञान (Comparative Linguistics)

तुलनात्मक भाषाविज्ञान अन्तर्गत एक से अधिक भाषाओं का अध्ययन तुलनात्मक रूप से किया जाता है। यह तुलना एककालिक या कालक्रमिक दोनों प्रकार की हो सकती है। उदाहरण के लिए एक ही कालखण्ड में 'अवधी' और 'भोजपुरी' का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार केवल 'भोजपुरी' के 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी में स्वरूप का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु इसके लिए दोनों भाषाओं या दोनों कालखण्डों में भाषाओं की संरचनात्मक स्थिति का ज्ञान आवश्यक है। इसीलिए अधिकांश विद्वानों का मानना है कि तुलनात्मक भाषाविज्ञान में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकारों का अन्तर्भाव हो जाता है। एक तुलनात्मक भाषावैज्ञानिक को केवल भाषाओं की संरचना का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि भाषाई

समाज की ऐतिहासिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान आवश्यक है। कई बार व्यापार, आक्रमण और शासन जैसे कारकों से भाषाओं में शब्दावली का मिश्रण हो जाता है।

वास्तव में सर्वप्रथम भाषावैज्ञानिक अध्ययन की शुरुआत ही तुलनात्मक विश्लेषण से हुई जब 18वीं शताब्दी में सर विलियम जोन्स (Sir William Jones : 1746-1794) द्वारा संस्कृत, ग्रीक और लैटिन में काफी समानता होने की बात की गई। इसके बाद से ही विश्व की विभिन्न भाषाओं की शब्दावली और व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ हुआ, जिसे 'Philology' के नाम से जाना जाता है। इसी कारण भाषाओं के बीच प्राप्त समानताओं और असमानताओं का विश्लेषण करके 'भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण' सम्भव हो सका है। भाषा परिवारों (Language Families) की स्थापना तुलनात्मक भाषाविज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

वर्णनात्मक और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में किए जाने वाले अध्ययन की तरह ही भाषा के सभी स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है, जिसे हम निम्नलिखित उपशीर्षकों में बाँट सकते हैं – (i) स्वन (ध्वनि) सम्बन्धी तुलना, (ii) रूप सम्बन्धी तुलना, (iii) वाक्य सम्बन्धी तुलना, (iv) अर्थ सम्बन्धी तुलना।

1.5.07. तुलनात्मक भाषाविज्ञान और व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

तुलनात्मक भाषाविज्ञान का भाषाविज्ञान में एक अन्य नाम भी प्रचलित है, 'व्यतिरेकी भाषाविज्ञान'। मूल रूप से इसे 'व्यतिरेकी अध्ययन' ही कहा जाता है किन्तु जैसे-जैसे इसकी पद्धति विकसित होती जा रही है वैसे-वैसे यह एक स्वतन्त्र विज्ञान का रूप लेता जा रहा है। 'व्यतिरेकी अध्ययन' एक अनुप्रयोग सापेक्ष शब्दावली है। इसका विकास मूल रूप से 'भाषा-शिक्षण' के सन्दर्भ में हुआ है। जब किसी भाषा का प्रयोक्ता एक नई भाषा को सीखता है तो अपनी मातृभाषा के प्रभाव के कारण उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयों को समझने के लिए अध्येता की मातृभाषा और नई भाषा की संरचना में पाई जाने वाली असमानताओं और समानताओं की खोज व्यतिरेकी अध्ययन है। बाद में अनुवाद और मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में व्यतिरेकी अध्ययन का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया जाने लगा है। अतः तुलनात्मक अध्ययन और व्यतिरेकी अध्ययन दो चीजें हैं। तुलनात्मक भाषाविज्ञान का सम्बन्ध विशुद्ध रूप से भाषाओं की तुलना है तो व्यतिरेकी अध्ययन या व्यतिरेकी भाषाविज्ञान अनुप्रयोग आधारित पद्धति है, जो मूलतः भाषा-शिक्षण और अनुवाद से सम्बन्धित है।

1.5.08. पाठ-सार

भाषाविज्ञान भाषाओं के सांगोपांग विवेचन का विज्ञान है। इसके अन्तर्गत एक भाषा और एकाधिक भाषाओं का अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों दृष्टियों से किया जाता है और इनके आधार पर भाषाविज्ञान की तीन शाखाएँ – वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान प्राप्त होती हैं। ये तीनों भाषाविज्ञान के तीन प्रकार भी कहलाते हैं। इन तीनों में ही भाषा का ही अध्ययन किया जाता है, किन्तु तीनों की पद्धति और प्रक्रिया अलग होती है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में एक ही काल बिन्दु पर भाषा के विविध स्तरों

'स्वन – स्वनिम – रूपिम – शब्द / पद – पदबंध – उपवाक्य – वाक्य – प्रोक्ति और अर्थ' पर पाई जाने वाली व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान किसी एक भाषा या एकाधिक भाषाओं में समय के साथ हुए परिवर्तनों का इन स्तरों पर अध्ययन करता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान में एक से अधिक भाषाओं में विभिन्न स्तरों पर पाई जाने वाली समानताओं और असमानताओं की व्याख्या की जाती है। 'भाषा परिवारों' की स्थापना इसकी बड़ी उपलब्धि रही है।

1.5.09. बोधात्मक प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन-सा भाषाविज्ञान का एक प्रकार है ?
   (क) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
   (ख) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
   (ग) तुलनात्मक भाषाविज्ञान
   (घ) व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

   सही उत्तर : (घ) व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

2. निम्नलिखित में से किसका वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत अध्ययन नहीं किया जाता ?
   (क) स्वनिम
   (ख) शब्द
   (ग) लिपि
   (घ) प्रोक्ति

   सही उत्तर : (ग) लिपि

3. निम्नलिखित में से किसका सम्बन्ध स्वन (ध्वनि) परिवर्तन से नहीं है ?
   (क) व्यतिरेक
   (ख) व्यंग्य
   (ग) आगम
   (घ) समीकरण

   सही उत्तर : (ख) व्यंग्य

4. निम्नलिखित में से क्या अर्थ परिवर्तन का कारण है ?
   (क) अर्थ-विस्तार
   (ख) अनुवाद
   (ग) अर्थ-संकोच
   (घ) अर्थापकर्ष

   सही उत्तर : (ख) अनुवाद

5. तुलनात्मक भाषाविज्ञान के समानान्तर कौन सी नई शाखा विकसित हुई है ?
   (क) सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान
   (ख) मनोभाषाविज्ञान
   (ग) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान
   (घ) व्यक्तिरेकी भाषाविज्ञान

सही उत्तर : (घ) व्यक्तिरेकी भाषाविज्ञान

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान और संरचनात्मक भाषाविज्ञान में सम्बन्ध बताइए।
2. स्वन (ध्वनि) परिवर्तन की दिशाओं की सोदाहरण चर्चा कीजिए।
3. आकृतिमूलक वर्गीकरण में किये गए भाषा के चारों प्रकारों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
4. अर्थ-विस्तार और अर्थ संकोच के दो-दो उदाहरण दीजिए।
5. तुलनात्मक भाषाविज्ञान और व्यतिरेकी भाषाविज्ञान में अन्तर बताइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भाषाविज्ञान क्या है ? इसकी अवधारणा को समझाते हुए प्रकारों के नाम बताइए।
2. वर्णनात्मक भाषाविज्ञान की विषयवस्तु की सविस्तार चर्चा कीजिए।
3. ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से आप क्या समझते हैं ? व्याख्या कीजिए।
4. 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
5. ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के बीच सम्बन्ध और अन्तर बताइए।

1.5.10. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. जलज, जयकुमार (2001). ऐतिहासिक भाषाविज्ञान. नई दिल्ली. भारतीय ग्रन्थ निकेतन।
2. द्विवेदी, कपिलदेव (2002). भाषाविज्ञान और भाषाशास्त्र. वाराणसी. विश्वविद्यालय प्रकाशन।
3. पाण्डेय, कैलाश नाथ (2006). भाषाविज्ञान का रसायन. गाजीपुर. गाजीपुर साहित्य संसद।
4. Bréal Michel, Postgate, John Percival (1900). Semantics : Studies in the Science of Meaning. W. Heinemann.
5. Lehmann, W. P. (1976). Descriptive Linguistics : An Introduction. Random House.
6. Lehmann, W. P. (1992). Historical Linguistics : An Introduction. Routledge.
7. Matthews, Peter Hugoe. (2001). A Short History of Structural Linguistics. Cambridge University Press.

8. Anttila, Raimo (1988). Historical and Comparative Linguistics. John Benjamins Publishing Company.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : भाषा और भाषाविज्ञान

इकाई – 6 : भाषा परिवर्तन : स्वरूप, कारण एवं दिशाएँ

इकाई की रूपरेखा

1.6.1 उद्देश्य
1.6.2 प्रस्तावना
1.6.3 भाषा परिवर्तन का स्वरूप
1.6.4 भाषा परिवर्तन के कारण
1.6.4.1 सरलीकरण
1.6.4.2 सादृश्य
1.6.4.3 भाषा सम्पर्क
1.6.4.4 आधुनिकीकरण
1.6.4.5 मानकीकरण
1.6.5 भाषा परिवर्तन की दिशाएँ
1.6.5.1 ध्वनि परिवर्तन
1.6.5.2 लिपि-वर्तनी परिवर्तन
1.6.5.3 कोशीय परिवर्तन
1.6.5.4 अर्थ परिवर्तन
1.6.5.4.1 अर्थ विस्तार
1.6.5.4.2 अर्थ संकोच
1.6.5.4.3 अर्थादेश
1.6.5.4.4 अर्थोत्कर्ष
1.6.5.4.5 अर्थापकर्ष
1.6.6 भाषा परिवर्तन के आयाम
1.6.7 पाठ-सार
1.6.8 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
1.6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1.6.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. भाषा परिवर्तन से क्या तात्पर्य है, यह जान सकेंगे।
ii. भाषा परिवर्तन का स्वरूप क्या है, यह समझ सकेंगे।
iii. भाषा परिवर्तन के कारणों को समझ पाएँगे।
iv. भाषा परिवर्तन की कौन-कौन सी दिशाएँ हैं, इनका परिचय प्राप्त कर सकेंगे और

V. भाषा परिवर्तन के आन्तरिक तथा बाह्य आयामों को समझ सकेंगे।

1.6.2. प्रस्तावना

भाषा परिवर्तन या भाषा-विकास एक ऐसी संघटना है, जिसके अन्तर्गत समय के अन्तराल में भाषा के विभिन्न स्तरों – ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ तथा अन्य में परिवर्तन होता है। भाषा 'बहता नीर' मानी जाती है। यह हमेशा परिवर्तनशाल होती है। भाषा में परिवर्तन का अध्ययन समकालिक एवं द्विकालिक (ऐतिहासिक) दोनों स्तरों पर किया जा सकता है। समय के अन्तराल पर हुए परिवर्तन ऐतिहासिक अथवा द्विकालिक परिवर्तन की श्रेणी में आते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में भाषा परिवर्तनों के आधार पर भाषा सम्बन्धों की व्याख्या की गई तथा भाषा परिवारों की स्थापना की गई। इसी शताब्दी के अन्तिम 25 वर्षों में भाषाविदों के एक वर्ग, युवा वैयाकरणों ने यह दावा किया था कि ध्वनि परिवर्तन नियमित होते हैं। उनका दावा था कि एक ध्वनि किसी भाषा में हमेशा एक ही तरह से परिवर्तित होती है, इसमें कोई अपवाद नहीं होता। इन्होंने ध्वनि परिवर्तन में भाषाभाषियों की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की अपेक्षा यांत्रिक प्रकृति पर अधिक बल दिया था। बीसवीं शताब्दी में भी भाषाविज्ञानियों की रुचि इस ओर आकर्षित हुई तथा इस सम्बन्ध में किये गए अध्ययनों से कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन हुआ। नए शब्द, नए व्याकरणिक रूप, नई संरचनाएँ तथा मौजूदा शब्दों के नए रूप एवं अर्थ विकसित होते रहते हैं और पुराने रूप लुप्त होते रहते हैं।

भाषा परिवर्तन के कई प्रकार अथवा दिशाएँ दिखाई पड़ती हैं। भाषा परिवर्तन के दिशाओं के अन्तर्गत हम ध्वनि परिवर्तन, लिपि-वर्तनी परिवर्तन, कोशीय परिवर्तन तथा अर्थ परिवर्तन की सोदाहरण चर्चा करेंगे।

समाज भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भी भाषा परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है, जिसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि सामाजिक परिवर्तनों का भाषा पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस पाठ में हम भाषा परिवर्तन से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों पर विचार करेंगे।

1.6.3. भाषा परिवर्तन का स्वरूप

भाषा को गतिशील और परिवर्तनशील माना जाता है। हरेक भाषा में परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह परिवर्तन भाषा के ध्वन्यात्मक, रूपात्मक तथा आर्थिक स्तर पर होता रहता है। परिवर्तन से तात्पर्य ध्वनि, शब्द (कोशीय), अर्थ, लिपि-वर्तनी आदि में होने वाले परिवर्तनों से है। इन सभी परिवर्तनों में ध्वनि परिवर्तन सबसे अधिक क्रियाशील होते हैं।

ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत कभी भाषा में किन्हीं स्वरों का लोप हो जाता है तो किन्हीं का आगम। कभी असमान व्यंजन-गुच्छों का समान व्यंजन-गुच्छों में परिवर्तन होता है तो कभी समान व्यंजन-गुच्छों का

सरलीकरण। ध्वनि परिवर्तन दो प्रकार के माने जाते हैं – अनियमित तथा नियमित। ध्वनि परिवर्तन पहले स्वनिक परिवर्तन के रूप में प्रारम्भ होता है, बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेता है। स्वनिक परिवर्तन को अनियमित ध्वनि परिवर्तन तथा स्वनिमिक परिवर्तन को नियमित ध्वनि परिवर्तन कहा जाता है। जब ऐसे ध्वनि परिवर्तन के नियम पूरे भाषा समुदाय द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं तब उन्हें नियमित ध्वनि परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है।

भौगोलिक आधार पर भी भाषा में परिवर्तन होते हैं, इसका सम्बन्ध बोली विज्ञान से जुड़ा हुआ है। भाषा में सामाजिक वर्गों के अनुसार भी परिवर्तन होता है। विभिन्न सामाजिक वर्गों में धर्म, सामाजिक स्तर, लिंग, शैक्षिक स्तर आदि के कारण भी भाषा में भेद पैदा होता है। स्वरूप के आधार पर ध्वनि परिवर्तन को भाषाविद् निम्नलिखित वर्गों में रखते हैं –

i. **लोप** : इसके अन्तर्गत शब्द की किसी ध्वनि का लोप हो जाता है जैसे अभ्यंतर' शब्द का 'भीतर' शब्द में परिवर्तन 'अ' स्वर ध्वनि के लोप के कारण हुआ है।

ii. **आगम** : इसके अन्तर्गत शब्द में किसी ध्वनि का आगम हो जाता है जैसे – 'सूर्य' शब्द से 'सूरज' या 'पूर्व' से बने 'पूरब' में 'र' के बाद 'अ' ध्वनि का आगम हुआ है। इस प्रकार नई ध्वनि के आगम के द्वारा नए शब्दों का निर्माण हुआ है।

iii. **ध्वनियों का स्थान परिवर्तन** : किसी शब्द में जब दो ध्वनियाँ का विपर्यय हो जाता है या जब वे ध्वनियाँ आपस में स्थान बदल लेती हैं तब नए शब्द का निर्माण होता है। जैसे 'वाराणसी' शब्द से बने 'बनारस' शब्द में 'ण' ध्वनि 'न' में परिवर्तित होकर 'र' के स्थान पर तथा 'र' ध्वनि 'ण' के स्थान पर चली गई, जिससे इस नए शब्द का निर्माण हुआ।

iv. **अनुनासिकता के कारण परिवर्तन** : जब तत्सम शब्द का नासिक्य व्यंजन अनुनासिकता में बदल जाता है तो इस ध्वनि परिवर्तन द्वारा नया तद्भव शब्द बनता है। जैसे 'कम्पन' शब्द के 'म' के अनुनासिकता में बदलने के कारण 'काँपना' शब्द का निर्माण हुआ।

v. **शब्दों की ध्वनियों के दीर्घीकरण** : शब्दों की ध्वनियों के दीर्घीकरण तथा महाप्राणीकरण के रूप में भी ध्वनि परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे – 'कर्म' शब्द से 'काम' शब्द का विकास पहले 'कर्म' से 'कम्म' के रूप में हुआ (असमान व्यंजन-गुच्छ से समान व्यंजन-गुच्छ), फिर ह्रस्व स्वर का दीर्घ स्वर में परिवर्तन (समान व्यंजन-गुच्छ का सरलीकरण तथा ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण) हुआ। इसके फलस्वरूप 'काम' शब्द निर्मित हुआ। इसी प्रकार 'सप्त' से 'सात' शब्द का निर्माण पहले सप्त से सत्त तथा सत्त से सात का विकास हुआ।

vi. **महाप्राणीकरण** : इसी प्रकार 'शुष्क' शब्द के 'क' अल्पप्राण व्यंजन के महाप्राण 'ख' में परिवर्तन होकर 'सूखा' शब्द बना।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भाषाओं में ध्वनियों के स्वरूप में परिवर्तन अनेक प्रकार का हो सकता है।

1.6.4. भाषा परिवर्तन के कारण

भाषा परिवर्तन के कई कारण बताए जाते हैं। इनमें प्रमुख हैं – सरलीकरण, सादृश्य, भाषा सम्पर्क, आधुनिकीकरण तथा मानकीकरण आदि।

1.6.4.1. सरलीकरण

भाषा-भाषी कम से कम प्रयत्न के द्वारा भाषा के शब्दों का उच्चारण करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में वे उच्चारण में मितव्ययिता अपनाना पसंद करते हैं। 'मुसकराना' से 'मुस्काना' या 'मुस्कियाना' का विकास सरलीकरण का उदाहरण माना जा सकता है।

1.6.4.2. सादृश्य

किसी शब्द के सादृश्य पर अन्य शब्द का विकास जैसे 'द्वादश' के सादृश्य पर 'एकदश' शब्द का 'एकादश' के रूप में उच्चारण विकसित हुआ। इस प्रकार एकादश शब्द प्रचलन में आ गया।

1.6.4.3. भाषा सम्पर्क

भाषा सम्पर्क भी भाषा परिवर्तन का एक प्रमुख कारण है। अरबी-फारसी तथा अंग्रेजी के सम्पर्क के कारण हिन्दी भाषा में बहुत से शब्द आ गए हैं। दो भाषाओं में सम्पर्क के कारण भाषा में कोशीय परिवर्तन होते हैं।

1.6.4.4. आधुनिकीकरण

भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप भी भाषा में कोशीय परिवर्तन होते हैं। यहाँ वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के प्रयत्न की चर्चा की जा सकती है। कई अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्यय लगाकर नए तकनीकी शब्द विकसित किये गए। विभिन्न विषयों के लगभग सात लाख तकनीकी शब्द हिन्दी शब्द-भण्डार में सम्मिलित किए जा चुके हैं। धीरे-धीरे ये शब्द हिन्दी शब्दकोशों का भाग बनते जा रहे हैं। हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण की यह प्रक्रिया भाषा नियोजन से सम्बद्ध है।

1.6.4.5. मानकीकरण

भाषा के मानकीकरण के फलस्वरूप भी कई स्तरों पर परिवर्तन होते हैं। देवनागरी वर्तनी के मानकीकरण के फलस्वरूप देवनागरी लिपि के कई वर्णों का रूप बदल गया, पुराने वर्णों के स्थान पर नए वर्णों का प्रचलन हो गया। हिन्दी की वर्तनी में अनुस्वार तथा ये / यी के स्थान पर ए / ई का प्रयोग लिपि-वर्तनी परिवर्तन के उदाहरण हैं।

उपर्युक्त सभी कारणों के सन्दर्भ में हम अगले खण्ड में भाषा परिवर्तन की दिशाओं के अन्तर्गत सोदाहरण चर्चा करेंगे।

1.6.5. भाषा परिवर्तन की दिशाएँ

भाषा परिवर्तन के दिशाओं में ध्वनि-परिवर्तन, लिपि-वर्तनी-परिवर्तन, कोशीय परिवर्तन तथा अर्थ-परिवर्तन को मुख्य रूप से लिया जाता है।

1.6.5.1. ध्वनि परिवर्तन

ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत स्वनिक तथा स्वनिमिक दोनों प्रकार के परिवर्तनों के सम्मिलित किया जाता है। ध्वनि परिवर्तन हमेशा स्वनिक परवर्तन के रूप में शुरू होते हैं। बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेते हैं।

ध्वनि परिवर्तन के कारणों पर विचार करते हुए हमें दो प्रकार के कारण प्राप्त होते हैं। एक है आन्तरिक कारण जो शब्द के भीतर होते हैं और दूसरा बाह्य कारण जो शब्द के बाहर के वातावरण में होते हैं और ध्वनि पर धीरे-धीरे प्रभाव डालते हैं। वास्तव में हम ध्वनि परिवर्तन को इन दोनों कारणों तक सीमित नहीं रख सकते। किसी भी ध्वनि परिवर्तन के पीछे कई कारण काम करते हैं। आन्तरिक और बाह्य कारण साथ-साथ काम करते हैं। सामान्यतया ध्वनि परिवर्तन के निम्नलिखित कारण बताए जाते हैं –

(i) **मुखसुख या प्रयत्न लाघव** : मुखसुख या प्रयत्नलाघव ध्वनि परिवर्तन का एक प्रमुख कारण बताया जाता है। यह मनुष्य का स्वभव है कि वह कम से कम प्रयास से शब्दों का उच्चारण करना चाहता है। इसके अन्तर्गत कठिन ध्वनियों को सरल बनाना, कम से कम प्रयास से भाव व्यक्त करना, संयुक्त ध्वनियों को सरल बनाना, भिन्न व्यंजन गुच्छों का समान व्यंजन गुच्छों में परिवर्तन करना और व्यंजन-गुच्छों का सरलीकरण करना आदि आते हैं। जैसे – सत्य > सच्च > सच, कर्म > कम्म > काम, सर्प > सप्प > साँप, प्रचार > परचार आदि इसके उदाहरण हैं।

(ii) **प्रमाद** : प्रमाद के कारण शब्दों में उच्चारण भ्रष्टता के फलस्वरूप वैदिक भाषा बिगड़ते-बिगड़ते क्या से क्या हो गई ! 'शुल्क' का 'छिलका', 'वल्मीक' का 'बांबी', 'मनीषा' का 'मंशा' आदि अनेक उदाहरण दिये जाते हैं।

(iii) **अशिक्षा व अज्ञान** : अशिक्षा व अज्ञान के कारण भी कुछ शब्दों की ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे – गार्ड > गारद, लैंटर्न > लालटेन, गोस्वामी > गोसाईं आदि।

(iv) **सादृश्य** : सादृश्य को भी ध्वनि परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारण माना गया है। किसी दूसरे शब्द के ध्वनि साम्य के आधार पर शब्द की ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे – 'द्वादश' के सादृश्य

पर 'एकादश' तथा 'पैंतालीस' के सादृश्य पर 'सैंतालीस' में अनुनासिकता का आगम इसके कुछ उदाहरण हैं।

(v) **भाषा सम्पर्क** : भाषाओं के आपसी सम्पर्क के कारण भी ध्वनि परिवर्तन होते हैं। विदेशी भाषाओं के सम्पर्क के कारण विदेशी भाषा की ध्वनियाँ हमारी भाषा की ध्वनि व्यवस्था का अंग बन जाती हैं। जैसे – ख़, ग़, ज़ और फ़ ध्वनियों का विकास हिन्दी के अरबी-फारसी सम्पर्क के कारण हुआ। धीरे-धीरे ये ध्वनियाँ हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था में सम्मिलित हो गईं। आधुनिक हिन्दी में ख़ और ग़ का तो ख और ग में आत्मसातीकरण हो गया है किन्तु फ़ और ज़ को अंग्रेजी सम्पर्क के कारण अपना उच्चारण सुरक्षित रखने के लिए बल मिला है।

(vi) **भौगोलिक विस्तार** : जब किसी भाषा का भौगोलिक विस्तार होता है तब उसके उच्चारण में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। हिन्दी भाषा का व्यवहार क्षेत्र व्यापक होने के कारण हमें कई शब्दों में परिवर्तन दिखाई पड़ता है, जैसे मैथिली में हिन्दी शब्द 'भाड़ा' का उच्चारण 'भारा', पंजाबी में हिन्दी शब्द 'किताब' का 'कताब' के रूप में उच्चारण देखा जा सकता है।

(vii) **सामाजिक प्रक्रियाएँ** : कुछ ध्वनि परिवर्तन समाज भाषावैज्ञानिक अर्थात् सामाजिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप भी होते हैं। इस दिशा में प्रसिद्ध समाज-भाषाविद् लेबाव के ध्वनि परिवर्तन की सामाजिक अभिप्रेरणा के अध्ययन से समाज भाषाविज्ञान की नींव पड़ी। हिन्दी में बहन / बहिन. भाड़ा / भारा, 'ह' से पहले तथा बाद के 'अ' का 'ऐ' के रूप में उच्चारण पश्चिमी हिन्दी अथवा मानक हिन्दी का एक प्रमुख लक्षण है जबकि पूर्वी हिन्दी में इस का उच्चारण 'अ' ही रहता है।

1.6.5.2. लिपि-वर्तनी परिवर्तन

पश्चिम में 15वीं शताब्दी में छापेखाने के आविष्कार ने मुद्रकों के सामने लिपि-वर्तनी के मानकीकरण की समस्या प्रस्तुत कर दी थी। 15वीं से 17वीं शताब्दी के पाठों में हमें कई आन्तरिक विसंगतियाँ मिलती हैं। कई बार टाइपसैटर उपलब्ध टाइप या फ़ॉण्ट के कारण भिन्न-भिन्न वर्तनी का चयन करते पाए गए हैं। इस सम्बन्ध में भारत में देवनागरी लिपि-वर्तनी के मानकीकरण को उदाहरण के तौर पर लिया जा सकता है। भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय के अन्तर्गत केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने सन् 1965 में मानक देवनागरी लिपि एवं वर्तनी प्रस्तुत की। इसका उद्देश्य टाइपराइटर के लिए देवनागरी लिपि को रेखीय आधार प्रदान करना था। आगे चलकर कंप्यूटर के लिए देवनागरी लिपि में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई।

भारत संघ तथा अनेक राज्यों की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप तथा वर्णों के प्रयोग में अनेकरूपता को दूर करने के उद्देश्य से हिन्दी का मानक रूप निर्धारित करना आवश्यक हो गया था। निदेशालय ने देश के प्रमुख भाषाविदों के सहयोग एवं मार्गदर्शन के आधार पर देवनागरी लिपि के वर्णों को मानक रूप प्रदान किया तथा वर्तनी सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादन किया।

(i) अ, आ, ओ, औ, घ, छ, झ, ध, भ के पुराने रूपों को छोड़ नए रूपों को अपनाने की व्यवस्था की गई।

(ii) संस्कृत में द्वित्वों को मिलाकर ऊपर-नीचे लिखने की परिपाटी के अनुसार हिन्दी में भी इसी तरह लिखने की परम्परा थी। अब शब्दों को अन्न, पत्ता, बुद्ध, शुद्धि के रूप में लिखने की व्यवस्था निर्धारित की गई।

(iii) नासिक्य व्यंजन गुच्छों में पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार के प्रयोग की व्यवस्था की गई जिससे 'गङ्गा', 'चञ्चल', 'कण्ठ', 'अन्त', 'सम्पादन' आदि शब्दों को 'गंगा', 'चंचल', 'कंठ', 'अंत' और 'सम्पादन' के रूप में लिखने की सिफ़ारिश की गई।

(iv) शब्दान्त -यी ओर -ये को क्रमश: -ई और -ए के रूप में लिखने की व्यवस्था की गई – जैसे 'आयी' को 'आई', 'गये' को 'गए' के रूप में लिखने का सुझाव दिया गया।

(v) साथ ही अरबी-फारसी के आगत शब्दों की वर्तनी निर्धारित की गई।

कुछ मीडिया-घरानों की अपनी तरजीह तथा विभिन्न कंप्यूटर कंपनियों के व्यापारिक स्वार्थ के कारण इस क्षेत्र में आज भी काफ़ी अराजकता दिखाई देती है। अब इस दिशा में अगस्त 2012 से भारतीय मानक ब्यूरो ने देवनागरी लिपि तथा वर्तनी का मानकीकरण कर इसे आई.एस.ओ प्रदान कर दिया है, इससे स्थिति में परिवर्तन होने की सम्भावना दिखाई देनी चाहिए। यूनिकोड के विकास से भी समस्या के समाधान की आशा दिखाई देती है।

1.6.5.3. कोशीय परिवर्तन

विभिन्न भाषा समुदायों के परस्पर सम्पर्क के कारण अक्सर कोशीय परिवर्तन होते हैं। कभी-कभी विजेता समुदाय के कई शब्द विजित समुदाय द्वारा ग्रहण कर लिए जाते हैं। भारत में अरबों, तुर्कों, मुगलों के सम्पर्क के कारण कई अरबी-फारसी शब्द (यकीन, माजरा, असबाब, कशिश, कोशिश, हुनर, शहंशाह, गैर, मुल्क, लेकिन, दस्तावेज़, फ़ासला, फ़ारिग, ग़बन, गज़ब, ग़ायब, ग़ुसलख़ाना, ज़मीर, ज़बान, ज़लज़ला, ज़माना, फ़िरका, फ़ाज़िल, संगदिल, रोज़, ज़ुल्म, हकीकत, हाल, हौज़, हवस आदि) हिन्दी भाषा में ग्रहण कर लिए गए। इसी प्रकार आगे चलकर अंग्रेज़ी भाषा के सम्पर्क में आने के बाद बहुत से शब्द (टिकट, स्टेशन, रेल, रेडियो, रोड, ट्रेन, ट्राम, ट्रॉली, ट्रक, ड्राइवर, ड्रम, ड्रेस, हैलो, आक्सीजन, नाईट्रोजन, हाइड्रोजन, हाइवे, नेशनल, टी,वी., टेलीफ़ोन, मोबाइल आदि) हिन्दी भाषा में सम्मिलित हो गए हैं। इसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं से भी हिन्दी ने सैकड़ों शब्द (दोसा, इडली, उपमा, उतप्पम, रसम आदि) ग्रहण किए हैं।

विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क के कारण हिन्दी भाषा ने अनेक विदेशी भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किये हैं। जैसे – तूफ़ान और चाय (चीनी से), सुनामी (जापानी से), कमीज़ और रेस्तराँ (फ्रांसीसी से) आदि। यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है।

संविधान में हिन्दी को राजभाषा धोषित करने के बाद हिन्दी को प्रशासन तथा शिक्षा की माध्यम-भाषा के रूप में विकसित करने का कार्य भारत सरकार ने अपने हाथ में लिया। विभिन्न विषयों में तकनीकी तथा पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता महसूस की गई। तदनुसार वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की गई। शब्दावली निर्माण के सिद्धान्तों का निर्माण किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया। कई अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्यय लगाकर नए तकनीकी शब्द विकसित किये गए। जैसे – आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रेट, फास्फेट, पेट्रोल आदि से ऑक्सीकरण (Oxygenation), रेडियोधर्मिता (radio-activity), पास्चुरीकरण (pasteurization) आदि।

इस तरह पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए अधिकतर संस्कृत के उपसर्ग-प्रत्ययों का सहारा लिया गया। सभी भारतीय भाषाएँ इसी प्रकार नए तकनीकी शब्दों का निर्माण करती हैं। हिन्दी में संस्कृत की शब्द-निर्माण परम्परा के आधार पर बनाए गए कुछ शब्द इस प्रकार हैं – दूरमुद्रक (teleprinter), परिप्रेक्ष्य (perspective),तुलनपत्र (balance sheet), सचिव (secretary), पदोन्नति (promotion), कीटनाशक (pesticide), परिवीक्षा (probation), संक्रान्ति (transition), सम्मेलन (Conference) आदि।

इस प्रकार विभिन्न विषयों के सात लाख से अधिक तकनीकी शब्द हिन्दी शब्द-भण्डार में सम्मिलित किए जा चुके हैं। धीरे-धीरे ये शब्द हिन्दी शब्दकोशों का अंग बनते जा रहे हैं। हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण की यह प्रक्रिया भाषा नियोजन से सम्बद्ध है।

1.6.5.4. अर्थ परिवर्तन

शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है। कुछ शब्दों के अर्थ में विस्तार या संकोच होता है। कभी शब्द के अर्थ का अपकर्ष होता है तो कभी उत्कर्ष। कभी शब्द अपना मूल अर्थ छोड़कर दूसरा अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार अर्थ परिवर्तन की हमें निम्नलिखित पाँच दिशाएँ प्राप्त होती हैं –

1.6.5.4.1. अर्थ विस्तार

जब कोई शब्द सीमित अर्थ से व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है, तब अर्थ विस्तार की स्थिति होती है। जैसे प्रवीण शब्द का पहले वीणा बजाने में निपुण के अर्थ में प्रयोग होता था। अब इसका प्रयोग हर प्रकार के अच्छे-बुरे कार्यों में निपुणता के लिए किया जाता है। तेल का प्रयोग तिल के तेल के लिए किया जाता था, अब यह किसी भी तेल के लिए प्रयुक्त होता है – जैसे सरसों का तेल, मूँगफली का तेल आदि। यहाँ 'प्रवीण' तथा 'तेल' के मूल अर्थ में विस्तार हुआ है।

1.6.5.4.2. अर्थ संकोच

अर्थ परिवर्तन की ऐसी दिशा, जिसमें कोई शब्द पहले व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता था किन्तु आगे चलकर संकुचित अर्थ में प्रयोग होने लगता है, अर्थ संकोच कहलाती है। जैसे – मन्दिर शब्द का प्रयोग पहले किसी भी भवन के अर्थ में किया जाता था किन्तु अब यह देव-मन्दिर के अर्थ में रूढ़ हो गया है। गो शब्द का पहले प्रयोग चलने वाला के अर्थ में होता था, अब इसका प्रयोग केवल गाय के अर्थ में संकुचित हो गया है। इस प्रकार 'मन्दिर' तथा 'गो' शब्दों का अर्थ संकुचित हो गया।

1.6.5.4.3. अर्थादेश

अर्थादेश में अर्थ का विस्तार या संकोच नहीं होता बल्कि अर्थ पूरी तरह से बदल जाता है। उदाहरण के लिए 'कल्याण' और 'असुर' शब्दों को लें। संस्कृत में 'कल्याण' शब्द का प्रयोग विवाह के अर्थ में होता था, अब हिन्दी में यह 'भलाई' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका मूल अर्थ तमिळ में 'कल्याण मण्डपम्' (विवाह मण्डप) में सुरक्षित है। 'असुर' शब्द वेद में देवता का वाचक था किन्तु आगे चलकर 'राक्षस' या 'दैत्य' का वाचक बन गया।

1.6.5.4.4. अर्थोत्कर्ष

कुछ शब्दों का अर्थ पहले बुरा होता है किन्तु बाद में अच्छा हो जाता है, यह अर्थोत्कर्ष कहलाता है। जैसे – 'गवेष्णा' शब्द का पहले अर्थ था, 'गाय को खोजना', अब इसका प्रयोग 'अनुसन्धान' या 'शोध' के अर्थ में होने लगा। 'साहसी' का प्रयोग पहले 'डकैत' के लिए होता था किन्तु अब यह अच्छे कार्य में हिम्मत का प्रदर्शन करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार इनके अर्थ में उत्कर्ष हो गया।

1.6.5.4.5. अर्थापकर्ष

कुछ शब्द पहले अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होते थे, बाद में बुरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं, अर्थ परिवर्तन की यह स्थिति अर्थोपकर्ष कहलाती है। जैसे – 'शौच' शब्द का पहले पवित्र कार्य के अर्थ में प्रयोग होता था, अब 'मल-त्याग' के अर्थ में प्रयोग होता है। 'पण्डित' शब्द पहले विद्वान् का वाचक होता था, अब यह 'मूर्ख ब्राह्मण' का भी वाचक होता है। ये अर्थापकर्ष के उदाहरण है।

1.6.6. भाषा परिवर्तन के आयाम

भाषा परिवर्तन का स्पष्ट करने के लिए दो आयामों की अक्सर चर्चा की जाती है। ये हैं – आन्तरिक आयाम और बाह्य आयाम, जिनके व्याख्याताओं के परस्पर विरोधी दावे रहे हैं। आन्तरिक व्याख्याकार मुख्य रूप से संरचनात्मक या मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणा को परिवर्तन का आधार मानते हैं। उनका मत है कि भाषा परिवर्तन के पीछे मुख्य कारक संरचनात्मक नियमितता होती है। सन् 1952-55 के दौरान मार्तिने के विचार रहे हैं कि

समरूपता के लिए स्वनिमिक परिवर्तन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसी प्रकार के विचार परवर्ती भाषाविद् (हाकिंस 1976) के शोध में भी प्राप्त होते हैं। आन्तरिक आयाम के अन्य पक्षधर वेलयर और ओहाला भी रहे हैं। वेलयर के अनुसार स्वनिम और रूपिम वाक्य विन्यास को प्रभावित करने वाले बाह्य कारक आन्तरिक दबावों की अपेक्षा कम महत्त्व वाले होते हैं। भाषा परिवर्तन के लिए सामाजिक तथा ऐतिहासिक कारकों का महत्त्व सन्दर्भ मात्र का ही होता है। ओहाला के अनुसार किसी विशिष्ट भाषा में हुए परिवर्तनों का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों से सम्बन्ध न तो सहायक हो सकता है और न ही आवश्यक है।

बाह्य आयाम के प्रमुख प्रणेता विलियम लबोव (1972) रहे हैं जो यह मानते हैं कि भाषा परिवर्तनों को केवल सामाजिक सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। लबोव ने भाषा परिवर्त और परिवर्तन का अध्ययन किया और उन्होंने 'आई' और 'आउ' द्वि-स्वरों के केन्द्रीकरण के पैटर्न के विश्लेषण से यह सिद्ध कर दिखाया कि इसकी व्याख्या भाषा परिवर्तन के सामाजिक सन्दर्भ के परीक्षण से ही की जा सकती है। इसमें भाषा-भाषियों की अभिवृत्तियों तथा अपेक्षाओं के सन्दर्भों को सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रकार बाह्य आयाम के व्याख्याता सामाजिक परिवर्तों तथा सन्दर्भ को भाषा परिवर्तन का मुख्य कारक मानते हैं।

आन्तरिक और बाह्य आयामों के व्याख्याताओं का दृष्टिकोण परस्पर विरोधी रहा है। एंडर्सन (1985) आन्तरिक और बाह्य आयामों के भेद को नहीं मानते। उनका मानना है कि भाषा पूर्णतया एक सामाजिक संघटना है और इसे सामाजिक प्रकार्यों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। जब आन्तरिक कारक किसी भाषा परिवर्तन की पूर्ण व्याख्या न कर सकें तभी बाह्य कारकों की व्याख्या की सहायता ली जानी चाहिए।

बाह्य आयाम के व्याख्याता (मेइये, लेबाव, वाइनराइख आदि) आन्तरिक कारकों के आधार पर भाषा परिवर्तन की व्याख्या को नकारते हैं – अधिकांश भाषा परिवर्तन की प्रक्रिया को पूरी तरह समझने के लिए सामाजिक, ऐतिहासिक – बाह्य कारकों की परीक्षा करने की बात करते हैं। वे मानते हैं कि भाषिक सिद्धान्त में नवोन्मेष (Innovation) और परिवर्तन (Change) में अन्तर करना होगा। नवोन्मेष वक्ता आधारित होते हैं और परिवर्तन के लिए प्रेरक तत्त्व का काम करते हैं। भाषा परिवर्तन नवोन्मेष का परिणाम होते हैं, और भाषिक संरचना में दिखाई देने लगते हैं।

1.6.7. पाठ-सार

इस पाठ में हमने पढ़ा कि समय के अन्तराल में भाषा के विभिन्न स्तरों – ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ आदि में परिवर्तन होता है। जीवन्त भाषा हमेशा परिवर्तनशाल होती है। भाषा में परिवर्तन का अध्ययन समकालिक और द्विकालिक, दोनों स्तरों पर किया जाता है। भाषा परिवर्तन की दिशाओं के अन्तर्गत हमने ध्वनि परिवर्तन, लिपि-वर्तनी परिवर्तन, कोशीय परिवर्तन तथा अर्थ परिवर्तन की सोदाहरण चर्चा की। भाषा परिवर्तन स्वन, स्वनिम, रूपिम, लिपि-वर्तनी, अर्थ आदि भाषा संरचना के विभिन्न स्तरों पर दिखाई देते हैं।

स्वनिक या ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत कभी भाषा में किन्हीं स्वरों का लोप हो जाता है तो किन्हीं का आगम। कभी असमान व्यंजन-गुच्छों का समान व्यंजन-गुच्छों में परिवर्तन होता है तो कभी समान व्यंजन-गुच्छों का सरलीकरण। ध्वनि परिवर्तन दो प्रकार के माने जाते हैं – अनियमित तथा नियमित। ध्वनि परिवर्तन पहले स्वनिक परिवर्तन के रूप में प्रारम्भ होता है, बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेता है। स्वनिक परिवर्तन को अनियमित तथा स्वनिमिक परिवर्तन को नियमित ध्वनि परिवर्तन कहा जाता है। जब ऐसे ध्वनि परिवर्तन के नियम पूरे भाषा समुदाय द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं तब उन्हें नियमित ध्वनि परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है।

भौगोलिक आधार पर भी भाषा में परिवर्तन होते हैं, जिनका सम्बन्ध बोली विज्ञान से है। भाषा में सामाजिक वर्गों के अनुसार भी परिवर्तन होता है। विभिन्न सामाजिक वर्गों में धर्म, सामाजिक स्तर, लिंग, शैक्षिक स्तर आदि के कारण भी भाषा में भेद पैदा होता है। भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के मानकीकरण तथा आधुनिकीकरण के कारण भी परिवर्तन होते हैं। इनको बारे में हमने लिपि-वर्तनी परिवर्तन तथा कोशीय परिवर्तन के अन्तर्गत विस्तार से पढ़ा। भाषा परिवर्तन के कारणों के बारे में भी हमने देखा कि सरलीकरण, सादृश्यता, भाषा सम्पर्क, आधुनिकीकरण एवं मानकीकरण का भी भाषा परिवर्तन में एक महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। भारत में हिन्दी के राजभाषा धोषित होने के बाद हिन्दी के विकास की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई, वह भाषा के आधुनिकीकरण और मानकीकरण की प्रक्रियाओं से जुड़ती है और उसके फलस्वरूप हमें हिन्दी के शब्द-भण्डार में अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिलता है। अन्त में हमने भाषा-परिवर्तन के दो आयामों – आन्तरिक और बाह्य के व्याख्याताओं के परस्पर विरोधी विचारों की भी चर्चा की।

1.6.8. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए –

01. समाज भाषा को प्रभावित करता है, भाषा समाज को प्रभावित नहीं करती। (X)
02. भाषा परिवर्तन का मुख्य कारण सरलीकरण है। (√)
03. आधुनिकीकरण और मानकीकरण के कारण भाषा में कई स्तरों पर परिवर्तन होते हैं। (√)
04. समाज भाषाविज्ञानी सामाजिक परिवर्त और सन्दर्भ को भाषा परिवर्तन का मुख्य कारक मानते हैं। (√)
05. भाषिक परिवर्तन में समाज भाषावैज्ञानिक कारक कोई भूमिका नहीं निभाते। (X)
06. आधुनिकीकरण और मानकीकरण की प्रक्रिया भाषा नियोजन का विषय है। (√)
07. भाषा के आधुनिकीकरण और मानकीकरण की प्रक्रिया भाषा नियोजन का विषय है। (√)
08. भाषिक परिवर्तन को केवल भाषिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। (X)
09. भाषा नियोजन के स्तर पर भाषा में नियोजित परिवर्तन किये जाते हैं। (√)
10. भाषा परिवर्तन की शुरुआत स्वनिक परिवर्तन से होती है। (√)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(i) तकनीकी शब्दों के निर्माण का अध्ययन किसके अन्तर्गत किया जाता है ?
(क) भाषा नियोजन
(ख) भाषा सम्पर्क
(ग) अर्थ परिवर्तन

सही उत्तर (क)

(ii) समवर्गीय नासिक्य व्यंजन के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किसका उदाहरण है ?
(क) कोशीय परिवर्तन
(ख) वर्तनी परिवर्तन
(ग) ध्वनि परिवर्तन

सही उत्तर (ख)

(iii) रेडियो, स्टेशन, हकीकत, हश्र आदि शब्द किसके उदाहरण हैं ?
(क) कोशीय परवर्तन
(ख) सामाजिक परिवर्तन
(ग) भाषा सम्पर्क

सही उत्तर (ग)

(iv) गाय शब्द का आधुनिक अर्थ मूल अर्थ के सम्बन्ध में किसका उदाहरण है ?
(क) अर्थोत्कर्ष
(ख) अर्थ विस्तार
(ग) अर्थ संकोच

सही उत्तर (ग)

(v) आधुनिकीकरण भाषा में किस प्रकार का परिवर्तन लाता है ?
(क) ध्वनि परिवर्तन
(ख) लिपि-वर्तनी परिवर्तन
(ग) कोशीय परिवर्तन

सही उत्तर (ग)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) भाषा-परिवर्तन का कारण
(ii) अर्थ-परिवर्तन
(iii) भाषा-परिवर्तन के आयाम
(iv) कोशीय परिवर्तन

(v) आधुनिकीकरण और मानकीकरण

1.6.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. Bright, William (1997). “Social Factors in Language Change.” In Coulmas, Florian (ed) The Handbook of Sociolinguistics. Oxford : Blackwell.
02. Coates, Jennifer (1993). Women, men, and language : a sociolinguistic account of gender differences in language. Studies in language and linguistics (2 ed.). Longman.
03. Labov, William (1963). “The social motivation of a sound change” Word 19 : 273–309.
04. Labov, William (1966), The Social Stratification of English in New York City, Diss. Washington.
05. Labov, William (1994, 2001), Principles of Linguistic Change (vol.I Internal Factors, 1994; vol.II Social Factors, 2001), Blackwell
06. उदय नारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
07. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012 (तेरहवाँ संस्करण)
08. धीरेन्द्र वर्मा. हिंदी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1973 (नवम संस्करण)
09. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, नई दिल्ली
10. देवेन्द्रनाथ शर्मा (1966) भाषाविज्ञान की भूमिका राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : ध्वनि विज्ञान

इकाई – 1 : वाग्यंत्र, वाग्यंत्र का वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

2.1.0 उद्देश्य
2.1.1 प्रस्तावना
2.1.2 वाग्यंत्र : अर्थ एवं परिभाषा
2.1.3 वाग्यंत्रों का परिचय
2.1.4 वाग्यंत्रों का वर्गीकरण
2.1.5 वाग्यंत्र तथा उच्चारण स्थान
2.1.6 पाठ-सार
2.1.7 बोधात्मक प्रश्न
2.1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.1.0. उद्देश्य

भाषा को यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था कहा गया है। इसके द्वारा हम विचार करते हैं और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा के दो पक्ष हैं – वाचिक और लिखित। वाचिक का अर्थ है, 'बोला गया' और लिखित का अर्थ है, 'लिखा गया'। वाचिक रूप ही मानव भाषा का मूल है। बोलने के लिए शरीर के जिन अंगों का प्रयोग होता है उन्हें 'वाग्यंत्र' कहते हैं। प्रस्तुत पाठ में प्रमुख वाग्यंत्रों का परिचय दिया जा रहा है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. वाग्यंत्रों को जान सकेंगे।
ii. वाग्यंत्रों को वर्गीकृत रूप से समझ सकेंगे।
iii. मानव भाषा व्यवहार में वाग्यंत्रों की भूमिका से परिचित हो सकेंगे।
iv. उच्चारण स्थानों और उच्चारण प्रयत्नों का परिचय पा सकेंगे।

2.1.1. प्रस्तावना

मानव शिशु जन्म के बाद सर्वप्रथम सुनना और बोलना सीखता है। इसके बाद औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षण में पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। अतः सुनना और बोलना मानव भाषा के दो मूल कौशल हैं। दोनों का सम्बन्ध 'ध्वनि' से है। जब एक व्यक्ति कोई बात कहता है तो ध्वनि तरंगों के माध्यम से वह बात श्रोता तक पहुँचती है। इन सभी का अध्ययन 'ध्वनिविज्ञान' या 'स्वनविज्ञान' (Phonetics) में किया जाता है। बोलने से लेकर सुनने तक तीन क्रियाएँ होती हैं – वाचन (बोलना), संवहन और श्रवण। बोलने के लिए वाक्

अंगों का और सुनने के लिए श्रवण अंगों का प्रयोग किया जाता है। इनके अध्ययन की ज्ञानशाखा को क्रमशः औच्चारिक स्वनविज्ञान या औच्चारिकी (Articulatory Phonetics) और श्रवणात्मक स्वनविज्ञान या श्रौतिकी (Auditory Phonetics) कहा जाता है।

वाग्यंत्रों का सम्बन्ध भाषा के 'वाचन' (बोलना) पक्ष से है। इनका अध्ययन-विश्लेषण औच्चारिक स्वनविज्ञान या औच्चारिकी (Articulatory Phonetics) में किया जाता है। औच्चारिक स्वनविज्ञान में वाग्यंत्र, उच्चारण स्थान, उच्चारण प्रयत्न आदि उच्चारण के सभी पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है।

2.1.2. वाग्यंत्र : अर्थ एवं परिभाषा

वाग्यंत्र शरीर के वे अंग हैं जिनके माध्यम से मनुष्यों द्वारा भाषिक ध्वनियों (स्वनों) का उच्चारण किया जाता है। मानव शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रकार्यों को सम्पन्न करने के लिए अलग-अलग प्रकार के तंत्र मिलकर एक साथ कार्य करते हैं। शरीरविज्ञान में मुख्य रूप से इन्हें निम्नलिखित तंत्रों में बाँटा गया है –

(क) अस्थि-तंत्र : यह मानव शरीर में हड्डियों की व्यवस्था है।
(ख) पेशी-तंत्र : यह मांसपेशियों की व्यवस्था है।
(ग) पाचन-तंत्र : यह मनुष्य द्वारा भोजन किए जाने के पश्चात् उसके पाचन और भोजन में से आवश्यक पोषक तत्त्वों को ग्रहण करने से सम्बन्धित तंत्र है।
(घ) तंत्रिका-तंत्र : इसका सम्बन्ध संवेदन से है।
(ङ) श्वसन-तंत्र : इसका कार्य श्वास को अंदर और बाहर करते हुए मानव शरीर में आक्सीजन की मात्रा बनाए रखना है।
(च) जनन-तंत्र : इसका कार्य संतानोत्पत्ति है।

भाषिक ध्वनियों के उच्चारण में सबसे आधारभूत भूमिका 'श्वास' की होती है। मानव द्वारा श्वास के रूप में ली गई वायु को नासिका (नाक) और मुख (मुँह) से लेकर फेफड़े के प्रवेश-द्वार के बीच बाधित या संकुचित किया जाता है और भिन्न-भिन्न ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है। इनके बीच आने वाले सभी अंग किसी न किसी रूप में उच्चारण में सहयोग करते हैं। जिन अंगों का भाषिक ध्वनियों के उच्चारण में प्रत्यक्ष सहयोग होता है, वे सभी अंग वाग्यंत्र के अन्तर्गत आते हैं। अतः इसका मूल सम्बन्ध श्वसन-तंत्र और पाचन तंत्र के आरम्भिक अंगों, जैसे – नाक, मुँह, जिह्वा, गला आदि से है।

अंग्रेजी में इन्हें 'Speech Organs' या 'Articulators' कहा जाता है। इन्हें कोलिंस अंग्रेजी शब्दकोश (Collins English Dictionary) में "an organ involved in speech production, such as the tongue" कहकर परिभाषित किया गया है। इसी प्रकार मेरियम-वेबस्टर (Merriam-Webster) शब्दकोश में "any of the organs (such as the larynx, tongue, or lips) playing a part in the production of articulate speech" के रूप में परिभाषित किया गया है।

2.1.3. वाग्यंत्रों का परिचय

मानव शरीर में 'होठ / ओष्ठ' से लेकर 'स्वरयंत्र' तक के बीच में स्थित सभी शरीर के अंग वाग्यंत्रों के अन्तर्गत आते हैं। भाषाविज्ञान की विभिन्न पुस्तकों में इनकी संख्या 13 से 18 तक बताई गई है। यदि सभी भाषाओं के सन्दर्भ में उच्चारण अंगों को देखें तो 18 से 20 अंगों की चर्चा की जा सकती है। यहाँ पर उनमें से महत्त्वपूर्ण 17 अंगों का परिचय दिया जा रहा है, जिनका उच्चारण में प्रत्यक्ष योगदान होता है। वाग्यंत्रों को 'होठ / ओष्ठ' से 'स्वरयंत्र' या 'स्वरयंत्र' से 'होठ / ओष्ठ' दोनों दिशाओं में चर्चा की जा सकती है। जब हम 'होठ / ओष्ठ' से लेकर 'स्वरयंत्र' की ओर चलते हैं तो नासिक्य ध्वनियों के उच्चारण से सम्बन्धित होने के कारण 'नासिका विवर' सबसे पहले आता है। इन अंगों का परिचय इस प्रकार है –

01. नासिका विवर (Nasal cavity) : नाक और मुँह के ऊपरे हिस्से के बीच के खाली स्थान को नासिका विवर कहते हैं। इसका उपयोग नासिक्य ध्वनियों के उच्चारण में किया जाता है। ध्वनि के स्वरूप के अनुसार वायु को अंशतः या पूर्णतः नासिका विवर से गुजरना होता है।

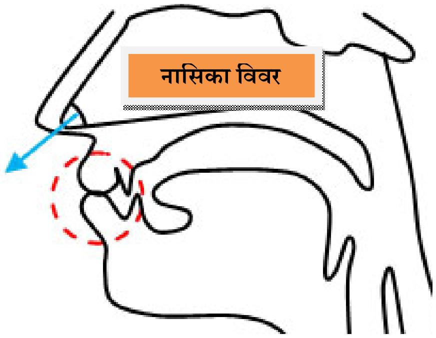

02. मुख विवर (Oral cavity) : मुँह खोलने पर दाँतों से लेकर अलिजिह्वा (या गले की नली) तक के बीच जो स्थान दिखाई पड़ता है, वह मुख विवर है। इसमें दन्त, जिह्वा और तालु जैसे कई अंग होते हैं, जिनका प्रयोग विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण में किया जाता है।

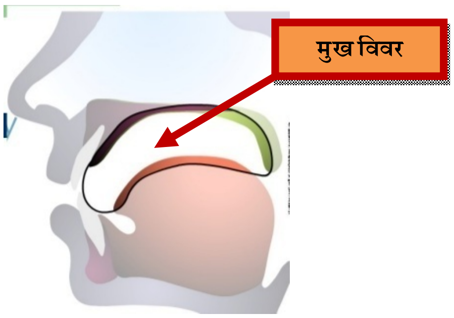

03. कठोर तालु (Hard palate (Palatum)) : कठोर तालु दन्त (दाँत) के पीछे या ऊपर और कोमल तालु से पहले होता है। यह मुँह के ऊपरी हिस्से का अंग है।

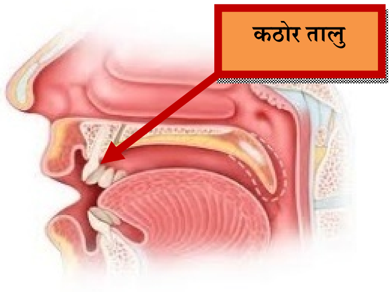

04. कोमल तालु (Soft palate (Velum)) : कोमल तालु मुख विवर के ऊपरी हिस्से के सबसे पीछे का अंग है। यह अलिजिह्वा के पहले होता है।

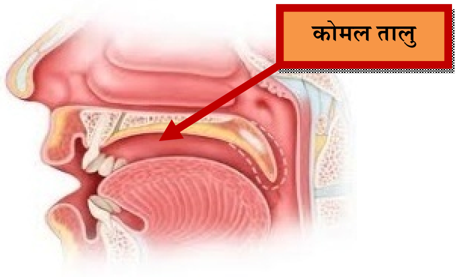

05. दन्त (Teeth (Dentes)) : मानव मुख में भोजन चबाने का कार्य करने वाले अंग दन्त हैं। ये होंठों के तुरन्त बाद ऊपर और नीचे दोनों ओर होते हैं। नीचे के दाँतों के घेरे में जिह्वा होती है। केवल ऊपर के दाँतों का उपयोग ध्वनियों के उच्चारण में भी होता है। जब जिह्वा दाँतों से टकराकर वायु प्रवाह को बाधित करती है तो दन्त ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं।

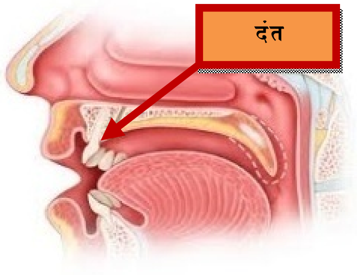

06. अलिजिह्वा / काकल (Uvula) : मुख विवर में ऊपर की ओर कोमल तालु के पीछे जो मांस-पिंड लटका होता है उसे अलिजिह्वा कहते हैं। यह ऊपर और नीचे की ओर आता-जाता रहता है। ऊपर जाने पर यह नासिका मार्ग को बंद कर देता और नीचे आकर खोल देता है। इसके नीचे आने पर ही नाक के माध्यम से ली गई हवा नीचे फेफड़े तक जाती है।

काकल की तीन स्थितियाँ होती हैं –

(क) सामान्य अवस्था : इस अवस्था में यह ढीला होता है तथा मुख विवर में लटका रहता है। श्वास लेते समय यह इसी अवस्था में होता है;

(ख) नासिका विवर अवरुद्धावस्था : इस अवस्था में काकल तनकर नासिका विवर को अवरुद्ध कर देता है और वायु प्रवाह केवल मुख से होता है। सामान्य स्वर-व्यंजन के उच्चारण में यह अवस्था रहती है।

(ग) नासिका विवर अर्द्ध-अवरुद्धावस्था : इस अवस्था में काकल बीच में रहता है तथा वायु का प्रवाह नासिका विवर और मुख दोनों से होता है। नासिक्य स्वर-व्यंजन के उच्चारण में यह अवस्था रहती है।

07. ओष्ठ (Lips (Labia)) : ओष्ठ उच्चारण अवयवों में सबसे बाह्य अंग हैं। अंदर से आती हुई वायु को ओष्ठों के माध्यम से उचित आकार दिया जाता है।

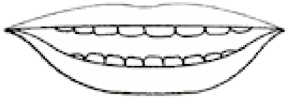

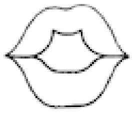

08. ग्रसनिका (Pharynx) : कंठछिद्र के ऊपर और मुख के नीचे की नली को ग्रसनिका कहते हैं। मुँह को पूरी चौड़ाई में खोलकर ग्रसनिका की पिछली दीवार को देखा जा सकता है।

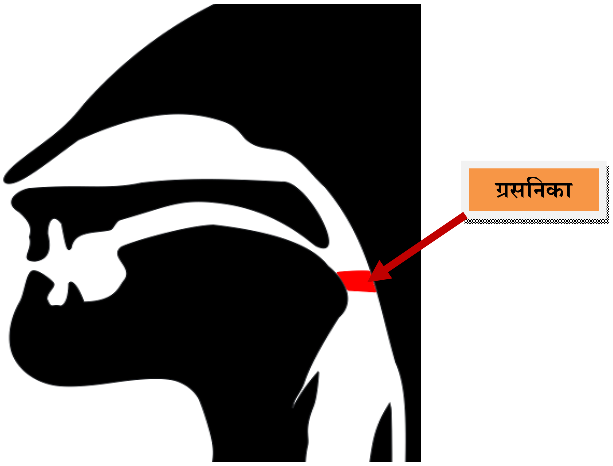

09. जिह्वानोक (Tip of tongue) : यह जिह्वा का सबसे बाहरी किनारा है। जिह्वा को बाहर निकालकर थोड़ा-सा मोड़ने पर जो नुकीला भाग प्राप्त होता है उसे जिह्वानोक कहते हैं।

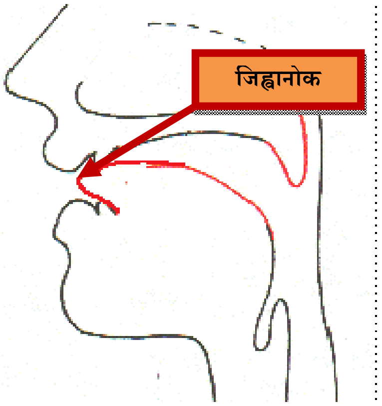

10. कंठच्छद / अभिकाकल (Epiglottis) : मुख विवर के नीचे गले में भोजन नली के विवर में श्वासनली की ओर मांस का एक छोटा-सा पिंड झुका रहता है। इसकी बनावट छोटी से जीभ जैसी दिखाई पड़ती है। इसे ही कंठच्छद या अभिकाकल कहते हैं। कुछ विद्वानों ने इसे स्वरयंत्रमुख आवरण भी कहाहै।

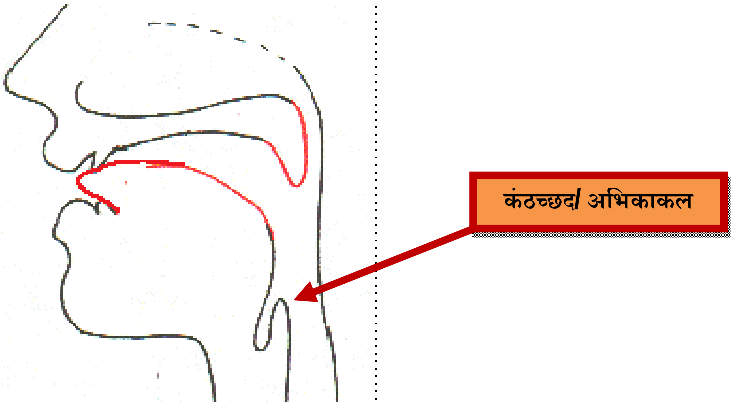

11. जिह्वामध्य (Blade of tongue) : लम्बाई की दृष्टि से जिह्वा के बीच के स्थान को जिह्वामध्य कहते हैं। यह जिह्वाग्र और जिह्वामध्य के बीच का भाग है।

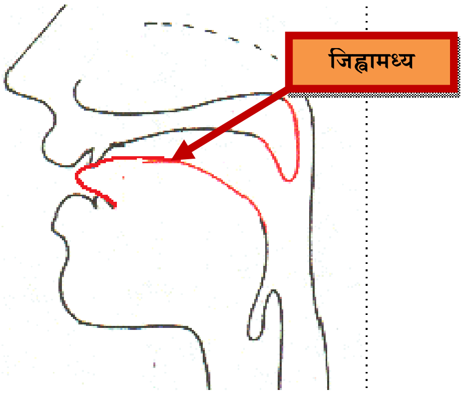

12. स्वरतंत्री (Vocal cords) : स्वरयंत्र में स्थित दो झिल्लियों को स्वरतंत्री कहते हैं। ये दोनों बिल्कुल आमने-सामने होती हैं और बहुत ही लचकदार होती हैं। इनकी कई अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें कुछ विद्वानों द्वारा मुख्य रूप से तीन अवस्थाओं के रूप में दर्शाया गया है –

(क) सामान्य अवस्था : जब हम श्वास लेते हैं और स्वरतंत्रियों का वायु प्रवाह से सम्पर्क नहीं होता।

(ख) परस्पर निकट अवस्था : जब वे एक दूसरे सट जाती हैं और श्वासावायु से कम्पन करते हुए ध्वनियों (घोष) का उच्चारण होता है।

(ग) मध्यावस्था : यह दोनों के बीच की स्थिति है, जब वे न तो आपस सटती हैं और न ही बहुत दूर होती हैं।

भोलानाथ तिवारी (2009) ने 'भाषाविज्ञान' में इसकी छह स्थितियाँ बताई हैं –

i. जब बहुत अधिक चौड़ी हों। श्वास लेने (Inhalation) हुए यह स्थिति पाई जाती है।
ii. पहली स्थिति से कुछ कम चौड़ी स्थिति इसके अन्तर्गत आती है। श्वास छोड़ने (Exhalation) के समय यह स्थिति पाई जाती है।
iii. दूसरी स्थिति से भी कुछ कम चौड़ाई जहाँ से वायु का स्वरतंत्रियों में घर्षण आरम्भ हो जाता है।
iv. इस स्थिति में स्वरतंत्रियाँ लगभग तीन-चौथाई भाग तक सिकुड़ जाती हैं। केवल एक चौथाई भाग से हवा निकलती है।
v. इस स्थिति में स्वरतंत्रियाँ पूर्णतः बंद होकर झटके से खुलती हैं, जिससे कुछ विशेष प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण होता है।
vi. इसमें स्वरतंत्रियों का लगभग तीन चौथाई भाग घोष की स्थिति में और एक चौथाई अधिक खुला रहता है, जिससे घोष और महाप्राण ध्वनियों का उच्चारण होता है।
   यह स्थिति भी घोष वाली ही है, किन्तु स्वरतंत्रियाँ कम कम्पन की स्थिति वाली होती है। कम्पन के साथ कुछ रगड़ भी होती है।

(1) जिह्वाग्र (Front of tongue) : जिह्वानोक और जिह्वामध्य के बीच की जगह जिह्वाग्र कहलाती है।

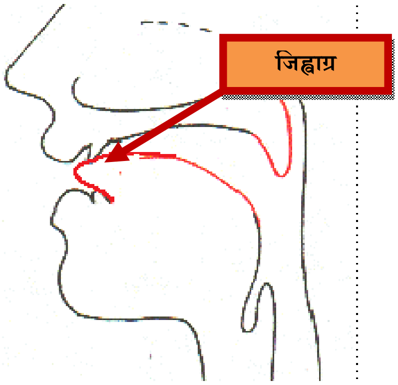

(2) स्वरयंत्र-मुख / काकल (Glottis) : गले के निचले भाग में श्वास नली मुख विवर और नासिका विवर की मुख्य नली से जुड़ती है। इस नली के ऊपरी हिस्से पर एक छोटा-सा अंग होता है, जिसे स्वरयंत्र कहते हैं। मुख्य रूप से इसके तीन भाग – मांसल पिंड, स्वरतंत्री और मुखभाग किये जा सकते हैं। इसके मुख-भाग को ही स्वरयंत्र-मुख या काकल कहते हैं। श्वास प्रक्रिया के समय या बोलते समय इसी भाग से हवा फेफड़ों के अंदर जाती है और फेफड़ों से बाहर आती है।

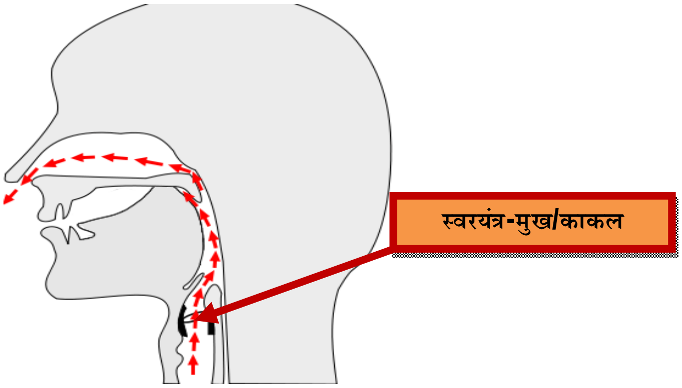

(3) जिह्वापश्च (Back of tongue) : जिह्वा के सबसे पीछे का हिस्सा जिह्वापश्च कहलाता है। यह मुख विवर में पीछे की ओर होता है।

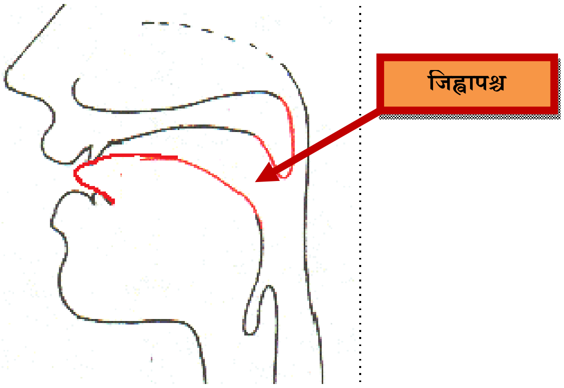

(4) श्वासनली (Wind pipe (Trachea) : श्वासनली वह अंग है जो फेफड़ों को स्वरयंत्र से जोड़ती है। दूसरे शब्दों में स्वरयंत्र और फेफड़ों के बीच की नली श्वासनली है। इसके ऊपर ही स्वरयंत्र होता है। जब फेफड़ों द्वारा अंदर ली हुई हवा बाहर की ओर आती है तो श्वासनली के माध्यम से ही वह स्वरयंत्र तक पहुँचती है और ध्वनियों का उच्चारण सम्भव हो पाता है।

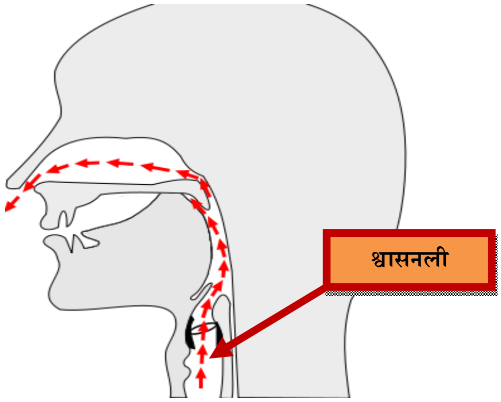

(5) स्वरयंत्र (Larynx) : स्वरयंत्र ध्वनियों के उच्चारण का केन्द्रीय घटक अंग है। यह श्वासनली के ऊपर स्थित होता है। इसके अंदर हजारों की संख्या में स्वर-तंत्रियाँ होती हैं। जब वायु स्वरयंत्र से होकर बाहर आने लगती है तो स्वरयंत्र में ही घर्षण करके उसे ध्वनि का रूप दिया जाता है। स्वरयंत्र में दो पतली झिल्लियाँ होती हैं। ये झिल्लियाँ बहुत लचकदार होती हैं।

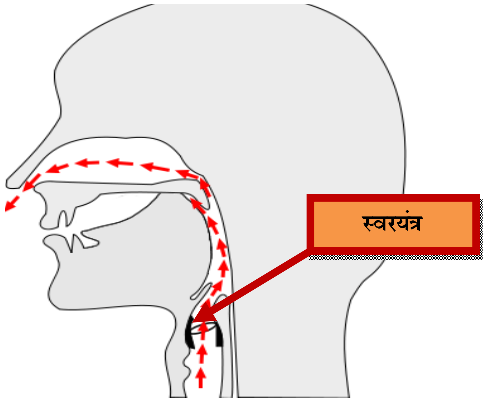

अंगों का ऊपर वर्णित क्रम कोई आवश्यक क्रम नहीं है। पाठक अपने अध्ययन की सुविधानुसार अंगों के क्रम को आगे-पीछे कर सकते हैं। इन अंगों की शरीर में स्थिति को अग्रांकित चित्र में देखा जा सकता है।

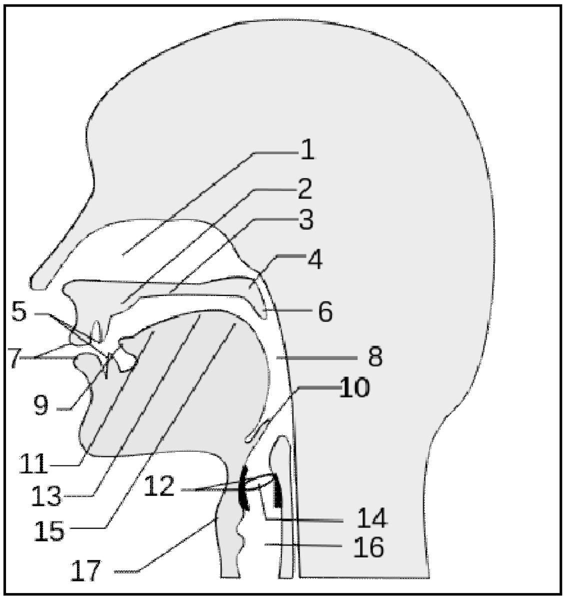

(https://commons.wikimedia.org/wiki/File:VocalTract_withNumbers.svg से साभार)

2.1.4. वाग्यंत्रों का वर्गीकरण

वाग्यंत्रों को अलग-अलग दृष्टियों से भिन्न-भिन्न वर्गों में रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए इनके गतिशील और स्थिर होने की स्थितियों के आधार पर दो वर्ग किये जाते हैं –

(क) **चल वाग्यंत्र**

इसके अन्तर्गत वे वाग्यंत्र आते हैं, जिन्हें उच्चारण के समय हिलाया-डुलाया जाता है। अर्थात् इन्हें ऊपर-नीचे करके ध्वनियों का उच्चारण होता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित घटक आते हैं – नीचे के ओष्ठ (और जबड़े), जिह्वा, और स्वरतंत्री, अलिजिह्वा / काकल। इनमें से ओष्ठ और जिह्वा को हम अपनी इच्छा से सचेतन रूप से हिला सकते हैं किन्तु स्वरतंत्रियों और काकल की गति स्वाभाविक होती है। कुछ विद्वानों ने काकल को अचल की श्रेणी में रखा है, जबकि यह गतिशील होता है।

(ख) **अचल वाग्यंत्र**

इस वर्ग में वे वाग्यंत्र आते हैं, जिन्हें उच्चारण के समय हिलाया-डुलाया नहीं जा सकता अर्थात् ये सदैव स्थित रहते हैं। चल वाग्यंत्रों के अलावा अन्य सभी अंग अचल वाग्यंत्र होते हैं।

इसी प्रकार दिखाई पड़ने और न दिखाई पड़ने के आधार पर भी हम वाग्यंत्रों को वर्गीकृत कर सकते हैं। ओष्ठ से लेकर काकल तक पूरे मुखविवर के अंग दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार नासिका विवर को भी देखा जा सकता है किन्तु काकल के नीचे के अंग दिखाई नहीं पड़ते।

2.1.5. वाग्यंत्र तथा उच्चारण स्थान

भाषाई ध्वनियों के उच्चारण में वाग्यंत्रों की भूमिका आधारभूत होती है। श्वास अंदर लेकर वापस छोड़ने पर विभिन्न वाग्यंत्रों के स्थान पर वायु को बाधित या प्रभावित किया जाता है और भाषिक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। वायु-प्रवाह को बाधित करने का काम अलग-अलग स्थानों पर किया जाता है। अतः जिन ध्वनियों के उच्चारण के लिए जिस स्थान पर (या जिस वाग्यंत्र के पास) वायु को बाधित किया जाता है, उसे ही उन ध्वनियों का उच्चारण स्थान मान लिया जाता है। इस प्रकार से अलग-अलग उच्चारण स्थानों की चर्चा भाषावैज्ञानिकों द्वारा की जाती है। इन्हें आगे समुचित इकाई में विस्तार से बताया जाएगा। यहाँ उदाहरणस्वरूप हिन्दी की ध्वनियों के कुछ उच्चारण स्थानों का उल्लेख किया जा रहा है –

उच्चारण स्थान	**उच्चरित ध्वनि**
स्वरयंत्रमुख	ह
उपालिजिह्वा	*हिन्दी में नहीं हैं।
अलिजिह्वा	*हिन्दी में नहीं हैं।
कोमल तालु / कंठ	क, ख, ग, घ, ङ
कठोर तालु	च, छ, ज झ ञ
मूर्धा	ट, ठ, ड, ढ, ण
दन्त	त, थ, द, ध, न
ओष्ठ	प, फ, ब, भ, म

इसी प्रकार उच्चारण स्थान और उच्चारण प्रयत्न के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है।

2.1.6. पाठ-सार

भाषा को जिन ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था कहा गया है, उन्हें ध्वनियों के रूप में मूर्त आकार देने के कार्य वाग्यंत्रों द्वारा ही किया जाता है। वाग्यंत्र हमारे फेफड़े के ऊपर स्थित श्वासनली से आरम्भ होकर ओष्ठों तक हैं। इन्हें ओष्ठ से स्वरयंत्र या स्वरयंत्र से ओष्ठ दोनों दिशाओं में देखा जा सकता है। वाग्यंत्र हमारे शरीर के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनसे शरीर के दो महत्त्वपूर्ण अंग-तंत्र – पाचन-तंत्र और श्वसन-तंत्र जुड़े हुए हैं। इन्हें समझने के लिए चित्रात्मक निरूपण बहुत आवश्यक है। पारिभाषिक रूप से समझने के अलावा चित्र के माध्यम से देख लेने पर हम इन्हें सरलतापूर्वक समझ जाते हैं। भाषाई ध्वनियों का उच्चारण वाग्यंत्रों के कारण ही सम्भव हो सका है। ये चल और अचल घटकों या अवयवों के रूप में वायुप्रवाह को बाधित और नियोजित करते हैं और हम स्वाभाविक रूप से ध्वनियों को उच्चरित कर लेते हैं। इसी कारण वायु प्रवाह को बाधित करने में केन्द्रीय भूमिका निभाने वाले अंगों को उच्चारण स्थान के रूप में जाना जाता है। उच्चारण-प्रक्रिया से जुड़े होने के कारण ये भाषाविज्ञान की स्वनविज्ञान शाखा की 'औच्चारिकी' (उच्चारणात्मक स्वनविज्ञान) उपशाखा के अध्येय विषय हैं।

2.1.7. बोधात्मक प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. वाग्यंत्रों का अध्ययन भाषाविज्ञान की किस शाखा में किया जाता है ?

(क) स्वनविज्ञान

(ख) स्वनिमविज्ञान

(ग) रूपविज्ञान

(घ) ये सभी

सही उत्तर : (क) स्वनविज्ञान

2. वाग्यंत्रों का सम्बन्ध किस प्रक्रिया से है ?

(क) उच्चारण

(ख) संवहन

(ग) श्रवण

(घ) ये सभी

सही उत्तर (क) उच्चारण

3. निम्नलिखित में से कौन-सा जिह्वा का अंग नहीं है ?

(क) जिह्वानोक

(ख) जिह्वाग्र

(ग) जिह्वापश्च

(घ) अलिजिह्वा

सही उत्तर : (घ) अलिजिह्वा

4. निम्नलिखित में से कौन-सा मुख विवर और नासिका विवर दोनों से जुड़ा रहता है ?

(क) जिह्वा

(ख) स्वरयंत्र

(ग) अलिजिह्वा / काकल

(घ) अभिकाकल

सही उत्तर : (ग) अलिजिह्वा / काकल

5. निम्नलिखित में से कौन-सा चल वाग्यंत्र है ?

(क) दन्त

(ख) ओष्ठ

(ग) अभिकाकल

(घ) तालु

सही उत्तर : (ख) ओष्ठ

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नासिका विवर और मुख विवर की स्थिति और ध्वनियों के उच्चारण में इनकी भूमिका बताइए।
2. अलिजिह्वा / काकल क्या है ? इसकी तीनों स्थितियों को व्याख्यायित कीजिए।
3. स्वरतंत्रियों को परिभाषित करते हुए इसकी विभिन्न स्थितियों / अवस्थाओं की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
4. जिह्वा के विभिन्न भागों की स्थिति बताइए।
5. उच्चारण स्थान के सापेक्ष वाग्यंत्रों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. औच्चारिकी के अध्येय विषय के रूप में वाग्यंत्रों का पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।
2. मानव शरीर के विभिन्न तंत्रों का परिचय देते हुए वाग्यंत्रोंकी स्थिति पर प्रकाश डालिए।
3. चल वाग्यंत्रों पर प्रकाश डालिए।
4. अचल वाग्यंत्रों की व्याख्या कीजिए।
5. वाग्यंत्रों का एक चित्र बनाकर सभी वाग्यंत्रों को उचित स्थान पर प्रदर्शित कीजिए।

2.1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. तिवारी, भोलानाथ (2009). भाषाविज्ञान. इलाहाबाद. किताब महल।
2. द्विवेदी, कपिलदेव (2002). भाषाविज्ञान और भाषाशास्त्र. चौक. वाराणसी. विश्वविद्यालय प्रकाशन।
3. पाण्डेय, कैलाश नाथ (2006). भाषाविज्ञान का रसायन. गाजीपुर. गाजीपुर साहित्य संसद।
4. रस्तोगी, डॉ० कविता (2000). समसामयिक भाषविज्ञान. लखनऊ. सुलभ प्रकाशन।
5. शर्मा, देवेन्द्रनाथ एवं शर्मा, दिप्ति (2001). भाषाविज्ञान की भूमिका. नई दिल्ली. राधाकृष्ण प्रकाशन।
6. शर्मा, राजमणि (2007). आधुनिक भाषाविज्ञान. नई दिल्ली. वाणी प्रकाशन।
7. Catford, J.C. (1988). A Practical Introduction to Phonetics. Oxford University Press.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. https://www.merriam-webster.com/dictionary/speech%20organ
2. https://www.collinsdictionary.com/dictionary/english/speech-organ

❖❖❖

खण्ड – 2 : ध्वनि विज्ञान

इकाई – 2 : स्वर-व्यंजन, वैदिक संस्कृत ध्वनियाँ, हिन्दी ध्वनियाँ, हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण, स्वरों का वर्गीकरण, व्यंजनों का वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

2.2.1 उद्देश्य
2.2.2 प्रस्तावना
2.2.3 वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत ध्वनियाँ
2.2.4 हिन्दी ध्वनियाँ – स्वर-व्यंजन
2.2.5 खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियाँ
2.2.5.1 खंडीय ध्वनियाँ
2.2.5.2 खंडेतर ध्वनियाँ
2.2.6 हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण
2.2.6.1 हिन्दी स्वरों का वर्गीकरण
2.2.5.2 हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण
2.2.7 पाठ-सार
2.2.8 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
2.2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.2.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. वैदिक संस्कृत ध्वनियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
ii. हिन्दी ध्वनियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
iii. हिन्दी ध्वनियों का खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियों में विभाजन का आधार समझसकेंगे।
iv. स्वर तथा व्यंजन की परिभाषा को जान पाएँगे और उनका अन्तर कर सकेंगे।
v. हिन्दी के स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
vi. हिन्दी स्वरों के वर्गीकरण का आधार समझ सकेंगे।
vii. हिन्दी व्यजनों के वर्गीकरण के आधार को जान सकेंगे।

2.2.2. प्रस्तावना

इस पाठ का मुख्य उद्देश्य है वैदिक संस्कृत की ध्वनियों के सन्दर्भ में हिन्दी ध्वनियों का परिचय कराना। इसी के अन्तर्गत पहले वैदिक संस्कृत की ध्वनियों का उल्लेख किया जा रहा है, उसके बाद संस्कृत ध्वनियों का

परिचय दिया गया है । इसके बाद हिन्दी की स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उन्हें खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियों में विभाजित किया गया है । अन्त में हिन्दी ध्वनियों का स्वरों तथा व्यंजनों के रूप में विभाजन का आधार स्पष्ट करते हुए स्वरों तथा व्यंजनों के वर्गीकरण के आधारों को जाना-समझा जाएगा ।

स्वर और व्यंजन की परिभाषा का आधार है मुख विवर से निकली वायु का अवरुद्ध होना या न होना । स्वरों के उच्चारण में फेफड़ों से निकली हुई वायु मुख विवर से अबाध गति से बाहर निकलती है जबकि व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में यही वायु कंठ से लेकर होंठों तक विभिन्न उच्चारण स्थानों पर अवरुद्ध होकर बाहर निकलती है । इसके अतिरिक्त हम कई प्रकार के उच्चारण-प्रयत्नों के आधार पर स्पर्श, संघर्षी, स्पर्श-संघर्षी, उत्क्षिप्त, लुंठित, प्रकंपित, घोष-अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण तथा नासिक्य व्यंजनों के बारे में विस्तार से जानेंगे ।

खंडीय ध्वनियों में स्वर और व्यंजन ध्वनियों को समझने के बाद हम खंडेतर ध्वनियों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

2.2.3. वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत ध्वनियाँ

वैदिक संस्कृत में निम्नलिखित 52 ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं –

स्वर

मूल स्वर	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ओ		11
संयुक्त स्वर	ऐ (अइ), औ (अउ)		02

व्यंजन

स्पर्श	क् ख् ग् घ् ङ्	(कण्ठ्य)	
	च् छ् ज् झ ञ्	(तालव्य)	
	ट् ठ् ड् (ळ्) ढ् (ळ्ह) ण्	(मूर्धन्य)	
	त् थ् द् ध् न्	(दन्त्य)	
	प् फ् ब् भ् म्	(ओष्ठ्य)	27
अन्तस्थ	य् र् ल् व		04
संघर्षी	श् ष् स्		03
ऊष्म (घोष)	ह्		01
ऊष्म (अघोष)	विसर्ग ᳵ (जिह्वामूलीय) ᳶ (उपध्मानीय)		03
शुद्ध अनुनासिक	अनुस्वार		01
कुल			52

लौकिक संस्कृत तक आते-आते संस्कृत में 48 ध्वनियाँ रह गईं, जो इस प्रकार हैं –

स्वर

मूल स्वर	अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ओ	11
संयुक्त स्वर	ऐ (अइ), औ (अउ)	02

व्यंजन

स्पर्श	क् ख् ग् घ् ङ्	(कण्ठ्य)	
	च् छ् ज् झ ञ्	(तालव्य)	
	ट् ठ् ड् ढ् ण्	(मूर्धन्य)	
	त् थ् द् ध् न्	(दन्त्य)	
	प् फ् ब् भ् म्	(ओष्ठ्य)	25
अन्तस्थ	य् र् ल् व		04
संघर्षी	श् ष् स्		03
ऊष्म (घोष)	ह्		01
ऊष्म (अघोष)	विसर्ग		01
शुद्ध अनुनासिक	अनुस्वार		01
कुल व्यंजन			35
कुल स्वर तथा व्यंजन			48

2.2.4. हिन्दी ध्वनियाँ – स्वर-व्यंजन

स्वर

स्वर	अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ `	10
आगत स्वर	ऑ	01

आधुनिक भाषाविज्ञानी ऋ को स्वर नहीं मानते। इसकी मात्रा होने का कारण पारम्परिक रूप से इसे स्वरों में गिना जाता है।

व्यंजन

स्पर्श	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	(कण्ठ्य)	
	च्	छ्	ज्	झ	ञ्	(तालव्य)	
	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	(मूर्धन्य)	
	त्	थ्	द्	ध्	न्	(दन्त्य)	
	प्	फ्	ब्	भ्	म्	(ओष्ठ्य)	25

अन्तस्थ	य्	र्	ल्	व	04
संघर्षी	श्	स्			02
ऊष्म (घोष)	ह्				01
उत्क्षिप्त	ड़	ढ़			02
आगत व्यंजन ध्वनियाँ	ख़	ग़	ज़	फ़	04

(i) आगत ध्वनियाँ : भाषा सम्पर्क के कारण दूसरी भाषाओं के शब्दों के आ जाने से कुछ ध्वनियाँ हिन्दी में आ गई हैं। अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं से हिन्दी में शब्द आए हैं। इसके कारण हिन्दी में कई ध्वनियों का समावेश हो गया है जो पहले नहीं थीं। इन आगत ध्वनियों के लिए हिन्दी वर्णमाला में नए वर्ण भी विकसित हो गए है। जैसे –

आगत स्वर – ऑ – कॉलेज, हॉल, मॉल, डॉल आदि।

आगत व्यंजन – ख़, ग़, ज़, तथा फ़

हिन्दी में अब ख़ तथा ग़ का तो ख तथा ग में लगभग आत्मसातीकरण हो गया है, किन्तु आवश्यकतानुसार अर्थ की स्पष्टता के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। नीचे दिए गए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी –

खाना (भोजन)	–	ख़ाना (अलमारी का खाना)
बाग (घोड़े की लगाम)	–	बाग़ (बगिया, उपवन)
सजा (सजाना)	–	सज़ा (दण्ड)
जरा (बुढ़ापा)	–	ज़रा (थोड़ा सा)
फन (साँप का)	–	फ़न (हुनर, कौशल)

(ii) नवविकसित ध्वनियाँ : कुछ आधुनिक भाषाविद् इन ध्वनियों को भी हिन्दी में स्वीकर करते हैं। जैसे ड़ तथा ढ़। ये ध्वनियाँ संस्कृत में नहीं थी, ये हिन्दी संरचना में हुए विकास के परिणामस्वरूप हैं। इन्हें हिन्दी वर्णमाला में स्थान मिल चुका है।

(iii) अन्य नवविकसित ध्वनियाँ : न्ह, म्ह, ल्ह

ये ध्वनियाँ क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हैं। अभी तक इनके लिए स्वतन्त्र वर्ण विकसित नहीं हुए हैं, किन्तु इनके आधार पर अर्थ में परिवर्तन अवश्य होता है। जैसे –

काना (एक आँखवाला)	–	कान्हा (कृष्ण का एक नाम)
कुमार (बालक)	–	कुम्हार (बरतन बनानेवाला)
आला (दीवार में बना)	–	आल्हा (एक नाम)

2.2.5. खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियाँ

हिन्दी की ध्वनियों को दो भागों में विभाजित किया जाता है – खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियाँ। खंडीय ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ होती हैं जिनके खण्ड किए जा सकते हैं या जिनका विभाजन किया जा सकता है। स्वर और व्यंजन खंडीय ध्वनियों के अन्तर्गत आते हैं। उन ध्वनियों को उनके ध्वनि-गुणों जैसे नासिक्यता, निरनुनासिकता, घोषत्व, प्राणत्व आदि के आधार पर खण्ड किये जा सकते हैं। इसके विपरीत खंडेतर ध्वनियों के खण्ड नहीं किए जा सकते। बलाघात, अनुतान, अनुनासिकता, मात्रा, संहिता आदि खंडेतर ध्वनियाँ मानी जातीहैं।

2.2.5.1. खंडीय ध्वनियाँ

जैसा कि ऊपर बताया गया है, इनके अन्तर्गत स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ आती हैं।

स्वर ध्वनियों के उच्चारण में प्राण-वायु मुख विवर से बिना किसी रुकावट या अवरोध के बाहर निकलती है। हिन्दी में ग्यारह स्वर ध्वनियाँ मानी जाती हैं – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ तथा औ।

व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में वायु अबाध गति से बाहर नहीं निकलती। इनके उच्चारण के दौरान उच्चारण-अवयवों (जीभ का भाग और निचला होठ) के द्वारा मुख में विभिन्न स्थानों पर वायु का मार्ग अवरुद्ध किया जाता है। यह अवरोध कई प्रकार का हो सकता है। कहीं यह पूर्ण अवरोध के रूप में होता है तो कहीं मुख विवर का मार्ग संकुचित किया जाता है। कहीं वायु जिह्वा के एक ओर से तो कहीं दोनों ओर से निकलती है या स्वर तंत्री से ऊपर वाले किसी वाग्-अवयव में कम्पन पैदा करती है। इसी अवरोध के प्रकार के आधार पर व्यंजन ध्वनियों के भेद किये जाते हैं।

2.2.5.2. खंडेतर ध्वनियाँ

खंडेतर ध्वनियाँ वे ध्वनियाँ होती हैं जिनके खण्ड नहीं किए जा सकते। बलाघात, सुर, तान, अनुतान, अनुनासिकता, मात्रा (दीर्घता), संहिता आदि खंडेतर ध्वनियाँ मानी जाती हैं। अब हम इनके बारे में विस्तार से समझते हैं।

(क) **बलाघात –**

शब्दों का उच्चारण करते समय शब्द में आने वाले सभी अक्षरों पर समान बल नहीं दिया जाता। उच्चारण में बल के इस आघात को बलाघात कहते हैं। कुछ भाषाओं जैसे अंग्रेज़ी में बलाघात के कारण शब्दों का अर्थ बदल जाता है। अंग्रेज़ी में संज्ञा शब्दों में पहले अक्षर पर बलाघात होता है किन्तु क्रिया शब्दों में अन्तिम अक्षर पर बलाघात होता है। हिन्दी में इसके कारण अर्थ परिवर्तन तो नहीं होता किन्तु उच्चारण में अस्वाभाविकता अवश्य आ जाती है।

(ख) **सुर, तान तथा अनुतान –**

स्वर-तंत्रियों में अधिक खिचाव के कारण या जीभ की मांसपेशियों में अधिक तनाव के कारण सुर परिवर्तन पाया जाता है। अनेक भाषाओं में सुर के आरोह, अवरोह के कारण शब्दो में अर्थ परिवर्तन हो जाता है। कुछ भाषाओं, जैसे चीनी, जापानी, कोरियन आदि, में सुर परिवर्तन के कारण एक शब्द के कई अलग-अलग अर्थ हो जाते हैं। सुर परिवर्तन के कारण जब शब्द का अर्थ बदलता है तब उसे 'तान' कहा जाता है। हिन्दी में तान नहीं है किन्तु पंजाबी भाषा में तान पाई जाती है।

वाक्य स्तर पर सुर भेद को अनुतान की संज्ञा दी जाती है। हिन्दी में अनुतान के कारण वाक्य का अर्थ बदल जाता है। जैसे –

i. उसने कुछ कहा। (सामान्य कथन)
ii. उसने कुछ कहा ? (प्रश्न)
iii. उसने कुछ कहा ! (आश्चर्य)

आरोह-अवरोह की दृष्टि से अनुतान के तीन स्तर माने जाते हैं – (i) उच्च (आरोही), (ii) निम्न (अवरोही) तथा (iii) मध्य (सम)।

(ग) **अनुनासिकता –**

हिन्दी में 'अ' से लेकर 'औ' तक सभी स्वर निरनुनासिक हैं। जब किसी स्वर का उच्चारण करते समय मुख के साथ-साथ नाक से भी हवा निकले तब वह स्वर अनुनासिक हो जाता है। हिन्दी में निरनुनासिक तथा अनुनासिक स्वर अर्थ परिवर्तन में सहायक होते हैं। जैसे –

बास (गन्ध)	:	बाँस
आक (एक पौधा)	:	आँक (आँकना)
गोद (गोदी)	:	गोंद (चिपकाने वाला पदार्थ)
पूछ (पूछना)	:	पूँछ
है (एक वचन)	:	हैं (बहु वचन)

(घ) **मात्रा (दीर्घता) –**

जब किसी स्वर का उच्चारण कुछ अधिक समय के लिए किया जाता है, तब उस दीर्घता को मात्रा कहा जाता है या वह स्वर दीर्घ कहलाता है। हिन्दी में 'अ', 'इ' तथा 'उ' तीन ह्रस्व स्वर हैं और 'आ', 'ई' तथा 'ऊ इनके दीर्घ रूप माने जाते हैं। हिन्दी में मात्रा या स्वर-दीर्घता के कारण अर्थ में परिवर्तन होता है। नीचे दिए गए उदाहरण देखें –

कल	–	काल
दल	–	दाल
बिन	–	बीन
सिल	–	सील
चुना	–	चूना
सुना	–	सूना

(ङ) **संहिता –**

किसी शब्द के बीच किन्हीं दो ध्वनियों के बीच क्षणिक विराम को संहिता कहा जाता है। संहिता के कारण अर्थ में परिवर्तन देखा जाता है। जैसे –

संबल (सहारा)	–	सम बल (समान बल)
प्रकार (किस्म)	–	परकार (बीजगणित में प्रयुक्त यंत्र)
सिरका	–	सिर का

2.2.6. हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण

अब हम स्वरों तथा व्यंजन ध्वनियों के वर्गीकरण को समझते हैं।

2.2.6.1. हिन्दी स्वरों का वर्गीकरण

हिन्दी स्वरों को निम्नलिखित तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है – (i) जीभ के भाग के आधार पर, (ii) मुख के खुलने की मात्रा के आधार पर तथा (iii) ओठों की स्थिति के आधार पर।

1. जीभ के भाग के आधार पर

स्वरों के उच्चारण में प्रयुक्त जीभ के भाग – अग्र, मध्य या पश्च के आधार पर स्वरों के तीन भेद किये जाते हैं –

(क) अग्र स्वर : इ, ई, ए, ऐ

(ख) मध्य स्वर : अ

(ग) पश्च स्वर : उ, ऊ, ओ, औ, ऑ

2. मुख के खुलने की मात्रा के आधार पर

मुख के खुलने की मात्रा के आधार पर स्वरों के निम्नलिखित चार भेद किये जाते हैं –

(क) संवृत : इसमें मुँह बहुत कम खुलता हैं। सवृत स्वर हैं – इ, ई, उ, ऊ।

(ख) विवृत : इसमें मुँह सबसे ज़्यादा खुलता है – विवृत स्वर है – आ।

(ग) अर्द्ध संवृत : इसमें संवृत की तुलना में मुख अधिक खुलता है। अर्द्ध संवृत स्वर हैं – ए तथा ओ।

(घ) अर्द्ध विवृत : उसमें विवृत की तुलना में मुँह कुछ कम खुलता है। अर्द्ध विवृत स्वर हैं – ऐ तथा औ।

3. ओठों का स्थिति के आधार पर

स्वरों को गोलाकार तथा अगोलाकार अथवा वृत्ताकार तथा अवृत्ताकार के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

गोलाकार / वृत्ताकार स्वर हैं – उ, ऊ, ओ, औ तथा ऑ।

अगोलाकार / अवृत्ताकार स्वर हैं – अ, आ, इ, ई, ए, ऐ।

2.2.5.2. हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण

व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जाता है – (i) उच्चारण स्थान के आधार पर तथा (ii) उच्चारण प्रयत्न के आधार पर।

1. उच्चारण स्थान के आधार पर

उच्चारण स्थान से तात्पर्य मुँह के अंदर या ऊपरी जबड़े के उन स्थानों से है, जहाँ उच्चारण अवयव (जीभ के विभिन्न भागों से लेकर निचला ओठ) फेफड़ों से आनेवाली प्राण-वायु को अवरुद्ध करते है। उच्चारण स्थान को स्पर्श करने के कारण ऐसी ध्वनियों को स्पर्श ध्वनि कहा जाता है।

(क) कंठ या कोमल तालू : इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ का पिछला भाग कोमल तालू का स्पर्श करता है। इसी को कंठ भी कहा जाता है। हिन्दी व्यंजन ध्वनियों में क, ख, ग, घ, ङ ध्वनियाँ कण्ठ्य ध्वनियाँ कहलाती हैं। इन्हें क-वर्गीय ध्वनियाँ भी कहते हैं।

(ख) तालव्य या कठोर तालव्य : इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग तालू को छूता है। ये ध्वनियाँ तालव्य कहलाती हैं। इनका उच्चारण स्थान वर्त्स के समीप है, इसलिए इनको वर्त्स्य भी कहा जाता है। हिन्दी की च, छ, ज, झ, ञ ध्वनियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। इन ध्वनियों को च-वर्गीय ध्वनियाँ भी कहा जाता है।

(ग) मूर्धा : यह कोमल तालू और कठोर तालू के बीच का स्थान है। इनके उच्चारण में जिह्वा का अग्र भाग प्रतिवेष्ठित होकर मूर्धा को झटके के साथ छूता है। इस स्थान से उच्चरित ध्वनियाँ ट, ठ, ड, ढ, ण हैं। इन ध्वनियों को मूर्धन्य कहा जाता है। ये ध्वनियाँ ट-वर्गीय ध्वनियाँ भी कहलाती हैं।

(घ) दन्त : इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग दाँतों को स्पर्श करता है। हिन्दी की त, थ, द, ध, न ध्वनियाँ दन्त्य हैं। यदि सूक्ष्मता से देखा जाए तो दाँत के भी अग्र, मध्य और मूल तीन भाग किए जा सकते हैं। इस प्रकार त और थ दाँत के अग्र भाग से, द और ध मध्य भाग से और न दन्तमूल से उच्चरित किये जाते हैं। इन्हें त-वर्गीय ध्वनियाँ भी कहा जाता है।

(ङ) ओष्ठ : इन ध्वनियों के उच्चारण में दोनों होंठों की सहायता ली जाती है। हिन्दी की प, फ, ब, भ और म ध्वनियाँ ओष्ठ्य ध्वनियाँ हैं। इन ध्वनियों के उच्चारण में निचला होंठ उच्चारण अवयव और ऊपरी होठ उच्चारण स्थान का कार्य करता है। इन्हें प-वर्गीय ध्वनियाँ भी कहा जाता है।

2. उच्चारण प्रयत्न के आधार पर

स्वर-तंत्रियों से लेकर होठ तक वायु के विभिन्न प्रकार सेकिये गए परिवर्तनों को प्रयत्न की संज्ञा दी जाती है। प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण इन आधारों पर किया जा सकता है – (i) अवरोध की प्रकृति, (ii) स्वर-तंत्रियों का कम्पन तथा (iii) श्वास की मात्रा।

(क) अवरोध की प्रकृति : अवरोध की प्रकृति के आधार पर व्यंजन ध्वनियों को स्पर्श, संघर्षी, स्पर्श-संघर्षी, अन्तस्थ और उत्क्षिप्त के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(i) स्पर्शी : जब कोई उच्चारण अवयव किसी उच्चारण स्थान का स्पर्श करके मुख विवर से निकलने वाली हवा के मार्ग को अवरुद्ध करता है तब स्पर्शी व्यंजन उच्चरित होते हैं। हिन्दी ध्वनियों में क-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग तथा प-वर्ग के पहले चार व्यंजन स्पर्शी व्यंजन कहलाते हैं।

(ii) स्पर्श-संघर्षी : जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्पर्श तथा घर्षण, दोनों प्रयत्न होते हैं, उन्हें स्पर्श-संघर्षी कहा जाता है। इनमें उच्चारण अवयव उच्चारण स्थान को स्पर्श करने के बाद उसके इतने निकट रह जाता है कि वायु को घर्षण करते हुए निकलना पड़ता है। हिन्दी ध्वनियों में च-वर्ग की सभी व्यंजन-ध्वनियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं।

(iii) संघर्षी : ऐसे व्यंजनों के उच्चारण में उच्चरण अवयव उच्चारण स्थान का स्पर्श तो नहीं करते किन्तु उसके इतने निकट पहुँच जाते हैं कि वायु घर्षण करती हुई बाहर निकलती है। ऐसी व्यंजन-ध्वनियाँ संघर्षी कहलाती हैं। हिन्दी में स, श, ष, ह तथा आगत व्यंजन ख़, ग़, ज़ और फ़ संघर्षी व्यंजनों के रूप में माने जाते हैं।

(iv) अन्तस्थ : इसके अन्तर्गत अर्द्ध-स्वर, लुंठित और पार्श्विक व्यंजन-ध्वनियाँ आती हैं –

i. अर्द्ध-स्वर : इनके उच्चारण में जीभ स्वरों की तुलना में ज़्यादा ऊपर उठती है किन्तु अवरोध पैदा नहीं करती। हिन्दी में 'य' और 'व' व्यंजन अर्द्ध-स्वर हैं।

ii. लुंठित : जब जिह्वा की नोक मुँह के मध्य भाग में आकर बार-बार प्रकंपित होती है, तब उच्चरित व्यंजन लुंठित कहलाताहै। हिन्दी में 'र' व्यंजन इसका उदाहरण है।

iii. पार्श्विक : जब जीभ की नोक मुँह के बीच में आकर एक ओर या दोनों ओर से मुख में पार्श्व बनाती है और वायु इन पार्श्वों से होकर निकलती है तब ऐसी ध्वनि को पार्श्विक ध्वनि कहते हैं। हिन्दी की 'ल' व्यंजन ध्वनि इसका उदाहरण है।

(v) उत्क्षिप्त : इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर मूर्धा को स्पर्श करती है और फिर एक झटके के साथ नीचे गिरती है। हिन्दी के 'ड़' और 'ढ़' व्यंजन ध्वनियाँ उसका उदाहरण हैं।

(ख) स्वर-तंत्रियों का कम्पन : जब फेफड़ों से निकलकर आनेवाली वायु स्वर-तंत्रियों से टकराती है तब स्वर-तंत्रियों में कम्पन पैदा होती है। इसके कारण स्वर-तंत्रियाँ कभी एक दूसरे के निकट आ जाती हैं तो कभी दूर हो जाती हैं। जब ये परस्पर-निकट होती हैं तब इनकी झंकार मुख से निकलनेवाली वायु में सम्मिलित हो जाती है। यही झंकार या अनुगूँज व्यंजन-ध्वनि के उच्चारण को घोषत्व प्रदान करती है। अघोष ध्वनियों के उच्चारण में स्वर-तंत्रियाँ परस्पर दूर रहती हैं। इसलिए उनमें वह अनुगूँज सम्मिलित नहीं हो पाती। इसके आधार पर घोष और अघोष व्यंजनों का वर्गीकरण किया जाता है।

अघोष व्यंजन : क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ

सघोष व्यंजन : ग, घ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, ब, भ, म

(ग) श्वास की मात्रा : कुछ व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में मुख से कम मात्रा में श्वास निकलती है और कुछ व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में मुख से अधिक मात्रा में श्वास निकलती है। कम मात्रा में श्वास निकलने वाली ध्वनियों को अल्पप्राण और अधिक मात्रा में श्वास निकलने वाली ध्वनियों को महाप्राण व्यंजन ध्वनियाँ कहा जाता है।

अल्पप्राण : क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब

महाप्राण : ख, घ, छ, झ, ठ, ढ. थ, ध, फ, भ

2.2.7. पाठ-सार

हमने इस पाठ के प्रारम्भ में वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत की ध्वनियों का परिचय प्राप्त किया। वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत की ध्वनियों के विकास-क्रम में हमें हिन्दी ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं। हिन्दी ध्वनियों को खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियों में विभाजित किया जाता है। खंडीय ध्वनियाँ ऐसी ध्वनियाँ होती हैं जिनके खण्ड किए जा सकते हैं। खंडीय ध्वनियों को स्वर तथा व्यंजन में रूप में विभाजित किया जाताहै। हिन्दी ध्वनि-व्यवस्था में हमें 10 स्वर तथा 38 व्यंजन ध्वनियाँ मिलती हैं। खंडेतर ध्वनियाँ ऐसी ध्वनियों को कहते हैं जिनके खण्ड या टुकड़े न किए जा सकें। इनके अन्तर्गत बलाघात, सुर, तान, अनुतान, अनुनासिकता, मात्रा (दीर्घता) और संहिता की सोदाहरण चर्चा की गई है। इसी पाठ में आपने स्वरों और व्यंजनों के वर्गीकरण के आधारों को समझा। जीभ के भाग के आधार पर हिन्दी स्वरों को अग्र, मध्य तथा पश्च स्वरों में विभाजित किया गया। स्वरों के उच्चारण में मुँह कितनी मात्रा में खुलता है, उस आधार पर स्वरों के चार प्रकार हैं – संवृत, अर्द्ध संवृत, अर्द्ध विवृत और विवृत। होंठों की स्थिति के आधार पर स्वरों को गोलाकार अथवा अगोलाकार रूप में वर्गीकृत किया गया है। व्यंजनों को

वर्गीकरण के आधारों के रूप में हमने पढ़ा कि उच्चारण स्थान, उच्चारण प्रयत्न तथा स्वर-तंत्रियों की स्थिति तथा श्वास की मात्रा के आधार पर व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण किया गया है। हमें एक ओर उच्चारण स्थान के आधार पर कण्ठ्य, तालव्य या वर्त्स्य, मूर्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य व्यंजन प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर उच्चारण प्रयत्न के आधार पर हमें स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, संघर्षी, अन्तस्थ, अर्द्ध-स्वर, अन्तस्थ, उत्क्षिप्त आदि व्यंजनों के प्रकार प्राप्त होते हैं। स्वर-तंत्रियों की स्थिति के आधार पर घोष तथा अघोष के रूप में व्यंजनों का वर्गीकरण मिलता है। अन्त में श्वास की मात्रा के आधार पर अल्पप्राण तथा महाप्राण व्यंजनों का वर्गीकरण मिलता है।

2.2.8. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए।

(i) हिन्दी ध्वनियाँ वैदिक संस्कृत एवं संस्कृत की ध्वनियों से विकसित हुई हैं। (√)

(ii) हिन्दी ध्वनियों को खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियों में विभाजित किया जाताहै। (√)

(iii) खंडीय ध्वनियाँ स्वर और व्यंजन कहलाती हैं। (√)

(iv) व्यंजनों के वर्गीकरण का एकमात्र आधार है उच्चारण प्रयत्न। (X)

(v) स्वरों का वर्गीकरण जीभ के भाग, मुँह के खुलने की मात्रा तथा होंठों की स्थिति के आधार पर किया जाता है। (√)

(vi) स्वर-तंत्रियों की स्थिति के आधार पर व्यंजनों को अल्पप्राण तथा महाप्राण के रूप में विभाजित किया जाता है। (X)

(vii) भाषा सम्पर्क आगत ध्वनियों का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। (√)

(viii) खंडेतर ध्वनियों के अन्तर्गत तान, अनुतान, अनुनासिकता, संहिता आदि आते हैं। (√)

(ix) उच्चारण प्रयत्न के आधार पर हमें स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, संघर्षी, अन्तस्थ व्यंजन प्राप्त होते हैं। (√)

(x) होंठों की स्थिति के आधार पर स्वरों को गोलाकार अथवा अगोलाकार के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। (√)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए–

(i) हिन्दी ध्वनि-व्यवस्था में ज़ तथा फ़ किस प्रकार की ध्वनियाँ हैं ?

(क) स्पर्श

(ख) स्पर्श-संघर्षी

(ग) संघर्षी

सही उत्तर (ग)

(ii) हिन्दी में न्ह, म्ह और ल्ह ध्वनियाँ किस प्रकार की ध्वनियाँ हैं ?

(क) उत्क्षिप्त
(ख) आगत
(ग) नव-विकसित

सही उत्तर (ग)

(iii) च, छ, ज, झ किस प्रकार की ध्वनियाँ हैं ?
(क) तालव्य
(ख) वर्त्स्य
(ग) मूर्धन्य

सही उत्तर (ख)

(iv) अवरोध की प्रकृति के आधार पर व्यंजनों का कौन-सा वर्गीकरण सही है ?
(क) स्पर्श
(ख) अल्पप्राण-महाप्राण
(ग) घोष-अघोष

सही उत्तर (क)

(v) 'अनुनासिकता' और 'संहिता' निम्नलिखित में से किसके उदाहरण हैं ?
(क) खंडीय ध्वनियों
(ख) आगत ध्वनियों
(ग) खंडेतर ध्वनियों

सही उत्तर (ग)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) हिन्दी ध्वनियाँ
(ii) खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियाँ
(iii) स्वर तथा व्यंजन का अन्तर
(iv) हिन्दी स्वरों का वर्गीकरण
(v) हिन्दी व्यंजनों का वर्गीकरण

2.2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. उदय नारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2012 (तेरहवाँ संस्करण)
3. देवेन्द्रनाथ शर्मा, (1966) भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, नई दिल्ली

5. राजमणि शर्मा, आधुनिक भाषाविज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007 (चतुर्थ संस्करण)
6. राजमल बोरा (सं.) भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2007 (दूसरा संस्करण)
7. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली
8. ध्वनिविज्ञान, हरीश शर्मा (सं. : महेन्द्र शर्मा) अमित प्रकाशन, गाज़ियाबाद (1998)

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : ध्वनि विज्ञान

इकाई – 3 : स्वनिम – परिभाषा, स्वनिम तथा संस्वन, स्वनिम निर्धारण की विधि, संस्वन निर्धारण की विधि, स्वनिम के भेद – (क) खंडीय स्वनिम (ख) खंडेतर स्वनिम, हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

2.3.01 उद्देश्य
2.3.02 प्रस्तावना
2.3.03 स्वनिम-विज्ञान
2.3.04 स्वनिम तथा संस्वन
2.3.05 स्वनिम की विशेषताएँ
2.3.06 संस्वन की विशेषताएँ
2.3.07 स्वनिम तथा संस्वन निर्धारण की विधि
2.3.08 स्वनिमों के भेद
    2.3.08.1 खंडीय स्वनिम
    2.3.08.2 खंडेतर स्वनिम
2.3.09 हिन्दी स्वनिम व्यवस्था
2.3.10 पाठ-सार
2.3.11 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
2.3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.3.01. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. स्वनिम विज्ञान से क्या तात्पर्य है, यह जान सकेंगे।
ii. स्वनिम का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
iii. स्वनिम की विशेषताओं को जान पाएँगे।
iv. स्वनिम निर्धारण की विधि को जान सकेंगे।
v. स्वनिम और संस्वन का अन्तर समझ सकेंगे।
vi. स्वनिम और संस्वन निर्धारण प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
vii. स्वनिमों के भेदों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

2.3.02. प्रस्तावना

स्वनिम विज्ञान भाषाशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । इसके अन्तर्गत किसी भाषा के स्वनिमों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है । इसके लिए एक निश्चित स्वनिम निर्धारण प्रक्रिया को अपनाया जाता है । उसका विवरण हम इस इकाई में प्राप्त करेंगे ।

स्वनिम भाषा की वह लघुतम इकाई है जो समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है । स्वनिम भाषा विशेष-होते हैं । जिस परिवेश या स्थिति में एक स्वनिम आता है, उस परिवेश में अन्य स्वनिम नहीं आता । स्वनिम की संघटक ध्वनियों को संस्वन कहा जाता है । स्वनिम समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है । यदि एक ध्वनि अनेक प्रकार से उच्चरित होती है, तब स्वनिम एक होता है किन्तु उसके विभिन्न उच्चरण संस्वन कहलाते हैं । स्वनिम अर्थ-परिवर्तन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं । संस्वन में अर्थ परिवर्तन की शक्ति नहीं होती ।

स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – खंडीय तथा खंडेतर। खंडीय स्वनिमों में स्वर तथा व्यंजन स्वनिम आते हैं । इनके खण्ड किए जा सकते हैं । खंडेतर स्वनिमों में बलाघात, सुर, अनुनासिकता, मात्रा तथा संहिता आते हैं । इनके बारे में हम पिछली इकाई में विस्तार से पढ़ चुके हैं ।

इस इकाई में हम स्वनिम और संस्वन का अन्तर समझेंगे । स्वनिम और संस्वन का निर्धारण कैसे होता है, इसके लिए क्या प्रक्रिया अपनाई जाती है, उसके बारे में जानेंगे । अन्त में हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था का वर्णन किया जाएगा ।

2.3.03. स्वनिम-विज्ञान

स्वनिम विज्ञान के लिए हिन्दी में अनेक शब्द प्रचलन में हैं – ध्वनिग्राम विज्ञान, ध्वनितत्त्व विज्ञान, स्वानिमी, वर्ण विज्ञान आदि । इनमें से ध्वनिग्राम विज्ञान तथा स्वनिम विज्ञान शब्द अधिक प्रचलित हैं । भाषाविज्ञान के संरचनावादी सम्प्रदाय के अन्तर्गत निश्चित की गई भाषा-विश्लेषण तकनीक को अपनाकर भाषा की ध्वनि-संरचना का अध्ययन किया जाता है, उसे स्वनिम विज्ञान की संज्ञा दी जाती है । भाषा में जब शब्दों का उच्चारण किया जाता है, तब उनमें प्रयुक्त ध्वनियों का उच्चारण एक समान नहीं होता । उनमें अनेक प्रकार के अन्तर मिलते हैं । ये अन्तर विभिन्न भाषा-भाषियों की भाषाओं की ध्वनि व्यवस्था से प्रभावित हो सकते हैं और कुछ शब्द के विभिन्न परिवेशों के कारण भिन्न हो सकते हैं । ऐसी स्थिति में निकटवर्ती ध्वनियों के कारण उच्चारण में परिवर्तन हो सकता है ।

स्वनिम विज्ञान में हम विभिन्न ध्वनियों के परिवेशगत तथा व्यतिरेकगत अन्तर का अध्ययन करते हैं । ऐसे उच्चारणगत अन्तर जो अर्थ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं, उन्हें स्वनिम की संज्ञा दी जाती है । एक स्वनिम का उच्चारण सभी स्थितियों में एक सा हो, ऐसा आवश्यक नहीं । शब्दारम्भ, शब्द-मध्य तथा शब्दान्त में वह भिन्न-भिन्न हो सकता है । ऐसे अन्तर परिवेशगत अन्तर कहलाते हैं । स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत किसी भाषा के स्वनिमों

तथा संस्वनों का अध्ययन किया जाता है। स्वनिम को तिरछे कोष्ठ '/ /' तथा संस्वन को बड़े कोष्ठक '[ ]' के द्वारा लिखा जाता है।

स्वनिम विज्ञान की भाषा-शिक्षण में उपयोगिता होती है। इसमें प्रत्येक भाषा की वर्णमाला पर ध्यान न देकर उसकी अर्थभेदक ध्वनियों पर ही बल दिया जाता है। ये अर्थभेदक ध्वनियाँ स्वनिम कहलाती हैं। स्वनिम विज्ञान भाषाशास्त्र को एक नवीन व्यवहारिक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसे अपनाकर हम भाषा के असार अंश को छोड़कर केवल सार अंश को ग्रहण करते हैं। भाषाशास्त्र के सभी अंग – पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान स्वनिम विज्ञान पर ही आधारित होते हैं। स्वनिम समूह ही पद बनता है और पद समूह वाक्य बनता है। इस प्रकार स्वनिम विज्ञान ही पद, वाक्य, अर्थ का बोध कराते हुए भाषाशास्त्र के आधार की भूमिका का निर्वाह करता है।

स्वनिमविज्ञान आदर्श वर्णमाला या लिपि निर्माण में सक्षम है। विश्व की सभी भाषाओं के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि (International Phonetic Alphabet) का विकास स्वनिमविज्ञान के आधार पर ही सम्भव हो पाया है।

2.3.04. स्वनिम तथा संस्वन

स्वनिम के सम्बन्ध में विद्वानों में काफ़ी मतभेद पाया जाता है। ब्लूमफ़ील्ड तथा डेनियल जोंस इसे भौतिक इकाई मानते हैं जबकि एडवर्ड सपीर, कूर्तने तथा प्राहा स्कूल के कुछ भाषाशास्त्री स्वनिम को मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। ट्वाडेल इसे अमूर्त काल्पनिक इकाई मानते हैं। स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई मानना ही अधिक तर्कसंगत लगता है। स्वनिम ध्वनि-समूह का द्योतक होता है, अतः यह जाति का द्योतक है। जिस प्रकार जाति अमूर्त होती है, इसी आधार पर स्वनिम के अमूर्त माना जा सकता है। इसके विपरीत संस्वन मूर्त होता है क्योंकि वास्तव में इसी का ही व्यवहार किया जाता है।

स्वनिम भाषा की वह लघुतम इकाई है, जो समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। इसका सम्बन्ध किसी भाषा विशेष से होता है। जो ध्वनि समान वातावरण में व्यतिरेक में आकर अर्थ परिवर्तन करने में सक्षम होती है, वही स्वनिम कहलाती है।

किसी स्वनिम का उच्चारण प्रत्येक स्थिति में एक जैसा नहीं होता। उदाहरण के लिए हम अंग्रेज़ी /p/, /t/, /k/ स्वनिमों को लें। इनका उच्चारण शब्द के आरम्भ तथा मध्य में एक जैसा नहीं होता। अंग्रेज़ी भाषा-भाषी शब्द के आरम्भ में इसका उच्चारण कुछ प्राणत्व लिये होता है। इन उदाहरणों के देखें –

	शब्द	शब्दारम्भ	शब्द	शब्द मध्य
/p/	peak	[phik]	speak	[spik]
	pit	[phit]	spit	[spIt]

/t/	top	[thop]	stop	[stop]
	tile	[thail]	style	[stail]
/k/	kit	[khit]	picket	[piket]
	kin	[khin]	skin	[skin]

एक उदाहरण हिन्दी ध्वनि स्वनिम व्यवस्था से लेते हैं। हिन्दी में /ड/ स्वनिम के दो संस्वन मिलते हैं – [ड] और [ड़]। शब्द के आरम्भ तथा व्यंजन-गुच्छों में [ड] का प्रयोग होता है जबकि शब्द-मध्य में या दो स्वरों के मध्य में तथा शब्दान्त में [ड़] का। कुछ उदाहरण देखें –

डः	डगर, डमरू, डफली, डकार	(शब्दारम्भ)
	अड्डा, गुड्डी, बुड्ढा, गड्ढा	(व्यंजन-गुच्छ)
ड़-	सड़क, लड़की, पड़ना, मुड़ना	(शब्द-मध्य)
	जोड़, मुड़, पेड़, बड़बड़	(शब्दान्त)

स्वनिम की संघटक ध्वनियाँ, जो परिपूरक वितरण में होती हैं, वे संस्वन कहलाती हैं।

2.3.05. स्वनिम की विशेषताएँ

1. स्वनिम किसी भाषा विशेष की लघुतम इकाई होते हैं।
2. स्वनिम में अर्थ-परिवर्तन की क्षमता होती है। जैसे निम्नलिखित शब्द-युग्मों के आधार पर हम क, द, ग, ब, स, प को स्वनिम कह सकते हैं। यथा – काम~दाम, काल~गाल, बाल~साल, पल~बल।
3. स्वनिम समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि एक ध्वनि विभिन्न परिवेशों में अनेक प्रकार से उच्चरित होती है, तब स्वनिम एक ही होगा। उसके अन्य उच्चरित रूप संस्वन कहलाएँगे।
4. स्वनिमों में ध्वन्यात्मक समानता (Phonetic similarity) की प्रवृत्ति होती है जिसके आधार पर किसी भाषा–विशेष की ध्वनियों के निर्धारण में सहायता प्राप्त होती है। ध्वन्यात्मक समानता के सिद्धान्त का प्रयोग स्वनिम निर्धारण में भी किया जाता है। इसकी चर्चा आगे की जाएगी।
5. स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – खंडीय और खंडेतर। खंडीय स्वनिमों में स्वर और व्यंजन आते हैं। खंडेतर में बलाघात, मात्रा, अनुनासिकता, सुर, संहिता आदि आते हैं।
6. कुछ स्थानों पर मुक्त परिवर्तन (Free Variation) भी पाया जाता है। उस स्थिति में दो ध्वनियों में से किसी एक का प्रयोग हो सकता है, किन्तु उससे अर्थ परिवर्तन नहीं होता। जैसे ग़ुलाम को गुलाम, अख़बार को अखबार, ज़ुल्म को जुल्म और फ़ारसी को फारसी उच्चरित करने पर कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं होता। यहाँ ग़-ग, ख़-ख, ज़-ज और फ़-फ ध्वनियाँ मुक्त परिवर्तन में हैं।

2.3.06. संस्वन की विशेषताएँ

1. संस्वन भाषा का व्यवहृत रूप होते हैं। उच्चारण में स्वनिम का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि संस्वन का ही प्रयोग किया जाता है।
2. एक स्वनिम के कई संस्वन हो सकते हैं। परवर्ती ध्वनि के आधार पर किसी स्वनिम के उच्चारण में थोड़ा भेद हो सकता है। जैसे – भात, भूल, भ्रम में 'भ' के उच्चारण में थोड़ा-थोड़ा उच्चारण-भेद है, ऐसे में /भ/ स्वनिम के तीनों 'भ' संस्वन माने जाएँगे।
3. संस्वन में अर्थ परिवर्तन की क्षमता नहीं होती। ऊपर के उदाहरण में 'भ' के उच्चरण-स्थान में परिवर्तन से अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता।

2.3.07. स्वनिम तथा संस्वन निर्धारण की विधि

1. सामग्री-संकलन : किसी भी जीवित भाषा के स्वनिम तथा संस्वन निर्घारण के लिए उस भाषा के बोलनेवालों (सूचक) से भाषा के वाक्यों को सुनकर सामग्री-संकलन किया जाता है। पहले यह संकलन लिखकर किया जाता था किन्तु अब श्रव्य प्रौद्योगिकी के विकसित होने के कारण सामग्री का टेपांकन किया जाता है ताकि विश्लेषण के स्तर पर उसे बार-बार सुना जा सके। इस प्रकार सामग्री-संकलन स्वनिम एवं संस्वन निर्धारण प्रक्रिया का पहला चरण होताहै।
2. टेपांकित सामग्री का ध्वन्यात्मक लेखन : सामग्री संकलन के बाद संकलित सामग्री का ध्वन्यात्मक लेखन किया जाता है। इसमें स्वरों तथा व्यंजनों की सूक्ष्मताओं का निर्देश किया जाता है। इस कार्य को करते समय बलाघात, सुर, अनुनासिकता आदि का भी उल्लेख किया जाता है। स्वरों के सम्बन्ध में ह्रस्व-दीर्घ, संवृत-विवृत, अग्र-मध्य–पश्च, अनुनासिक-निरनुनासिक, वृत्ताकार-अवृत्ताकार आदि को भी नोट किया जाता है। व्यंजनों की स्थिति में व्यंजनों के उच्चारण-स्थान (कण्ठ्य, वर्त्स्य, मूर्धन्य आदि), उच्चारण-प्रयत्न (स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, संघर्षी आदि के विवरण का उल्लेख किया जाता है। ध्वन्यात्मक लेखन प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि में किया जाता है।
3. संकलित सामग्री को क्रमबद्ध करना : फिर संकलित सामग्री को क्रमबद्ध करते हैं। इसके लिए एक चार्ट बनाकर, प्रत्येक ध्वनि से आरम्भ होनेवाले शब्दों को अलग-अलग नोट किया जाता है। यह भी उल्लेख किया जाता है कि अमुक ध्वनि शब्द के आदि, मध्य या अन्त में किस स्थान पर आई है। किस ध्वनि के साथ आई है, पहले प्रारम्भिक ध्वनियों पर विचार किया जाता है, फिर मध्यगत ध्वनियों और अन्त में अन्त्य ध्वनियों पर विचार किया जाता है।
4. स्वनिमों का वर्गीकरण : इस चरण में एकत्रित संस्वनों को किस स्वनिम के अन्तर्गत रखा जाएगा, इसके लिए तीन तत्त्वों पर विचार किया जाता है। स्वनिम निर्धारण के नियामक तत्त्व हैं – वितरण, समानता और एकरूपता।

(क) **वितरण** : वितरण स्वनिमों तथा संस्वनों के निर्धारण में निर्णायक भूमिका निभाता है। वितरण के तीन भेद होते हैं – (i) व्यतिरेकी वितरण, (ii) परिपूरक वितरण और (iii) मुक्त वितरण।

(i) व्यतिरेकी वितरण से अभिप्राय यह है कि जिस परिवेश में एक ध्वनि आती है, उसी परिवेश में दूसरी ध्वनि नहीं आती। समान परिवेश में दूसरी ध्वनि के आने से अर्थभेद होता है। जैसे काम, दाम, राम, शाम आदि। इन व्यतिरेकी युग्मों के उदाहरणों के आधार पर हम /क/, /द/, /र/, /श/ को स्वनिम मान सकते हैं, क्योंकि समान परिवेश में ध्वनिगत अन्तर अर्थभेद पैदा कर रहा है। इसी प्रकार मध्य स्थिति में हम दान, दिन, दीन, देन आदि के व्यतिरेकी युग्मों के आधार पर /आ/, /इ/, /ई/, /ए/ को स्वनिम मान सकते हैं।

(ii) परिपूरक वितरण से तात्पर्य है कि दो या दो से अधिक स्वन भिन्न-भिन्न वातावरण या परिवेश में प्रयुक्त होते हैं, इस कारण उनमें अर्थभेद नहीं होता। यहाँ हम हिन्दी में ड और ड़ का उदाहरण ले सकते हैं। ड का प्रयोग शब्दारम्भ तथा व्यंजन-गुच्छों में तथा ड़ का प्रयोग शब्द-मध्य तथा शब्दान्त में होता है। इसके बारे में हम ऊपर विस्तारपूर्वक चर्चा कर चुके हैं। हम कह सकते हैं कि हिन्दी में ड और ड़ परिपूरक वितरण में हैं।

(iii) मुक्त वितरण : जब दो या दो से अधिक स्वन बिना किसी अर्थ परिवर्तन के एक-दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं तब उन्हे मुक्त वितरण में कहा जाता है। यहाँ हम ख़- ख, ग़-ग, ज़-ज, फ-फ़, का उदाहरण ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में स्वनिम की विशेषताओं वाले खण्ड में विस्तार से चर्चा हो चुकी है।

(ख) **समानता** : समानता से तात्पर्य है ध्वन्यात्मक समानता। व्यंजनों के सन्दर्भ में उच्चारण-स्थान और उच्चारण-प्रयत्न की समानता को आधार बनाया जाता है। स्थान और प्रयत्न की असमानता या विषमता के आधार पर विभिन्न स्वनिम माने जाएँगे। उदाहरण के तौर पर हिन्दी की नासिक्य व्यंजन ध्वनियों को ले सकते हैं। हिन्दी वर्णमाला में 5 नासिक्य व्यंजन हैं– ङ, ञ, ण, न तथा म। ये पाँचों नासिक्य व्यंजन ध्वनियाँ हैं। क्या ये नासिक्य व्यंजन स्वनिम हैं, यह निश्चित करने के लिए हमें पहला आधार इनके परिपूरक वितरण तथा अर्थभेदकता को बनाना होगा। निम्नलिखित सामग्री पर विचार कीजिए।

ङ - ध्वनि का वितरण हमें इन शब्दों के आधार पर शब्द मध्य तथा शब्दान्त में मिलता है। जैसे – गङ्गा, वाङ्मय, लिङ्ग, लुङ (लकार)।

ञ - ध्वनि का वितरण हमें शब्द-मध्य स्थिति में ही मिलता है। जैसे – पञ्च, चिरञ्जीव, मञ्जन आदि।

ण - ध्वनि का वितरण हमें शब्द-मध्य तथा शब्दान्त में मिलता है। जैसे – काणा, पाणि(ग्रहण), झण्डा, भाण्डागार, कण, प्राण, आदि।

न - ध्वनि का वितरण हमें शब्दारम्भ, शब्द-मध्य और शब्दान्त तीनों परिवेश में मिलता है। जैसे – नाम, नग, भनक, अनन्त, मान, दान आदि।

म - ध्वनि का वितरण हमें शब्दारम्भ, शब्द-मध्य और शब्दान्त तीनों परिवेश में मिलता है। जैसे – मन, मान, मीन, मौन, रमण, कीमत, दीमक, शाम, राम आदि।

उपर्युक्त आधार पर पाँच नासिक्य ध्वनियों को आधार पर चार नासिक्य व्यंजन स्वनिम निर्धारित किए जा सकते हैं। ये हैं – /ङ/, /ण/, /न/ तथा /म/ इस प्रकार ञ ध्वनि को /न/ का संस्वन माना जा सकता है, जो समवर्गीय च-वर्गीय ध्वनियों के पहले आती है।

(ग) **एकरूपता** : एकरूपता से तात्पर्य है, 'पद्धति की एकरूपता'। प्रत्येक भाषा की एक व्यवस्था होती है। मान लीजिए कि किसी भाषा के स्वनिम निर्धारण करते हुए हमें क, ख, ग, घ, च, छ, ज, झ, त, द, ध, प, फ. भ स्वनिम तो मिलते हैं किन्तु सामग्री के अभाव में थ और ब स्वनिम नहीं मिलते। ऐसी स्थिति में यह निष्कर्ष निकालना कि उस भाषा में थ और ब स्वनिम नहीं हैं, उचित नहीं होगा। हमें प्राप्त स्वनिमों में अघोष-घोष तथा अल्पप्राण-महाप्राण की पद्धति मिलती है। ऐसी स्थिति में हमें अधिक सामग्री को संकलित सकरने का प्रयास करना चाहिए। सभी भाषाओं में एक निहित पद्धति होती है।

2.3.08. स्वनिमों के भेद

स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – (i) खंडीय स्वनिम और (ii) खंडेतर स्वनिम।

2.3.08.1. खंडीय स्वनिम

खंडीय स्वनिम वे होते हैं जिनके खण्ड किये जा सकते हों। इनकी स्वतन्त्र सत्ता होती है। खंडीय स्वनिमों के अन्तर्गत स्वर तथा व्यंजन स्वनिम आते हैं। इनके बारे में हम विस्तार से पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं।

2.3.08.2. खंडेतर स्वनिम

खंडेतर स्वनिम ऐसे स्वनिम हैं जिन्हें खंडीय स्वनिमों से अलग उच्चरित नहीं किया जा सकता। इसीलिए इन्हें अविभाज्य भी कहते हैं। निम्नलिखित पाँच खंडेतर स्वनिम माने जाते हैं। ये हैं – मात्रा, सुर, बलाघात, अनुनासिकता और संहिता।

(i) मात्रा : इसे दीर्घता भी कहते हैं। स्वरों और व्यंजनों, दोनों में दीर्घता के कारण अन्तर होता है। स्वरों में ह्रस्व और दीर्घ स्वर मिलते हैं जैसे अ, इ, और उ ह्रस्व स्वर हैं, आ, ई और ऊ दीर्घ स्वर हैं। व्यंजनों में भी संयुक्त व्यंजन के उच्चारण में एकल व्यंजन से दुगुना समय लगताहै। इसके कारण अर्थभेद भी होता है। जैसे, बचा – बच्चा, सजा – सज्जा आदि।

(ii) सुर : स्वर-तंत्रियों में तनाव के आधार पर इसका भेद किया जाता है। हिन्दी में सुर का प्रयोग सामान्यतया शब्दों में नहीं होता, वाक्यों में इसका प्रयोग होता हैं। वाक्य में इसे अनुतान की संज्ञा दी जाती है। इन उदाहरणों को देखें –

मोहन आ गया है।	(सामान्य)
क्या मोहन आ गया है ?	(प्रश्नवाचक)
मोहन आ गया है !	(विस्मय)

(iii) बलाघात : बलाघात फेफड़ों से आनेवाली वायु की तीव्रता पर निर्भर करता है। बलाघात के आधार पर अर्थभेद होता है। हिन्दी में वाक्य में जिस शब्द पर अधिक बल दिया जाता है, उसका अर्थ मुख्य हो जाता है। जैसे –

'मैं' दिल्ली जा रहा हूँ।	(मैं पर बल)
मैं 'दिल्ली' जा रहा हूँ।	(दिल्ली पर बल)

(iv) अनुनासिकता : हिन्दी में अनुनासिकता के आधार पर अर्थभेद मिलता है। जैसे, बास – बाँस, गोद – गोंद, ताक – ताँक आदि।

(v) संहिता या संगम : इसे विवृति भी कहा जाता है। हिन्दी में इसके कई उदाहरण मिलते हैं। जैसे – खाजा (एक मेवा) – खा जा (खाकर जा), वरदे (वरदान देने वाली) – वर दे (तू वरदान दे) आदि।

2.3.09. हिन्दी स्वनिम व्यवस्था

हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था इस प्रकार है –

(क) खंडीय स्वनिम

1. **स्वर** अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ कुल 10

2. **व्यंजन**

क् ख् ग् घ् ङ्
च् छ् ज् झ्
ट् ठ् ड् ढ् ञ
त थ द ध न
प फ ब भ म
य् र् ल् व्
स् श् ह्

कुल 31

(i) स्वर स्वनिमों में ऋ, अं तथा अः को नहीं माना गया है क्योंकि ये उच्चारण की दृष्टि से स्वतन्त्र स्वनिम न होकर संयुक्त ध्वनियाँ हैं।

(ii) व्यंजन स्वनिमों में क्ष, त्र, ज्ञ को भी नहीं माना गया है क्योंकि ये स्वतन्त्र स्वनिम न होकर संयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ हैं।

(iii) हिन्दी में ञ स्वतन्त्र स्वनिम नहीं है। यह न् का संस्वन है।

चवर्ग से पूर्व– ञ

अन्यत्र – न

(iv) क़, ख़, ग़, ज़, फ़ को क्रमशः क, ख, ग, ज, फ के संस्वन के रूप में माना जा सकता है। ये मूलतः विदेशी ध्वनियाँ हैं। ये मुक्त परिवर्तन में मिलते हैं।

(v) ड़ तथा ढ़ को भी स्वतन्त्र स्वनिम नहीं माना जा सकता क्योंकि ये क्रमशः ड और ढ के संस्वन हैं। ड और ढ का प्रयोग तो शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में मिलता है जबकि ड़ तथा ढ़ का प्रयोग केवल अनादि स्थिति में ही पाया जाता है।

(vi) अंग्रेज़ी शब्दों में ऑ की ध्वनि मिलती है। इसे आ का संस्वन माना जा सकता है। अ और ऑ मुक्त परिवर्तन में मिलते हैं।

2.3.10. पाठ-सार

इस पाठ में हमने जाना कि स्वनिम विज्ञान भाषाशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत किसी भाषा के स्वनिमों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। स्वनिम भाषा की वह लघुतम इकाई है जो समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है। स्वनिम की संघटक ध्वनियों को संस्वन कहा जाता है। स्वनिम विज्ञान में हम विभिन्न ध्वनियों के परिवेशगत तथा व्यतिरेकगत अन्तर का अध्ययन करते हैं।

भाषाविज्ञान के संरचनावादी सम्प्रदाय के अन्तर्गत भाषा विश्लेषण तकनीक को अपनाकर भाषा की ध्वनि-संरचना का अध्ययन किया जाता है। स्वनिम विज्ञान की भाषा-शिक्षण, भाषा-विश्लेषण, लिपि-निर्धारण आदि में उपयोगिता होती है। इसमें प्रत्येक भाषा की वर्णमाला की ध्वनियों पर ध्यान न देकर उसकी अर्थभेदक ध्वनियों पर ही बल दिया जाता है। यही अर्थ भेदक ध्वनियाँ स्वनिम कहलाती हैं।

कुछ भाषाशास्त्री स्वनिम को मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं तो कुछ स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई। स्वनिम जाति का द्योतक है। जिस प्रकार जाति अमूर्त होती है, इसी आधार पर स्वनिम के अमूर्त इकाई मानना तर्कसंगत लगता है। इसके विपरीत संस्वन मूर्त होता है, क्योंकि वास्तव में इसी का व्यवहार किया जाता है। स्वनिम में समान वातावरण में व्यतिरेकी वितरण में आकर अर्थ परिवर्तन करने में सक्षम होती है। किसी स्वनिम का उच्चारण प्रत्येक स्थिति में एक जैसा नहीं होता।

स्वनिम की विशेषताओं के अन्तर्गत हमने जाना कि स्वनिम किसी भाषा विशेष से सम्बद्ध होते हैं तथा इनमे अर्थ-परिवर्तन की क्षमता होती है। स्वनिम समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यदि कोई ध्वनि विभिन्न परिवेशों में कई प्रकार से उच्चरित होती है, तो स्वनिम एक ही होगा। उसके अन्य सभी उच्चरित रूप उसके संस्वन कहलाएँगे। स्वनिमों में ध्वन्यात्मक समानता (Phonetic similarity) की प्रवृत्ति होती है।

कुछ स्थानों पर मुक्त परिवर्तन (Free Variation) पाया जाता है। उस स्थिति में बिना किसी अर्थ परिवर्तन के दो ध्वनियों में से किसी एक का प्रयोग हो सकता है। जैसे, ख़ास – खास, ज़ालिम – जालिम में कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं होता। यहाँ ख़-ख और ज़-ज ध्वनियाँ मुक्त परिवर्तन में हैं।

स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – खंडीय और खंडेतर। खंडीय स्वनिमों में स्वर और व्यंजन आते हैं। खंडेतर में बलाघात, मात्रा, अनुनासिकता, सुर, तान, संहिता आदि आते हैं।

इस इकाई में हमने स्वनिम निर्धारण प्रक्रिया के बारे में भी पढ़ा। सबसे पहले उस भाषा के बोलने वालों (सूचक) से भाषा के वाक्यों को सुनकर टेपांकन के रूप में संकलित किया जाताहै। टेपांकित सामग्री का स्वरों तथा व्यंजनों की सूक्ष्मताओं का निर्देश करते हुए ध्वन्यात्मक लेखन किया जाता है। इस कार्य को करते समय बलाघात, सुर, अनुनासिकता आदि का भी उल्लेख किया जाता है। स्वरों के सम्बन्ध में ह्रस्व-दीर्घ, संवृत-विवृत, अग्र-मध्य–पश्च, अनुनासिक-निरनुनासिक, वृत्ताकार-अवृत्ताकार आदि लक्षणों को भी नोट किया जाता है। व्यंजनों की स्थिति में व्यजनों के उच्चारण-स्थान (कण्ठ्य, वर्त्स्य, मूर्धन्य आदि), उच्चारण-प्रयत्न (स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, संघर्षी आदि के विवरण का उल्लेख किया जाता है।

फिर संकलित सामग्री को क्रमबद्ध करके तथा चार्ट बनाकर, प्रत्येक ध्वनि से आरम्भ होने वाले शब्दों को आदि, मध्य या अन्त में प्रयोग के आधार पर अलग-अलग लिखा जाता है। इसके बाद स्वनिमों का वर्गीकरण किया जाता है। एकत्रित संस्वनों को किस स्वनिम के अन्तर्गत रखा जाएगा, इस के लिए नियामक तत्त्वों पर विचार किया जाता है। इस स्वनिम निर्धारण प्रक्रिया को सोदाहरण समझाया गया है। पाठ के अन्त में हिन्दी भाषा की स्वनिम व्यवस्था दी गई है।

2.3.11. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए –

(i) स्वनिम का सम्बन्ध किसी भाषा विशेष से होता है। (√)

(ii) हिन्दी स्वनिमों को खंडीय तथा खंडेतर ध्वनियों में विभाजित किया जाता है। (√)

(iii) खंडीय स्वनिम स्वर और व्यंजन स्वनिम कहलाते हैं। (√)

(iv) स्वनिमों के वर्गीकरण का एकमात्र आधार है उनका परिवेशगत वितरण। (X)

(v) स्वनिमों के वर्गीकरण में वितरण, समानता और एकरूपता पर विचार किया जाता है। (√)

(vi) हिन्दी में ड तथा ड़ दो भिन्न स्वनिम हैं। (X)

(vii) स्वनिम-निर्धारण में व्यतिरेकी युग्म महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। (√)

(viii) खंडेतर स्वनिमों के अन्तर्गत तान, अनुतान, अनुनासिकता, संहिता आदि आते हैं। (√)

(ix) उच्चारण प्रयत्न के आधार पर हमें स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, संघर्षी, अन्तस्थ आदि स्वनिम प्राप्त होते हैं। (√)

(x) हिन्दी की स्वनिम व्यवस्था में 11 स्वर स्वनिम माने जाते हैं। (X)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(i) हिन्दी ध्वनि-व्यवस्था में ज़-ज तथा फ़-फ किस प्रकार के वितरण में हैं ?

(क) व्यतिरेकी

(ख) परिपूरक

(ग) मुक्त

सही उत्तर (ग)

(ii) हिन्दी में कितने नासिक्य स्वनिम हैं ?

(क) पाँच

(ख) तीन

(ग) चार

सही उत्तर (ग)

(iii) स्वनिम निर्धारण में कौनसा वितरण निर्णायक होता है ?

(क) परिपूरक वितरण

(ख) व्यतिरेकी वितरण

(ग) मुक्त वितरण

सही उत्तर (ख)

(iv) अवरोध की प्रकृति के आधार पर स-श व्यंजनों का कौन-सा वर्गीकरण सही है ?

(क) स्पर्श-संघर्षी

(ख) अल्पप्राण-महाप्राण

(ग) घोष-अघोष

सही उत्तर (क)

(v) अनुनासिकता और संहिता किस प्रकार के स्वनिम हैं ?

(क) खंडीय स्वनिम

(ख) आगत

(ग) खंडेतर स्वनिम

सही उत्तर (ख)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) स्वनिम विज्ञान
(ii) खंडीय तथा खंडेतर स्वनिम
(iii) स्वनिम निर्धारण की विधि
(iv) हिन्दी के स्वर स्वनिम
(v) हिन्दी के व्यंजन स्वनिम

2.3.12. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. उदय नारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2012 (तेरहवाँ संस्करण)
3. देवेन्द्रनाथ शर्मा, (1966) भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, नई दिल्ली
5. राजमणि शर्मा, आधुनिक भाषाविज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007 (चतुर्थ संस्करण)
6. राजमल बोरा, (सं.) भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2007 (दूसरा संस्करण)
7. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली
8. ध्वनिविज्ञान, हरीश शर्मा (सं. : महेन्द्र शर्मा) अमित प्रकाशन, गाज़ियाबाद (1998)

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : ध्वनि विज्ञान

इकाई – 4 : ध्वनि विज्ञान और स्वनिम विज्ञान, निष्पादक स्वनिम विज्ञान, निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा प्रभेदक लक्षण, हिन्दी की स्वनिमिक समस्याएँ – अ लोप की समस्या, उत्क्षिप्त ध्वनियाँ, नासिक्य ध्वनियों की समस्या, महाप्राण ध्वनियों की समस्या

इकाई की रूपरेखा

2.4.1 उद्देश्य
2.4.2 प्रस्तावना
2.4.3 निष्पादक स्वनिम विज्ञान
2.4.3.1 प्रभेदक अभिलक्षण
2.4.3.2 द्विचर अभिलक्षण
2.4.3.3 स्वनिमिक नियम
2.4.3.4 स्वनिमिक नियमों की लेखन विधि
2.4.4 स्वनिम विज्ञान और निष्पादक स्वनिम विज्ञान में अन्तर
2.4.5 हिन्दी की स्वनिमिक समस्याएँ
2.4.5.1 अ-लोप की समस्या
2.4.5.2 उत्क्षिप्त ध्वनियों (ड़ तथा ढ़) की समस्या
2.4.5.3 नासिक्य ध्वनियों की समस्या
2.4.5.4 महाप्राण ध्वनियों की समस्या
2.4.6 पाठ-सार
2.4.7 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
2.4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.4.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. निष्पादक (प्रभेदक) स्वनिम विज्ञान की अवधारणा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
ii. स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान का अन्तर समझ सकेंगे।
iii. प्रभेदक लक्षणों से क्या तात्पर्य है, यह जान पाएँगे।
iv. हिन्दी की स्वनिमिक समस्याओं का परिचय प्राप्त करेंगे।
v. अ-लोप की समस्या को जान पाएँगे।
vi. उत्क्षिप्त ध्वनियों (ड़, ढ़) की स्वनिमिक स्थिति को समझ सकेंगे।
vii. हिन्दी में अनुस्वार और अनुनासिकता का अन्तर जान पाएँगे।
viii. हिन्दी में महाप्राणीकरण की समस्या को समझ सकेंगे।

2.4.2. प्रस्तावना

भाषाविज्ञान के संरचनावादी सम्प्रदाय के अन्तर्गत भाषा की जिस विश्लेषण तकनीक को अपनाकर भाषा की ध्वनि-संरचना का अध्ययन किया जाता है, उसे स्वनिम विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। स्वनिम विज्ञान में हम ध्वनियों की परिवेशगत तथा व्यतिरेकगत स्थिति का अध्ययन करते हैं। अर्थभेद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उच्चारणगत अन्तरों को स्वनिम की संज्ञा दी जाती है। एक स्वनिम का उच्चारण सभी स्थितियों में एक सा हो, ऐसा आवश्यक नहीं। स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत किसी भाषा के स्वनिमों तथा संस्वनों का अध्ययन किया जाता है। पिछले पाठ में हमने स्वनिम विज्ञान के बारे में विस्तार से पढ़ा, स्वनिम तथा संस्वन के अन्तर को जाना और स्वनिम निर्धारण की विधि का भी परिचय प्राप्त किया।

इस पाठ में हम निष्पादक स्वनिम विज्ञान (Generative Phonology) के बारे में जानेंगे तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान एवं स्वनिम विज्ञान के अन्तर को समझने का प्रयास करेंगे। निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत प्रभेदक लक्षणों से क्या तात्पर्य है, इसके बारे में भी जानेंगे। साथ ही हिन्दी की स्वनिमिक समस्याओं – विशेषकर अ-लोप, उत्क्षिप्त ध्वनियों (ड़ तथा ढ़), नासिक्य ध्वनियों तथा महाप्राणीकरण की समस्याओं को विस्तारपूर्वक जानेंगे।

2.4.3. निष्पादक स्वनिम विज्ञान

परम्परागत स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत स्वनिम और संस्वन का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन भाषाविज्ञान के संरचनावादी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से प्रभावित रहा है। इस सम्प्रदाय के अनुसार प्रत्येक भाषा की संरचना उसी भाषा की विशेषता होती है। आगे चलकर इस विचारधारा में परिवर्तन आया। संरचनावादी मान्यताओं पर निष्पादक व्याकरण के प्रतिपादक भाषाविद् नोम चॉम्सकी ने प्रश्न-चिह्न लगा दिए और भाषा अध्ययन में एक नई दृष्टि का प्रतिपादन किया।

निष्पादक व्याकरण से प्रभावित स्वनिम विज्ञान अर्थात् निष्पादक स्वनिम विज्ञान में ध्वनियों की संरचना के दो स्तर माने जाते हैं। एक बाह्य संरचना का स्तर जो उच्चारण में परिलक्षित होता है और दूसरा अमूर्त आन्तरिक संरचना का स्तर। अमूर्त आन्तरिक संरचना को बाह्य संरचना में परिवर्तित करने वाले कुछ स्वनिमिक नियम होते हैं। आगे चलकर निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिम की सत्ता को ही नकार दिया गया। अब स्वनिमिक स्तर पर और भी अधिक अमूर्त स्तर की संकल्पना प्रस्तुत की गई। इस स्तर को व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर (Systematic Phonemic Level) कहा गया। आगे चलकर इसे विवरणात्मक स्वनिमीय स्तर (Taxonomic or Autonomous phonemic level) का नाम दिया गया। व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर का सम्बन्ध भाषा-भाषी के मन में रहने वाली अमूर्त अभिव्यक्तियों के साथ होता है।

2.4.3.1. प्रभेदक अभिलक्षण – निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत

किसी भी स्वनिम को अविभाज्य नहीं माना जा सकता। स्वनिमों में अन्तर केवल प्रभेदक अभिलक्षणों के आधार पर ही किया जा सकता है। वास्तव में किसी भी ध्वनि को विभिन्न अभिलक्षणों के आधार पर ही अलग दिखाया जा सकता है। आइए, हिन्दी की क-वर्ग ध्वनियों तथा उनके अभिलक्षणों को लें –

क	स्पर्शी	कण्ठ्य	अघोष	अल्पप्राण
ख				महाप्राण
ग			सघोष	अल्पप्राण
घ				महाप्राण

इस प्रकार प्रत्येक ध्वनि या स्वनिम एकाधिक अभिलक्षणों का गुच्छ होता है तथा ये अभिलक्षण ही उनमें परस्पर भिन्नता प्रकट करते हैं। जैसे 'क' स्वनिम कण्ठ्य – स्पर्शी – अघोष – अल्पप्राण है और उसकी 'ग' से उसकी भिन्नता उसके घोषत्व के अभिलक्षण से प्रकट होती है। 'क' और 'ग' का अन्तर घोषत्व के प्रभेदक अभिलक्षण के कारण ही है। इसी प्रकार 'क' और 'ख' का अन्तर प्राणत्व के प्रभेदक अभिलक्षण के कारण है।

2.4.3.2. द्विचर अभिलक्षण

स्वनिमिक नियमों को स्पष्ट करने के लिए अभिलक्षणों को आधार बनाया गया। उदाहरण के लिए यदि हम कहें कि 'क' व्यंजन अघोष है और 'ग' व्यंजन सघोष हैं, तो हम वस्तुतः दो अलग-अलग अभिलक्षणों का प्रयोग करते हैं। निष्पादक स्वनिम विज्ञान के प्रतिपादकों ने एक ही अभिलक्षण के साथ घन (+) तथा ऋण (-) का चिह्न लगाकर दो-दो अभिलक्षणों को स्पष्ट किया। इसके अनुसार [+घोष] का अर्थ होगा सघोष और [-घोष] का अर्थ होगा अघोष। इसी प्रकार [+प्राणत्व] का अर्थ होगा, 'महाप्राण' और [-प्राणत्व] का अर्थ होगा, 'अल्पप्राण'। इस प्रकार निष्पादक स्वनिम विज्ञान में एक ही मूल्य के साथ घन (+) तथा ऋण (-) का चिह्न लगाकर हम दो अभिलक्षणों को स्पष्ट कर सकते हैं। ऐसे अभिलक्षण द्विचर अभिलक्षण (Binary features) कहलाते हैं।

2.4.3.3. स्वनिमिक नियम

अमूर्त आन्तरिक अभिव्यक्तियों को मूर्त स्वनिकीय स्तर की अभिव्यक्तियों में परिवर्तित करने के लिए कुछ स्वनिमिक नियमों (Phonological rules) की परिकल्पना की गई। स्वनिमिक नियम कई प्रकार के हो सकते हैं। जैसे –

(i) आगम : जब किसी शब्द के उच्चारण में किसी नई ध्वनि का आगम हो, जबकि उस शब्द की अमूर्त संरचना में वह ध्वनि न हो। हिन्दी में कुछ भाषा-भाषियों के द्वारा 'स्कूल', 'स्पष्ट' तथा 'स्थान' के

उच्चारण में 'अ' या 'इ' स्वर का आगम हो जाता है। इन शब्दों का उच्चारण अस्कूल / इस्कूल, अस्पष्ट / इस्पष्ट या अस्थान / इस्थान के रूप में मिलता है।

(ii) लोप : जब शब्द की अमूर्त संरचना में कोई ध्वनि रहती है किन्तु उच्चारण में उस ध्वनि का लोप हो जाता है। ऐसी स्थिति में शब्द की अमूर्त संरचना में उस ध्वनि को दिखाकर स्वनिक संरचना में उसका लोप दिखाया जाता है। इसके उदाहरण के रूप में हम इस इकाई में आगे अ-लोप की समस्या पर सविस्तार विचार करेंगे।

(iii) क्रम परिवर्तन : कई बार शब्दों के उच्चारण स्तर पर कुछ ध्वनियों का परस्पर क्रम बदल जाता है। जैसे 'लखनऊ' और 'वाराणसी' का उच्चारण 'नखलऊ' और 'बनारस' के रूप में मिलता है। ये परस्पर क्रम परिवर्तन के उदाहरण हैं।

(iv) अभिलक्षण परिवर्तन : इसके अन्तर्गत एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि के प्रभाव से अभिलक्षण या गुण बदल जाता है। जैसे नासिक्य व्यंजन के प्रभाव से मौखिक स्वर का सानुनासिक में बदल जाना। 'दन्त' तथा 'कम्प' से क्रमशः 'दाँत' तथा 'काँप' उच्चारण अभिलक्षण परिवर्तन के उदाहरण हैं।

(v) सन्धि : जब किसी शब्द की अन्तिम ध्वनि और दूसरे शब्द की पहली ध्वनि में उच्चारण के स्तर पर परिवर्तन होकर नई ध्वनि का विकास होता है, तब इसे सन्धि कहा जाता है। स्वर-सन्धि तथा व्यंजन सन्धि को इसके अन्तर्गत लिया जा सकता है। जैसे –

उमा + ईश	=	उमेश	(आ + ई = ए)
सत् + जन	=	सज्जन	(त् + ज = ज्ज)

2.4.3.4. स्वनिमिक नियमों की लेखन विधि

स्वनिमिक नियमों को भाषा में विस्तार से न लिखकर संक्षेप में सूत्ररूप में लिखा जाता है। पिछले पाठ में हम [ड] और [ड़] के रूप में पढ़ चुके हैं कि 'ड' का प्रयोग शब्दारम्भ तथा व्यंजन-गुच्छ के पहले सदस्य के रूप में होता है तथा 'ड़' का प्रयोग शब्द मध्य तथा शब्दान्त में किया जाता है। इस नियम को निष्पादक स्वनिम विज्ञान में सूत्र रूप में इस प्रकार लिखा जाएगा –

	[ड-]
/ ड /	[ड] / व्यंजन-गुच्छ में
	[ड़] / स्वर -- स्वर

2.4.4. स्वनिम विज्ञान और निष्पादक स्वनिम विज्ञान में अन्तर

परम्परागत स्वनिम विज्ञान में स्वनिमों तथा संस्वनों का अध्ययन करना ही प्रमुख विषय होता है। जो ध्वनियाँ समान वातावरण में परस्पर व्यतिरेक में आकर अर्थ-परिवर्तन की क्षमता रखती हैं, वे स्वनिम कहलाती हैं। एक ही स्वनिम के विभिन्न परिवेशगत उच्चारण संस्वन कहलाते हैं।

निष्पादक स्वनिम विज्ञान और परम्परागत स्वनिम विज्ञान दोनों में स्वनिम का अध्ययन किया जाता है। स्वनिम विज्ञान में स्वनिम को एक अविभाज्य इकाई के रूप में परिभाषित किया जाता है परन्तु निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिम को अविभाज्य इकाई नहीं माना जाता। निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिमों में अन्तर प्रभेदक अभिलक्षणों के आधार पर किया जाता है। परम्परागत स्वनिम विज्ञान में स्वनिमिक स्तर को अमूर्त माना गया है किन्तु निष्पादक स्वनिम विज्ञान में इसे और अधिक अमूर्त माना जाता है।

2.4.5. हिन्दी की स्वनिमिक समस्याएँ

हिन्दी की कुछ स्वनिमिक विशेषताओं या समस्याओं की ओर विद्वानों का ध्यान गया है। इन समस्याओं में अ-लोप की समस्या एक केन्द्रीय समस्या है। इसके अतिरिक्त अनुस्वार, मूर्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनियों और महाप्राण ध्वनियों की समस्याओं के बारे में चर्चा की जाती है। अ-लोप के नियम का प्रभाव पूरी हिन्दी ध्वनि व्यवस्था पर पड़ता है। उपर्युक्त अन्य समस्याओं पर विचार भी अ-लोप के नियम के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है। अब इन समस्याओं के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं।

2.4.5.1. अ-लोप की समस्या

हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था का यह एक महत्त्वपूर्ण नियम है। यद्यपि इसके सम्बन्ध में परम्परागत व्याकरण में संकेत मिल जाता है किन्तु आधुनिक दृष्टि से इस पर विचार सन् 1970 के आसपास ही हुआ है। इसके बारे में विचार करने वाले रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, नारंग और बेकर, मंजरी ओ हाला, पण्डित आदि विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हिन्दी शब्दों के उच्चारण में विभिन्न परिवेशों में हमें अ-लोप की स्थिति दिखाई देती है। अ-लोप की दो प्रमुख स्थितियाँ मिलती हैं – (i) शब्दान्त में अ-लोप तथा (ii) शब्द मध्य में अ-लोप।

(i) शब्दान्त में अ-लोप : इन शब्दों की वर्तनी पर ध्यान दीजिए – लेखक, जन, सड़क, मान, काजल, नगर, कसम।

ऊपरी तौर पर अर्थात् वर्तनी के स्तर पर हमें इन शब्दों में अन्त में व्यंजन दिखाई देता है किन्तु उच्चारण के स्तर हमें इनका उच्चारण क्रमशः लेखक्, जन्, सड़क्, मान्, काजल्, नगर्, कसम् के रूप में मिलता है अर्थात् इन शब्दों के अन्त में अ ध्वनि का लोप हो जाता है।

हिन्दी में निष्पादक स्वनिम विज्ञान पर सर्वप्रथम लिखने वाले प्रो० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार उक्त सभी शब्द स्वनिमिक स्तर पर स्वरान्त हैं तथा निम्नलिखित नियम के अनुसार इनके उच्चारण में अन्त में आने वाले अ का लोप हो जाता है। नियम को सूत्र रूप में इस प्रकार से लिखा जा सकता है –

अ 0 / ------ #

(यहाँ लोप को 0 तथा शब्दान्त को # से दर्शाया गया है)

श्रीवास्तवजी की इस मान्यता से कुछ भाषाविद् सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार जब शब्दान्त में 'अ' का उच्चारण होता ही नहीं तब उसकी सत्ता क्यों मानी जाए। शब्दान्त में 'अ' की सत्ता मानने के सम्बन्ध में इन तर्कों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इन शब्दों को देखें –

	क	ख
वर्ग – 1	चाल	चालक
	मान	मानक
वर्ग – 2	मंच	मंचन
	अंक	अंकन
वर्ग – 3	नीर	नीरज
	पंक	पंकज

उपर्युक्त उदाहरणों में 'ख' वर्ग के सभी शब्द 'क' वर्ग के शब्दों से व्युत्पन्न हैं। जो विद्वान् यह मानते हैं कि चाल, मान, मंच आदि शब्द स्वरान्त हैं, उनके अनुसार 'ख' वर्ग के शब्द '+क', '+न', '+ज' प्रत्ययों से बने हैं। जो विद्वान् मूल शब्दों को व्यंजनान्त मानते हैं, उनके अनुसार प्रत्ययों का स्वरूप '+अक', '+अन', '+अज', '+अल' आदि होगा। ऐसी स्थिति में वारि, विधि, मंजु आदि शब्दों से व्युत्पन्न शब्द क्रमशः इस प्रकार होंगे।

मूल शब्द	प्रत्यय	व्युत्पन्न शब्द
वारि	+ अज	वारिअज
विधि	+ अक	विधिअक
मंजु	+ अल	मंजुअल

किन्तु जो व्युत्पन्न शब्द मिलते हैं, वे हैं – वारिज, विधिक, मंजुल। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्युत्पादक प्रत्यय '+क', '+न', '+ज', '+ल' ही हैं तथा मूल शब्द को स्वरान्त तथा उच्चारण में शब्दान्त में अ-लोप ही माना जाना चाहिए।

हिन्दी शब्दों के अन्त में अ-स्वर की सत्ता को मानने का एक अन्य कारण हिन्दी की अपनी ध्वनि व्यवस्था है। हिन्दी में अनुस्वार की ध्वनि को लें। हिन्दी में अनुस्वार सदैव स्वर के बाद आता है और यदि उसके बाद की ध्वनि कोई व्यंजन होती है तब अनुस्वार शब्द में आगे आने वाले व्यंजन उस वर्ग के नासिक्य व्येजन का रूप ग्रहण कर लेता है। निम्नलिखित उदाहरणों पर विचार करें –

कंघा – कङ्घा, चंचल – चञ्चल, डंडा – डण्डा, अंधा – अन्धा, चंपत – चम्पत

यदि अनुस्वार शब्द के अन्त में आता है तो वह हमेशा 'म' के रूप मे ही उच्चरित होता है। जैसे – स्वयं (स्वयम्), अहं (अहम्) आदि।

यदि 'सम' के बाद अन्य व्यंजनों से शुरू होने वाले शब्द हों तो उपर्युक्त अनुस्वार का नियम लागू नहीं होगा। जैसे –

सम + कक्ष = समकक्ष
सम + नाम = समनाम
सम + रूपता = समरूपता
सम + दर्शिता = समदर्शिता

हिन्दी शब्दों की मूल संरचना में 'अ' स्वर की सत्ता को स्वीकार करने में हिन्दी की मूर्धन्य ध्वनियों को भी आधार बनाया जा सकता है। इसके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक चर्चा 'मूर्धन्य ध्वनियों की समस्या' के अन्तर्गत की जाएगी।

(ii) शब्द-मध्य में अ-लोप की स्थिति : अनेक शब्दों में शब्द-मध्य में भी अ-लोप के उदाहरण मिलते हैं। इन उदाहरणों को देखें –

क – वर्ग	ख- वर्ग	उच्चरित शब्द
चिपकना	चिपका	चिप्का
खिसकना	खिसका	खिस्का
खनक	खनका	खन्का
औरत	औरतों	और्तों
नमक	नमकीन	नम्कीन
निकल	निकला	निक्ला
समझ	समझना	समझ्ना
खबर	खबरें	खब्रें
चमक	चमकी	चम्की

शब्द मध्य में अ-लोप के नियम को इस प्रकार लिखा जा सकता है –

अ -- 0 / VC ---- CV

उक्त नियम से तात्पर्य है कि शब्द के मध्य में आने वाले 'अ' का लोप होगा जिसके पहले एक स्वर तथा व्यंजन हो तथा बाद में व्यंजन तथा दीर्घ स्वर हो। यह नियम निम्नलिखित स्थितियों में लागू नहीं होगा।

(क) शब्द के पहले अक्षर में अ-लोप नहीं होगा। जैसे – नली, गली, शती, कभी आदि। इन शब्दों में अ-स्वर से पहले केवल एक व्यंजन आ रहा है जबकि इसे लागू होने के लिए स्वर तथा व्यंजन दोनों होनेचाहिए।

(ख) द्वित्व व्यंजनों पर भी यह नियम लागू नहीं होगा। जैसे – किस्मत, नुक्कड़, मक्खी, बिस्कुट, मच्छर, अक्षर आदि।

(ग) यदि शब्द में रूपिम सीमा है तब भी यह नियम लागू नहीं होगा। जैसे बेखबर, अनसुनी, अटपटी, हमसफ़र शब्दों में बे, अन, अट, हम उपसर्ग हैं।

2.4.5.2. उत्क्षिप्त ध्वनियों (ड़ तथा ढ़) की समस्या

हिन्दी में सभी ट-वर्गीय ध्वनियाँ मूर्धन्य ध्वनियाँ कहलाती हैं। ट, ठ, ड, ढ और ण तो स्पर्श ध्वनियाँ हैं और ड़ तथा ढ़ ध्वनियाँ उत्क्षिप्त हैं। इन दोनों को स्वतन्त्र स्वनिम मानने के बारे में भाषाविदों में मतभेद है। वस्तुतः ये दोनों उत्क्षिप्त ध्वनियाँ ड और ढ ध्वनियों के परिवर्त (Variants) हैं। परम्परागत स्वनिम विज्ञान में इन ध्वनियों को कुछ विद्वान् स्वतन्त्र स्वनिम की संज्ञा देते हैं तो कुछ इन्हें ड और ढ का संस्वन मानते हैं। इनको स्वतन्त्र स्वनिम मानने वाले अंग्रेज़ी तथा संस्कृत शब्दों के आधार पर न्यूनतम युग्मों का तर्क प्रस्तुत करते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

अंग्रेज़ी		**हिन्दी**	
मूड	(म+ऊ+ड+अ)	पेड़ा	(प्+ए+ड़्+आ)
बाडिस	(ब्+आ+ड्+इ+स्+अ)	बाड़ा	(ब्+आ+ड़्+आ)

संस्कृत		**हिन्दी**	
आडम्बर	(आ+ड्+अ+म्+ब्+अ+र+अ)	झाड़ू	(झ्+आ+ड़्+ऊ)
तडिग	(त्+आ+ड्+इ+ग्+अ)	खाड़ी	(ख्+आ+ड़्+ई)

उपर्युक्त उदाहरणों में ड और ड़ को दो स्वरों के बीच प्रयुक्त दिखाया गया है। किन्तु यह तुलना मान्य नहीं है, क्योंकि किसी भाषा की स्वनिमिक व्यवस्था को उसी भाषा की सामग्री के आधार पर ही स्पष्ट किया जाना चाहिए।

ड – ड़ तथा ढ – ढ़ के प्रयोग की परिवेशगत समानता दिखाने के लिए कुछ इस प्रकार के उदाहरण भी प्रस्तुत किये जाते हैं –

नि+डर (न्+इ+ड्+अ+र)
बे+ढब (ब्+ए+ढ्+अ+ब)
लड़का (ल+ड़+क्+आ)
खुरचन (ख्+उ+र्+च+अ+न)

उपर्युक्त उदाहरणों में पहले तथा दूसरे क्रम के उदाहरण व्युत्पन्न शब्दों के हैं और रूपिम सीमा के कारण इन पर नियम लागू नहीं होता। तीसरे तथा चौथे क्रम के उदाहरणों में शब्द-मध्य स्थिति में अ-लोप हुआ है।

निष्पादक स्वनिम विज्ञान के सिद्धान्त के अन्तर्गत रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने ड / ढ की समस्या पर वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है। उनके अनुसार ड़ / ढ़ व्यंजनों का अस्तित्व शब्द की बाह्य संरचना में हैं। शब्द की आन्तरिक संरचना में ये ड / ढ ही हैं और दो स्वरों के बीच आने से इनका उच्चारण ड़ / ढ़ हो जाता है। शब्द-युग्मों में भी इसी तथ्य को स्पष्ट किया गया है। जैसे ढाई – अढ़ाई, बुड्ढा – बूढ़ा आदि।

2.4.5.3. नासिक्य ध्वनियों की समस्या

नासिक्य ध्वनियों से अभिप्राय उन ध्वनियों से है, जिनके उच्चारण में वायु मुख विवर के साथ-साथ नासिका विवर से भी बाहर निकलती है। इस प्रकार सभी मौखिक स्वर भी नासिक्य हो सकते हैं। पाँचों वर्गों के अन्तिम व्यंजन (ङ, ञ, ण, न, म) नासिक्य व्यंजन हैं।

नासिक्य ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं – (i) अनाश्रित नासिक्य ध्वनियाँ और (ii) आश्रित नासिक्य ध्वनियाँ।

(i) अनाश्रित नासिक्य ध्वनियाँ : हिन्दी में न, म और ण अनाश्रित नासिक्य व्यंजन हैं। ये परस्पर व्यतिरेक के कारण स्वनिमिक स्तर वाले व्यंजन हैं। न और म तो आदि, मध्य और अन्त तीनों परिवेशों में प्रयुक्त होते हैं किन्तु ण आदि स्थिति में प्रयुक्त नहीं होता। म और न व्यंजनों के महाप्राण रूपों के भी व्यतिरेकी युग्म प्राप्त होते हैं। जैसे, कुमार – कुम्हार, काना – कान्हा।

(ii) आश्रित नासिक्य ध्वनियाँ : इनके अन्तर्गत अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियाँ आती हैं। अनुस्वार उन नासिक्य ध्वनियों के वर्ग को कहते हैं जो अपनी उच्चारणात्मक प्रकृति में अपने परिवेश पर आश्रित होते हैं। स्वनिमिक व्यवस्था के सन्दर्भ में उसकी प्रकृति आर्की स्वनिम

/N*/ की होती है। विभिन्न परिवेशों में वह विभिन्न रूपों में (ङ, ञ, ण, न, म के रूप में) प्रतिफलित होता है। हिन्दी में अनुस्वार को बिंदी के रूप में संकेतित किया जाता है।

हिन्दी में अनुस्वार दो परिवेशों में मिलता है – (i) शब्दान्त में तथा (ii) व्यंजन-पूर्व।

(i) शब्दान्त में (V ----#) अनुस्वार हमेशा म के रूप में उच्चरित होता है।

(ii) व्यंजन-पूर्व (V-----C) इस स्थिति में अनुस्वार अपने परवर्ती व्यंजन से प्रभावित होता है। दूसरे शब्दों में अनुस्वार का मूल्य परवर्ती व्यंजन के वर्ग के नासिक्य व्यंजन का हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी –

पंक ~ पङ्क, पंख ~ पङ्ख, चंगा ~ चङ्गा, कंघा ~ कङ्घा	(ङ)
पंच ~ पञ्च, पंछी ~ पञ्छी, मंजुल ~ मञ्जुल, झंझा ~ झञ्झा	(ञ)
कंटक ~ कण्टक, डंठल ~ डण्ठल, डंडा ~ डण्डा	(ण)
अंत ~ अन्त, पंथ ~ पन्थ, बिंदी ~ बिन्दी, गंध ~ गन्ध	(न)
कंपन ~ कम्पन, गुंफन ~ गुम्फन, बिंब ~ बिम्ब, स्तंभ ~ स्तम्भ	(म)

उक्त दोनों नियमों को इस प्रकार लिखा जा सकता है –

(i) अनुस्वार (N*) --> [नासिक्य - द्व्योष्ठ्य] / स्वर ----- #

(अनुस्वार जब शब्दान्त स्थिति में आता है, तब उसका मूल्य म होता है।)

(ii) अनुस्वार (N*) ---> [नासिक्य – तुल्य स्थानीय] / स्वर ----व्यंजन

(व्यंजन-पूर्व स्थिति में इसका मूल्य तुल्य-स्थानीय नासिक्य व्यंजन का होता है।)

अनुस्वार के ये नियम अंतरा-रूपिमिक तथा अंतर-रूपिमिक स्थिति में लागू होते हैं। जैसे –

(i) अंतरा-रूपिमिक स्थिति –

शंका	~	शङ्का
चंचल	~	चञ्चल
खंडन	~	खण्डन
पंचक	~	पञ्चक
स्वयं	~	स्वयम्

(ii) अंतर-रूपिमिक स्थिति –

सं (सम्) + तुलन	~	सन्तुलन

सं (सम्) + जय	~	सञ्जय
सं (सम्) + बल	~	सम्बल
सं (सम्) + गीत	~	सङ्गीत
सं (सम्) + हार	~	सङ्हार
सं (सम्) + मान	~	सम्मान
अहं (अहम्) + कार	~	अहङ्कार

अनुनासिकता नासिक्य-रंजित स्वर का अभिलक्षण होती है। स्वर दो प्रकार के हैं – (i) मौखिक स्वर, जिनके उच्चारण में वायु मुख-विवर से निकलती है। इनके उच्चारण में कौआ ऊपर की ओर उठा रहता है जिससे नासिका-विवर का रास्ता बंद रहता है। (ii) अनुनासिक स्वर, जिनके उच्चारण में वायु मुख-विवर के साथ-साथ नासिका-विवर से भी निकलती है।

हिन्दी के सभी मौखिक स्वर अनुनासिक हो सकते हैं। अनुनासिकता को चन्द्रबिन्दु के माध्यम से संकेतित किया जाता है। किन्तु जब स्वर के ऊपर कोई मात्रा होती है, तब चन्द्रबिन्दु के स्थान पर बिन्दु लगाया जाता है। जैसे सिंचाई, खींचना, सेंक, भैंस, गोंद, चौंक आदि में मात्रा रेखा के ऊपर होने के कारण चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल बिन्दु का प्रयोग हुआ है।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने अनुनासिकता के तीन सन्दर्भों की चर्चा की है। ये हैं – (क) विभक्तिपरक सन्दर्भ, (ख) स्वनिमिक सन्दर्भ तथा (ग) स्वनिक सन्दर्भ।

(क) विभक्तिपरक सन्दर्भ : यहाँ अनुनासिकता का सम्बन्ध व्याकरणिक प्रकार्य से है। संज्ञाओं के बहुवचन रूप, सामान्य एवं तिर्यक बहुवचन और क्रियापदों के उदाहरण इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे – लड़कियाँ, लड़कों, थीं, पड़ीं आदि।

(ख) स्वनिमिक सन्दर्भ : इसके अन्तर्गत मौखिक तथा अनुनासिक स्वरों के व्यतिरेकी युग्म आते हैं जो अनुनासिक स्वरों को स्वनिमिक सिद्ध करते हैं। जैसे – खासी – खाँसी, गोद – गोंद, पूछ – पूँछ आदि।

(ग) स्वनिक सन्दर्भ : इसके अन्तर्गत अनुनासिकता केवल उच्चारण के स्तर पर कार्य करती है। नासिक्य व्यंजनों के परिवेश में मौखिक स्वर अनुनासिक स्वर जैसे हो जाते हैं। जैसे – शाम ~ शाँम, दान ~ दाँन, गान ~ गाँन आदि।

2.4.5.4. महाप्राण ध्वनियों की समस्या

हिन्दी में 'ख', 'घ', 'छ', 'झ', 'ठ', 'ढ', 'थ', 'ध', 'फ', 'भ', 'न्ह', 'म्ह', 'ल्ह' ध्वनियाँ महाप्राण ध्वनियाँ हैं। इन ध्वनियों को लेकर समस्या यह है कि इन्हें अल्पप्राण व्यंजन तथा 'ह' का संयुक्त रूप माना जाए या एकल स्वनिम। कुछ भाषाविदों का मत है कि इन्हें अल्पप्राण व्यंजन तथा 'ह' का संयुक्त रूप माना जाए। वे इसके बारे में निम्नलिखित शब्दों का उदाहरण देते हैं, जिनमें महाप्राणत्व की सत्ता व्यंजन-गुच्छ के रूप में मिलती है।

सब + ही = सभी
अब + ही = अभी
कब + ही = कभी
तब + ही = तभी

इन शब्दों में 'भ' व्यंजन 'ब' + 'ह' के संयोग का परिणाम दिखता है। इसी प्रकार की स्थिति 'न्ह' और 'म्ह' में भी दिखाई देती है। जैसे –

उन + हें = उन्हें
किन + हीं = किन्हीं
तुम + हें = तुम्हें
तुम + हीं = तुम्हीं

इसके विपरीत अनेक भाषाविद् इस मान्यता को ग़लत सिद्ध करते हैं और वे महाप्राण ध्वनियों को एकल व्यंजन सिद्ध करते हैं। इसके लिए वे निम्नलिखित आधारों की चर्चा करते हैं –

(क) अ-लोप के नियम के आधार पर

अ-लोप के नियम के बारे में हम विस्तारपूर्वक जान चुके हैं। इस सम्बन्ध में हम यहाँ पूर्ववर्ती तथा परवर्ती महाप्राण व्यंजनों के उदाहरण लेते हैं।

(i) पूर्ववर्ती महाप्राण व्यंजन

मूल शब्द	व्युत्पन्न शब्द (अ-लोप वाले)
पाठक (प्+आ+ठ्+अ+क)	पाठकों (प्+आ+ठ्+क्+ओं)
कथन (क्+अ+थ्+अ+न)	कथनों (क्+अ+थ+न्+ओं)
उछल (उ+छ्+अ+ल)	उछली (उ+छ्+ल्+ई)

(ii) परवर्ती महाप्राण व्यंजन

मूल शब्द	व्युत्पन्न शब्द (अ-लोप वाले)
सूझ (स्+ऊ+झ्)	सूझना (स्+ऊ+झ्+न्+आ)
लिख (ल्+इ+ख्)	लिखता (ल्+इ+ख्+त्+आ)

ऊपर दिए गए उदाहरणों में हम देख सकते हैं कि मूल तथा व्युत्पन्न शब्दों में महाप्राण व्येंजन होने पर भी अ-लोप हो रहा है। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि महाप्राण ध्वनियाँ व्यंजन गुच्छ (अल्पप्राण+ह) नहीं हैं, बल्कि एकल व्यंजन ही हैं।

(ख) शब्दारम्भ में व्यंजन-गुच्छ के आधार पर

हिन्दी की आक्षरिक संरचना के अनुसार शब्दारम्भ में दो व्यंजन से अधिक नहीं आते। यही नियम महाप्राण व्यंजनों के साथ बने व्यंजनगुच्छों पर भी लागू होता है। इन उदाहरणों पर विचार कीजिए –

प्रणाम (प्+र+अ+ण+आ+म्)
स्नान (स्+न्+आ+न्)
क्यारी (क्+य्+आ+र्+ई)
ब्याह (ब्+य्+आ+ह)
ख्याति (ख्+य्+आ+त्+इ)
भ्रांति (भ्+र्+आ+न्+त्+इ)
ध्वज (ध्+व्+अ+ज्)
ध्रुव (ध्+र्+उ+व्)

य़दि हम महाप्राण व्यंजनों को व्यंजन गुच्छ मानें को शब्दारम्भ में तीन व्यंजनों वाले व्यंजन-गुच्छों का होना हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध होगा। इस प्रकार महाप्राण ध्वनियों को एकल व्यंजन मानना ही संगतहै।

(ग) क्रिया धातुओं के आधार पर

हिन्दी में क्रियाओं में अन्त में 'ना' से पहले कभी भी व्यंजन गुच्छ नहीं आते, केवल एकल व्यंजन ही आते हैं। महाप्राण व्यंजनों से बननेवाली क्रियाएँ जैसे – देखना, सूँघना, पूछना, बूझना, उठना, बैठना आदि सिद्ध करती हैं कि महाप्राण व्यंजन एकल स्वनिम हैं।

2.4.6. पाठ-सार

इस पाठ में हमने निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा परम्परागत स्वनिम विज्ञान का अन्तर समझा। परम्परागत स्वनिम विज्ञान में ध्वनियों की परिवेशगत तथा व्यतिरेकगत स्थिति का अध्ययन किया जाता है। अर्थभेद की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उच्चारणगत अन्तरों को स्वनिम की संज्ञा देते हैं। एक स्वनिम का उच्चारण सभी स्थितियों में एक-सा हो, ऐसा आवश्यक नहीं। स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत किसी भाषा के स्वनिमों तथा संस्वनों का अध्ययन किया जाता है। संस्वन मूर्त स्तर होता है जो उच्चारण में परसक्षित होता है और स्वनिम अमूर्तस्तर।

निष्पादक स्वनिम विज्ञान में ध्वनियों की संरचना के दो स्तर माने जाते हैं। एक बाह्य संरचना का स्तर जो उच्चारण में परिलक्षित होता है और दूसरा अमूर्त आन्तरिक संरचना का स्तर। अमूर्त आन्तरिक संरचना को बाह्य संरचना में परिवर्तित करने के लिए कुछ स्वनिमिक नियम होते हैं। आगे चलकर निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिम की सत्ता को ही नकार दिया गया। स्वनिमिक स्तर पर और भी अधिक अमूर्त स्तर की संकल्पना प्रस्तुत की गई। हमने स्वनिमिक नियमों तथा उनकी लेखन विधि के बारे में भी इस पाठ में परिचय प्राप्त किया।

निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत किसी भी स्वनिम को अविभाज्य नहीं माना जा सकता। स्वनिमों में अन्तर केवल प्रभेदक अभिलक्षणों के आधार पर ही किया जाता है। पाठ में दो प्रकार के अभिलक्षणों की चर्चा की गई है – प्रभेदक अभिलक्षण तथा द्विचर अभिलक्षण।

हिन्दी की कुछ स्वनिमिक समस्याओं के बारे में भी इस पाठ में चर्चा की गई है। इन समस्याओं में अ-लोप की समस्या एक केन्द्रीय समस्या है। अ-लोप के नियम का प्रभाव पूरी हिन्दी ध्वनि व्यवस्था पर पड़ता है।

हिन्दी शब्दों के उच्चारण में हमें अ-लोप की दो प्रमुख स्थितियाँ मिलती हैं – (i) शब्दान्त में अ-लोप तथा (ii) शब्द मध्य में अ-लोप। इन दोनों स्थितियों के सन्दर्भ में सोदाहरण तथा सविस्तार चर्चा इस पाठ में की गई है। साथ ही अन्य स्वनिमिक समस्याओं – उत्क्षिप्त ध्वनियों की समस्या पर विचार करते हुए ड़ और ढ़ की स्वनिमिक स्थिति का विस्तारपूर्वक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। ड़ और ढ़ का प्रयोग स्वर मध्य तथा शब्दान्त में किया जाता है, शब्दारम्भ में तथा व्यंजन-गुच्छों के प्रथम सदस्य के रूप में ड और ढ का प्रयोग मिलता है। उत्क्षिप्त ध्वनियों की समस्या स्वनिमिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए अ-लोप के सन्दर्भ का भी उपयोग किया गया है।

नासिक्य ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं – (i) अनाश्रित नासिक्य ध्वनियाँ और (ii) आश्रित नासिक्य ध्वनियाँ। हिन्दी में न, म और ण अनाश्रित नासिक्य व्यंजन हैं। परस्पर व्यतिरेक के कारण इनकी स्वनिमिक स्थिति असंदिग्ध है। न और म तो आदि, मध्य और अन्त तीनों परिवेशों में प्रयुक्त होते हैं किन्तु ण आदि स्थिति में प्रयुक्त नहीं होता। म और न व्यंजनों के महाप्राण रूपों के भी व्यतिरेकी युग्म प्राप्त होते हैं। आश्रित नासिक्य ध्वनियों के अन्तर्गत अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनियाँ आती हैं। अनुस्वार उन नासिक्य ध्वनियों के वर्ग को कहते हैं जो अपनी उच्चारणात्मक प्रकृति में अपने परिवेश पर आश्रित होते हैं। स्वनिमिक व्यवस्था के सन्दर्भ में उसकी प्रकृति आर्की स्वनिम /N*/ की है, जो विभिन्न परिवेशों में विभिन्न रूपों में (ङ, ञ, ण, न, म के रूप में) प्रतिफलित होता है।

अन्त में महाप्राण ध्वनियों की समस्या पर चर्चा की गई है। महाप्राण ध्वनियों को एक ध्वनि माना जाए या अल्पप्राण + ह के रूप में माना जाए। इस सम्बन्ध में सविस्तार चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है कि हिन्दी में महाप्राण ध्वनियाँ एकल ध्वनियाँ हैं, अल्पप्राण ह के रूप में नहीं। इसके निर्धारण में भी अ-लोप का निर्णायक आधार उपयोग किया गया है।

2.4.7. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए –

(i) निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिम को और अधिक अमूर्त इकाई माना जाता है। (√)

(ii) निष्पादक स्वनिम विज्ञान में ध्वनियों की संरचना के दो स्तर माने जाते हैं। (√)

(iii) निष्पादक स्वनिम विज्ञान में ध्वनियों की संरचना के दो स्तर माने जाते हैं। (√)

(iv) स्वनिमों का वर्गीकरण उनके प्रभेदक लक्षणों के आधार पर किया जाता है। (X)

(v) हिन्दी की स्वनिमिक समस्याओं में अ-लोप की समस्या एक प्रमुख समस्या है। (√)

(vi) अ-लोप केवल शब्दान्त में पाया जाता है। (X)

(vii) हिन्दी में 'ड' तथा 'ड़' को परिवेशगत अन्तर के कारण एक ही स्वनिम माना जाता है। (√)

(viii) भाषा में स्वनिक रूप मूर्त रूप होता है और स्वनिमिक रूप अमूर्त । (√)

(ix) अ-पूर्व स्थिति में यदि व्यंजन गुच्छ हो तो अ-लोप का नियम लागू नहीं होता। (√)

(x) निष्पादक स्वनिम विज्ञान का उल्लेख परम्परागत व्याकरण में भी मिलता है। (X)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(i) इन शब्दों में किसमें अ-लोप की स्थिति मिलती है –

(क) विकसित

(ख) विकास

(ग) उल्लेख

सही उत्तर (क)

(ii) हिन्दी में उत्क्षिप्त ध्वनियाँ हैं –

(क) ट, ठ, ड, ढ

(ख) ड़ और ढ़

(ग) ष

सही उत्तर (ख)

(iii) घोषत्व और प्राणत्व किस प्रकार के अभिलक्षण हैं ?

(क) प्रभेदक

(ख) द्विचर

(ग) परिवेशगत

सही उत्तर (ख)

(iv) निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अन्तर्गत ड़ तथा ढ़ को क्या माना जा सकता है ?

(क) स्वनिम

(ख) संस्वन

(ग) उपर्युक्त दोनों

सही उत्तर (ख)

(v) निष्पादक स्वनिम विज्ञान में अमूर्त आन्तरिक ध्वनि संरचना को मूर्त बाह्य संरचना में परिवर्तन किसके आधार पर किया जाता है ?

(क) प्रभेदक अभिलक्षण

(ख) द्विचर अभिलक्षण

(ग) स्वनिमिक नियम

सही उत्तर (ग)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) अ-लोप की समस्या

(ii) मूर्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनियाँ

(iii) प्रभेदक लक्षण

(iv) स्वनिमिक नियमों की लेखन-विधि

(v) निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा परम्परागत स्वनिम विज्ञान में अन्तर

2.4.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. उदय नारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2012 (तेरहवाँ संस्करण)
3. देवेन्द्रनाथ शर्मा, (1966) भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, नई दिल्ली
5. राजमणि शर्मा, आधुनिक भाषाविज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007 (चतुर्थ संस्करण)
6. राजमल बोरा, (सं.) भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2007 (दूसरा संस्करण)
7. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली
8. ध्वनिविज्ञान, हरीश शर्मा (सं. : महेन्द्र शर्मा) अमित प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद (1998)
9. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, हिंदी भाषा संरचना के विविध आयाम, राधाकृष्ण, नई दिल्ली (1995)

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/

❖❖❖

खण्ड – 2 : ध्वनि विज्ञान

इकाई – 5 : ध्वनि परिवर्तन : कारण, परिवर्तन तथा ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.5.1 उद्देश्य
2.5.2 प्रस्तावना
2.5.3 ध्वनि परिवर्तन का स्वरूप
2.5.4 ध्वनि परिवर्तन के कारण
  2.5.4.1 आन्तरिक कारण
    2.5.4.1.1 प्रयत्न लाघव
    2.5.4.1.2 लघूकरण की प्रवृत्ति
    2.5.4.1.3 अनुकरण की अपूर्णता
    2.5.4.1.4 शीघ्र भाषण
    2.5.4.1.5 अशिक्षा के कारण अशुद्ध प्रयोग
    2.5.4.1.6 भावावेश
    2.5.4.1.7 बलाघात
    2.5.4.1.8 भ्रामक व्युत्पत्ति
  2.5.4.2 बाह्य कारण
    2.5.4.2.1 भौगोलिक कारण
    2.5.4.2.2 सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ
      2.5.4.2.2.1 ऐतिहासिक कारण
      2.5.4.2.2.2 सांस्कृतिक कारण
      2.5.4.2.2.1 साहित्यिक कारण
    2.5.4.2.3 स्वाभाविक विकास
    2.5.4.2.4 लिपि दोष
    2.5.4.2.5 सादृश्य या समानता
2.5.5 ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ
  2.5.5.01 आगम
  2.5.5.02 लोप
  2.5.5.03 ध्वनियों का स्थान परिवर्तन या वर्ण-विपर्यय
  2.5.5.04 अनुनासिकीकरण
  2.5.5.05 समीकरण
  2.5.5.06 विषमीकरण
  2.5.5.07 महाप्राणीकरण
  2.5.5.08 अल्पप्राणीकरण
  2.5.5.09 घोषीकरण

2.5.5.10 अघोषीकरण
2.5.5.11 ऊष्मीकरण
2.5.5.12 स्वर-भक्ति
2.5.6 पाठ-सार
2.5.7 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
2.5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.5.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. ध्वनि परिवर्तन से क्या तात्पर्य है, यह जान पाएँगे।
ii. ध्वनि परिवर्तन का स्वरूप समझ सकेंगे।
iii. ध्वनि परिवर्तन के आन्तरिक तथा बाह्य कारणों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। और
iv. ध्वनि परिवर्तन की कौन-कौन सी दिशाएँ अथवा प्रकार हैं, इनका परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

2.5.2. प्रस्तावना

भाषा परिवर्तनशाल है। उन्नीसवीं शताब्दी में भाषा में होने वाले परिवर्तनों का सविस्तार एवं गहराई से अध्ययन किया गया था। इसी शताब्दी के अन्तिम 25 वर्षों में भाषाविदों के एक वर्ग – युवा वैयाकरणों ने यह दावा किया था कि ध्वनि परिवर्तन नियमित होते हैं, इसमें कोई अपवाद नहीं होता। बीसवीं शताब्दी में भी भाषाविज्ञानियों की रुचि इस ओर आकर्षित हुई तथा इस सम्बन्ध में किये गए अध्ययनों से कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन हुआ।

भाषा का प्रमुख अंग ध्वनि है। इसी के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान होता है। ध्वनि परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है, जिसके अन्तर्गत समय के अन्तराल में भाषा की ध्वनियों में हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है।

भाषा परिवर्तन के कई कारणों तथा दिशाओं के बारे में भाषाविदों द्वारा चर्चा की गई है। ध्वनि परिवर्तन के कारणों को दो भागों में बाँटा जाता है। आभ्यन्तर अथवा आन्तरिक कारण तथा बाह्य कारण। वक्ता और श्रोता से सम्बद्ध कारणों को आन्तरिक कारण कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों को बाह्य कारण माना जाता है। आभ्यन्तर कारणों के अन्तर्गत प्रयत्न लाघव, लघूकरण की प्रवृत्ति, अनुकरण की अपूर्णता, शीघ्र भाषण, अशिक्षा, भावावेश तथा व्यंग्योक्ति, बलाघात, भ्रामक व्युत्पत्ति आदि को लिया जाता है। बाह्य कारणों में भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक-सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कारणों पर विचार किया जाता है। इनके अतिरिक्त भाषा का स्वाभाविक विकास, लिपि-दोष, सादृश्य आदि भी ध्वनि परिवर्तन को प्रभावित करते हैं। आगत ध्वनियों का प्रभाव भी ध्वनि परिवर्तन पर निश्चित रूप से पड़ता है।

ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत स्वनिक तथा स्वनिमिक दोनों प्रकार के परिवर्तन सम्मिलित होते हैं। ध्वनि परिवर्तन हमेशा स्वनिक परिवर्तन के रूप में शुरू होते हैं। बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेते हैं। उदाहरण के तौर पर, 'ख़', 'ग़', 'ज़' और 'फ़' ध्वनियों का विकास हिन्दी के अरबी-फारसी सम्पर्क के कारण हुआ। धीरे-धीरे ये ध्वनियाँ हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था में सम्मिलित हो गईं। आधुनिक हिन्दी में 'ख़' और 'ग़' का तो 'ख' और 'ग' में आत्मसातीकरण हो गया किन्तु 'फ़' और 'ज़' को अंग्रेजी सम्पर्क के कारण अपना उच्चारण सुरक्षित रखने के लिए बल मिला है।

भाषा सम्पर्क के अतिरिक्त मुखसुख या प्रयत्नलाघव भी ध्वनि परिवर्तन का एक प्रमुख कारण बताया जाता है। 'सत्य' से 'सच्च' और फिर 'सच्च' से 'सच', 'कर्म' से 'कम्म' और फिर 'कम्म' से 'काम', 'प्रचार' से 'परचार' आदि इसके उदाहरण हैं। अशिक्षा व अज्ञान के कारण भी कुछ शब्दों की ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे – 'गार्ड' से 'गारद', 'लैंटर्न' से 'लालटेन', 'गोस्वामी' से 'गोसाई' आदि।

सादृश्य को भी ध्वनि परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारण कारण माना गया है। 'द्वादश' के सादृश्य पर 'एकादश' तथा 'पैंतालीस' के सादृश्य पर 'सैंतालीस' में अनुनासिकता का आगम इसी के कुछ उदाहरण हैं।

कुछ ध्वनि परिवर्तन समाज भाषावैज्ञानिक अर्थात् सामाजिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होते हैं। इस दिशा में लेबाव के ध्वनि परिवर्तन की सामाजिक अभिप्रेरणा के अध्ययन से समाज भाषाविज्ञान की नींव पड़ी। हिन्दी में बहन / बहिन. भाड़ा / भारा, 'ह' से पहले तथा बाद के 'अ' का 'ऐ' के रूप में उच्चारण पश्चिमी हिन्दी अथवा मानक हिन्दी का एक प्रमुख लक्षण है जबकि पूर्वी हिन्दी में इसका उच्चारण 'अ' ही रहता है।

ध्वनि परिवर्तन के कारणों के साथ-साथ ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं अथवा प्रकारों की भी चर्चा की जाती है। ये हैं – आगम, लोप, विपर्यय, अनुनासिकीकरण, समीकरण, विषमीकरण, महाप्राणीकरण, अल्पप्राणीकरण, घोषीकरण, अघोषीकरण, ऊष्मीकरण तथा स्वर-भक्ति। ध्वनि परिवर्तन के स्वरूप, कारणों तथा दिशाओं की इस पाठ में सविस्तार चर्चा की जाएगी।

2.5.3. ध्वनि परिवर्तन का स्वरूप

भाषा में परिवर्तनशीलता का चक्र हमेशा चलता रहता है। भाषा परिवर्तन का आरम्भ ध्वनि परिवर्तन से होता है। ध्वनि परिवर्तन काफ़ी हद तक नियमित होते हैं। किसी भी ध्वनि परिवर्तन का आरम्भ प्रवृति के रूप में होता है, किन्तु जब वह व्यापक या स्थायी बन जाता है, तब वह नियम बन जाता है। उदाहरण के तौर पर हम भारोपीय भाषा के 'स' ध्वनि के इरानी में 'ह' ध्वनि में परिवर्तन के नियम को ले सकते हैं। जैसे – 'सप्त' से 'हफ़्त'। शुरुआत में 'स' का 'ह' के रूप में उच्चारण करने की प्रवृति रही होगी, बाद में वह स्थिर हो गई होगी।

ध्वनि परिवर्तन की गति बहुत धीमी होती है। 'चतुर्वेदी' से 'चौबे', 'द्विवेदी' से 'दुबे' होने में कई सदियाँ लगी होंगी। ध्वनि परिवर्तन आस-पास की ध्वनियों से नियन्त्रित होता है। ध्वनियों की स्थिति, ध्वनियों का रूप,

आस-पास की ध्वनियों की स्थिति आदि कई बातें ध्वनि परिवर्तन के सन्दर्भ में देखनी होंगी। जैसे 'श्मश्रु' के 'श्रु' का 'छ' (मूँछ) में परिवर्तन होता है किन्तु 'अश्रु' के 'श्रु' का 'सू' (आँसू) में परिवर्तन हम देखते हैं। इसी प्रकार 'कर्म', 'धर्म' का 'काम' और 'धाम' के रूप में विकास हम देखते हैं किन्तु 'मर्म' का 'माम' नहीं होता।

कोई भी ध्वनि परिवर्तन सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं होता। किसी भाषा के ध्वनि सम्बन्धी नियम उसी भाषा के किसी काल विशेष पर लागू होते हैं। यह नियम भाषा के सभी क्षेत्र पर लागू हो, ऐसा आवश्यक नहीं। वह नियम भाषा के किसी क्षेत्र विशेष पर लागू हो सकता है।

2.5.4. ध्वनि परिवर्तन के कारण

ध्वनि परिवर्तन के कारणों को दो भागों में बाँटा जाता है – (i) आभ्यन्तर अथवा आन्तरिक कारण तथा (ii) बाह्य कारण। वक्ता और श्रोता से सम्बद्ध कारणों को आन्तरिक कारण अन्य कारणों को बाह्य कारण माना जाता है।

2.5.4.1. आन्तरिक कारण / आभ्यन्तर कारण

2.5.4.1.1. प्रयत्न लाघव

आभ्यन्तर कारणों में सबसे महत्त्वपूर्ण कारण प्रयत्न लाघव या मुखसुख माना जाता है। प्रयत्न लाघव से तात्पर्य है, 'अधिक श्रम न करना'। यह मानव का सहज स्वभाव है कि वह कम से कम श्रम के द्वारा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है। 'ओझा' से 'झा' का विकास इसी का उदाहरण है। कुछ विद्वान् प्रयत्न लाघव को उच्चारण-सौकर्य भी कहते हैं। प्रयत्नलाघव ही आगम, लोप, समीकरण, महाप्राणीकरण, घोषीकरण आदि ध्वनि परिवर्तन के प्रकारों अथवा दिशाओं के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। 'वह' से 'वै' तथा 'यह' से 'यै' प्रयत्नलाघव के उदाहरण माने जा सकते हैं।

2.5.4.1.2. लघूकरण की प्रवृत्ति

लम्बे शब्दों को लघु या संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति काफ़ी मिलती है। अंग्रेज़ी के पूरे नाम के स्थान पर प्रथम अक्षर का प्रयोग करने तथा 'भारत-यूरोपीय' से 'भारोपीय' शब्द का विकास इसी प्रवृत्ति के उदाहरण हैं।

2.5.4.1.3. अनुकरण की अपूर्णता

कई बार वाग्दोष या अज्ञान के कारण कुछ शब्दों का अनुकरण ठीक से नहीं हो पाता। बच्चे सामान्यतया 'र' का उच्चारण 'ल' के रूप में करते हैं। 'राम' को 'लाम', 'रोटी' को 'लोती' के रूप में उच्चरित करते हैं। इसी प्रकार अंग्रेज़ी शब्दों जैसे – 'कोर्ट' को 'कोट', 'इंस्पैक्टर' को 'सिपट्टर', 'ऑर्डर्ली' को 'अर्दली' के रूप में उच्चरित किया जाता है।

2.5.4.1.4. शीघ्र भाषण

शीघ्र बोलने के कारण भी ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। इसमें बीच में आनेवाली ध्वनियों का लोप हो जाता है। जैसे – 'किसने' का 'किन्ने', 'उन्होंने' का 'उन्ने', 'अब ही' का 'अभी', 'तब ही' का 'तभी' आदि शीघ्र भाषण के उदाहरण हैं।

2.5.4.1.5. अशिक्षा के कारण अशुद्ध प्रयोग

अशिक्षा अथवा अज्ञान के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। 'लैंटर्न' से 'लालटेन', 'गार्ड' से 'गारद', 'मास्टर साहब' से 'मास्साब', 'गोस्वामी' से 'गोसाईं' इसके उदाहरण माने जा सकते हैं।

2.5.4.1.6. भावावेश

प्रेम, क्रोध आदि भावावेश में आकर शब्दों की ध्वनियों में परिवर्तन देखा गया है। जैसे – 'राम' का 'रामू', 'कृष्ण' का 'कान्हा' या 'कन्हैया', 'बेटा' का 'बिटवा', 'बाबू' का 'बबुआ' आदि भावावेश के उदाहरण हैं।

2.5.4.1.7. बलाघात

बलाघात के कारण पास की ध्वनियों पर प्रभाव पड़ता है। 'स्कंध' से 'कंधा', 'स्थाली' से 'थाली', 'स्तन' से 'थन' आदि इसके उदाहरण हैं।

2.5.4.1.8. भ्रामक व्युत्पत्ति

भ्रम के कारण शब्दों में पाई जाने वाली ध्वन्यात्मक समानता को व्युत्पत्तिमूलक समानता मान लिया जाता है। जैसे अवधी भाषा में 'नियरे' (नज़दीक, निकट, पास) शब्द अंग्रेज़ी के 'नियर' शब्द से व्युत्पन्न है। भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण ऐसी धारणा बन सकती है। अरबी शब्द 'इन्तिकाल' से 'अन्तकाल', 'मैक्समूलर' से 'मोक्षमूलर', 'गोडाउन' से 'गोदाम' की व्युत्पत्ति भ्रामक व्युत्पत्ति के उदाहरण माने जासकते हैं।

2.5.4.2. बाह्य कारण

2.5.4.2.1. भौगोलिक कारण

भौगोलिक कारणों से ध्वनियों के उच्चारण में परिवर्तन होता है। पहाड़ी क्षेत्रों में 'स' के स्थन पर 'श' के बोलने की प्रवृत्ति पाई जाती है। जैसे – समाचार का शमाचार, सन्देश का शंदेश, सूरत का शूरत आदि। संस्कृत की 'स' ध्वनि फ़ारसी में 'ह' हो जाती है। जैसे सिन्धु का हिन्दु, सप्ताह का हफ़्ता आदि।

2.5.4.2.2. सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ

2.5.4.2.2.1. ऐतिहासिक कारण

भाषा परिवर्तन के सम्बन्ध में इतिहास का बहुत स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। ऐतिहासिक कारणों में विदेशी आक्रमण, राजनैतिक उथल-पुथल तथा व्यापारिक सम्बन्धों को लिया जा सकता है। हिन्दी में हज़ारों शब्द अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी आदि के प्रभाव के कारण आ गए। इन शब्दों के कारण हिन्दी में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। हिन्दी में पहले क़, ख़, ग़, ज़ और फ़ ध्वनियाँ नहीं थीं। इस तरह अरबी-फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी सम्पर्क के कारण आज ज़ तथा फ़ ध्वनियाँ हिन्दी ध्वनि-व्यवस्था का अंग बन गई। अन्य ध्वनियाँ – क़, ख़ तथा ग़ का क, ख, ग में आत्मसातीकरण हो गया है।

2.5.4.2.2.2. सांस्कृतिक कारण

भारत में ही नहीं, अनेक देशों में कई बार सांस्कृतिक जागरण हुए हैं जब रूढ़ि तथा पुरातनता को त्यागकर नवीनता को अपनाया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने विशेषकर पंजाब में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए क्षेत्र तैयार किया था। वहाँ उर्दू के बदले हिन्दी के पढ़ने-लिखने तथा तत्सम शब्दों के प्रयोग की पृष्ठभूमि तैयार की गई। इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण के कारण भाषा के स्वरूप में भी बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। अब हिन्दी की प्रकृति की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

2.5.4.2.2.1. साहित्यिक कारण

भाषा को परिवर्तित करने में कभी-कभी साहित्यिक प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। मध्ययुगीन भारतीय साहित्य इसका प्रमाण है। भक्ति आन्दोलन के कारण लेखक संस्कृत से लोक भाषाओं पर उतर आए। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि कवियों ने हिन्दी की कई बोलियों में ऐसी साहित्य साधना की जो अदृष्टपूर्व थी। इसने भाषा के सभी अंगों को प्रभावित किया।

2.5.4.2.3. स्वाभाविक विकास

काल के प्रभाव से भाषा का स्वाभाविक विकास अथवा परिवर्तन होता है। इस सम्बन्ध में हम आगे ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

2.5.4.2.4. लिपि दोष

विभिन्न लिपियों की अपूर्णता के कारण भी भाषा की ध्वनियों में परिवर्तन देखा जाता है। अंग्रेज़ी ध्वनि-वर्तनी व्यवस्था के प्रभाव के कारण हिन्दी शब्दों – राम, कृष्ण, शिव तथा बुद्ध का उच्चारण क्रमशः रामा, कृष्णा,

शिवा तथा बुद्धा हो गया। इसी प्रकार उर्दू लिपि-वर्तनी के प्रभाव के कारण आर्य का आर्या, प्रचार का परचार, सुरेन्द्र का सुरिंदर या सुरेंदर हो जाता है।

2.5.4.2.5. सादृश्य या समानता

इसके आधार पर भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। आगत ध्वनियों का प्रभाव भी ध्वनि परिवर्तन पर निश्चित रूप से पड़ता है। जैसे – पैंतालीस के सादृश्य पर सैंतालीस में अनुनासिकता का आना, तुभ्यम् से तुझे के सादृश्य पर मह्यम् से मुझे में 'उ' का आगम हो गया, क्योंकि मह्यम् में 'उ' नहीं है।

2.5.5. ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ

ध्वनि परिवर्तन से सम्बन्धित कई दिशाओं की चर्चा की जाती है। ये हैं – आगम, लोप, विकार, विपर्यय, समीकरण, विषमीकरण, स्वर-भक्ति आदि। ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत कभी भाषा में किन्हीं स्वरों का लोप हो जाता है तो किन्हीं का आगम। कभी असमान व्यंजन-गुच्छों का समान व्यंजन-गुच्छों में परिवर्तन होता है तो कभी समान व्यंजन-गुच्छों का सरलीकरण। ध्वनि परिवर्तन दो प्रकार के माने जाते हैं – अनियमित तथा नियमित। ध्वनि परिवर्तन पहले स्वनिक परिवर्तन के रूप में प्रारम्भ होता है, बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेता है। स्वनिक परिवर्तन को अनियमित ध्वनि परिवर्तन तथा स्वनिमिक परिवर्तन को नियमित ध्वनि परिवर्तन कहा जाता है। जब ऐसे ध्वनि परिवर्तन के नियम पूरे भाषा समुदाय द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं तब उन्हें नियमित ध्वनि परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है। ध्वनि परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों अथवा दिशाओं के बारे में नीचे विस्तारपूर्वक दिया जा रहा है।

2.5.5.01. आगम

उच्चारण की सुविधा के लिए शब्द के आदि, मध्य या अन्त में कुछ ध्वनियों को जोड़ दिया जाता है, इसे आगम कहते हैं। इसके तीन भेद माने जाते हैं – आदि स्वरागम, मध्य स्वरागम तथा अन्त्य स्वरागम।

(क) आदि स्वरागम : उच्चारण की सुविधा के लिए विशेष रूप से संयुक्त व्यंजनों से शुरू होने वाले शब्दों के आरम्भ में स्वर का आगम हो जाता है। आदि स्वरागम के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

स्त्री	से	इस्त्री
स्कूल	से	इस्कूल
स्तुति	से	अस्तुति
स्टेशन	से	इस्टेशन
स्थिर	से	अस्थिर
स्थायी	से	अस्थायी

कुछ शब्दों में आदि व्यंजनागम के भी उदाहरण मिलते हैं – जैसे 'ओष्ठ' से 'होंठ', 'उल्लास' से 'हुल्लास'। यहाँ शब्द के आदि में 'ह' व्यंजन का आगम हुआ है।

(ख) मध्य स्वरागम : संयुक्त व्यंजन की उच्चारण असुविधा को दूर करने के लिए कभी-कभी स्वर का आगम शब्द के मध्य में होता है। इसके उदाहरण के रूप में इन शब्दों को लिया जा सकता है –

मर्म	से	मरम
कर्म	से	करम
पूर्व	से	पूरब
धर्म	से	धरम
प्रसाद	से	परसाद
हुक्म	से	हुकम

मध्य स्वरागम की तरह मध्य व्यंजनागम के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे – 'ताम्र' से 'तांबड़ा' (मराठी में), 'आलस' से 'आलकस', 'सुनर' से 'सुन्दर' आदि।

(ग) अन्त्य स्वरागम : उच्चारण सुविधा के लिए शब्द के अन्त में कोई स्वर जोड़ा जाता है। संस्कृत के हलन्त शब्दों को प्राकृत में अकारान्त करने की प्रवृत्ति मिलती है। जैसे –

महत्	से	महन्त
हनुमत्	से	हनुमन्त
ज्वलत्	से	ज्वलन्त
गच्छत्	से	गच्छन्त

अन्त्य स्वरागम की तरह कुछ उदाहरण अन्त्य व्यंजनागम या अन्त्य अक्षरागम के भी मिलते हैं। जैसे – बाल से बालक, बाला से बालिका, मुख से मुखड़ा आदि।

अन्त्य स्वरागम के साथ-साथ अन्त्य व्यंजनागम के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं जैसे – 'कल' से 'कल्ह', 'पुरवा' से 'पुरवाह'।

स्वर, व्यंजन आगम के साम्य के अनुसार अक्षरागम के भी उदाहरण मिल जाते हैं। आदि अक्षरागम के उदाहरण के रूप में 'फजूल' से 'बेफजूल', 'मध्य' अक्षरागम के उदाहरण के रूप में 'आलस' से 'आलकस' तथा अन्त्य अक्षरागम के उदाहरण के रूप में 'बला' से 'बलाय' को लिया जा सकता है।

2.5.5.02. लोप

कभी-कभी प्रयत्नलाघव या उच्चारण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है। यह लोप भी तीन प्रकार का होता है। स्वर लोप, व्यंजन लोप तथा अक्षर लोप। इनके भी अदि, मध्य तथा अन्त को आधार पर तीन-तीन भेद किये जाते हैं।

आदि स्वरलोप –

अनाज	से	नाज
अगर	से	गर
अभ्यंतर	से	भीतर
अहाता	से	हाता
अमीर	से	मीर
एगारह	से	ग्यारह

मध्य स्वरलोप –

असली	से	अस्ली
नकली	से	नक्ली

अन्त्य स्वरलोप –

घर	से	घर्
शिला	से	सिल्

आदि व्यंजनलोप –

स्थाली	से	थाली
स्थान	से	थान
श्मशान	से	मसान
स्कंध	से	कंधा

मध्य व्यंजनलोप –

रात्रि	से	रात
जाति	से	जात
पंक्ति	से	पाँत
श्रेष्ठ	से	सेठ

अन्त्य व्यंजनलोप –

निम्ब	से	नीम
ऊष्ट्र	से	ऊँट
दण्डिन्	से	दण्डी
उपाध्याय	से	उपधिया

अक्षर लोप : जब दो समान ध्वनियाँ एकसाथ आती हैं, तब उच्चारण की सुविधा के लिए उनमें से एक का लोप कर दिया जाता है। 'नाककटा' से 'नकटा', 'स्वर्गगंगा' से 'स्वर्गंगा', 'खरीददार' से 'खरीदार' अक्षर लोप के उदाहरण हैं।

2.5.5.03. ध्वनियों का स्थान परिवर्तन या वर्ण-विपर्यय

विपर्यय का अर्थ है उलटना। किसी शब्द में जब दो ध्वनियों का विपर्यय हो जाता है या जब दो ध्वनियाँ आपस में स्थान बदल लेती हैं तब नये शब्द का निर्माण होता है। जैसे 'वाराणसी' शब्द से बने 'बनारस' शब्द में 'ण' ध्वनि 'न' में परिवर्तित होकर 'र' के स्थान पर तथा 'र' ध्वनि 'ण' के स्थान पर चली गई, जिससे इस नए शब्द का निर्माण हुआ। विपर्यय सामान्यतया दो कारणों से होता है – बोलने में तेज़ी से या सुनने की कमी के कारण। 'अमरूद' से 'अरमूद', 'पहुँचना' से 'चहुँपना', 'डूबना' से 'बूड़ना', 'पिशाच' से 'पिचास' आदि वर्ण-विपर्यय के उदाहरण हैं।

2.5.5.04. अनुनासिकीकरण

जब तत्सम शब्द का नासिक्य व्यंजन अनुनासिकता में बदल जाता है तो इस ध्वनि परिवर्तन द्वारा नया तद्भव शब्द बनता है। जैसे 'कम्पन' से 'काँपना', 'दन्त' से 'दाँत', 'मंजन' से 'माँजना' आदि शब्दों में नासिक्य व्यंजन के अनुनासिकता में बदलने के कारण 'काँपना', 'दाँत', 'माँजना' आदि शब्दों का विकास हुआ।

2.5.5.05. समीकरण

जब दो ध्वनियाँ पास रहने से समान हो जाती हैं तो उसे समीकरण कहा जाता है। समीकरण के दो भेद हैं – पुरोगामी समीकरण और पश्चगामी समीकरण।

(क) पुरोगामी समीकरण : जब आगे वाली ध्वनि पहले वाली ध्वनि के समान हो जाती है तब पुरोगामी समीकरण की स्थिति होती है। जैसे – 'कर्म' शब्द से 'काम' शब्द का विकास होने से पहले 'कर्म' से 'कम्म' के रूप में हुआ। इसी प्रक्रिया को उदाहरणों के अन्तर्गत 'पुत्र' से 'पुत्त', 'सप्त' से 'सत्त' आदि शब्दों को लिया जा सकता है। ये पुरोगामी समीकरण के उदाहरण हैं।

(ख) पश्चगामी समीकरण : जब पूर्ववर्ती ध्वनि पश्चवर्ती ध्वनि के समान हो जाता है, उसे पश्चगामी समीकरण कहते हैं। 'वार्ता' से 'बात', 'दुग्ध' से 'दूध', 'ऊर्णा' से 'ऊन', 'दूर्वा' से 'दूब' पश्चगामी समीकरण के उदाहरण हैं।

2.5.5.06. विषमीकरण

जब दो निकटस्थ ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई होती है तब उनमें भेद या विषमता ला दी जाती है। इस परिवर्तन को विषमीकरण कहा जाता है। जैसे – 'कंकण' से 'कंगन', 'प्रकट' से 'प्रगट' को विषमीकरण के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

2.5.5.07. महाप्राणीकरण

कभी-कभी मुख-सुख की दृष्टि से अल्पप्राण ध्वनियों को महाप्राण के रूप में उच्चरित या जाता है। जैसे – 'शुष्क' शब्द के 'क' अल्पप्राण व्यंजन का महाप्राण 'ख' में परिवर्तन होकर 'सूखा' शब्द बना। गृह' से 'धर', वेष' से 'भेष', 'परशु' से 'फरसा' महाप्राणीकरण के उदाहरण हैं।

2.5.5.08. अल्पप्राणीकरण

कभी-कभी महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण हो जाता है। जैसे – 'स्वादिष्ठ' से 'स्वादिष्ट', 'सिन्धु' से 'हिन्दु' अल्पप्राणीकरण के उदाहरण हैं।

2.5.5.09. घोषीकरण

कभी-कभी मुख-सुख के लिए अघोष ध्वनियों को घोष कर दिया जाता है। जैसे – 'शाक' से 'साग', 'शती' से 'सदी', 'नकद' से 'नगद', 'काक' से 'काग' घोषीकरण के उदाहरण हैं।

2.5.5.10. अघोषीकरण

इसमें घोष ध्वनियों को अघोष कर दिया जाता है। जैसे – 'तद्+पर' = 'तत्पर', 'उद्+कट' = 'उत्कट', 'वाग्+पति' = 'वाक्पति' आदि।

2.5.5.11. ऊष्मीकरण

इसमें कुछ ध्वनियों को ऊष्म ध्वनियों में परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे – 'केंटुम्' से 'शतम्', 'ओक्टो' से 'अष्ट' इसके उदाहरण हैं।

2.5.5.12. स्वर-भक्ति

संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा को काफ़ी असुविधा होतीहै। इस असुविधा को दूर करने के लिए संयुक्त व्यंजनों के बीच कोई स्वर रख दिया जाताहै। इस प्रक्रिया को स्वर-भक्ति कहते हैं। वैसे स्वर-भक्ति एक प्रकार का स्वरागम ही है. इसे हम ऊपर मध्य स्वरागम के रूप में देख चुके हैं। स्वर-भक्ति के उदाहरणों के रूप में 'व्रत' से 'बरत', 'सत्येन्द्र' से 'सतिंदर', 'स्नान' से 'सनान', 'स्मरण' से 'सुमिरन' आदि शब्दों का विकास देखा जा सकता है।

2.5.6. पाठ-सार

जीवन्त भाषा हमेशा परिवर्तनशाल होती है। समय के अन्तराल में भाषा के विभिन्न स्तरों – ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ आदि में परिवर्तन होता है। भाषा में परिवर्तन का अध्ययन समकालिक और द्वि-कालिक, दोनों स्तरों पर किया जाता है। ध्वनि परिवर्तन से तात्पर्य भाषा की ध्वनि व्यवस्था में परिवर्तन से है। अन्य सभी भाषा परिवर्तनों का आधार ध्वनि परिवर्तन होता है।

इस पाठ में ध्वनि परिवर्तन के स्वरूप, कारणों और दिशाओं की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। हमने जाना कि ध्वनि परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है जिसके अन्तर्गत भाषा में हुए विभिन्न परिवर्तनों के सन्दर्भ में भाषा परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है।

ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत स्वनिक (अनियमित) तथा स्वनिमिक (नियमित) दोनों प्रकार के परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि परिवर्तन हमेशा स्वनिक परिवर्तन के रूप में शुरू होते हैं, बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेते हैं।

हमने जाना कि ध्वनि परिवर्तन के दो कारण हैं – आभ्यन्तर कारण और बाह्य कारण। आभ्यन्तर कारणों के अन्तर्गत हमने प्रयत्नलाघव, लघूकरण की प्रवृत्ति, अनुकरण की अपूर्णता, शीघ्र भाषण, अशिक्षा के कारण अशुद्ध प्रयोग, भावावेश, बलाघात तथा भ्रामक व्युत्पत्ति की चर्चा की है। बाह्य कारणों के अन्तर्गत भौगोलिक कारण, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ, सादृश्य, अन्य भाषाओं का प्रभाव, स्वाभाविक विकास, लिपि दोष, भाषा का मानकीकरण व आधिनिकीकरण के बारे में हमने जाना।

ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं के अन्तर्गत हमने आगम (स्वरागम, व्यंजनागम तथा अक्षरागम), लोप (स्वरलोप, व्यंजन लोप तथा अक्षरलोप), समीकरण, विषमीकरण, महाप्राणीकरण, अल्पप्राणीकरण, घोषीकरण, अघोषीकरण, वर्ण-विपर्यय, अनुनासिकता, स्वर-भक्ति आदि के विकास के रूप में ध्वनि परिवर्तन के बारे में पढ़ा। तत्सम शब्दों में असमान व्यंजन गुच्छों का समान व्यंजन गुच्छों में परिवर्तन होता है, फिर समान व्यंजन गुच्छों के पहले ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण से व्यंजन गुच्छों का सरलीकरण हो जाताहै। आगत शब्दों के फलस्वरूप हज़ारों

शब्द अरबी-फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी से हिन्दी भाषा के शब्द-भण्डार का अंग बने हैं। स्वतन्त्र भारत में भाषा नियोजन की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत लाखों तकनीकी शब्द हिन्दी भाषा का अंग बन चुके हैं।

2.5.7. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए –

(i) ध्वनि परिवर्तन का अध्ययन भाषा परिवर्तन के अन्तर्गत किया जाता है। (√)

(ii) ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न दिशाओं का आधार प्रयत्न लाघव होता है। (√)

(iii) ध्वनि परिवर्तन हमेशा नियमित होते हैं। (√)

(iv) ध्वनि परिवर्तन का एकमात्र कारण है प्रयत्नलाघव। (X)

(v) ध्वनि परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है, जिसके अन्तर्गत समय के अन्तराल में भाषा की ध्वनियों में परिवर्तन होता है। (√)

(vi) ध्वनि परिवर्तन में स्वनिक परिवर्तन कोई विशेष भूमिका नहीं निभाते। (X)

(vii) भाषा सम्पर्क भी ध्वनि परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारक है। (√)

(viii) उच्चारण में शब्द में वर्णों के क्रम को उलटना विपर्यय कहलाता है। (√)

(ix) संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण की असुविधा को दूर करने के लिए मध्य स्वरागम को स्वर-भक्ति कहते हैं। (√)

(x) राजनैतिक-सांस्कृतिक प्रभाव के कारण भी विदेशी भाषा से ध्वनियाँ ग्रहण कर ली जाती हैं। (√)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(i) हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था में ज़ तथा फ़ ध्वनियाँ निम्नलिखित में से किसका उदाहरण है ?

(क) भौगोलिक प्रभाव
(ख) साहित्यिक प्रभाव
(ग) राजनैतिक–सांस्कृतिक सम्पर्क

सही उत्तर (ग)

(ii) भाषा परिवर्तन के लिए कौनसा आधार का काम करता है ?

(क) अर्थ परिवर्तन
(ख) लिपि परिवर्तन
(ग) ध्वनि परिवर्तन

सही उत्तर (ग)

(iii) साला, पाजी आदि शब्द रूप परिवर्तन के अन्तर्गत किस प्रक्रिया के उदाहरण हैं ?

(क) पीढ़ी परिवर्तन
(ख) भावावेश
(ग) शिष्टाचार

सही उत्तर (ख)

(iv) कर्म से काम और सप्त से सात का विकास इनमें से किस दिशा का उदाहरण है –
(क) अज्ञानता
(ख) सरलीकरण
(ग) सादृश्य

सही उत्तर (ख)

(v) पैंतालीस के आधार पर सैंतालीस में अनुनासिकता का आगम ध्वनि परिवर्तन की कौन-सी दिशा का उदाहरण है ?
(क) भावातिरेक
(ख) सादृश्य
(ग) सरलता

सही उत्तर (ख)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ
(ii) आगम तथा लोप
(iii) ध्वनि परिवर्तन के प्रमुख कारण
(iv) प्रयत्न लाघव
(v) स्वनिक परिवर्तन और स्वनिमिक परिवर्तन

2.5.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. उदय नारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2012 (तेरहवाँ संस्करण)
3. देवेन्द्रनाथ शर्मा, (1966) भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, नई दिल्ली
5. राजमणि शर्मा, आधुनिक भाषाविज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007 (चतुर्थ संस्करण)
6. राजमल बोरा, (सं.) भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2007 (दूसरा संस्करण)
7. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली
8. ध्वनिविज्ञान, हरीश शर्मा (सं. : महेन्द्र शर्मा) अमित प्रकाशन, गाज़ियाबाद (1998)

खण्ड – 3 : रूपविज्ञान (पदविज्ञान)

इकाई – 1 : रूपविज्ञान (पदविज्ञान) : स्वरूप एवं विषयवस्तु

इकाई की रूपरेखा

3.1.1 उद्देश्य
3.1.2 प्रस्तावना
3.1.3 रूपविज्ञान
3.1.4 रूपविज्ञान और पदविज्ञान
3.1.5 रूपविज्ञान की विषयवस्तु
  3.1.5.1 रूपिम, रूप और संरूप या उपरूप
  3.1.5.2 रूपिम के प्रकार
    3.1.5.2.1 मुक्त रूपिम
    3.1.5.2.2 बद्ध रूपिम
      3.1.5.2.2.1 व्युत्पादक रूपिम
      3.1.5.2.2.2 रूपसाधक रूपिम
        3.1.5.2.2.2.1 शब्द-स्थान
        3.1.5.2.2.2.2 शून्य रूपिम / सम्बन्धतत्त्व
        3.1.5.2.2.2.3 प्रत्यय
        3.1.5.2.2.2.4 स्वतन्त्र शब्द
        3.1.5.2.2.2.5 रिक्त रूप
        3.1.5.2.2.2.6 ध्वनि प्रतिस्थापन
        3.1.5.2.2.2.7 ध्वन्यात्मक आवृत्ति
        3.1.5.2.2.2.8 ध्वनि गुण
        3.1.5.2.2.2.9 युक्त
  3.1.5.3 रूपिमिक प्रक्रियाएँ
    3.1.5.3.1 व्युत्पादन
    3.1.5.3.2 रूपसाधन
  3.1.5.4 वितरण
    3.1.5.4.1 व्यतिरेकी वितरण
    3.1.5.4.2 परिपूरक वितरण
  3.1.5.5 शब्द वर्ग और व्याकरणिक कोटियाँ
  3.1.5.6 रूप-परिवर्तन की दिशाएँ और कारण
3.1.6 पाठ-सार
3.1.7 बोधात्मक प्रश्न
3.1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

3.1.1. उद्देश्य

भाषा में 'स्वनिम' से लेकर 'प्रोक्ति' तक विविध भाषिक इकाइयाँ (स्वनिम, रूपिम, शब्द / पद, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य और प्रोक्ति) पाई जाती हैं। इनमें देखा जाए तो 'पद' की स्थिति केन्द्रीय प्राप्त होती है। प्रस्तुत पाठ में 'पद' के विविध पक्षों और अन्य भाषिक इकाइयों से इसके सम्बन्ध पर प्रकाश डाला जाएगा। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. पद की संकल्पना को समझ सकेंगे।
ii. पद और शब्द में अन्तर कर सकेंगे।
iii. पद के दो मुख्य भागों 'अर्थ तत्त्व' और 'सम्बन्धतत्त्व' को जान सकेंगे।
iv. पद और वाक्य के सम्बन्ध से परिचित हो सकेंगे।

3.1.2. प्रस्तावना

भाषा सम्प्रेषण का एक माध्यम है। इसके अन्तर्गत ध्वनियों का संयोजन करते हुए विचारों का आदान-प्रदान किया जाता है। भाषा की व्यवस्था ध्वनियों के संयोजन को सार्थक रूप प्रदान करती है। यह व्यवस्था कई स्तरों पर काम करती है और इन सभी स्तरों पर प्राप्त होने वाली व्यवस्थाओं तथा उपव्यवस्थाओं का अध्ययन भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में किया जाता है। भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में भाषा का अध्ययन निम्नलिखित स्तरों पर किया जाता है –

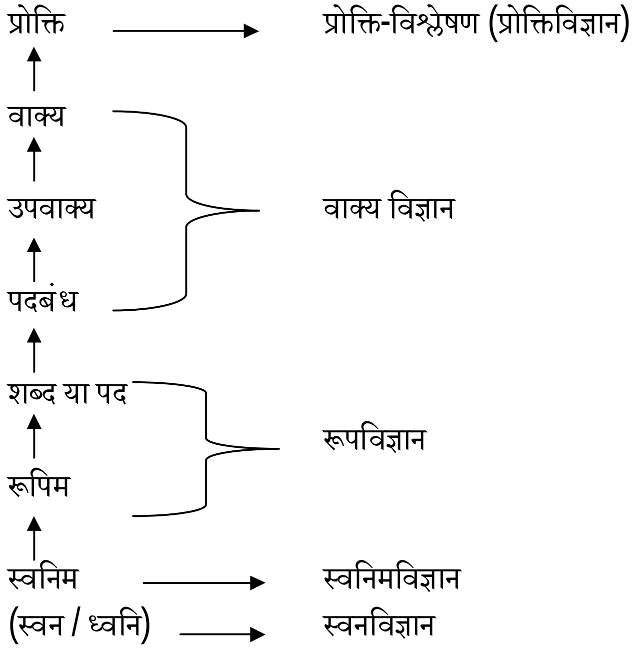

आरेख- 1.0

इनमें रूपिम से लेकर प्रोक्ति तक 'अर्थ' का विस्तार होता है, जिसका अध्ययन 'अर्थविज्ञान' में किया जाता है। अर्थ भाषा का कोई संरचनात्मक स्तर न होकर इन स्तरों में कथ्य के रूप में स्थित इकाई है। उपर्युक्त आरेख से स्पष्ट है कि भाषाविज्ञान की इन शाखाओं में 'रूपविज्ञान' का विस्तार 'रूपिम से शब्द / पद तक है।

3.1.3. रूपविज्ञान

ऊपर दिए गए आरेख से स्पष्ट है कि 'रूपविज्ञान' भाषाविज्ञान की एक केन्द्रीय शाखा है। भाषा के स्तरों में से 'रूपिम से लेकर शब्द या पद' तक का अध्ययन रूपविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। अतः रूपविज्ञान की विषयवस्तु में निम्नलिखित भाषिक इकाइयाँ आती हैं –

रूपिम

↓↑

शब्द / पद

आरेख- 2.0

रूपविज्ञान में आने वाली इन भाषिक इकाइयों के अध्ययन की दो दिशाएँ हैं, जिन्हें तीर के निशानों द्वारा दिखाया गया है। इस आरेख में 'रूपिम से शब्द / पद' की ओर जाती हुई रेखा से तात्पर्य है – रूपिमों की व्यवस्था और उनके संयोजन द्वारा शब्दों / पदों का निर्माण का अध्ययन; तथा 'शब्द / पद से रूपिम' की ओर जाती हुई रेखा से तात्पर्य है – शब्दों / पदों का रूपिमों और उनकी व्यवस्था में विश्लेषण'। इन्हें क्रमशः 'रूपनिर्माण' तथा 'रूपविश्लेषण' कहते हैं और ये दोनों ही रूपविज्ञान में अध्ययन-विश्लेषण की दो पद्धतियाँ हैं।

3.1.4. रूपविज्ञान और पदविज्ञान

रूपिमों और शब्दों / पदों की व्यवस्था का अध्ययन करने वाली इकाई के लिए हिन्दी में 'रूपविज्ञान' और 'पदविज्ञान' दो शब्द प्राप्त होते हैं,जबकि अंग्रेजी के इनके लिए 'Morphology' नाम से एक ही शब्द है। 'रूपिम' 'रूपविज्ञान' या 'पदविज्ञान' में अध्ययन-विश्लेषण की सबसे छोटी इकाई है, जबकि 'पद' सबसे बड़ी इकाई। पद की अवधारणा संस्कृत वैयाकरणों द्वारा दी गई है, जो हिन्दी व्याकरण परम्परा में भी स्वीकार की गई है। इसी कारण संस्कृत परम्परा के कुछ विद्वानों, जैसे आचार्य कपिलदेव द्विवेदी आदि ने रूपविज्ञान को पदविज्ञान भी कहा है। अंग्रेजी में 'पद' जैसी कोई इकाई नहीं है, वहाँ शब्द और पद दोनों के लिए 'Word' ही है। 'Word' एक व्यापक अवधारणा है। इसके अन्तर्गत रूपिम (मूल शब्द) से लेकर 'पद' तक की इकाइयाँ आ जाती हैं। इस कारण पश्चिमी भाषाविज्ञान 'Word' भाषा विश्लेषण की इकाई के रूप में स्थापित नहीं हो सका और 'Morpheme' (रूपिम) की अवधारणा दी गई और इसे सुपरिभाषित करते हुए इसके अध्ययन की इकाई के रूप में 'Morphology' को रखा गया। हिन्दी कुछ भाषावैज्ञानिकों द्वारा में Morpheme को रूपिम, Morph को रूप

नाम देते हुए इसके अध्ययन की इकाई को 'रूपविज्ञान' दे दिया गया जबकि संस्कृत आधारित विद्वानों ने 'पद' को केन्द्र में रखते हुए 'पदविज्ञान' नाम दिया। अतः दोनों एक ही शास्त्र के दो नाम हैं। दोनों के बीच अन्तर अध्ययन की इकाई की केन्द्रीयता तथा पश्चिमी और संस्कृत परम्पराओं के अनुकरण का है।

3.1.5. रूपविज्ञान की विषयवस्तु

रूपविज्ञान के अन्तर्गत आने वाले विषय इस प्रकार हैं –

3.1.5.1. रूपिम, रूप और संरूप या उपरूप

रूपविज्ञान में अध्ययन की मूल इकाई 'रूपिम' है। किसी भाषा की ऐसी सबसे छोटी इकाई जिसका अपना कोशीय या व्याकरणिक अर्थ होता है, रूपिम (morpheme) कहलाती है। रूपिम को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "किसी भाषा की लघुतम सार्थक इकाई रूपिम है।" रूपिमों के कोशीय अर्थ से तात्पर्य है – 'मनःमस्तिष्क में उनके लिए एक बिम्ब होना', जैसे – घर, मानव, समाज, विचार आदि; व्याकरणिक अर्थ से तात्पर्य है – कोशीय अर्थ रखने वाले शब्दों के व्याकरणिक रूप में परिवर्तन करने की क्षमता, जैसे – घर से घरों बनाने के लिए प्रयुक्त 'ों' (ओं) का कोई संकल्पनात्मक अर्थ नहीं है, किन्तु यह संज्ञा और विशेषण शब्दों को 'बहुवचन, परसर्गीय (तिर्यक)' बनाने का काम करता है, इसलिए या एक रूपिम है। रूपिम का सम्बन्ध भाषा की कथ्य (content) व्यवस्था से होता है। अर्थात् यह भाषा के शब्द और व्याकरण से जुड़ी केन्द्रीय इकाई है।

रूपिम एक अमूर्त इकाई है। यह संकल्पना के रूप में मानव मस्तिष्क में निहित होती है। जब रूपिमों का भाषा व्यवहार में प्रयोग होता है, तो उसे 'रूप' (Morph) कहते हैं। अर्थात् 'रूप' रूपों का व्यक्त या भाषा में व्यवहृत रूप 'रूप' है। दूसरे शब्दों में रूपिमों का जब भाषा व्यवहार में प्रयोग होता है तो वे 'रूप' बन जाते हैं। प्रत्येक रूपिम केवल एक ही बार मस्तिक में अंकित होता है, जबकि हम उसका प्रयोग हजारों, लाखों बार करते हैं। अतः एक ही बार मस्तिष्क में अंकित संकल्पना 'रूपिम' होगी, जबकि उसका जितनी बार प्रयोग किया जाएगा, उतने 'रूप' होंगे। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य को देखें –

जल को जीवन कहा गया है। यदि जल गया तो जीवन भी गया।

इस वाक्य में '13 + 04 = 17' रूप हैं, जबकि रूपिम '10' ही हैं, क्योंकि 'जल – 02, जीवन – 02, जाना (गया) – 03 बार प्रयुक्त हुए हैं, और 4 बार 'आ' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। इन्हें विस्तार से निम्नलिखित सूची में देखा जा सकता है –

	रूपिम	रूप
	/जल/	02
	/को/	01

	/जीवन/	02
	/कह/	01 (कहा)
	/जा /	03 (गया)
	/है/	01
	/यदि/	01
	/तो/	01
	/भी/	01
	/आ/	04 (कहा, गया)
कुल	10	17

अतः स्पष्ट है कि किसी वाक्य पाठ में जितनी बार कोई शब्द, उपसर्ग / प्रत्यय आदि का प्रयोग होगा, उतनी बार उसे 'रूप' के रूप में गिना जाएगा, जबकि रूपिम केवल एक ही बार गिना जाएगा।

जब एक से अधिक रूप एक ही अर्थ या प्रकार्य को व्यक्त करते हैं तो वे परस्पर संरूप या उपरूप (Allomorph) कहलाते हैं। प्रायः भाषाओं में ऐसा देखा जाता है कि कुछ रूप ऐसे होते हैं, जिनमें ध्वनि की दृष्टि से कुछ अन्तर होता है, किन्तु वे एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं या एक ही व्याकरणिक प्रकार्य सम्पन्न करते हैं। इस प्रकार प्राप्त होने वाले दोनों रूप आपस में संरूप या उपरूप कहलाते हैं, जैसे – 'मैं और मुझ' दो रूप हैं, जबकि दोनों का अर्थ एक है, अतः ये आपस में संरूप हैं। सामान्यतः संरूप एक समान परिवेश में नहीं आते। अर्थात् जहाँ एक रूप आता है वहाँ दूसरा नहीं आता, और जहाँ दूसरा रूप आता है वहाँ पहला नहीं आता। एक रूपिम के संरूपों में ध्वनि के स्तर पर कुछ अन्तर होता है किन्तु उनका अर्थ या प्रकार्य एक ही होता है।

3.1.5.2. रूपिम के प्रकार

किसी भी भाषा में पाए जाने वाले रूपों के मूलतः दो वर्ग किये जाते हैं – मुक्त रूपिम और बद्ध रूपिम।

3.1.5.2.1. मुक्त रूपिम

जो रूपिम प्रयोग की दृष्टि से स्वतन्त्र होते हैं वे मुक्त रूपिम कहलाते हैं। अर्थात् ऐसे रूपिम जिनका वाक्य में बिना किसी अन्य रूप की सहायता के प्रयोग होता है, मुक्त रूपिम कहलाते हैं। प्रत्येक भाषा में बहुत सारे ऐसे रूप में पाए जाते हैं, जिनके और अधिक सार्थक खण्ड नहीं किए जा सकते, किन्तु वे उसी रूप में अकेले वाक्य में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं ऐसे सभी रूपिम मुक्त रूपिम कहलाते हैं। अर्थात् मुक्त रूपिमों की दो विशेषताएँ हैं – (i) उनका और अधिक सार्थक खण्डों में विभाजन नहीं हो सकता, और (ii) वे वाक्य में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं। किसी भाषा के सभी मूल शब्द मुक्त रूपिम होते हैं, जैसे – घर, मकान, कपड़ा, झूला, मैं, जा, खा, वहाँ आदि।

3.1.5.2.2. बद्ध रूपिम

वे रूपिम जो वाक्य में अकेले स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में नहीं आते, बद्ध रूपिम कहलाते हैं। किसी भाषा के सभी उपसर्ग / प्रत्यय बद्ध रूपिम होते हैं। ये हमेशा अपने मूल शब्दों के साथ जुड़कर आते हैं। जब ये रूपिम मुक्त रूपिमों के साथ प्रयुक्त होते हैं, तो उनका अर्थ बदल देते हैं। प्रकार्य के आधार पर बद्ध रूपिमों के दो प्रकार किये गए हैं –

3.1.5.2.2.1. व्युत्पादक रूपिम (Derivational Morpheme)

वे बद्ध रूपिम जिन्हें मूल रूपों के साथ जोड़कर नए शब्दों का निर्माण किया जाता है, व्युत्पादक रूपिम कहलाते हैं। व्युत्पादक रूपिमों की सहायता से किसी मूल शब्द से नए शब्दों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार से निर्मित शब्द कोशीय शब्द होते हैं। सामान्यतः इस प्रक्रिया से निर्मित होने वाले नए शब्दों के शब्दवर्ग (Parts of Speech) मूल शब्द के शब्दवर्ग से भिन्न हो जाते हैं, जैसे –

'भारत'	(संज्ञा)	से	'भारतीय'	(विशेषण)
'भारतीय'	(विशेषण)	से	भारतीयता	(संज्ञा)

इन उदाहरणों में 'ीय और ता' बद्ध रूपिमों (प्रत्ययों) के योग से नए शब्दों का व्युत्पादन हो रहा है। इसमें देखा जा सकता है कि प्रत्येक बार व्युत्पादक रूपिम जुड़ने के बाद नए शब्द का शब्दवर्ग बदल जा रहा है। इन रूपों के मुख्यतः तीन प्रकार किये गए हैं –

(i) उपसर्ग या पूर्वप्रत्यय (Prefix) : वे रूपिम जो शब्द से पूर्व लगकर नए शब्दों का निर्माण करते हैं, उपसर्ग या पूर्वप्रत्यय कहलाते हैं, जैसे – अ + ज्ञान = अज्ञान, आ + कार =आकार। इनमें 'अ' और 'आ' उपसर्ग या पूर्वप्रत्यय हैं।

(ii) मध्यप्रत्यय (Infix) : वे रूपिम जो शब्द के बीच में लगकर नए शब्दों का निर्माण करते हैं, मध्यप्रत्यय कहलाते हैं, हिन्दी या अन्य भारतीय आर्यभाषाओं में मध्यप्रत्यय नहीं पाए जाते।

(iii) प्रत्यय या परप्रत्यय (Suffix) : वे रूपिम जो शब्द के अन्त में लगकर नए शब्दों का निर्माण करते हैं, प्रत्यय या परप्रत्यय कहलाते हैं, जैसे – अज्ञान+ ता = अज्ञानता, विकार + ी (ई) = विकारी। इनमें 'ता' और 'ी (ई)' परार्ग या परप्रत्यय हैं।

अतः स्थान की दृष्टि से भेद करते हुए संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपसर्ग का प्रयोग शब्द के आरम्भ में, मध्य प्रत्यय का प्रयोग शब्द के बीच में और प्रत्यय या परप्रत्यय का प्रयोग शब्द के अन्त में किया जाता है और नए शब्दों का निर्माण किया जाता है।

3.1.5.2.2.2. रूपसाधक रूपिम (Inflectional Morpheme) –

वे रूपिम जिन्हें मूल शब्दों के साथ जोड़कर पदों या शब्दरूपों का निर्माण किया जाता है, रूपसाधक रूपिम कहलाते हैं। रूपसाधक रूपिमों को जोड़कर शब्दों को वाक्य में प्रयोग के लायक बनाया जाता है। इन रूपिमों को जोड़ने से शब्द पद बन जाते हैं। ये रूप एक से अधिक शब्दों को एक दूसरे के साथ सहसम्बन्धित करके वाक्य का निर्माण करते हैं। इसी कारण इन्हें हिन्दी के अधिकांश विद्वानों द्वारा 'सम्बन्धतत्त्व' या 'सम्बन्धदर्शी रूपिम' कहा गया है। ये रूपिम वाक्य में व्याकरण की दृष्टि से किसी शब्द को दूसरे शब्दों के साथ जोड़ने का कार्य करते हैं। अतः इनका कार्य व्याकरणिक होता है। अर्थात् व्याकरण की दृष्टि से ये शब्दों में परस्पर योग की योग्यता उत्पन्न करते हैं, जैसे – 'राम रावण मारना' मुक्त रूपिमों का समुच्चय वाक्य नहीं हो सकता। इनके साथ 'ने', 'को' और 'आ' रूपसाधक रूपिमों का प्रयोग करके व्यावहारिक वाक्य का निर्माण किया जाता है –

राम ने रावण को मारा।

रूपसाधक रूपिम कई प्रकार के होते हैं। मुख्य रूप से इनके निम्नलिखित प्रकार किये गए हैं –

3.1.5.2.2.2.1. शब्द-स्थान (Word Position)

सभी अयोगात्मक भाषाओं में तथा कुछ योगात्मक भाषाओं की कुछ वाक्य-संरचनाओं में 'शब्द का स्थान' ही सम्बन्धतत्त्व का कार्य करता है इसलिए शब्द-स्थान को सम्बन्धतत्त्व या रूपसाधक रूप में माना गया है। इन्हें शब्द और वाक्य दोनों स्तरों पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में कुछ सामाजिक शब्दों को लें, तो उनमें शब्दों का स्थान बदलने से अर्थ बदल जाता है, जैसे – राजपुत्र = राजा का पुत्र, पुत्रराज = पुत्रों में राजा। अंग्रेजी में भी इस प्रकार के शब्द मिलते हैं जैसे लाइटहाउस = बिजली घर, हाउसलाइट = घर की बिजली। इसी प्रकार वाक्य के स्तर पर भी शब्दों के स्थान से अर्थ में अन्तर देखा जा सकता है, जैसे –

हिन्दी –	साँप मेढक खाता है।	मेढक साँप खाता है।
अंग्रेजी –	Ram killed Rawan.	Rawan killed Ram.

3.1.5.2.2.2.2. शून्य रूपिम / सम्बन्धतत्त्व (Zero Morpheme)

कुछ शब्दों का प्रयोग वाक्य में बिना किसी रूपिम या सम्बन्धतत्त्व के किया जाता है, जबकि शब्द के साथ व्याकरणिक सूचनाएँ जुड़ी रहती हैं, जैसे – 'घर गिर गया' और 'घर गिर गए'। इन दोनों वाक्यों में से पहले वाक्य में 'घर' एकवचन है, जबकि दूसरे वाक्य में 'घर' बहुवचन है; किन्तु इसमें बहुवचन का कोई प्रत्यय नहीं

दिख रहा है। इसलिए आधुनिक भाषाविज्ञान में भाषावैज्ञानिक विश्लेषण में सुविधा की दृष्टि से ऐसे शब्दों में शून्य प्रत्यय का योग मान लिया जाता है। जिसे 'शून्य सम्बन्धतत्त्व' या 'शून्य रूपिम' (Zero Morpheme) कहते हैं।

3.1.5.2.2.2.3. प्रत्यय (Affix)

शब्दों से पदों (शब्दरूपों) का निर्माण प्रत्ययों के योग से भी होता है। यहाँ पर प्रत्यय शब्द अंग्रेजी के 'Affix' के हिन्दी अनुवाद के रूप में व्यापक अवधारणा के स्तर लिया गया है। यहाँ यह तीनों प्रकार के प्रत्ययों- पूर्वप्रत्यय (उपसर्ग), मध्यप्रत्यय और परप्रत्यय (प्रत्यय) का बोध करा रहा है। कुछ भाषाओं में शब्दों का रूपसाधन 'पूर्वप्रत्यय / उपसर्ग' जोड़कर किया जाता है, जैसे – संस्कृत में 'अपठत'। इसी प्रकार कुछ भाषाओं में मध्यप्रत्यय जोड़कर रूपसाधन किया जाता है, जैसे – मुंडा भाषा में 'दल' का अर्थ है – मारना और 'दपल' का अर्थ है – परस्पर मारामारी करना। अतः यहाँ 'प' मध्यप्रत्यय का प्रयोग हुआ है। हिन्दी और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में पद (शब्दरूप) निर्माण परप्रत्ययों द्वारा होता है, जिन्हें पारम्परिक रूप से 'प्रत्यय' कहा गया है, जैसे – घर + ों = घरों, भाषा + एँ = भाषाएँ, खा + (आ) या = खाया आदि।

3.1.5.2.2.2.4. स्वतन्त्र शब्द (Free Word)

कुछ भाषाओं में कुछ रूपसाधक रूपिम में ऐसे होते हैं, जो स्वतन्त्र शब्द की तरह दिखाई पड़ते हैं, किन्तु उनका प्रकार्य मूल शब्दों के साथ व्याकरणिक सम्बन्धों को व्यक्त करना ही होता है, जैसे, हिन्दी में परसर्ग – ने, को, से, में, पर आदि।

3.1.5.2.2.2.5. रिक्त रूप (Empty Morph)

कुछ शब्दों का रूपसाधन करने पर उनमें रिक्त रूपिम आ जुड़ते हैं। इन रूपों का शब्द में ध्वनि के रूप में स्थान तो होता है किन्तु कोई अर्थ या प्रकार्य नहीं होता, जैसे – अंग्रेजी में 'Child' का बहुवचन 'Children' होता है। इसमें 'ren' का 'en' ही बहुवचन का प्रत्यय है, 'r' का प्रयोग अतिरिक्त हो गया है। अतः 'r' यहाँ ध्वन्यात्मक रूप से तो उपस्थित है, किन्तु इसका न तो कोई अर्थ है और न ही कोई व्याकरणिक प्रकार्य। इसलिए यह एक रिक्त रूपिम है।

3.1.5.2.2.2.6. ध्वनि प्रतिस्थापन (Phonetic Replacement)

कुछ भाषाओं में शब्दों की ध्वनियों में ही कुछ परिवर्तन करके रूपसाधन किया जाता है, जिसे ध्वनि प्रतिस्थापन कहते हैं। इसके तीन भेद हैं –

(i) स्वर प्रतिस्थापन : जब मूल शब्द में किसी स्वर का परिवर्तन किया जाए, जैसे – लड़का से लड़के।
(ii) व्यंजन प्रतिस्थापन : जब मूल शब्द में किसी व्यंजन में परिवर्तन किया जाए, जैसे – अंग्रेजी में send से sent का निर्माण।

(iii) स्वर व्यंजन प्रतिस्थापन : जब मूल शब्द के स्वर और व्यंजन दोनों बदल जाएँ, जैसे – हिन्दी में जाना से गया; अंग्रेजी में tell से told.

3.1.5.2.2.2.7. ध्वन्यात्मक आवृत्ति (Phonetic Reduplication)

कुछ भाषाओं में कुछ शब्दों का रूपसाधन उनकी कुछ या सभी ध्वनियों की आवृत्ति करके किया जाता है। यह शब्द के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर देखा जा सकता है, जैसे – अफ्रीका की एक भाषा में 'इरिक' का अर्थ है – 'चलना' जबकि 'इरिकरिक' का अर्थ है – 'चलता है'। अतः यहाँ 'रिक' ध्वनि की पुनरावृत्ति करते हुए शब्दरूप निर्मित किया गया है।

3.1.5.2.2.2.8. ध्वनि गुण (Suprasegmental Features)

विश्व की कुछ अयोगात्मक भाषाओं में ध्वनि गुणों, जैसे – बलाघात, सुर आदि की मात्रा में परिवर्तन करके भी शब्दों का रूपसाधन किया जाता है।

3.1.5.2.2.2.9. युक्त (clitics)

ऐसे बद्ध रूपिम जो मूल शब्द के साथ पदबंध स्तर पर आते हैं, युक्त कहलाते हैं। ये प्रत्यय की तरह शब्द में पूरी तरह से जुड़े भी नहीं होते और अलग भी नहीं होते, जैसे – अंग्रेजी में Ram's book. में प्रयुक्त 's.

3.1.5.3. रूपिमिक प्रक्रियाएँ

3.1.5.3.1. व्युत्पादन (Derivation)

जब किसी शब्द में व्युत्पादक रूपों को जोड़कर नए शब्दों का निर्माण किया जाता है, तो इसे व्युत्पादन कहते हैं। यह एक खुली प्रक्रिया है। खुली प्रक्रिया से आशय यह है कि जब किसी मूल शब्द में कोई व्युत्पादक रूपिम जोड़ा जाता है, तो एक नया शब्द निर्मित हो जाता है, किन्तु इस नए शब्द में भी दूसरे व्युत्पादक रूपिम को जोड़कर दूसरा नया शब्द बनाया जा सकता है, जैसे – भारत से भारतीय, भारतीय से भारतीयता, भारतीयता से भारतीयतावाद, भारतीयतावाद से भारतीयतावादी। इसी प्रकार एक से अधिक शब्दों को जोड़कर नया शब्द बनाने की प्रक्रिया भी व्युत्पादन है। वह मूल शब्द जिसमें व्युत्पादक रूपिम जोड़ा जाता है, प्रातिपदिक कहलाता है। व्युत्पादन की प्रक्रिया के अन्तर्गत अनेक प्रकार से शब्द-निर्माण किया जाता है। हिन्दी में प्रत्यय-योग, समास, सन्धि इसकी सुप्रसिद्ध प्रक्रियाएँ हैं।

3.1.5.3.2. रूपसाधन (Inflection)

रूपसाधन पद-निर्माण की प्रक्रिया है। पश्चिमी भाषाविज्ञान में 'शब्द' और 'पद' का भेद नहीं है। इसी कारण वहाँ रूपसाधन को शब्दरूप निर्माण के रूप में देखा जाता है। भारतीय परम्परा में 'पद' की अवधारणा दी गई है। अतः हिन्दी में रूपसाधन को पदसाधन भी कहते हैं। कोशीय शब्दों के साथ शब्दरूप बनाने वाले प्रत्ययों को जोड़कर पद बनाने की प्रक्रिया रूपसाधन या पदसाधन है। शब्दरूप बनाने वाले प्रत्ययों को रूपसाधक प्रत्यय कहते हैं। इन्हें जोड़ने से शब्दों के शब्दभेद में कोई परिवर्तन नहीं आता, लेकिन उनकी व्याकरणिक कोटि, जैसे – लिंग, वचन, पुरुष आदि में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए 'घर' से 'घरों' का निर्माण रूपसाधन है। इसमें 'घर' कोशीय शब्द है जिसके साथ 'ों' (ओं) रूपसाधक प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। इस प्रत्यय के जुड़ने के बाद 'घर' शब्द एकवचन, प्रत्यक्ष से बहुवचन, तिर्यक (परसर्गीय) में परिवर्तित हुआ है।

रूपसाधन एक बंद प्रक्रिया है। अर्थात् शब्द में एक बार रूपसाधक प्रत्यय लग जाने के बाद उसमें किसी भी प्रकार का दूसरा प्रत्यय नहीं जोड़ा जा सकता। रूपसाधक प्रत्ययों को जोड़कर शब्दों को वाक्य में प्रयोग होने लायक रूप दिया जाता है। इसीलिए इस प्रक्रिया को रूपसाधन कहते हैं। वाक्य में प्रयुक्त होने वाले शब्द 'पद' कहलाते हैं। इसलिए 'रूपसाधित शब्द' ही 'पद' हैं। रूपसाधन के कई प्रकार हैं, जैसे – शब्द को बिना कोई परिवर्तन किए उनके प्रकार्य स्थान पर रखना, शून्य रूपिम जोड़ना, उपसर्ग / प्रत्यय या स्वतन्त्र शब्द जोड़ना, प्रतिस्थापन, ध्वनि-गुण या बलाघात आदि। इन सभी की चर्चा ऊपर रूपसाधक रूपिमों के प्रकार के अन्तर्गत की जा चुकी है।

3.1.5.4. वितरण

रूपविज्ञान में रूपिमों और संरूपों के बीच दो प्रकार के वितरण की बात की गई है –

3.1.5.4.1. व्यतिरेकी वितरण

जब एक से अधिक रूपिम एक समान व्याकरणिक परिवेश में आते हैं और उनके परस्पर प्रयोग से अर्थ परिवर्तित हो जाता है, तो उनके इस वितरण को व्यतिरेकी वितरण कहते हैं। किसी भी भाषा में पाए जाने वाले सभी मूल रूपिम परस्पर व्यतिरेकी वितरण में होते हैं।

3.1.5.4.2. परिपूरक वितरण

जब एक से अधिक रूपों का समान व्याकरणिक परिवेश में प्रयोग करने से उनका अर्थ या प्रकार्य नहीं बदलता है और वे भाषा में इस प्रकार से व्यवस्थित होते हैं कि जिस परिवेश में पहला रूप आए उस परिवेश में दूसरा ना आए और जिस परिवेश में दूसरा आए उसमें पहला ना आए तो उनकी इस अवस्था को परिपूरक वितरण करते हैं। किसी भी रूपिम के सभी संरूप आपस में परिपूरक वितरण में होते हैं।

3.1.5.5. शब्द वर्ग और व्याकरणिक कोटियाँ

रूपविज्ञान के अन्तर्गत रूपिम से लेकर शब्द या पद तक का अध्ययन किया जाता है। ऐसे में रूप, रूपिम, संरूप की अवधारणा, रूपिम के प्रकार आदि के अलावा शब्द और पद की व्यवस्था को समझने के लिए ‘शब्दवर्ग या शब्दभेद’ और ‘व्याकरणिक कोटियाँ’ सभी रूपविज्ञान के विभिन्न विषय है। पारम्परिक रूप से 08 शब्दवर्गों / शब्दभेदों (Parts of Speech) की बात की गई है – संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, क्रियाविशेषण, सम्बन्धबोधक, संयोजक, विस्मयादिबोधक।

किसी भाषा में उपर्युक्त आठों शब्दवर्गों या आठ ही शब्दवर्गों का पाया जाना आवश्यक नहीं है। भाषा की संरचना और प्रकृति के आधार पर इनकी संख्या अलग-अलग हो सकती है। इसी प्रकार भाषाविज्ञान में 08 व्याकरणिक कोटियों की भी बात की गई है – लिंग, वचन, पुरुष, कारक, काल, पक्ष, वृत्ति, वाच्य।

विभिन्न भाषाओं में इनकी भी संख्या या भेदों-उपभेदों की संख्या अलग-अलग होती है।

3.1.5.6. रूप-परिवर्तन की दिशाएँ और कारण

भाषा निरन्तर गतिशील है। इसमें ध्वनि, शब्द और पद के स्तर पर समय के साथ परिवर्तन होते रहते हैं। भाषाविज्ञान का कार्य उन परिवर्तनों को रेखांकित करना भी है। भाषा में समय के साथ होने वाले परिवर्तनों के अध्ययन के लिए ‘ऐतिहासिक भाषाविज्ञान’ नाम से भाषाविज्ञान की एक स्वतन्त्र शाखा ही है। उसके अन्तर्गत भाषा के सभी स्तरों पर होने परिवर्तनों और उनके कारणों का अध्ययन भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं में किया जाता है। इस दृष्टि से रूप, रूपिम और शब्द / पद स्तर पर होने वाले परिवर्तनों तथा उनके कारणों का अध्ययन रूपविज्ञान में किया जाता है।

3.1.6. पाठ-सार

रूपविज्ञान भाषाविज्ञान की एक केन्द्रीय शाखा है। इसके अध्ययन का विस्तार ‘रूपिम’ से ‘पद’ तक है। रूपविज्ञान शब्द अंग्रेजी के Morphology का हिन्दी का अनुवाद है जिसमें अध्ययन की केन्द्रीय इकाई ‘रूपिम’ है। इसे ही संस्कृत परम्परा के कुछ विद्वानों द्वारा ‘पद’ को केन्द्र में रखते हुए पदविज्ञान भी कहा गया है। इसकी विषयवस्तु के अन्तर्गत रूपिम, रूप और संरूप की अवधारणा, रूपिम के भेद, रूपिमिक प्रक्रियाएँ, वितरण और रूप परिवर्तन की दिशाओं तथा कारणों का अध्ययन आता है। रूपिमों के मुख्यतः दो भेद किये गए हैं – मुक्त रूपिम और बद्ध रूपिम। इनके कुछ उपभेद भी देखे जा सकते हैं। व्युत्पादन और रूपसाधन रूपिमिक प्रक्रियाएँ हैं, जिनके द्वारा शब्दों और पदों का निर्माण होता है, जबकि रूपविश्लेषण इनकी विपरीत प्रक्रिया है। रूपिमों और संरूपों के अध्ययन के लिए उनके ‘व्यतिरेकी’ तथा ‘परिपूरक’ वितरण में होने और न होने को देखा जाता है। समय के साथ भाषा की रूपिमिक व्यवस्था में भी परिवर्तन होता है, जिसका ‘रूप परिवर्तन की दिशाएँ और कारण’ के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है।

3.1.7. बोधात्मक प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इनमें से कौन-सी रूपविज्ञान में अध्ययन की इकाई नहीं है –

   (क) स्वनिम

   (ख) रूपिम

   (ग) शब्द

   (घ) पद

   सही उत्तर : (क) स्वनिम

2. किसी भाषा की लघुतम अर्थवान् इकाई को क्या कहते हैं ?

   (क) शब्द

   (ख) रूपिम

   (ग) पद

   (घ) वाक्य

   सही उत्तर : (ख) रूपिम

3. उपसर्ग और प्रत्यय किस प्रकार के रूपिम हैं ?

   (क) मुक्त

   (ख) शून्य

   (ग) रिक्त

   (घ) बद्ध

   सही उत्तर : (घ) बद्ध

4. इनमें से कौन-सा शब्द रूपों / पदों के निर्माण के लिए प्रयुक्त ध्वनि प्रतिस्थापन का एक प्रकार नहीं है –

   (क) स्वर प्रतिस्थापन

   (ख) व्यंजन प्रतिस्थापन

   (ग) प्रत्यय प्रतिस्थापन

   (घ) इनमें से कोई नहीं

   सही उत्तर : (ग) प्रत्यय प्रतिस्थापन

5. निम्नलिखित में से कौन-सी एक व्याकरणिक कोटि है –

   (क) संज्ञा

   (ख) क्रिया

   (ग) सम्बन्धबोधक

   (घ) लिंग

सही उत्तर : (घ) लिंग

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा के विभिन्न स्तरों में रूपविज्ञान की विषयवस्तु को चित्र के माध्यम से प्रस्तुत कीजिए।
2. मुक्त रूपिम किसे कहते हैं ?
3. व्युत्पादक रूपिम और रूपसाधक रूपिम में अन्तर बताइए।
4. शून्य रूपिम क्या है ? एक उदाहरण के साथ चर्चा कीजिए।
5. व्यतिरेकी वितरण और परिपूरक वितरण को परिभाषित कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रूपविज्ञान और पदविज्ञान क्यों एक है ? विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. रूपिम, रूप और संरूप को अलग-अलग परिभाषित करते हुए उदाहरणसहित चर्चा कीजिए।
3. व्युत्पादक रूपिम की परिभाषा देते हुए इनके प्रकारों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
4. रूपसाधक रूपिमों में शब्दस्थान, प्रत्यय और ध्वनि प्रतिस्थापन की उदाहरण देते हुए व्याख्या कीजिए।
5. व्युत्पादन और रूपसाधन को अलग-अलग परिभाषित करते हुए इनमें अन्तर बताइए।

3.1.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. कुमार, कविता. (2006). हिंदी व्याकरण: एक नवीन दृष्टिकोण. नई दिल्ली. किताबघर।
2. तिवारी, भोलानाथ. (2009). भाषाविज्ञान. इलाहाबाद. किताब महल।
3. भोलानाथ तिवारी. (2012). भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा. नई दिल्ली. किताबघर।
4. द्विवेदी, कपिलदेव. (2002). भाषाविज्ञान और भाषाशास्त्र. चौक वाराणसी. विश्वविद्यालय प्रकाशन।
5. पाण्डेय, कैलाश नाथ. (2006). भाषाविज्ञान का रसायन. गाजीपुर. गाजीपुर साहित्य संसद।
6. शर्मा, देवेन्द्रनाथ एवं शर्मा, दिप्ति. (2001). भाषाविज्ञान की भूमिका. नई दिल्ली. राधाकृष्ण प्रकाशन।
7. Bauer, Laurie. (2004). A glossary of morphology. Washington, D.C. Georgetown UP.
8. Bubenik, Vit. (1999). An Introduction to the Study of Morphology. LINCOM coursebooks in linguistics, 07. Muenchen: LINCOM Europa.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://www.ling.upenn.edu/courses/Fall_2007/ling001/morphology.html
2. https://en.wikipedia.org/wiki/Morphology_(linguistics)

खण्ड – 3 : रूपविज्ञान (पदविज्ञान)

इकाई – 2 : पद और शब्द, पद और सम्बन्धतत्त्व, पद विभाग : अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का संयोग, पद, पदबंध और वाक्य

इकाई की रूपरेखा

3.2.0 उद्देश्य
3.2.1 प्रस्तावना
3.2.2 पद : संकल्पना
3.2.3 पद और शब्द
3.2.4 पद और सम्बन्धतत्त्व
 3.2.4.1 पद निर्माण और व्याकरण कोटियाँ
  3.2.4.1.1 लिंग
  3.2.4.1.2 वचन
  3.2.4.1.3 पुरुष
  3.2.4.1.4 काल, पक्ष, वृत्ति
  3.2.4.1.5 कारक और वाच्य
3.2.5 पद विभाग : अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का संयोग
3.2.6 पद, पदबंध और वाक्य
3.2.7 पाठ-सार
3.2.8 बोधात्मक प्रश्न
3.2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

3.2.0. उद्देश्य

भाषा में 'स्वनिम' से लेकर 'प्रोक्ति' तक विविध भाषिक इकाइयाँ (स्वनिम, रूपिम, शब्द / पद, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य और प्रोक्ति) पाई जाती हैं। इनमें देखा जाए तो 'पद' की स्थिति केन्द्रीय प्राप्त होती है। प्रस्तुत पाठ में 'पद' के विविध पक्षों और अन्य भाषिक इकाइयों से इसके सम्बन्ध पर प्रकाश डाला जाएगा। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. पद की संकल्पना को समझ सकेंगे।
ii. पद और शब्द में अन्तर कर सकेंगे।
iii. पद के दो मुख्य भागों 'अर्थ तत्त्व' और 'सम्बन्धतत्त्व' को जान सकेंगे।
iv. पद और वाक्य के सम्बन्ध से परिचित हो सकेंगे।

3.2.1. प्रस्तावना

भाषा एक व्यवस्था है जिसके माध्यम से ध्वनि-प्रतीकों द्वारा विचार करने और विचारों को आपस में सम्प्रेषित करने की सुविधा प्राप्त होती है। इसमें एक ध्यान देने वाली बात यह है कि हम बोलने और सुनने में प्रयोग तो 'ध्वनि' का करते हैं, किन्तु सम्प्रेषण अर्थ का होता है, जबकि ध्वनियाँ स्वयं में अर्थहीन होती हैं। अतः प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि तब "ध्वनियों के माध्यम से अर्थ का सम्प्रेषण कैसे हो जाता है ?" इसका उत्तर है – "ध्वनियाँ विविध भाषिक स्तरों पर संरचित होकर 'वाक्य' नामक सम्प्रेषणात्मक इकाई का निर्माण करती हैं।" भाषा में वाक्य से बड़ी इकाई 'प्रोक्ति' पाई जाती है। इस प्रकार प्राप्त होने वाले भाषा के स्तर निम्नलिखित हैं –

स्वनिम —> रूपिम —> शब्द / पद —> पदबंध —> उपवाक्य —> वाक्य —> प्रोक्ति

इनमें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि 'पद' केन्द्रीय इकाई है। अतः 'पद' भाषा की वह इकाई है जो रूपिम से बड़ी और पदबंध से छोटी होती है। 'पद' के समानान्तर एक और इकाई 'शब्द' भी पाई जाती है। पद की तुलना में 'शब्द' अधिक प्रचलित शब्द है। इन सब बिन्दुओं की ओर संकेत करते हुए प्रस्तुत पाठ में 'पद' का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

3.2.2. पद : संकल्पना

'पद' शब्द संस्कृत से आया है। इस शब्द का प्रयोग व्याकरण, साहित्य और सामान्य व्यवहार तीनों क्षेत्रों में किया जाता है। साहित्य में इसका तात्पर्य 'छन्दबद्ध काव्य' से है, जिसका गायन किया जाता हो। इस दृष्टि से सूरदास के पद बहुत ही प्रचलित रहे हैं। इसी प्रकार सामान्य व्यवहार में 'पद' का अर्थ 'पैर' होता है। व्याकरण में प्रयुक्त 'पद' शब्द का इन दोनों शब्दों या इन दोनों अर्थों से कोई सम्बन्ध नहीं है। व्याकरण में 'पद' शब्द का अर्थ है – वाक्य में प्रयुक्त शब्द। संस्कृत में शाब्दिक विवेचन में धातु, प्रातिपदिक, प्रत्यय आदि की संकल्पना दी गई है। जब धातुओं और प्रातिपदिकों में 'सुप्' और 'तिङ्' प्रत्ययों का योग होता है तो 'पद' का निर्माण होता है। इसलिए पद को परिभाषित करते हुए पाणिनि द्वारा कहा गया है – "सुप्तिङन्तम् पदम्" अर्थात् "सुप् और तिङ् प्रत्ययों के योग से बनने वाली इकाइयाँ पद हैं।" संस्कृत में दो तरह के मूलांशों की बात की गईहै – 'धातु' और 'प्रातिपदिक'। क्रियाओं के मूल रूप को 'धातु' कहते हैं, जैसे – खा, चल, आ आदि। धातुओं में 'तिंङ्' प्रत्ययों को जोड़ने से 'पद' निर्मित होते हैं। इसी प्रकार धातु के अलावा अन्य सभी नाम शब्द 'प्रातिपदिक' हैं। प्रातिपदिकों में 'सुप्' प्रत्ययों का योग करके 'पद' का निर्माण किया जाता है।

3.2.3. पद और शब्द

पद और शब्द भाषा-विश्लेषण में समान स्तर की अवधारणाएँ हैं। 'शब्द' के सन्दर्भ में दो बातें कही जा सकती हैं – (क) शब्द वह भाषिक इकाई है जिसका बाह्य संसार (या मनःमस्तिष्क) में एक स्वतन्त्र अर्थ होता है

और (ख) शब्द वह भाषिक इकाई है जिसका वाक्य में स्वतन्त्र व्यवहार होता है। इनमें से दूसरी बात मूलतः 'पद' से सम्बन्धित है। व्यापक रूप में कहा जा सकता है कि 'शब्द ही पद है।' इन्हें अलगाते हुए कुछ बातें इस प्रकार से कही जा सकती हैं –

(i) शब्द का व्यवहार जब वाक्य में होता है तो वह पद बन जाता है।
(ii) शब्द 'कोश' में पाए जाते हैं और पद वाक्य में। इसे व्याख्यायित करते हुए कुछ विद्वानों द्वारा कहा गया है कि 'शब्द' स्थिर होते हैं और 'पद' चलायमान। शब्द शब्दकोश में पड़े रहते हैं और पद वाक्यों में चलते रहते हैं।
(iii) शब्द के अन्तर्गत के केवल शाब्दिक इकाइयों के मूल रूप आते हैं, जबकि पद के अन्तर्गत शब्द के मूल रूप और व्याकरणिक कोटियों के आधार पर रूपसाधित रूप (Inflected Form) दोनों आ जाते हैं, जैसे – 'लड़का' एक शब्द है इसके आधार पर तीन 'पद' बनते हैं – लड़का, लड़के, लड़कों। इन तीनों का प्रयोग वाक्य में किया जाता है।
(iv) शब्द का जब पद के रूप में वाक्य में प्रयोग होता है तो इसके साथ लिंग, वचन, पुरुष आदि सम्बन्धी सूचनाएँ जुड़ जाती हैं।

पद और शब्द के मूल अन्तर को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक परिदृश्य पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा। पद संस्कृत व्याकरण की एक प्राचीन अवधारणा है। इसके समानान्तर अंग्रेजी (या अंग्रेजी क्षेत्र की भाषाओं, जैसे – ग्रीक, लैटिन) में कोई शब्द नहीं मिलता। अंग्रेजी में शब्द और पद दोनों को 'Word' ही कहा जाता है। चूँकि आधुनिक भाषाविज्ञान का विकास पश्चिम से ही हुआ है, इसलिए आधुनिक भाषावैज्ञानिक वर्गीकरण में 'पद' का कार्य इसके समतुल्य स्थित 'शब्द' (Word) द्वारा ही किया जाता है। दोनों में भेद करने के लिए 'शब्द' को 'Lexical Word' तथा 'पद' को 'Grammatical Word' कहा जाता है। 'हिन्दी' संस्कृत से निस्सृत भाषा है और हिन्दी की व्याकरण लेखन परम्परा में अंग्रेजी का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है, इसलिए इसमें 'शब्द' और 'पद' दोनों संकल्पनाएँ समान रूप से प्रचलित हैं।

3.2.4. पद और सम्बन्धतत्त्व

एक भाषा के शब्दों में जुड़ने वाले रूपसाधक प्रत्यय (Inflectional Suffixes) ही सम्बन्धतत्त्व कहलाते हैं। इनके कारण की वाक्य में एक शब्द का सम्बन्ध दूसरे शब्द से स्थापित होता है और वाक्य निर्मित होता है। इसी कारण इन्हें सम्बन्धतत्त्व कहा गया है। अतः सम्बन्धतत्त्व को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि "सम्बन्धतत्त्व वे बद्ध रूपिम हैं जो वाक्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों (पदों) के साथ जुड़ते हैं और एक शब्द का दूसरे शब्द से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।" अतः एक पद के दो खण्ड किए जा सकते हैं – शब्द और सम्बन्धतत्त्व। शब्द का कार्य कोशीय अर्थ प्रदान करना है और सम्बन्धतत्त्व का कार्य व्याकरणिक सूचनाएँ प्रदान करना। दोनों के योग से 'पद' वाक्य में व्यवहार करने के योग्य बन जाता है। भोलानाथ तिवारी (2012) द्वारा 'भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा' में सम्बन्धतत्त्वों के कई प्रकार करते हुए कहा है – "सम्बन्धतत्त्व को कई रूपों में व्यक्त

किया जा सकता है – 1. सामासिक सम्बन्धतत्त्व, 2. शून्य सम्बन्धतत्त्व, 3. स्वतन्त्र सम्बन्धतत्त्व, 4. प्रतिस्थापन, 5. द्विरावृत्ति, 6. योजन (क) आदि योजन (ख) मध्य योजन (ग) अन्त योजन, 7. बलाघात ।' (पृ.184) पद में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व के संयोग को समझने के लिए इन्हें व्याकरणिक कोटियों के सापेक्ष देखना पड़ेगा।

3.2.4.1. पद निर्माण और व्याकरण कोटियाँ

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है – 'शब्द का वाक्य में प्रयुक्त रूप पद है।' शब्द का जब वाक्य में प्रयोग होता है तो उसमें विभिन्न व्याकरणिक कोटियों सम्बन्धी सूचनाएँ जुड़ जाती हैं। हिन्दी में 'लिंग, वचन, पुरुष, काल, पक्ष, वृत्ति, कारक और वाच्य' आठ व्याकरणिक कोटियाँ मानी गई हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक शब्द के साथ आठों व्याकरणिक कोटियों सम्बन्धी सूचनाएँ हों। यह शब्द के शब्दवर्ग और उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है कि उसके साथ कितनी व्याकरणिक कोटियों सम्बन्धी सूचनाएँ जुड़ेंगी। उदाहरण के लिए संज्ञा और सर्वनाम शब्दों के साथ लिंग, वचन और पुरुष सम्बन्धी सूचनाएँ होती हैं। क्रिया शब्दों के साथ लिंग, वचन, पुरुष और काल, पक्ष, वृत्ति सभी व्याकरणिक कोटियों सम्बन्धी सूचनाएँ जुड़ती हैं। इन व्याकरणिक कोटियों को संक्षेप में इस प्रकार से देख सकते हैं –

3.2.4.1.1. लिंग

लिंग का सम्बन्ध मूलतः संज्ञा शब्दों से है। प्रत्येक संज्ञा शब्द का कोई-न-कोई लिंग होता है। जब उस संज्ञा शब्द का वाक्य में प्रयोग होता है तो लिंग सम्बन्धी सूचना उसके साथ जुड़ी रहती है और इस कारण वाक्य की व्याकरणिक रचना प्रभावित होती है। हिन्दी में दो लिंग हैं –

(i) पुल्लिंग (Masculine Gender) : जिस प्रयोग से पुरुष या नर जाति (Male) का बोध होता है, उसे पुल्लिंग कहते हैं। जैसे – लड़का, बैल, छाता, पेड़ आदि। इस भाव से युक्त शब्द पुल्लिंग शब्द कहलाते हैं।

(ii) स्त्रीलिंग (Feminine Gender) : जिस प्रयोग से स्त्री या मादा (Female) का बोध होता है, उसे स्त्रीलिंग कहते हैं। जैसे – लड़की, गाय, दुकान, सड़क आदि। इस भाव से युक्त शब्द स्त्रीलिंग शब्द कहलाते हैं।

अलग-अलग लिंग के शब्दों में अलग-अलग प्रकार के सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) जुड़ते हैं। हिन्दी संज्ञाओं में लिंग सम्बन्धी सम्बन्धतत्त्व नहीं पाया जाता है। विशेषणों में 'आकारान्त' विशेषण पुल्लिंग होते हैं, जैसे – अच्छा लड़का, बड़ा कमरा आदि।

3.2.4.1.2. वचन

वाक्य में प्रयुक्त शब्द द्वारा होने वाला उसकी संख्या का बोध वचन (Number) है। वचन के दो भेद इस प्रकार हैं –

(i) एकवचन : संज्ञा शब्दों के वे रूप जिनसे एक ही वस्तु या भाव का बोध होता है, उन्हें एकवचन कहते हैं, जैसे – लड़की, दरवाजा, जल आदि।

(ii) बहुवचन : एक से अधिक वस्तुओं, इकाइयों, भावों या अवस्थाओं का बोध कराने वाले संज्ञा शब्दों के रूप को बहुवचन कहते हैं, जैसे – लड़के, विशेषताएँ, स्थितियाँ आदि।

हिन्दी में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया शब्दवर्गों पर वचन का प्रभाव पड़ता है, जैसे –

पुल्लिंग संज्ञा	:	कमरा (एकवचन)	– (बहुवचन) कमरे, कमरों
स्त्रीलिंग संज्ञा	:	बकरी (एकवचन)	– (बहुवचन) बकरियाँ, बकरियों
सर्वनाम	:	मैं, वह (एकवचन)	– (बहुवचन) हम, वे
क्रिया	:	खाता, खाया (एकवचन)	– (बहुवचन) खाते, खाए

3.2.4.1.3. पुरुष

पुरुष (person) वह व्याकरणिक कोटि है, जिससे यह पता चलता है कि भाषिक उक्ति वक्ता के सम्बद्ध है या श्रोता से अथवा किसी अन्य से। यह व्याकरणिक कोटि शब्दवर्गों (या शब्दभेदों) में मुख्यतः 'सर्वनाम' से सम्बन्धित है। इसके तीन प्रकार हैं – उत्तम पुरुष या प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष।

3.2.4.1.4. काल, पक्ष, वृत्ति

इन तीनों का सम्बन्ध क्रिया से है। धातुओं के साथ विभिन्न सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) लगकर इनकी सूचना देते हैं, जैसे – जाना से गया (भूतकाल), जाएगा (भविष्यत्काल) आदि। इसी प्रकार जाना से जाता, जाती, जाते बनाने के लिए 'ता / ती / ते' का योग पक्ष सम्बन्धी सूचना के लिए है।

कुछ स्वतन्त्र शब्दों द्वारा भी काल (है, था, होगा), पक्ष (रहा, चुका) और वृत्ति (पड़ना, वाला) की सूचना दी जाती है।

3.2.4.1.5. कारक और वाच्य

ये वाक्यात्मक सम्बन्ध हैं। इनके लिए कोई सम्बन्धतत्त्व प्राप्त नहीं होता।

3.2.5. पद विभाग : अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का संयोग

'पद और सम्बन्धतत्त्व' सम्बन्धी चर्चा से स्पष्ट है कि पद में 'शब्द' और 'सम्बन्धतत्त्व' दो घटक होते हैं। 'शब्द' का कार्य पद के बाह्य सांसारिक या संकल्पनात्मक अर्थ को व्यक्त करना है। यहाँ पर शब्द का तात्पर्य 'कोशीय शब्द' से है। अतः साधारण शब्दों में – 'शब्द' पद के 'आर्थी पक्ष' को व्यक्त करते हैं। इसीलिए शब्द को 'अर्थतत्त्व' भी कहा गया है। 'सम्बन्धतत्त्व' द्वारा पद के व्याकरणिक व्यवहार को सुनिश्चित किया जाता है, जिसमें मुख्य रूप से व्याकरणिक कोटियों सम्बन्धी बातें आती हैं। अतः 'अर्थतत्त्व'(शब्द) और 'सम्बन्धतत्त्व' का योग ही पद है। इसे आरेख के रूप में इस प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं –

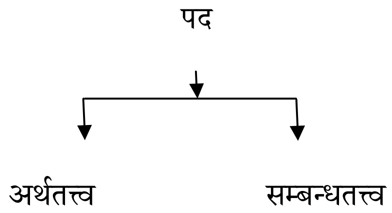

पद में 'अर्थतत्त्व'(शब्द) और 'सम्बन्धतत्त्व' के योग को एक आरेख के माध्यम से इस प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं –

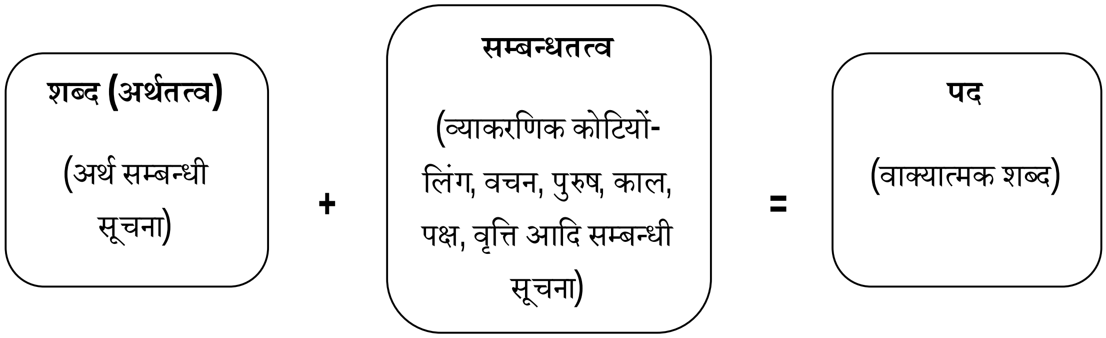

इसे संक्षेप में एक सूत्र 'शब्द (अर्थतत्त्व) + सम्बन्धतत्त्व = पद' द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है।

संस्कृत में शब्दों के साथ 'सुप्' और 'तिङ्' प्रत्ययों के योग से पदों का निर्माण होता था। हिन्दी, अंग्रेजी और अन्य प्रमुख आधुनिक भाषाओं को देखा जाए तो शब्द के साथ सम्बन्धतत्त्व का संयोग तीन प्रकार से होता है –

(i) शब्द में रूपसाधक प्रत्यय (inflectional suffix) योग।

(ii) शब्द में रूपस्वनिमिक परिवर्तन (morphophonemic change) और रूपसाधक प्रत्यय (inflectional suffix) योग।

(iii) शब्द के साथ शून्य रूपिम (zero morpheme) का योग। (अर्थात् शब्द में किसी भी प्रकार के प्रत्यय का प्रत्यक्ष योग नहीं।

इसे कुछ उदाहरणों द्वारा निम्नलिखित प्रकार से देखा जा सकता है –

सड़क (एकवचन) + ें = सड़कें (बहुवचन) (शब्द + रूपसाधक प्रत्यय)

लड़का (एकवचन) + े = लड़के (बहुवचन) (शब्द + रूपसाधक प्रत्यय रूपस्वनिमिक परिवर्तन ा > े)

पेड़ (एकवचन) + 0 = पेड़ (बहुवचन) (शून्य रूपिम)

उपर्युक्त शब्दों को वाक्य में प्रयोग करके इस प्रकार से देखा जा सकता है –

यहाँ की सड़क खराब है।	—>	सड़क	(एकवचन)
इस शहर की सड़कें खराब हैं।	—>	सड़कें	(बहुवचन)
लड़का खेल रहा है।	—>	लड़का	(एकवचन)
लड़के खेल रहे हैं।	—>	लड़के	(बहुवचन)
बारिश में पेड़ गिर गया।	—>	पेड़	(एकवचन)
बारिश में पेड़ गिए गए।	—>	पेड़	(बहुवचन)

जब शब्द अपने मूल रूप में प्रयुक्त होता है तब भी उसके साथ 'शून्य' रूपिम का योग माना जाता है। अतः उपर्युक्त उदाहरण वाक्यों में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द 'पद' है। सड़क, लड़का, पेड़ (एकचन) और पेड़ (बहुवचन) पदों के निर्माण में शून्य रूपिम का प्रयोग हुआ है। 'सड़कें' पद के निर्माण में 'सड़क' शब्द के साथ 'ें' प्रत्यय का योग हुआ है। 'लड़के' पद के निर्माण में 'लड़का' शब्द के साथ 'े' प्रत्यय का योग तो हुआ ही है, साथ में 'ा' वर्ण का लोप भी हुआ है, जिसे हम 'आ' का 'ए' के रूप में रूपस्वनिमिक परिवर्तन भी कहते हैं।

3.2.6. पद, पदबंध और वाक्य

'पद' वाक्य के निर्माण की मूलभूत इकाई है। पदों के योग से ही वाक्य बनते हैं। स्तरीकरण में 'पद' और 'वाक्य' के बीच संरचात्मक दृष्टि से 'पदबंध' नामक इकाई आती है। पदबंध एक प्रकार्यात्मक इकाई है। कुछ

विशेष प्रकार के प्रकार्यों (या भूमिकाओं), जैसे – कर्त्ता, कर्म, पूरक, क्रिया आदि के रूप में कार्य करने वाले पदबंधों के योग से वाक्य बनते हैं । इन भूमिकाओं का अकेले एक पद भी निर्वहन कर सकता है और एक से अधिक पद एक मिलकर भी कर सकते हैं। उदाहरण के निम्नलिखित वाक्यों को देखा जा सकता है –

[घर- पद-1]/पदबंध-1 [सुन्दर- पद-2]/पदबंध-2 [है – पद-3]/पदबंध-3

[मेरा- पद-1, घर- पद-2]/पदबंध-1 [बहुत- पद-3, सुन्दर- पद-4]/पदबंध-2 [लगता- पद-5, है – पद-6]/पदबंध-3

[लड़की- पद-1]/पदबंध-1 [गीत- पद-2]/पदबंध-2 [गाएगी- पद-3]/पदबंध-3

[सुन्दर- पद-1, लड़की- पद-2]/पदबंध-1 [मनोरंजक- पद-3, गीत- पद-4]/पदबंध-2 [गाती- पद-5, है – पद-6]/पदबंध-3

उपर्युक्त वाक्यों में से पहले और तीसरे वाक्यों में तीन-तीन पद हैं और चूँकि तीनों शब्द अलग-अलग प्रकार्यों को सम्पन्न कर रहे हैं, इसलिए तीन-तीन पदबंध भी हैं । किन्तु दूसरे और चौथे वाक्यों में पदों की संख्या छह है, फिर भी तीन-तीन ही पदबंध हैं, क्योंकि इन वाक्यों में भी तीन ही प्रकार्य सम्पन्न किए जा रहे हैं । अतः पदबंधों का व्यवस्थित समूह वाक्य है और एक या एक से अधिक ऐसे पदों का समूह पदबंध है जो वाक्य में एक प्रकार्य को सम्पन्न करता हो । पदों से पदबंध बनते हैं और पदबंधों से वाक्य। अतः पदबंधीय या प्रकार्यात्मक प्रयोग के आधार पर पद वाक्य से जुड़े हुए हैं।

3.2.7. पाठ-सार

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है 'पद' मूलतः संस्कृत से आई हुई संकल्पनाहै। संस्कृत में सुप् और तिङ् प्रत्ययों के साथ मिलकर धातु और प्रातिपदिक 'पद' का रूप लेते हैं। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में 'पद' जैसी इस प्रकार की स्पष्ट संकल्पना तो नहीं मिलती किन्तु वे इससे पूर्णतः मुक्त भी नहीं हैं। केवल उनका स्वरूप बदल गया है।

संरचना की दृष्टि से देखें तो 'पद' भाषा की केन्द्रीय इकाई है । यह भाषा की मूल इकाई 'शब्द' का वाक्यात्मक व्यवहार में प्रयुक्त रूप है । शब्दों का वाक्य में पदों के रूप में प्रयोग होता है । पदों के निर्माण में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व समान रूप से लगे होते हैं। एक पद में अर्थतत्त्व (शब्द) और सम्बन्धतत्त्व (प्रत्यय) का योग तीन रूपों में – रूपसाधक प्रत्यय योग, रूपस्वनिमिक परिवर्तन और रूपसाधक प्रत्यय (Inflectional Suffix) योग तथा शब्द के साथ शून्य रूपिम का योग तीनों रूपों में हो सकता है । पद एक ओर जहाँ अपनी आन्तरिक संरचना में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व के योग हैं तो दूसरी ओर पदबंध या पदबंध के घटक के रूप में अपने-आप को वाक्य से जोड़ते हैं।

3.2.8. बोधात्मक प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किसका 'पद' से सीधा सम्बन्ध नहीं है –
   (क) स्वनिम
   (ख) रूपिम
   (ग) शब्द
   (घ) प्रत्यय

सही उत्तर : (क) स्वनिम

2. पद का अध्ययन किस विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है ?
   (क) स्वनिमविज्ञान
   (ख) रूपविज्ञान
   (ग) वाक्य विज्ञान
   (घ) प्रोक्तिविज्ञान

सही उत्तर : (ख) रूपविज्ञान

3. 'पद' के सम्बन्ध में कौन-सा कथन सही नहीं है –
   (क) पद चलायमान होते हैं।
   (ख) पद वाक्य में पाए जाते हैं।
   (ग) शब्द और प्रत्यय मिलकर पद बनाते हैं।
   (घ) पद वाक्य-निर्माण की प्रकार्यात्मक इकाई है।

सही उत्तर : (घ) पद वाक्य-निर्माण की प्रकार्यात्मक इकाई है

4. पद में 'शब्द + ...' होते हैं –
   (क) शब्द
   (ख) सम्बन्धतत्त्व
   (ग) व्याकरणिक कोटि
   (घ) इनमें से कोई नहीं

सही उत्तर : (ख) सम्बन्धतत्त्व

5. निम्नलिखित में से कौन-सी पद-निर्माण की प्रक्रिया नहीं है –
   (क) शब्द में रूपसाधक प्रत्यय योग
   (ख) शब्द में रूपस्वनिमिक परिवर्तन और प्रत्यय योग
   (ग) शब्द में व्युत्पादक प्रत्यय योग
   (घ) शब्द में शून्य रूपिम का योग

सही उत्तर : (ग) शब्द में व्युत्पादक प्रत्यय योग

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पद को संस्कृत वैयाकरणिक दृष्टि से परिभाषित कीजिए।
2. रूपविज्ञान के अध्येय विषय के रूप में 'पद' की स्थिति को बताइए।
3. पद और शब्द में अन्तर बताइए।
4. पद और पदबंध में सम्बन्धों की चर्चा कीजिए।
5. पद और वाक्य किस प्रकार से एक दूसरे सम्बद्ध हैं ? संक्षेप में समझाइए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पद क्या है ? इसकी अवधारणा को समझाते हुए भाषा के विविध स्तरों के सापेक्ष पद की स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. पद और शब्द को अलग-अलग परिभाषित करते हुए इनके बीच सम्बन्ध और अन्तर की सविस्तार चर्चा कीजिए।
3. पद और सम्बन्ध तत्त्व किस प्रकार से एक दूसरे से सम्बद्ध हैं ? सोदाहरण समझाइए।
4. पद-निर्माण में व्याकरणिक कोटियों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. पद, पदबंध और वाक्य पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

3.2.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. कुमार, कविता (2006). हिंदी व्याकरण : एक नवीन दृष्टिकोण. नई दिल्ली : किताबघर।
2. तिवारी, भोलानाथ (2009). भाषाविज्ञान. इलाहाबाद. किताब महल।
3. भोलानाथ तिवारी (2012). भाषाविज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा नई दिल्ली. किताबघर।
4. द्विवेदी, कपिलदेव (2002). भाषाविज्ञान और भाषाशास्त्र. चौक वाराणसी. विश्वविद्यालय प्रकाशन।
5. पाण्डेय, कैलाश नाथ (2006). भाषाविज्ञान का रसायन. गाजीपुर. गाजीपुर साहित्य संसद।
6. मिश्रा, एम.के. (2008) अभिनव हिंदी व्याकरण. नई दिल्ली. आत्माराम एंड सन्स।
7. शर्मा, देवेन्द्रनाथ एवं शर्मा, दिप्ति (2001). भाषाविज्ञान की भूमिका. नई दिल्ली. राधाकृष्ण प्रकाशन।
8. वाजपेयी, किशोरीदस (1998). हिंदी शब्दानुशासन. वाराणसी. नागरी प्रचारिणी सभा।

❖❖❖

खण्ड – 3 : रूपविज्ञान (पदविज्ञान)

इकाई – 3 : रूप परिवर्तन की दिशाएँ और रूप परिवर्तन के कारण

इकाई की रूपरेखा

3.3.1 उद्देश्य
3.3.2 प्रस्तावना
3.3.3 रूप परिवर्तन का स्वरूप
3.3.4 रूप परिवर्तन की दिशाएँ
3.3.5 रूप परिवर्तन के कारण
3.3.5.1 आन्तरिक कारण
3.3.5.1.1 सरलता का आग्रह
3.3.5.1.2 बलाघात
3.3.5.1.3 सादृश्य
3.3.5.1.4 एक शब्द के दो रूपों का चलन
3.3.5.1.5 अज्ञान व असावधानी के कारण अशुद्ध प्रयोग
3.3.5.1.6 भावावेश तथा व्यंग्योक्ति
3.3.5.2 बाह्य कारण
3.3.5.2.1 भौगोलिक कारण
3.3.5.2.2 ऐतिहासिक कारण
3.3.5.2.3 राजनैतिक-सांस्कृतिक कारण
3.3.5.2.4 साहित्यिक कारण
3.3.5.2.5 आगत शब्दों का प्रभाव
3.3.5.2.6 किसी जाति विशेष के प्रति मनोवृत्ति का विकास
3.3.5.2.7 भाषा का आधुनिकीकरण
3.3.5.2.8 अन्य कारण
3.3.6 पाठ-सार
3.3.7 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
3.3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

3.3.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. रूप से क्या तात्पर्य है, यह समझ सकेंगे।
ii. रूप परिवर्तन से क्या तात्पर्य है, यह जान पाएँगे।
iii. रूप परिवर्तन का स्वरूप समझ सकेंगे।

iv. रूप परिवर्तन की कौन-कौन सी दिशाएँ हैं, इनका परिचय प्राप्त कर सकेंगे और

v. रूप परिवर्तन के कारणों को समझ पाएँगे।

3.3.2. प्रस्तावना

भाषा बहता नीर है। वह हमेशा परिवर्तनशाल होती है। उन्नीसवीं शताब्दी में भाषा परिवर्तनों का सविस्तार एवं गहराई से अध्ययन किया गया और उसके आधार पर भाषा सम्बन्धों की व्याख्या तथा भाषा परिवारों की स्थापना की गई। इसी शताब्दी के अन्तिम 25 वर्षों में भाषाविदों के एक वर्ग – युवा वैयाकरणों ने यह दावा किया था कि ध्वनि परिवर्तन नियमित होते हैं, इसमें कोई अपवाद नहीं होता। बीसवीं शताब्दी में भी भाषाविज्ञानियों की रुचि इस ओर आकर्षित हुई तथा इस सम्बन्ध में किये गए अध्ययनों से कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन हुआ। नए शब्द, नए व्याकरणिक रूप, नई संरचनाएँ तथा मौजूदा शब्दों के नए रूप एवं अर्थ विकसित होते रहते हैं और पुराने रूप लुप्त होते रहते हैं।

भाषा परिवर्तन के कई प्रकारों अथवा दिशाओं की चर्चा की गई है। भाषा परिवर्तन की दिशाओं के अन्तर्गत ध्वनि परिवर्तन, लिपि-वर्तनी परिवर्तन, कोशीय परिवर्तन तथा अर्थ परिवर्तन की सोदाहरण चर्चा हम पूर्व में विस्तारपूर्वक कर चुके हैं।

रूप परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है, जिसके अन्तर्गत समय के अन्तराल में भाषा के रूपों तथा शब्दों में परिवर्तन होता है। रूप परिवर्तन का सम्बन्ध एक ओर ध्वनि परिवर्तन से है और दूसरी ओर कोशीय परिवर्तन से। रूप परिवर्तन की दिशाओं अथवा प्रकारों के सम्बन्ध में इस पाठ में लोप, आगम, समीकरण, विषमीकरण, महाप्राणीकरण, विपर्यय, अनुनासिकता, स्वर-भक्ति आदि की चर्चा की गई है।

रूप परिवर्तन के बारे में विद्वानों ने अनेक कारणों की चर्चा की है। रूप परिवर्तन का प्रधान कारण मानव-मन माना जाता है। मानव के विचार, राग-द्वेष आदि भाषा में उजागर होते हैं। मानसिक परिवर्तन होना एक सामान्य स्वाभाविक प्रक्रिया मानी जाती है। समाज में पीढ़ी परिवर्तन से भी शब्दों में रूप परिवर्तन होता है। कभी भाषा में दूसरी भाषाओं से आगत ध्वनियाँ, रूपिम, उपसर्ग और प्रत्यय भी परिवर्तन का आधार बनते हैं। कभी भौगोलिक वातावरण में परिवर्तन, नई वस्तुओं का आविष्कार, पुनरावृत्ति, सादृश्य आदि के कारण भी भाषा के शब्दों के रूपों में परिवर्तन देखा गया है।

रूप परिवर्तन के कारणों को आन्तरिक तथा बाह्य कारणों के रूप में विभाजित किया जाता है। आन्तरिक कारणों के अन्तर्गत मुख-सुख अथवा सरलता का आग्रह, बलाधात, सादृश्य, एक शब्द के दो रूपों का चलन, अज्ञान व असावधानी के कारण अशुद्ध प्रयोग तथा भावावेश तथा व्यंग्योक्ति को लिया जाता है। बाह्य कारणों के अन्तर्गत भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कारणों पर विचार किया जाता है। आगत शब्दों का प्रभाव भी रूप परिवर्तन पर निश्चित रूप से पड़ता है। किसी जाति विशेष के प्रति मनोवृत्ति के विकास के कारण भी भाषा में रूप परिवर्तन होता है। भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के आधुनिकीकरण के

फलस्वरूप पारिभाषिक तथा तकनीकी शब्दावली का विकास किया जाता है जिसके कारण काफ़ी मात्रा में कोश परिवर्तन की स्थिति हैदा होती है। कई बार एक भाषा को बोलनेवाला समुदाय कई समूहों में बिखर जाता है तब एक ही शब्द विभिन्न समूहों में अलग-अलग अर्थ में विकसित होने लगता है। यह भी रूप परिवर्तन का आधार बनता है। इस पाठ में रूप परिवर्तन के स्वरूप, दिशाओं और कारणों की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

3.3.3. रूप परिवर्तन का स्वरूप

भाषाविज्ञान में रूपिम के अन्तर्गत मुक्त तथा बद्ध रूपों की चर्चा की जाती है। मुक्त रूप को शब्द की संज्ञा दी जाती है तथा बद्ध रूप शब्द के साथ मिलकर नया शब्द बनाते हैं। कृ धातु से कार शब्द से आ-, प्र-, वि-, उपसर्गों से आकार, प्रकार, विकार आदि शब्द बनते हैं। इसी प्रकार प्रत्ययों के योग से भी नए-नए शब्दों का विकास होता है। जैसे, आवश्यक के साथ -ता प्रत्यय लगाकर आवश्यकता शब्द बना। अरबी-फ़ारसी उपसर्गों के योग से भी कई शब्दों का निर्माण होता है। बे- से बेकार, बेनाम, बेरोज़गार और बद- से बदज़ात, बदतमीज़, बदबू आदि शब्दों का निर्माण हम देखते हैं।

रूप परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है जिसके अन्तर्गत भाषा में हुए विभिन्न परिवर्तनों के सन्दर्भ में भाषा परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। रूप परिवर्तन की एक ओर शुरुआत ध्वनि परिवर्तन से होती है और दूसरी ओर कोश परिवर्तन से भी इसका गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क के कारण भाषा में विजेता समुदाय की भाषा से बड़ी मात्रा में शब्द विजित भाषा का अंग बन जाते हैं। भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के मानकीकरण के फलस्वरूप लिपि-वर्तनी के स्तर पर हुए परिवर्तन भी रूप परिवर्तन का आधार बनते हैं।

3.3.4. रूप परिवर्तन की दिशाएँ

रूप परिवर्तन का सम्बन्ध ध्वनि परिवर्तन से भी जुड़ा हुआ है। ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत कभी भाषा में किन्हीं स्वरों का लोप हो जाता है तो किन्हीं का आगम। कभी असमान व्यंजन-गुच्छों का समान व्यंजन-गुच्छों में परिवर्तन होता है तो कभी समान व्यंजन-गुच्छों का सरलीकरण। ध्वनि परिवर्तन दो प्रकार के माने जाते हैं – अनियमित तथा नियमित। ध्वनि परिवर्तन पहले स्वनिक परिवर्तन के रूप में प्रारम्भ होता है, बाद में सामाजिक स्वीकृति मिलने पर स्वनिमिक परिवर्तन का रूप ले लेता है। स्वनिक परिवर्तन को अनियमित ध्वनि परिवर्तन तथा स्वनिमिक परिवर्तन को नियमित ध्वनि परिवर्तन कहा जाता है। जब ऐसे ध्वनि परिवर्तन के नियम पूरे भाषा समुदाय द्वारा स्वीकृत हो जाते हैं तब उन्हें नियमित ध्वनि परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है। रूप परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों अथवा दिशाओं के बारे में नीचे दिया जा रहा है –

(i) **लोप** : इसके अन्तर्गत शब्द की किसी ध्वनि का लोप हो जाता है जैसे 'अभ्यंतर' शब्द का 'भीतर' शब्द में परिवर्तन 'अ' स्वर ध्वनि के लोप के कारण हुआ है। जब संयुक्त ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई होती है तब उच्चारण की सुगमता को ध्यान में रखते हुए उनमें से एक ध्वनि का लोप कर

दिया जाता है। जैसे, ज्येष्ठ से जेठ, दुग्ध से दूध, श्रेष्ठ से सेठ विकसित शब्द इस प्रक्रिया के उदाहरण हैं।

(ii) **आगम** : कभी-कभी शब्द के आरम्भ में ऐसे संयुक्ताक्षर आजाते है,जिनका उच्चारण आसानी से नहीं हो सकता। तब किसी स्वर की सहायता से उच्चारण आसानी से हो जाता है। जैसे – स्कूल, स्तुति, स्थिर, स्टूल आदि शब्दों का उच्चारण इ या अ स्वर के आगम के साथ इस्कूल, अस्तुति, अस्थिर, इस्टूल के रूप में किया जाता है। यह स्वरागम केवल उच्चारण में ही होता है, लेखन में नहीं। यहाँ स्वरागम शब्द के आदि में हुआ है। इसे आदि स्वरागम कहते हैं।

कहीं-कहीं शब्द के मध्य में स्वरागम किया जाता है। जैसे – 'सूर्य' शब्द से 'सूरज', धर्म से धरम, कर्म से करम या 'पूर्व' से बने 'पूरब' में मध्य में 'अ' ध्वनि का आगम हुआ है। इस प्रकार नई ध्वनि के आगम के द्वारा सूरज, धरम, करम तथा पूरब आदि नए शब्दों का निर्माण हुआ। ये मध्य स्वरागम के उदाहरण हैं।

(iii) **ध्वनियों का स्थान परिवर्तन या विपर्यय** : विपर्यय का अर्थ है उलटना। किसी शब्द में जब दो ध्वनियाँ का विपर्यय हो जाता है या जब दो ध्वनियाँ आपस में स्थान बदल लेती हैं तब नए शब्द का निर्माण होता है। जैसे 'वाराणसी' शब्द से बने 'बनारस' शब्द में 'ण' ध्वनि 'न' में परिवर्तित होकर 'र' के स्थान पर तथा 'र' ध्वनि 'ण' के स्थान पर चली गई, जिससे इस नए शब्द का निर्माण हुआ। विपर्यय सामान्यतया दो कारणों से होता है – बोलने में तेज़ी से या सुनने की कमी के कारण। अमरूद से अरमूद, पहुँचना से चहुँपना, डूबना से बूड़ना आदि विपर्यय के उदाहरण हैं।

(iv) **अनुनासिकता के कारण परिवर्तन** : जब तत्सम शब्द का नासिक्य व्यंजन अनुनासिकता में बदल जाता है तो इस ध्वनि परिवर्तन द्वारा नया तद्भव शब्द बनता है। जैसे 'कम्पन' से काँपना, दन्त से दाँत, मंजन से माँजना आदि शब्दों में नासिक्य व्यंजन के अनुनासिकता में बदलने के कारण 'काँपना', दाँत, माँजना आदि शब्दों का विकास हुआ।

(v) **समीकरण** : समीकरण के रूप में ध्वनि परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे, 'कर्म' शब्द से 'काम' शब्द का विकास पहले 'कर्म' से 'कम्म' के रूप में हुआ (असमान व्यंजन-गुच्छ से समान व्यंजन-गुच्छ), फिर ह्रस्व स्वर का दीर्घ स्वर में परिवर्तन (समान व्यंजन-गुच्छ का सरलीकरण तथा ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण) हुआ। इसके फलस्वरूप 'काम' शब्द निर्मित हुआ। इसी प्रकार 'सप्त' से 'सात' शब्द का निर्माण पहले सप्त से सत्त तथा सत्त से सात का विकास हुआ। इसी प्रक्रिया को उदाहरणों के अन्तर्गत पुत्र से पूत, कल्प से कल, रात्रि से रात, पत्र से पात या पत्ता, निद्रा से नींद आदि शब्दों को लिया जा सकता है। ये पुरोगामी समीकरण के उदाहरण हैं।

पश्चगामी समीकरण के भी कई उदाहरण मिलते हैं। वार्ता से बात, दुग्ध से दूध, ऊर्णा से ऊन, दूर्वा से दूब पश्चगामी समीकरण के उदाहरण हैं।

(vi) **विषमीकरण** : जब दो निकटस्थ ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई होती है तब उनमें भेद या विषमता ला दी जाती है। इस परिवर्तन को विषमीकरण कहा जाता है। जैसे – कंकण से कंगन, प्रकट से प्रगट शब्दों को विषमीकरण के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

(vii) **महाप्राणीकरण** : इसी प्रकार 'शुष्क' शब्द के 'क' अल्पप्राण व्यंजन के महाप्राण 'ख' में परिवर्तन होकर 'सूखा' शब्द बना।

(viii) **स्वर-भक्ति** : संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में जिह्वा को काफ़ी असुविधा होतीहै। इस असुविधा को दूर करने के लिए संयुक्त व्यंजनों के बीच कोई स्वर रख दिया जाता है। इस प्रक्रिया को स्वर-भक्ति कहते हैं। वैसे स्वर-भक्ति एक प्रकार का स्वरागम ही है. इसे हम ऊपर मध्य स्वरागम के रूप में देख चुके हैं। स्वर-भक्ति के उदाहरणों के रूप में व्रत से बरत, सत्येन्द्र से सतिंदर, स्नान से सनान, स्मरण से सुमिरन आदि शब्दों का विकास देखा जा सकता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाषाओं में विभिन्न दिशाओं में परिवर्तन होता है।

3.3.5. रूप परिवर्तन के कारण

रूप परिवर्तन के अनेक कारण बताए जाते हैं। रूप परिवर्तन सम्बन्धी कारणों को हम दो वर्गों में रख सकते हैं – आन्तरिक कारण और बाह्य कारण।

3.3.5.1. आन्तरिक कारण

आन्तरिक कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारणों को रखा जा सकता है –

3.3.5.1.1. सरलता का आग्रह

जिस प्रकार सरलता तथा सौकर्य के फलस्वरूप भाषा की ध्वनियों में परिवर्तन होता है, इसी प्रकार पद अथवा रूप में भी परिवर्तन होता है। संस्कृत में हरि, मुनि तथा साधु के तृतीया एकवचन के रूप हरिणा, मुनिना और साधुना में -णा या -ना का प्रयोग सरलता के आग्रह का ही परिणाम है। सामान्यतया शब्द की अन्तिम ध्वनि में भेद के कारण इनके रूपों में अन्तर होना चाहिए था, किन्तु सरलता के कारण इन्हें एकरूप कर दिया गया।

3.3.5.1.2. बलाघात

बल देने से जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार रूप में भी परिवर्तन होता है। 'ख़ालिस' से स्थान पर 'निख़ालिस' का प्रयोग बल देने का ही परिणाम है। 'श्रेष्ठ' शब्द में अतिशयता का भाव पहले से ही मौजूद है, किन्तु बल देने के लिए 'श्रेष्ठतम' और 'सर्वश्रेष्ठ' रूपों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार 'स्वादिष्ट' भी अतिशय का वाचक है परन्तु बल देने के कारण 'बहुत स्वादिष्ट' या 'अति स्वादिष्ट' का प्रयोग किया जाता है।

3.3.5.1.3. सादृश्य

सादृश्य को भी ध्वनि परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारण माना गया है। किसी दूसरे शब्द के ध्वनि साम्य के आधार पर शब्द की ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। सादृश्य का प्रभाव शब्दों पर भी पड़ता है। जैसे – 'द्वादश' के सादृश्य पर एकदश के स्थान पर 'एकादश' तथा 'पैंतालीस' के सादृश्य पर 'सैंतालीस' में अनुनासिकता का आगम इसके कुछ उदाहरण हैं। तीन, चार, पाँच से 'तीनों', 'चारों' तथा 'पाँचों' के सादृश्य पर दो से दोनों का बनना भी सादृश्य का उदाहरण है। संस्कृत में पुल्लिंग में प्रयुक्त शब्द 'श्वास' से विकसित 'साँस' का प्रयोग आशा के तद्भव रूप आस के सादृश्य पर स्त्रीलिंग में होने लगा। हिन्दी में प्रयुक्त कई पुल्लिंग तत्सम शब्दों (आत्मा, आय, आयु, गन्ध आदि) का प्रयोग अरबी-फ़ारसी शब्दों (रूह, आमद, उम्र, बू आदि) के प्रभाव के कारण स्त्रीलिंग में होने लगा।

3.3.5.1.4. एक शब्द के दो रूपों का चलन

भाषा में जब एक अर्थ के लिए दो शब्दों का चलन हो जाता है, ऐसी स्थिति में उनमें से एक शब्द लुप्त होने लगता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में एक ही अर्थ में शब्द के तत्सम रूप के साथ-साथ तद्भव रूप भी चलने लगे। ऐसी स्थिति में उनके अर्थ में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। तत्सम रूप से उच्च अर्थ तथा तद्भव रूप से हीन अर्थ का बोध होने लगा। जैसे, 'स्तन' और 'थन' एक ही शब्द के विकसित रूप होते हुए भी, दोनों के अर्थ में भेद हो गया। 'स्तन' का प्रयोग महिला के लिए और 'थन' का प्रयोग पशु के लिए होने लगा। 'ब्राह्मण' और 'बामन' में भी अर्थ का अन्तर हो गया। 'ब्राह्मण' का प्रयोग 'शिक्षित ब्राह्मण' और 'बामन' का प्रयोग 'निरक्षर ब्राह्मण' के लिए होने लगा। इस प्रकार कई तत्सम और तद्भव रूपों में स्पष्ट अर्थ-भेद विकसित हो गया और एक ही शब्द के दो रूपों का चलन शुरू हो गया।

3.3.5.1.5. अज्ञान व असावधानी के कारण अशुद्ध प्रयोग

कई बार लोग अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अज्ञानवश और असावधानीपूर्वक करते हैं। उनका अनुकरण करते हुए दूसरे व्यक्ति भी अशुद्ध प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार शब्द पर एक नए अर्थ का आरोपण हो जाता है। संस्कृत में 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग पहले 'प्रशंसा' के लिए किया जाता था, किन्तु अब इसका प्रयोग 'शुक्रिया' के अर्थ में होने लगा है।

3.3.5.1.6. भावावेश तथा व्यंग्योक्ति

जब व्यक्ति आवेश में होता है तब वह शब्दों का प्रयोग विचित्र रूप से करने लगता है। कई बार प्रेमातिरेक में पिता अपने पुत्र को 'पाजी' या 'गधा' कह देते हैं। ऐसे में उनका उद्देश्य बुरा न होकर प्यार जताना होता है। इसी प्रकार अंतरंग मित्रों में एक दूसरे को 'साला', 'बेट' आदि सम्बोधन इन शब्दों के निहित अर्थ में परिवर्तन ला देते हैं। ऐसे शब्द गाली न होकर आत्मीयता के बोधक बन जाते हैं। 'मोटी बुद्धि', 'अक्ल का धनी'

का शाब्दिक अर्थ बुद्धिमान होता है किन्तु व्यंग्य के कारण इनका प्रयोग 'मूर्ख' का अर्थ देने लगता है। उद्वेग या आवेश में आकर बोलने के ढंग से भी अर्थ परिवर्तन होता है। सामान्य तौर पर 'गुरु' शब्द सम्मान का बोधक है, किन्तु व्यंग्य के रूप में 'कहो गुरु' या 'वह तो बड़ा गुरु निकला' में इसका अर्थ 'चालाक' या 'मक्कार' हो जाता है।

3.3.5.2. बाह्य कारण

बाह्य कारणों के अन्तर्गत निम्नलिखित कारणों को रखा जा सकता है –

3.3.5.2.1. भौगोलिक कारण

कुछ विद्वान् भाषा परिवर्तन में भौगोलिक प्रभाव को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार जलवायु का प्रभाव मनुष्य के शारीरिक गठन तथा चरित्र एवं ध्वनि पद्धति पर पड़ता है। पहाड़ी, मरुभूमि के निवासी ज़्यादा परिश्रमी एवं सुगठित होते हैं। उनकी भाषा में पौरुष दिखाई देता है। इसके विपरीत मैदानी भागों में रहने वाले लोगों में व्यक्तित्व की कोमलता दिखाई देती है। इसका प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है।

3.3.5.2.2. ऐतिहासिक कारण

ऐतिहासिक कारणों में विदेशी आक्रमण, व्यापारिक सम्बन्ध आदि को रख सकते हैं। हिन्दी की पद व्यवस्था में इतिहास का विशिष्ट योगदान रहा है। अरबी-फ़ारसी सम्पर्क के कारण हिन्दी में ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियाँ भाषा में आईं। शब्द स्तर पर इन ध्वनियों से बने हज़ारों शब्द हिन्दी के शब्द-भण्डार का अंग बन गए। जैसे – वज़ीफ़ा, हिफ़ाज़त, ख़त, ख़ता, ज़ख़्म, ज़लालत, ज़लज़ला, लाज़नी, फ़ालतु, फ़िज़ूल, ग़फ़लत आदि शब्द अरबी-फ़ारसी से हिन्दी में आए हैं। इसी प्रकार अंग्रेज़ों के सम्पर्क के कारण भी हज़ारों शब्द हिन्दी में आए। इसके बारे में आगत शब्दावली में विस्तार से देखेंगे।

3.3.5.2.3. राजनैतिक-सांस्कृतिक कारण

राजनैतिक-सांस्कृतिक प्रभाव के कारण एक भाषा में दूसरी (विदेशी) भाषा के शब्द ग्रहण कर लिए जाते हैं। शासकों की भाषा के रूप में सम्पर्क के कारण अरबी-फ़ारसी से कलम, काग़ज़, लिफ़ाफा, जिल्द आदि शब्द हिन्दी में प्रयोग होने लगे। इसी प्रकार अंग्रेज़ी के सम्पर्क के कारण भी टिकट, स्टेशन, रेल, रेडियो, रोड, ट्रेन, ट्राम, ट्रक, ड्राइवर, ड्रम, ड्रेस, ऑक्सीजन, नाईट्रोजन, हाइड्रोजन, हाइवे, टी,वी., टेलीफ़ोन, मोबाइल आदि शब्द हिन्दी भाषा में सम्मिलित हो गए हैं। इसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं से भी हिन्दी ने सैकड़ों शब्द (दोसा, इडली, उपमा, उतप्पम, रसम आदि) ग्रहण किए हैं। इसी प्रकार अनेक विदेशी भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए हैं। जैसे, तूफ़ान और चाय (चीनी से), सुनामी (जापानी से), कमीज़ और रेस्तराँ (फ्रांसीसी से)।

भारत में ही नहीं, दूसरे देशों में भी अनेक बार सांस्कृतिक जागरण हुए हैं, जब रूढ़ि और पुरातनता को छोड़कर नवीनता को अपनाया गया है। भारत में आर्यसमाज ने हिन्दी को प्रमुखता दी और पंजाब में उर्दू के स्थान पर संस्कृत के तत्सम शब्दों का चलन प्रारम्भ हुआ। इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने भाषा के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। तत्सम और तद्भव रूपों का प्रयोग एक साथ होने लगा।

3.3.5.2.4. साहित्यिक कारण

भाषा के परिवर्तन में कभी-कभी साहित्यिक प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। भारत में भक्ति आन्दोलन के चलते कि लेखक लोकभाषाओं का प्रयोग करने लगे। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि कवियों ने विभिन्न बोलियों को अभिव्यंजना की ऐसी क्षमता प्रदान की जो पहले नहीं देखी गई थी। बोलियों को भाषा का रूप प्रदान किया। अवधी और ब्रज बोलियाँ भाषा बन गईं। आधुनिक युग में छायावाद ने भी ऐसा ही काम किया। खड़ी बोली को काव्य-भाषा बनाने का श्रेय छायावाद को ही जाता है।

3.3.5.2.5. आगत शब्दों का प्रभाव

भाषा सम्पर्क के कारण एक दूसरे की भाषाओं को प्रभावित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। भारत में मुसलमानों के आगमन के कारण हमारी भाषा में अरबी-फ़ारसी से हज़ारों आगत शब्द हिन्दी में आए। जैसे – ईमान, फ़ुरसत, कदम, मैदान आदि फ़ारसी से; हवा, हुनर, तावीज़, किताब आदि अरबी से; कैंची, काबू, चाकी, गलीचा, तोप, दारोग़ा, बहादुर, सौग़ात आदि तुर्की से आए हैं। ये आज हिन्दी की शब्द-सम्पदा का अभिन्न अंग बन चुके हैं। इसी प्रकार अंग्रेज़ों के सम्पर्क के कारण हज़ारों अंग्रेज़ी शब्द भी हिन्दी में रच-पच चुके हैं। जैसे – ऑफ़िस, स्प्रिंग, गिलास, कॉलेज, एजेंट, कमीशन आदि। अरबी-फ़ारसी से उपसर्ग और प्रत्ययों के स्तर पर भी काफ़ी बद्ध रूपिम हिन्दी में लिये गए हैं। जैसे – बेकार, बेरहम, बेरोज़गार, बेवकूफ़, बेनाम, लाइलाज, लाइल्म, बदकार, बदज़ात, बदमिजाज़ी, बदहवास, खुशफ़हमी, खुशमिजाज़ आदि। इसी प्रकार बहुवचन बनाने के लिए मकान से मकानात, कागज़ से कागज़ात, गवाह से गवाहान आदि संरचनाएँ हिन्दी व्याकरण का अनुसरण नहीं करतीं। इस प्रकार, हिन्दी पद व्यवस्था तथा शब्द-भण्डार में परिवर्तन हुए हैं।

3.3.5.2.6. किसी जाति विशेष के प्रति मनोवृत्ति का विकास

किसी समाज, जाति या राष्ट्र के प्रति जैसी भावना होती है, उसकी छाया शब्दों के अर्थों पर भी झलकती है। 'असुर' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद की ऋचाओं में देवताओं के लिए किया गया है। उस समय ईरानियों के प्रति भारतीयों के विचार बुरे नहीं थे। जैसे-जैसे विचार बदले और ईरानियों के प्रति दुर्भावनाएँ पैदा हुईं, तब 'असुर' शब्द का अर्थ 'राक्षस' हो गया। साम्प्रदायिक दंगों के दौरान 'मुसलमान' और 'हिन्दु' शब्द भी घृणा और अविश्वास का सूचक बन जाते हैं। हिन्दुओं को 'काफ़िर' कहने के पीछे भी एक समुदाय की यही मनोवृत्ति झलकती है।

3.3.5.2.7. भाषा का आधुनिकीकरण

पिछली दो शताब्दियों में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। असंख्य नई वस्तुओं और तत्त्वों का आविष्कार हुआ है। उनके नामकरण के लिए हज़ारों नए शब्द गढ़ने पड़े हैं। भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का विकास किया गया है। तब नए गढ़े हुए शब्दों को अर्थ प्रदान किये गए हैं। हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयास के अन्तर्गत लगभग सात लाख नए शब्द विकसित किये गए हैं। कुछ शब्द संकर शब्दावली के रूप में विकसित हुए हैं। जैसे – 'ऑक्सीकरण', 'रेडियोधर्मिता', 'कागज़पत्र', 'रेलगाड़ी' आदि। इस प्रकार भाषा के आधुनिकीकरण के अन्तर्गत हिन्दी भाषा में सात लाख से अधिक तकनीकी शब्दों का निर्माण किया गया है जिनसे भाषा अत्यन्त समृद्ध हुई है।

3.3.5.2.8. अन्य कारण

कई बार एक भाषा को बोलने वाला समुदाय कई समूहों में बिखर जाता है तब एक ही शब्द विभिन्न समूहों में अलग-अलग अर्थ में विकसित होने लगता है। जैसे संस्कृत में 'वाटिका' शब्द का अर्थ 'बगीचा' था। भोजपुरी में यही शब्द विकसित होकर 'बादी' बगीचे का अर्थ देता है, किन्तु बांग्ला में यही शब्द 'बाड़ी' के रूप में विकसित होकर 'घर' का अर्थ देता है। कभी-कभी किसी शब्द विशेष के उच्चारण में किसी विशेष ध्वनि पर बल देने से अन्य ध्वनियाँ कमज़ोर पड़ जाती है। जैसे 'उपाध्याय' शब्द में 'ध्या' पर अधिक बल देने से 'झा' शब्द विकसित हो गया।

3.3.6. पाठ-सार

जीवन्त भाषा हमेशा परिवर्तनशाल होती है। समय के अन्तराल में भाषा के विभिन्न स्तरों – ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ आदि में परिवर्तन होता है। भाषा में परिवर्तन का अध्ययन समकालिक और द्वि कालिक, दोनों स्तरों पर किया जाता है। रूप परिवर्तन से तात्पर्य भाषा के रूपों – उपसर्ग, प्रत्यय, शब्दों आदि में परिवर्तन से है। रूप परिवर्तन का एक ओर सम्बन्ध ध्वनि परिवर्तन से और दूसरी ओर शब्द परिवर्तन से होता है।

इस पाठ में हमने रूप परिवर्तन के स्वरूप के बारे में पढ़ा। हमने जाना कि रूप परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है जिसके अन्तर्गत भाषा में हुए विभिन्न परिवर्तनों के सन्दर्भ में भाषा परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। हमने देखा कि ध्वनि परिवर्तन रूप परिवर्तन को कैसे प्रभावित करते हैं। ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत लोप, आगम, समीकरण, विषमीकरण, महाप्राणीकरण, विपर्यय, अनुनासिकता आदि के विकास के कारण शब्दों के रूप में परिवर्तन होता है। तत्सम शब्दों में असमान व्यंजन गुच्छों का समान व्यंजन गुच्छों में परिवर्तन होता है फिर समान व्यंजन गुच्छों के पहले ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण से व्यंजन गुच्छों का सरलीकरण हो गया। उसके फलस्वरूप भाषा में कर्म, धर्म, सप्त आदि शब्दों का कम्म, धम्म, सत्त होते हुए करम, धरम, सात का विकास हुआ। इसी प्रकार नासिक्य व्यंजन के अनुनासिक में परिवर्तन होने के फलस्वरूप दन्त से दाँत, कण्टक से काँटा आदि शब्दों का विकास हुआ। आगत शब्दों के फलस्वरूप हज़ारों शब्द अरबी-फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी से हिन्दी

भाषा के शब्द-भण्डार का अंग बने। स्वतन्त्र भारत में भाषा नियोजन की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत लाखों तकनीकी शब्द हिन्दी भाषा का अंग बन चुके हैं।

इसी पाठ में रूप परिवर्तन के कारणों पर विचार करते हुए उन्हें दो प्रकारों में विभक्त किया गया है – आन्तरिक तथा बाह्य। आन्तरिक कारणों के अन्तर्गत प्रयत्न लाघव या सरलता का आग्रह, बलाघात, सादृश्य, तत्सम तथा तद्भव दोनों रूपों वाले शब्दों का प्रयोग, शब्दों का अशुद्ध प्रयोग तथा भावातिरेक के कारण शब्दों के विकास की चर्चा की गई है। बाह्य कारणों के अन्तर्गत, भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक कारणों की चर्चा की गई है। आगत शब्दावली के कारण भी किसी भाषा के शब्द-भण्डार में परिवर्तन होता है। आगत उपसर्ग एवं प्रत्यय भी रूप परिवर्तम में सहायक होते हैं। भाषा नियोजन के अन्तर्गत आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत लाखों तकनीकी शब्द आज हिन्दी भाषा का हिस्सा बन चुके हैं। इस प्रकार इस पाठ में रूप परिवर्तन की दिशाओं तथा कारणों की सोदाहरण विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

3.3.7. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए –

(i) रूप परिवर्तन का अध्ययन भाषा परिवर्तन के अन्तर्गत किया जाता है। (√)

(ii) भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप कोशीय परिवर्तन होते हैं। (√)

(iii) भाषा हमेशा परिवर्तनशील होती है। (√)

(iv) वस्तु, शब्द और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध नहीं होता। (X)

(v) रूप परिवर्तन एक ऐसी भाषिक संघटना है, जिसके अन्तर्गत समय के अन्तराल में भाषा के रूपों तथा शब्दों में परिवर्तन होता है। (√)

(vi) भाषा परिवर्तन में रूप परिवर्तन कोई विशेष भूमिका नहीं निभाते। (X)

(vii) भाषा सम्पर्क भी रूप परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारक है। (√)

(viii) भाषा के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का विकास किया गया है। (√)

(ix) अप्रचलित शब्दों के अज्ञानवश या असावधानीपूर्वक प्रयोग द्वारा भी रूप परिवर्तन होता है। (√)

(x) राजनैतिक-सांस्कृतिक प्रभाव के कारण भी दूसरी (विदेशी) भाषा के शब्द ग्रहण कर लिए जाते हैं। (√)

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(i) हिन्दी में तकनीकी शब्दावली का विकास निम्नलिखित का उदाहरण है –

(क) आधुनिकीकरण
(ख) साहित्यिक प्रभाव
(ग) राजनैतिक–सांस्कृतिक प्रभाव

सही उत्तर (क)

(ii) रूप परिवर्तन के लिए कौनसा आधार का काम करता है ?
(क) अर्थ परिवर्तन
(ख) लिपि परिवर्तन
(ग) ध्वनि परिवर्तन

सही उत्तर (ग)

(iii) साला, पाजी आदि शब्द रूप परिवर्तन के अन्तर्गत किस प्रक्रिया के उदाहरण हैं ?
(क) पीढ़ी परिवर्तन
(ख) भावावेश
(ग) शिष्टाचार

सही उत्तर (ख)

(iv) कर्म से काम और सप्त से सात का विकास इनमें से किस दिशा का उदाहरण है ?
(क) अज्ञानता
(ख) व्यंजन-गुच्छों का सरलीकरण और ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण
(ग) सादृश्य

सही उत्तर (ख)

(v) पैंतालीस के आधार पर सैंतालीस में अनुनासिकता का आगम रूप परिवर्तन की कौन-सी प्रक्रिया का उदाहरण है ?
(क) भावातिरेक
(ख) सादृश्य
(ग) सरलता

सही उत्तर (ख)

3. निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) रूप परिवर्तन की दिशाएँ
(ii) आगत शब्दावली
(iii) रूप परिवर्तन के प्रमुख कारण
(iv) प्रयत्न लाघव
(v) रूप परिवर्तन और ध्वनि परिवर्तन

3.3.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. उदय नारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012 (तेरहवाँ संस्करण)
3. देवेन्द्रनाथ शर्मा, (1966) भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1973 (नवम संस्करण)
5. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, नई दिल्ली।
6. राजमल बोरा, (सं.) भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2007 (दूसरा संस्करण)
7. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2014

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : वाक्य विज्ञान

इकाई – 1 : वाक्य विज्ञान का स्वरूप, पद और वाक्य (अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद)

इकाई की रूपरेखा

4.1.00 उद्देश्य
4.1.01 प्रस्तावना
4.1.02 वाक्य विज्ञान
4.1.03 वाक्य का स्वरूप
- 4.1.03.1 वाक्य एक अर्थपरक इकाई
- 4.1.03.2 वाक्य एक संरचनापरक इकाई
- 4.1.03.3 वाक्य एक व्याकरणिक इकाई
- 4.1.03.4 वाक्य एक मनोवैज्ञानिक इकाई
- 4.1.03.5 वाक्य एक सन्दर्भपरक इकाई

4.1.04 वाक्य-संरचना और प्रोक्ति
- 4.1.04.1 उपवाक्य, पदबंध

4.1.05 वाक्य-संरचना के व्याकरणिक लक्षण
- 4.1.05.1 पदक्रम (शब्दक्रम)
- 4.1.05.2 कारक सम्बन्ध
- 4.1.05.3 अन्विति
- 4.1.05.4 अर्थ संगति अथवा योग्यता
- 4.1.05.5 अध्याहार / अल्पांग वाक्य

4.1.06 वाक्य विश्लेषण के विविध पक्ष
- 4.1.06.1 संरचनापरक
- 4.1.06.2 प्रकार्यपरक
- 4.1.06.3 लौकिक अर्थपरक
- 4.1.06.4 सूचनापरक

4.1.07 वाक्य-रचना की विविधता
- 4.1.07.1 निश्चित प्रकार्य-स्थान
- 4.1.07.2 वाक्य-रचनात्मक सम्बन्ध
- 4.1.07.3 रूपावली सम्बन्ध
- 4.1.07.4 अनिवार्य एवं वैकल्पिक घटक

4.1.08 पद और वाक्य (अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद)
- 4.1.08.1 अभिहितान्वयवाद
- 4.1.08.2 अन्विताभिधानवाद

4.1.09 पाठ-सार
4.1.10 अभ्यास प्रश्न

4.1.00. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. वाक्य के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
ii. भाषा संरचना में वाक्य के स्थान एवं महत्त्व को समझेंगे।
iii. पद और वाक्य (अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद) के अन्तस्सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
iv. वाक्य प्रयोग की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
v. वाक्य-संरचना क्रम का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
vi. वाक्य में अन्विति की व्यवस्था को समझेंगे।
vii. वाक्य विश्लेषण के विभिन्न स्तरों को समझेंगे।
viii. वाक्य और वाक्य-साँचों के बीच अन्तर का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
ix. हिन्दी के आधारभूत वाक्यों और उनसे उत्पन्न विभिन्न वाक्यों की रचना-प्रक्रिया को समझेंगे।

4.1.01. प्रस्तावना

पिछले पाठों में आपने पदविज्ञान का अध्ययन किया है। इस पाठ में आप वाक्य का स्वरूप, वाक्य की परिभाषा, वाक्य की रचना, वाक्य में पद विन्यास, परिवर्तन की दिशाएँ, परिवर्तन के कारण आदि का अध्ययन करेंगे। वाक्यात्मक युक्तियों का भी ज्ञान प्राप्त होगा जिनसे संगत वाक्य सृजित होते हैं। जैसे पदक्रम, कारण सम्बन्ध, अर्थ संगति तथा अध्याहार (अल्पांग वाक्य) आदि। आपको हिन्दी के आधारभूत वाक्यों का भी ज्ञान प्राप्त होगा।

4.1.02. वाक्य विज्ञान

जिस प्रकार रूप विज्ञान शब्द या रूप की संरचना का अध्ययन करता है उसी प्रकार वाक्य विज्ञान वाक्य की संरचना का अध्ययन करता है। वाक्य विज्ञान भाषा की उस प्रक्रिया तथा नियम व्यवस्था का अध्ययन करता है जिनसे शब्द एक दूसरे के योग से वाक्य की रचना करते हैं। वास्तव में वाक्य-संरचना के विभिन्न घटकों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन वाक्य विज्ञान है।

विभिन्न ध्वनियों के योग से जिस प्रकार शब्द की रचना होती है उसी प्रकार विभिन्न शब्दों या पदबंधों के योग से वाक्य सृजित होते हैं। वाक्य विज्ञान शब्दों से मिलकर बनने वाली रचना (वाक्य) का अध्ययन तो करता ही है, साथ ही वह वाक्य के अन्तर्गत दो या अधिक उपवाक्यों के परस्पर सम्बन्धों का भी अध्ययन करता है। उपवाक्यों के स्तर पर सरल, संयुक्त तथा मिश्र तीन प्रकार के वाक्य आते हैं। अतः एक से अधिक उपवाक्यों से बनने वाले वाक्यों की संरचना के नियमों का अध्ययन भी वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत उन विभिन्न व्याकरणिक युक्तियों का भी अध्ययन किया जाता है जिनके प्रयोग से व्याकरणसम्मत एवं संगत वाक्यों का सृजन हो पाता है। कुछ प्रमुख व्याकरणिक युक्तियों में पदक्रम, कारक सम्बन्ध, अन्विति, अर्थसंगति तथा अध्याहार हैं।

वाक्य विज्ञान में हम वाक्यात्मक सम्बन्धों का अध्ययन दो स्तरों पर करते हैं – वाक्य विन्यासात्मक (रेखीय) सम्बन्ध एवं रूपावली सम्बन्ध।

(i) **वाक्य विन्यासात्मक (या रेखीय) सम्बन्ध** : वाक्य विन्यासात्मक (या रेखीय) सम्बन्ध से तात्पर्य है, वाक्य के विभिन्न घटकों के मध्य उपस्थित क्रमिक व्याकरणिक सम्बन्ध (जैसे – कर्त्ता, कर्म, क्रियाविशेषण और क्रिया आदि)। इस अध्ययन में हम किसी भाषा विशेष के मूल वाक्य-साँचों अथवा वाक्य-कोटियों की संख्या तथा स्वरूप का निर्धारण करते हैं। वाक्य-साँचों से ही भाषा के समस्त वाक्य व्युत्पन्न होते हैं। सरल शब्दों में यही वाक्य का रूपान्तरण या विस्तार कहलाता है। वाक्य विज्ञान में उन नियमों तथा युक्तियों का भी अध्ययन होता है जिनसे मूल वाक्य-साँचों का विस्तार या रूपान्तरण, भाषा के अनेक प्रकार के वाक्यों में सम्भव हो पाता है।

(ii) **रूपावली सम्बन्ध** (Paradigmatic Relation) : रूपावली सम्बन्ध का अभिप्राय यह है कि वाक्य के किसी घटक विशेष (शब्द, पदबंध) का अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से सम्बद्ध होना। वाक्य के अन्तर्गत किसी एक घटक के प्रयोग-स्थान पर अन्य समानधर्मा शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। यथा – 'मोहन घर जा रहा है।' इस वाक्य में 'मोहन' के प्रयोग-स्थान पर 'लड़का', 'वह', 'मेरा छोटा भाई' आदि शब्द या पदबंध प्रयुक्त हो सकते हैं। इसी प्रकार 'घर' के स्थान पर 'बाजार', 'स्कूल', 'गीता के यहाँ' आदि शब्द या पदबंध प्रयुक्त हो सकते हैं। एक ही वर्ग के एकाधिक शब्दों या पदबंधों के मध्य का यही सम्बन्ध रूपावली सम्बन्ध कहा जाता है। यह सम्बन्ध रेखीय या क्रमिक नहीं होता। यह ऊपर से नीचे की ओर होता है। इसी ऊर्ध्वाधर सम्बन्ध के आधार पर पदबंध की संकल्पना का विस्तार होता है।

4.1.03. वाक्य का स्वरूप

वाक्य का स्वरूप हमारे समक्ष कई रूपों में प्रस्तुत होता है। यथा – अर्थ की एक इकाई के रूप में, संरचना की एक इकाई के रूप में अथवा सामाजिक सन्दर्भ की एक इकाई के रूप में। इसीलिए वाक्य की परिभाषाएँ भी अनेक प्रकार की हैं। समय-समय पर वाक्य के सन्दर्भ में विद्वानों का दृष्टिकोण परिवर्तित होता रहा है। कारण यह है कि वाक्य विज्ञान में – वाक्य का स्वरूप, वाक्य की परिभाषा, वाक्य की रचना, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व, वाक्य में पदों का विन्यास, वाक्यों के प्रकार, वाक्य का विभाजन, वाक्य में निकटस्थ अवयव, वाक्य में परिवर्तन, परिवर्तन की दिशाएँ, परिवर्तन के कारण, पदिम (Taxeme) आदि सभी तत्त्वों का विवेचन किया जाता है। वाक्यविज्ञान पदविज्ञान की अगली कोटि है। वाक्य में पदों का प्रयोग होता है। पदों के आधार पर वाक्य निर्मित होता है।

वाक्य में विचार, विचारों का समन्वय, सार्थक एवं समन्वित अभिव्यक्ति आदि मानसिक कार्य सम्पन्न होता है। विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्यों के द्वारा होती है। अतः वाक्य ही भाषा का सूक्ष्मतम सार्थक इकाई माना जाता है।

4.1.03.1. वाक्य एक अर्थपरक इकाई

वाक्य को पारम्परिक रूप से अर्थ की एक इकाई के रूप में ही परिभाषित किया जाता है। वास्तव में वाक्य एक पूर्ण और स्वतन्त्र मानव उक्ति है। वह अकेले प्रयुक्त हो सकता है। अतः वाक्य 'एक स्वतन्त्र अर्थपूर्ण उक्ति' है। कामताप्रसाद गुरु ने वाक्य को 'एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द-समूह' कहा है। जो शब्द-समूह पूर्ण विचार व्यक्त न करे, वह वाक्य नहीं होता। यथा –

मैं कानपुर जा रहा हूँ। (वाक्य)

मैं कानपुर .... (वाक्य नहीं)

4.1.03.2. वाक्य एक संरचनापरक इकाई

अर्थ या विचार की पूर्णता सापेक्षिक होती है। एक विचार को हम एक या एकाधिक वाक्यों में भी कह सकते हैं। अतः वाक्य को एक मूर्त रचना के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। वाक्य एक रचना है जो कुछ घटकों (शब्दों-पदबंधों) से मिलकर बना है। ब्लूमफील्ड के अनुसार – "वाक्य एक ऐसी रचना है जो किसी उक्ति विशेष में अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नही बन सकती।" इस दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। यथा – ध्वनि अपने से बड़ी रचना शब्द का अंग है, शब्द अपने से बड़ी रचना पदबंध का अंग है, पदबंध अपने से बड़ी रचना उपवाक्य का अंग है किन्तु वाक्य अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं हो सकता। जैसे –

ध्वनियाँ : प / ई / ल / आ – शब्द – पीला

शब्द : पीला / फूल – पदबंध – पीला फूल

पदबंध : पीला फूल / खिला है – उपवाक्य – पीला फूल खिला है।

उपवाक्य : मैंने तुम्हें बताया / कि पीला फूल खिला है। – वाक्य – मैंने तुम्हें बताया कि पीला फूल खिला है।

4.1.03.3. वाक्य एक व्याकरणिक इकाई

वाक्य में प्रयुक्त विभिन्न घटक कोई न कोई व्याकरणिक भूमिका का निर्वाह करते हैं। प्रत्येक घटक कोई व्याकरणिक प्रकार्य पूर्ण करते हैं। अतः वाक्य एक ऐसी व्याकरणिक संरचना है जिसमें कम से कम दो अवयव

अवश्य होते हैं। यथा – उद्देश्य तथा विधेय। उद्देश्य वह अंश है जिसके बारे में कुछ कहा जाए। विधेय वह अंश है जो उद्देश्य के बारे में कहा जाता है। अर्थात् उद्देश्य के बारे में जो कुछ कहा जाए वह विधेय है। उदाहरणार्थ –

उद्देश्य	**विधेय**
राम	खेल रहा है।
वह	जा रहा है।

वाक्य में उद्देश्य तथा विधेय का विस्तार हो सकता है। यह विस्तार विशेषणों के प्रयोग से या अन्य घटकों के आगम से सम्भव है। यथा –

(क)	पुत्र	—>	मेरा बड़ा पुत्र
	बीमार	—>	अधिक बीमार

(ख) मेरा बड़ा पुत्र / आज रात की फ्लाइट से / घर आ रहा है।

4.1.03.4. वाक्य एक मनोवैज्ञानिक इकाई

संरचनावादी भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य को एक मूर्त एवं विश्लेष्य रचना के रूप में स्वीकार किया था। इसके विपरीत रूपान्तरण निष्पादक व्याकरण के जनक नोम चॉम्सकी ने वाक्य को मानव मस्तिष्क में स्थित एक अमूर्त संकल्पना के रूप में देखा। उन्होंने अमूर्त मानसिक रूप में वाक्य को एक आदर्श वाक्य ही माना। वह मानसिक रूप में भी पूर्ण और सही होता है। बाह्य संरचना से व्यक्त रूप, मानसिक रूप से भिन्न हो सकता है। अतः वाक्य संरचना की कल्पना दो प्रकार से की गई – आन्तरिक एवं बाह्य। ऊपर से एक दिखाई देने वाले वाक्य में एक या अधिक आन्तरिक वाक्य अन्तर्निहित हो सकते हैं। इन आन्तरिक वाक्यों को आधायित (Embeded) वाक्य कहते हैं। जिस वाक्य में आधायित वाक्य निहित होता है उसे आधात्री वाक्य कहते हैं। जैसे –

बाह्य संरचना	–	मैंने विद्यार्थियों को कक्षा के बाहर जाते देखा।	
आन्तरिक संरचना	–	(क) मैंने विद्यार्थियों को जाते देखा।	(आधात्री वाक्य)
		(ख) विद्यार्थी कक्षा से बाहर जा रहे थे।	(आधायित वाक्य)

मनोवादी भाषावैज्ञानिकों के अनुसार वाक्य रेखीय क्रम में बुनी गई लड़ी या माला नहीं है। इसकी संरचना में उच्चाधिक्रम (Hierarchy) है। इसमें एक से अधिक स्तर हैं।

संरचनावादी भाषाविद् अर्थ को अविश्लेष्य मानकर उसे अपने विश्लेषण का अंग नहीं बनाते थे । रूपान्तरण निष्पादक व्याकरण में अर्थबोध को अपने विश्लेषण में एक घटक के रूप में स्वीकार किया गया क्योंकि इसी के आधार पर वाक्य के बाह्य एवं आन्तरिक स्तर पर भेद कर पाना सम्भव हुआ । जैसे –

पुलिस ने दौड़ते हुए चोर को पकड़ा ।

(क) पुलिस दौड़ रही थी । (वाक्य – 1)

(ख) चोर दौड़ रहे थे । (वाक्य – 2)

4.1.03.5. वाक्य एक सन्दर्भपरक इकाई

समाजभाषाविज्ञान तथा बाद में संकेतप्रयोग विज्ञान (प्रैग्मेटिक्स) की अवधारणा से वाक्य की संकल्पना का विकास हुआ । वाक्य केवल एक संरचना नहीं बल्कि सामाजिक 'घटना' या कार्यव्यापार के एक घटक के रूप में स्वीकार किया गया । वाक्य का सम्बन्ध संवाद के पूर्ण परिवेश से स्थापित हुआ । इस दृष्टि से वाक्य को सन्देश-सम्प्रेषण की एक इकाई माना गया, मूल इकाई नहीं । सन्देश-सम्प्रेषण की दृष्टि से अब भाषा की मूल इकाई प्रोक्ति (डिस्कोर्स) माना जाने लगा, वाक्य नहीं । जो वाक्य या वाक्य समूह वक्ता के पूर्ण मंतव्यको प्रकट करे, वह प्रोक्ति है ।

प्रसंग के अनुसार प्रोक्ति केवल एक शब्द की भी हो सकती है (बैठिए, जाओ) । एक या एकाधिक वाक्य अथवा एक पैराग्राफ की भी प्रोक्ति हो सकती है । जैसे – एक गिलास दूध रखा है । फ्रिज में देखो, वहाँ एक गिलास दूध रखा है । उसे ले आओ । इस प्रकार भाषावैज्ञानिक विचारधाराओं के उतार-चढ़ाव एवं परिवर्तन के साथ वाक्य की संकल्पना में भी परिवर्तन हुए ।

4.1.04. वाक्य-संरचना और प्रोक्ति

भाषा-संरचना के तीन प्रमुख अंग हैं – ध्वनि, व्याकरण और अर्थ । इनमें व्याकरण के भी दो प्रमुख अवयव हैं – वाक्य और शब्द । भाषा-संरचना का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

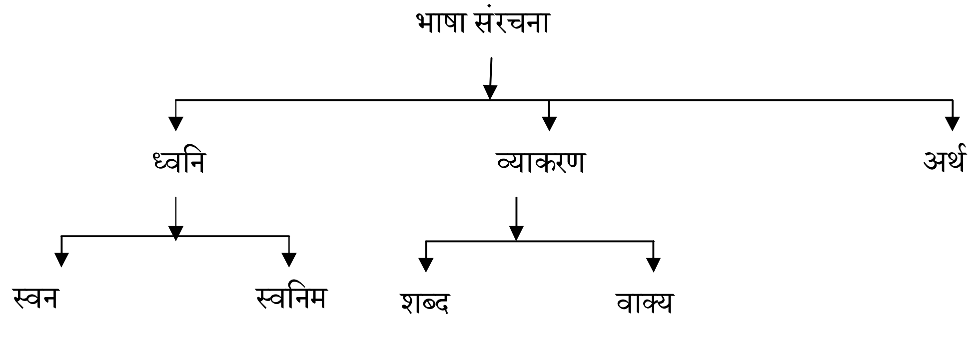

व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है किन्तु सन्देश-सम्प्रेषण की दृष्टि से वाक्य से भी बड़ी इकाई है प्रोक्ति। इससे वक्ता का पूर्ण आशय अभिव्यक्त हो जाता है। प्रोक्ति के द्वारा वक्ता का अभीष्ट सन्देश अपनी पूर्णता के साथ श्रोता तक पहुँच जाता है।

4.1.04.1. उपवाक्य, पदबंध

(क) उपवाक्य

उपवाक्य वाक्य का एक छोटा घटक होता है। वाक्य एक उपवाक्य भी हो सकता है। एक से अधिक उपवाक्य भी हो सकते हैं। जहाँ केवल एक उपवाक्य होता है, वह स्वतन्त्र होता है। वह सरल वाक्य कहलाता है। इसमें वाक्य-उपवाक्य में अभेद होता है। जैसे –

मैंने एक पुस्तक खरीदी (स्वतन्त्र उपवाक्य = वाक्य)

मैंने एक पुस्तक खरीदी जिसमें कुछ पन्ने गायब हैं। (स्वतन्त्र उपवाक्य + अस्वतन्त्र उपवाक्य = वाक्य)

जिन वाक्यों में दो या दो से अधिक उपवाक्य होते हैं उनमें उपवाक्यों के मध्य दो प्रकार के सम्बन्ध सम्भव हैं – अस्वतन्त्र (आश्रित) तथा स्वतन्त्र (अनाश्रित)। जो उपवाक्य दूसरे उपवाक्यों पर आश्रित होते हैं, उन्हें आश्रित उपवाक्य और जो उपवाक्य दूसरे उपवाक्यों पर आश्रित नहीं होते वे स्वतन्त्र (या मुख्य) उपवाक्य होते हैं। यथा –

अध्यापक स्कूल गए और विद्यार्थियों को पढ़ाया। (दोनों स्वतन्त्र उपवाक्य)

मैंने पुस्तक वापस कर दी जो उसने मुझे दी थी। (पहला उपवाक्य स्वतन्त्र / मुख्य, दूसरा आश्रित)

जब दोनों उपवाक्य स्वतन्त्र होते हैं तो उन्हें संयुक्त वाक्य कहा जाता है जैसे उपर्युक्त पहला वाक्य। जब तक उपवाक्य स्वतन्त्र / मुख्य तथा दूसरा आश्रित हो तो उसे मिश्र वाक्य कहते हैं। इस दृष्टि से उपवाक्यों के सन्दर्भ में वाक्यों की तीन श्रेणियाँ सम्भव हैं –

(i) सरल वाक्य : जिसमें केवल एक स्वतन्त्र उपवाक्य होता है।
(ii) संयुक्त वाक्य : जिसमें दो या अधिक स्वतन्त्र मुख्य उपवाक्य होते हैं।
(iii) मिश्र वाक्य : जिसमें एक स्वतन्त्र / मुख्य उपवाक्य होता है और शेष आश्रित उपवाक्य।

(ख) पदबंध

पदबंध उपवाक्य से छोटा घटक होता है। पदबंधों से मिलकर ही उपवाक्य बनता है। वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी करने वाली इकाइयाँ पदबंध कहलाती हैं। इसका अस्तित्व केवल वाक्य के अन्तर्गत ही सम्भव है, वाक्य के इतर नहीं।

प्रत्येक वाक्य में कर्त्ता, कर्म, पूरक क्रियाविशेषण और क्रिया आदि का एक निश्चित प्रयोग स्थान होता है। ये वाक्य में निर्धारित प्रकार्य सम्पन्न करते हैं। इन स्थानों को प्रकार्य स्थान कहते हैं। इन स्थानों पर जो शब्द या शब्द-समूह प्रयुक्त होते हैं या हो सकते हैं, उन्हें पदबंध कहते हैं। पदबंध एक शब्द तथा एकाधिक शब्दोंका भी हो सकता है। जैसे –

वाक्य क्रमांक	कर्त्ता पदबंध	कर्म पदबंध	क्रिया पदबंध
i.	विद्यार्थी	पुस्तक	पढ़ रहा है।
ii.	मेरा विद्यार्थी	दोनों पुस्तकें	पढ़ रहा है।
iii.	मेरा पुराना विद्यार्थी	वहाँ रखी पुस्तकें	पढ़ रहा है।

वाक्य क्रमांक (i) में तीन पदबंध हैं – 'विद्यार्थी', 'पुस्तक' और 'पढ़ रहा है'। ये तीनों घटक यहाँ कर्त्ता, कर्म और क्रिया के प्रकार्य स्थान पर प्रयुक्त हैं। वाक्य क्रमांक (ii) और (iii) में इन पदबंधों का विस्तार हुआ है किन्तु उनके प्रकार्य स्थान वही हैं। समान प्रकार्य स्थानों पर प्रयुक्त होने के कारण वे भी पदबंध हैं। प्रकार्य की दृष्टि से 'विद्यार्थी', 'मेरा विद्यार्थी' और 'मेरा पुराना विद्यार्थी' में कोई अन्तर नहीं है। ये तीनों कर्त्ता के स्थान पर प्रयुक्त हैं किन्तु 'विद्यार्थी' शीर्ष या प्रमुख कर्त्ता उपबंध है। यही स्थिति अन्य दो उपबंधों की भी है। पदबंध के सभी विशेषक (विशेषण आदि) उसके एक अंग होते चले जाएँगे।

पदबंधों का विस्तार मुख्यतः चार प्रकार से सम्भव है –

(i) संज्ञा में विशेषण जोड़कर, जैसे – (खट्टे) अंगूर, (बच्चों की) पुस्तकें।
(ii) दो या अधिक शीर्षों का प्रयोग करके, जैसे – फल, मिठाई, कपड़े और मेवे, कमला और विमला।
(iii) दो या अधिक शीर्षों को समानाधिकरण सम्बन्धों में जोड़कर। ये शीर्ष एक ही व्यक्ति या पदार्थ का बोध कराते हैं। ये एक प्रकार का विशेषण जैसा कार्य करते हैं किन्तु दोनों संज्ञाएँ शीर्ष होती हैं। जैसे – मेरा पुत्र मोहन, हमारे संस्थाध्यक्ष श्री रामनारायण।
(iv) परसर्गों के प्रयोग से, जो प्रायः क्रियाविशेषण पदबंध हेतु प्रयुक्त होते हैं, जैसे – उन लड़कों के लिए, बड़ी गाड़ी से।

पदबंध से छोटी इकाई शब्द है। शब्दों के योग से ही पदबंध की रचना होती है। जैसे –

मेरा + पुराना + विद्यार्थी = मेरा पुराना विद्यार्थी

जिस पदबंध में केवल एक ही शब्द होता है उसमें शब्द और पदबंध में अभेद होता है। जैसे उपर्युक्त वाक्यों में – 'विद्यार्थी पुस्तक पढ़ रहा है में 'विद्यार्थी' और 'पुस्तक' पदबंध भी है और शब्द भी। वाक्य में प्रयुक्त

शब्द को हम पद कहते हैं। शब्द से छोटा घटक रूपिम है। रूपिम से छोटा घटक स्वनिम है। इस प्रकार हम भाषा के विभिन्न घटकों को अधिक्रम (हाइराकी) में इस प्रकार रख सकते हैं – प्रोक्ति, वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, शब्द, रूपिम, स्वनिम।

4.1.05. वाक्य-संरचना के व्याकरणिक लक्षण

वाक्य को शब्दों अथवा पदबंधों से बनी एक रचना कहा जाता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वाक्य केवल बिखरे हुए शब्दों का समूह मात्र है। वाक्य के विभिन्न घटकों के मध्य एक प्रकार की क्रमबद्धता होती है। इसे पदक्रम या शब्दक्रम कहते हैं। इनमें एक व्याकरणिक सम्बन्ध भी होता है। यह सम्बन्ध शब्दों (घटकों) के प्रयोगस्थान द्वारा या विभक्तियों (ने, को, से, में आदि) द्वारा प्रकट होता है। इसे कारक सम्बन्ध कहते हैं। कुछ घटक अन्य घटकों के रूपों को वचन, लिंग, पुरुष की दृष्टि से भी प्रभावित करते हैं। यह अन्विति कहलाता है। एक ही संरचनात्मक कोटि का शब्द होते हुए भी उसके स्थान पर दूसरा शब्द प्रयोग नहीं कर सकते। अर्थात् किसी भी संज्ञा आदि शब्द के स्थान पर कोई दूसरा संज्ञा आदि शब्द नहीं रखा जा सकता। शब्दों के अर्थ में जब एक प्रकार की संगति होती है तभी वे शब्द सही वाक्य की रचना कर पाते हैं। वाक्य का यह लक्षण अर्थ संगति या योग्यता कहलाता है।

कभी-कभी पूरा वाक्य न बोलकर कुछ अंश ही बोला जाता है किन्तु श्रोता को अभीष्ट अर्थबोध प्राप्त हो जाता है। इसे अध्याहार या अल्पांग वाक्य भी कहते हैं। वाक्य-रचना की ये कुछ व्याकरणिक युक्तियाँ या लक्षण हैं।

4.1.05.1. पदक्रम (शब्दक्रम)

शब्द से बड़ी किसी रचना में शब्दों का क्रम शब्दक्रम कहलाता है। इस क्रम का विधान प्रत्येक भाषा में भिन्न-भिन्न हो सकता है। जैसे – हिन्दी, अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में संज्ञा पदबंध का शब्दक्रम है – विशेषण + संज्ञा (अच्छा लड़का अच्छा घर), कुछ अन्य भाषाओं में (जैसे – फ्रांसीसी, रोमानियम आदि) यह क्रम उलटा होता है, अर्थात् संज्ञा + विशेषण। भारतीय भाषाओं में क्रिया वाक्य के अन्त में आती है जबकि अंग्रेजी आदि में कर्त्ता के बाद या मध्य में।

वाक्य के स्तर पर पदक्रम की लगभग वही स्थिति होती है जो कारक विभक्ति की होती है। अतः कोई शब्द वाक्य में किस स्थान पर है, किससे पूर्व या पश्चात् प्रयुक्त होता है, यह उसके कर्त्ता, कर्म आदि व्याकरणिक प्रकार्य का निर्धारण करता है। पदक्रम का महत्त्व वाक्य में कारक के समान है। यथा, इन दो वाक्यों में प्रथम स्थान पर आने के कारण ही राम और मोहन कर्त्ता हैं।

राम मोहन को मार रहा है। (राम – कर्त्ता)

मोहन राम को मार रहा है। (मोहन – कर्त्ता)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि संज्ञा के बाद कोई विभक्ति या परसर्ग (ने, को, से आदि) प्रयुक्त हो तो वह विभक्ति ही कर्त्ता, कर्म आदि की सूचना देता है, पदक्रम नहीं। यथा –

राम मोहन को मार रहा है। (मोहन – कर्म)

मोहन को राम मार रहा है। (मोहन – कर्म)

हिन्दी वाक्यों की सहज पदक्रम व्यवस्था इस प्रकार है –

कर्त्ता + कर्म + क्रिया

कर्त्ता तथा क्रिया अनिवार्य घटक हैं। वाक्य में कर्म और क्रियाविशेषण आदि ऐच्छिक घटक होते हैं। ऐच्छिक घटक किसी भी स्थान पर आ सकता है। अर्थात् कर्त्ता से पहले या बाद में, कर्म से पहले या बाद में और क्रिया से पहले लेकिन बाद में नहीं। उदाहरणार्थ –

कल वह स्कूल जाएगा।
वह कल स्कूल जाएगा।
वह स्कूल कल जाएगा।

कुछ भाषाओं में पदक्रम व्यवस्थात अधिक स्थिर होती है और कुछ में लचीली। हिन्दी वाक्यों में पदक्रम अधिक लचीला है। अंग्रेजी में पदक्रम काफी स्थिर है। यथा – निम्नलिखित अंग्रेजी वाक्यों में पदक्रम परिवर्तित नहीं किया जा सकता किन्तु हिन्दी में कर सकते हैं –

He has gone to the school.
(To the school he has gone.) अपरिवर्तनीय
(Has gone he to the school.) अपरिवर्तनीय

वह स्कूल गया है।
गया है वह स्कूल।
स्कूल गया है वह।

4.1.05.2. कारक सम्बन्ध

वाक्य के अन्तर्गत विभिन्न पदबंध परस्पर कुछ व्याकरणिक सम्बन्ध प्रकट करते हैं। यह सम्बन्ध ही अर्थबोध का आधार भी है। इस व्याकरणिक सम्बन्ध को कारक या परसर्ग कहते हैं। पदबंधों के व्याकरणिक प्रकार्य को भी यही सम्बन्ध निर्धारित करता है साथ ही अर्थबोध भी देता है।

वाक्य में कारक सम्बन्धों की सूचना दो प्रकार से मिलती है –

(i) कारक विभक्तियों से (जैसे – ने, को, से, में, लिए आदि)।
(ii) पद के प्रयोग स्थान से (जैसे – प्रथमा, द्वितीया आदि)।

संस्कृत तथा परम्परागत हिन्दी व्याकरण में वाक्य स्तर पर छह प्रकार के कारक गिनाए गए हैं। इनकी संभावित विभक्तियाँ कोष्ठक में दी गई हैं –

1. कर्त्ता	(क्रिया का करने वाला)	ने, से, को
2. कर्म	(जिस पर क्रिया का प्रभाव पड़े)	को
3. करण	(जिस साधन से क्रिया हो)	से, के द्वारा
4. सम्प्रदान	(जिसकी हितपूर्ति क्रिया से हो)	के लिए
5. अपादान	(जिससे अलगाव हो)	से
6. अधिकरण	(क्रिया संचालन का आधार)	में, पर

कारक सम्बन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और जटिल माना जाता है। भाषाविज्ञान के विद्वानों ने इस विषय पर काफी कार्य किया है। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक फ़िल्मोर (1968) ने 'कारक व्याकरण' नामक ग्रन्थ की रचना की। उनके अनुसार "वाक्य एक क्रिया तथा एक से अधिक संज्ञा पदबंधोंकी ऐसी रचना है जिसमें प्रत्येक संज्ञा क्रिया के साथ एक विशेष कारक सम्बन्ध के अन्तर्गत जुड़ी रहती है।" इस विश्लेषण में क्रिया वाक्य के केन्द्र में है। क्रिया के आधार पर ही कारकों की संख्या और आवश्यकता निर्धारित होती है। जैसे –

सुशील आया	(एक कारक)
उसने उसको बुलाया	(दो कारक)
अधिकारी ने कर्मचारी को चपरासी से बुलवाया।	(तीन कारक)

4.1.05.3. अन्विति

संज्ञाओं की तीन प्रमुख व्याकरणिक कोटियाँ प्रायः प्रत्येक भाषा में होती हैं – वक्ता, लिंग और पुरुष। इनकी एक विशेषता यह होती है कि ये प्रायः संज्ञा के माध्यम से वाक्य के कुछ घटकों (जैसे – विशेषण और क्रिया) के रूपों को प्रभावित करती है। संज्ञा के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार विशेषण और क्रिया का रूप भी बदलता रहता है। किसी घटक विशेष के प्रभाव से रूप बदलने की इस प्रक्रिया को अन्विति कहते हैं। हिन्दी में अन्विति की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। हिन्दी में अन्विति दो स्तरों पर देखी जाती है – विशेषण तथा क्रिया।

विशेषण स्तर पर – बड़े बेटे, बड़ा बेटा, छोटी बेटी

क्रिया स्तर पर – मोहन आ गया।

विमला आ गई।

वे आ गए।

वे आ गईं।

संज्ञा-क्रिया की अन्विति अधिक महत्त्वपूर्ण है। संज्ञा-विशेषण की अन्विति मुख्यतः पदबंध स्तर तक सीमित रहती है।

4.1.05.4. अर्थ संगति अथवा योग्यता

अर्थ संगति की दृष्टि से वाक्य दोषपूर्ण हो सकते हैं। यथा –

आज उसने अपने चिन्तन को खाया।
गाड़ी का इंजन आज उदास है।
वह बर्फ पढ़ रहा है।

उपर्युक्त वाक्यों में अर्थ की असंगति परिलक्षित हो रही है। शब्द एक व्याकरणिक संरचना अवश्य है पर अर्थ के स्तर पर शब्द किसी वस्तु या व्यापार का प्रतीक भी है। अर्थ की भी कार्य-व्यापारगत कुछ अपेक्षाएँ हैं। 'खाना' व्यापार का कर्म कोई खाद्य पदार्थ ही हो सकता है 'चिन्तन' नहीं। 'उदास' कोई प्राणी हो सकता है, गाड़ी नहीं। 'पढ़ना' व्यापार का कर्म कोई पठनीय वस्तु ही हो सकती है, 'बर्फ' नहीं। अतः वाक्य के हर घटक को अर्थ के स्तर पर अन्य सम्बद्ध घटकों के योग्य होना चाहिए। इसे अर्थ संगति कहते हैं। परम्परागत व्याकरण में इसे योग्यता का गुण कहते हैं।

4.1.05.5. अध्याहार / अल्पांग वाक्य

प्रायः हम अपने द्वारा प्रयुक्त वाक्यों के कुछ अंशों का लोप कर देते हैं। कभी-कभी एक-दो शब्दों के प्रयोग से ही अर्थबोध हो जाता है। भाषा का यह लक्षण 'अध्याहार' कहलाता है। इस प्रकार के वाक्यों को अल्पांग वाक्य कहते हैं। यथा – जाइए।

अर्थबोध तथा रचना प्रक्रिया की दृष्टि से अल्पांग वाक्यों को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित कर सकते हैं –

(i) मनोभाव सूचक अल्पांग वाक्य :

नमस्कार, शाबाश, शुक्रिया, हे राम !

(ii) सन्दर्भ आश्रित अल्पांग वाक्य : इसमें लुप्त अंश का अर्थबोध सन्दर्भ की सहायता से होता है –

कौन ? (प्रश्न)
डाकिया । (उत्तर)

आप कब जा रहे हैं ? (प्रश्न)
कल । (उत्तर)

(iii) पूरक अल्पांग वाक्य : कुछ अल्पांग मूल वाक्य के पूरक रूप में प्रयुक्तहोते हैं, जैसे –

मैं आज आऊँगा / ग्यारह बजे ।
वह कल जा रहा है / सुबह की गाड़ी से ।

(iv) संयुक्त अल्पांग वाक्य: वाक्य में समानधर्मी घटकों के दोहराव से बचने के लिए वक्ता प्रायः उनमें से एक घटक का लोप कर देता है । यथा –

मैं भी कानपुर जाऊँगा किन्तु परसों ।
मैं जा रहा हूँ और भाई भी ।

(v) आज्ञार्थक अल्पांग वाक्य : आज्ञार्थक वाक्यों में सामान्यतः मध्यम पुरुष (तुम, आप, तू) का लोप हो जाता है । जैसे –

(तुम) वहाँ जाओ ।
(आप) जाइए ।

4.1.06. वाक्य विश्लेषण के विविध पक्ष

वाक्य विश्लेषण के गहन अध्ययन में यह बात स्पष्ट होती है कि वाक्य के अंदर अनेक स्तर होते हैं जिनके साथ संयोजित होकर ही वाक्य अपना अभीष्ट अभिप्राय अभिव्यक्त करने में सफल होता है । सामाजिक व्यवहार में वाक्य का अन्तिम उद्देश्य सन्देश-सम्प्रेषण है । सम्प्रेषण की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट होगा कि वाक्य की अभिव्यक्ति केवल ध्वनियों, व्याकरणिक इकाइयों तथा अर्थ तत्त्वों (भावों) का मिश्रित रूप ही नहीं है । वाक्य में एक सामाजिक सरोकार भी निहित होता है जिससे यह निर्देशित होता है कि किस सामाजिक सन्दर्भ या परिवेश में किस प्रकार के वाक्य का प्रयोग अनुकूल है । इसके अतिरिक्त वाक्य में वक्ता का अपना दृष्टिकोण, उद्देश्य अथवा निजी प्रवृत्ति भी समाविष्ट होती है । वाक्य की सम्प्रेषणीयता इस सामाजिक परिवेश पर निर्भर होती है ।

वाक्य विश्लेषण संरचनागत, व्याकरणगत, अर्थगत, सन्दर्भगत परिवेश के अनेक स्तरों पर ही हो सकता है । यदि हम वाक्य के घटकों का विश्लेषण संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि संरचनात्मक कोटियों (शब्द

वर्गों) के रूप में करें तो वाक्य में इन घटकों के परस्पर व्याकरणिक सम्बन्धों की जानकारी हमें नहीं मिल सकती। यथा –

वह मार खा रहा है।
उसे चोट लगी।

इन वाक्यों में 'वह' या 'उसे' कर्त्ता नहीं है क्योंकि वह स्वयं मार नहीं रहा है बल्कि किसी अन्य के द्वारा मारा जा रहा है। या 'उसे' चोट लगी है। उसने चोट दी नहीं है। वाक्य विश्लेषण की दृष्टि से देखें तो इन वाक्यों में एक अंश पूर्वज्ञात सूचना का है और दूसरा अंश नई सूचना का है कि कोई उसे मार रहा है याचोट लगने का कारण अलग है। अस्तु किसी वाक्य का विश्लेषण मुख्यतः चार स्तरों पर किया जा सकता है – संरचनापरक, प्रकार्यपरक, लौकिक अर्थपरक, सूचनापरक।

4.1.06.1. संरचनापरक

इसके अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, क्रिया आदि के आधार पर वाक्य के विभिन्न घटकों (शब्दों) की संरचनात्मक कोटियों (शब्द वर्ग) का निर्धारण किया जाता है। यथा – 'महेश कानपुर से कल ही लौटा।' इस वाक्य में संरचनात्मसक कोटियाँ इस प्रकार हैं –

महेश (संज्ञा), कानपुर (संज्ञा), से (परसर्ग), कल ही (क्रियाविशेषण), लौटा (क्रिया)।

4.1.06.2. प्रकार्यपरक

वाक्य के अन्तर्गत प्रयुक्त शब्दों का निर्धारण उनकी व्याकरणिक भूमिकाओं के आधार पर किया जाता है। जैसे – कर्त्ता, कर्म, पूरक, क्रियाविशेषण, क्रिया आदि। ये एक प्रकार की कारक कोटियाँ हैं। इनका महत्त्व केवल वाक्य के अन्तर्गत ही होता है, वाक्य से बाहर नहीं। इसके विपरीत संरचनात्मक कोटियों (संज्ञा, विशेषण आदि) का अस्तित्व वाक्य से बाहर केवल शब्दों के स्तर पर भी सम्भव है। जैसे – 'कर्मचारियों ने गोपाल सिंह को अपना प्रतिनिधि बनाया।' इस वाक्य की प्रकार्यात्मक कोटियाँ इस प्रकार होंगी –

कर्मचारियों ने	(कर्त्ता)
गोपाल सिंह को	(कर्म)
अपना प्रतिनिधि	(पूरक)
बनाया	(क्रिया)

4.1.06.3. लौकिक अर्थपरक

लौकिक या वास्तविक जगत् में वाक्य के घटकों का निर्धारण उनकी भूमिकाओं के आधार पर होता है। जैसे – अभिकर्त्ता (सक्रिय कर्त्ता), अनुभवकर्त्ता, भोक्ता, लक्ष्य (कर्म), परिवेश (क्रियाविशेषण आदि)। यथा – ‘राम को मार पड़ी’ वाक्य की लौकिक अर्थ कोटियाँ इस प्रकार होंगी –

राम को – अनुभवकर्त्ता

मार पड़ी – क्रिया

इसी प्रकार ‘मोहन खाना खा रहा है’ वाक्य की कोटियाँ होंगी –

मोहन – अभिकर्त्ता

खाना – लक्ष्य

खा रहा है – क्रिया

4.1.06.4. सूचनापरक

वक्ता अपना सन्देश-सम्प्रेषित करने के लिए ऐसे विकल्पों का चयन करता है जो विशेष प्रकरण या प्रसंग के अनुकूल होता है। वह वाक्य को सूचना या सन्देश के रूप में गठित करता है। इसके लिए वह वाक्य के किसी घटक को कभी पहले प्रयोग करता है कभी मध्य में या कभी अन्त में। वाक्य के सहज क्रम में भी परिवर्तन कर दिया जाता है। कभी बलाघात होता है। अतः व्याकरणिक संरचना की तरह सूचना की भी संरचना होती है।

सूचना के स्तर पर वाक्य के घटक दो प्रकार के हो जाते हैं – ज्ञात सूचना तथा नई सूचना। यथा – ‘पिताजी कल नहीं आएँगे’ वाक्य की सूचना इस प्रकार है –

पिताजी – ज्ञात सूचना

कल नहीं आएँगे – नई सूचना

4.1.07. वाक्य-रचना की विविधता

प्रत्येक भाषा में अनेक प्रकार के वाक्यों की रचना सम्भव है। वाक्य विश्लेषण के किसी भी आधार पर वाक्यों को कुछ विशेष कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण व्याकरणिक प्रकार्यों के आधार पर

किया जाता है। सामान्यतः वाक्यों को अकर्मक, सकर्मक, द्विकर्मक, कर्तपूरक आदि वर्गों में वर्गीकृत करने की प्रक्रिया व्याकरणिक प्रकार्यों पर आधारित है। प्रकार्य आधारित वाक्य कोटियाँ निम्नवत् हैं –

कर्त्ता × क्रिया	(मोहन पढ़ता है।)
कर्त्ता × कर्म × क्रिया	(मोहन खाना खाता है।)
कर्त्ता ×कर्म^1 कर्म^2×क्रिया	(मोहन सोहन को पुस्तक देता है।)

ऐसे वाक्यों में समानधर्मा अनेक वाक्यों का समावेश रहता है। वाक्य के इस प्रकार के प्रकार्यात्मक ढाँचे को वाक्य-साँचा कहते हैं। भाषा में वाक्यों की संख्या अनगिनत हो सकती है किन्तु वाक्य-साँचों की संख्या निश्चित एवं सीमित होती है। वाक्य-साँचों की संख्या तथा उनका स्वरूप प्रत्येक भाषा में भिन्न-भिन्न हो सकता है।

वाक्य तथा वाक्य-साँचों में भी अन्तर है। वाक्य विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त तथा निश्चित रचना है। वाक्य-साँचा इन पदबंधों की प्रकार्यात्मक कोटियों से निर्मित एक अमूर्त ढाँचा होता है। इसमें उपयुक्त शब्दों को आरोपित कर अनेक वाक्य बनाए जा सकते हैं। वाक्य-साँचा एक प्रतीकात्मक, अमूर्त ढाँचा होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की संख्या सीमित होती है किन्तु वाक्य-साँचों के विभिन्न घटकों के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले संभावित शब्दों की संख्या असीमित हो सकती है। यही वाक्य-रचना की विविधता है। वाक्य साँचों की अपनी एक आन्तरिक संरचना होती है। वाक्य के विभिन्न घटकों के विन्यास के कुछ प्रमुख नियम निम्नवत् हैं –

4.1.07.1. निश्चित प्रकार्य-स्थान

वाक्य-साँचे के प्रत्येक घटक के निश्चित प्रयोग स्थान को प्रकार्य-स्थान कहा जाता है। प्रकार्य-स्थान संज्ञा पदबंध (मोहन का बड़ा बेटा), क्रियाविशेषण पदबंध (छत पर), क्रिया पदबंध (सो रहा है) तथा स्वतन्त्र विशेषण पदबंध का भी (राम बहुत अस्वस्थ है) हो सकता है किन्तु संज्ञा पदबंध में जुड़े विशेषण पदबंध का नहीं हो सकता। जैसे – 'सफेद कुत्ता' में 'सफेद' विशेषण पदबंध नहीं है।

4.1.07.2. वाक्य-रचनात्मक सम्बन्ध

वाक्य-साँचे के विभिन्न घटक परस्पर व्याकरणिक सम्बन्धों के माध्यम से सम्बद्ध होते हैं। उनमें कारकीय सम्बन्ध होता है। सारे घटक वाक्य में एक के बाद एक क्रम से आते हैं। इस तरह के पारस्परिक सम्बन्ध को रेखीय या रचनात्मक या वाक्य-विन्यासात्मक (Syntaymatic) सम्बन्ध कहते हैं। यथा हिन्दी वाक्य में – कर्त्ता – कर्म – क्रियाविशेषण – क्रिया के मध्य सम्बन्ध / वाक्य-साँचों के घटकों में एक व्यावहारिक सीमा तक विन्यासात्मक विस्तार सम्भव है। यथा –

लड़का / किताब / पढ़ रहा है।
कल / वह / शाम से / घर में / किताब पढ़ रहा है।

4.1.07.3. रूपावली सम्बन्ध

रेखीय सम्बन्धों के साथ ही वाक्य-साँचे के प्रत्येक घटक अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से भी जुड़ा होता है। कारण यह कि प्रत्येक घटक के प्रकार्य-स्थान पर उस वर्ग के अन्य शब्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं। यथा – 'लोग', 'सभी लोग', 'यहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थी' आदि संज्ञा शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। इसी प्रकार – 'आते हैं', 'जाते हैं', 'रहते हैं', आदि क्रिया पदबंध यथास्थान प्रयुक्त हो सकते हैं। एक ही वर्ग के इन शब्दों के मध्य रूपावली (Paradigmatic) सम्बन्ध माना जाता है। एक प्रकार्य स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले शब्दों को शब्द-वर्ग कहते हैं। इनके कई संरचनात्मक वर्ग सम्भव हैं। यथा – संज्ञा शब्द-वर्ग, विशेषण शब्द-वर्ग, क्रियाविशेषण शब्द-वर्ग, क्रिया शब्द-वर्ग आदि। किसी भी शब्द-वर्ग में असीमित शब्द संख्या हो सकती है। अतः विभिन्न प्रकार्य-स्थानों पर उपयुक्त, शब्द-वर्गों के शब्द का प्रयोग करते हुए एक ही वाक्य-साँचे से अनेक संख्या में वाक्य बनाए जा सकते हैं। यथा –

कर्त्ता		**क्रियाविशेषण**		**कर्म**		**क्रिया**
छात्र	—>	मेस में	—>	खाना	—>	खाते हैं।
हम	—>	स्कूल में	—>	किताब	—>	पढ़ते हैं।
मैं	—>	वहाँ	—>	कार्य	—>	करता हूँ।

4.1.07.4. अनिवार्य एवं वैकल्पिक घटक

वाक्य-साँचों के पदबंध घटक दो प्रकार के होते हैं – अनिवार्य एवं वैकल्पिक या ऐच्छिक। अनिवार्य घटक के अभाव में वाक्य मूल अर्थ की दृष्टि से टूट जाता है। जैसे – मैं आज स्कूल नहीं जाऊँगा' में 'मैं' और 'जाऊँगा' दो अनिवार्य घटक हैं। इन्हें नहीं हटाया जा सकता। दूसरी ओर 'आज' एक वैकल्पिक या ऐच्छिक घटक है। इसके अभाव में वाक्यार्थ की पूर्णता भंग नहीं होती। इस प्रकार की अतिरिक्त सूचनाएँ प्रायः क्रियाविशेषण पदबंधों द्वारा दी जाती है किन्तु कुछ वाक्यों में क्रियाविशेषण अनिवार्य घटक भी होता है। जैसे – 'अध्यापक स्कूल में हैं।' यहाँ क्रियाविशेषण पदबंध 'स्कूल में' हटा नहीं सकते। यहाँ यह ध्यातव्य है कि अनिवार्य घटकों में प्रश्नार्थक, नकारात्मक, आज्ञार्थक, अकर्तवाच्य आदि सन्दर्भ-विशिष्ट वाक्यों को शामिल नहीं किया जाता क्योंकि ऐसे सभी वाक्य अनिवार्य घटकों से व्युत्पन्न या रूपान्तरित (Transform) किए जा सकते हैं।

4.1.08. पद और वाक्य (अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद)

पद और वाक्य के सम्बन्ध में न्यायदर्शन, मीमांसादर्शन तथा व्याकरण दर्शन में बहुत व्यापक रूप से चर्चा की गई है। पद और वाक्य के महत्त्व के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद भी है। मीमांसा में पद और वाक्य के सापेक्ष महत्त्व पर दो विभिन्न मत प्रस्तुत किये गए हैं –

4.1.08.1. अभिहितान्वयवाद

इस वाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट हैं। इस वाद का अर्थ है – 'अभिहितानां पदार्थानाम् अन्वय:' अर्थात् पद अपने अर्थ को कहते हैं। उनका वाक्य में अन्वय हो जाता है। इस अन्वय से एक विशेष प्रकार का वाक्यार्थ निकलता है। इस वाद में पदों का महत्त्व है और पद समूह ही वाक्य है। पद के अतिरिक्त वाक्य का कोई महत्त्व नहीं है।

4.1.08.2. अन्विताभिधानवाद

इस मत के प्रवर्तक आचार्य प्रभाकर गुरु हैं। ये आचार्य कुमारिल भट्ट के ही शिष्य हैं। 'अन्विताभिधानवाद' का अर्थ है – 'अन्वितानां पदार्थानाम् अभिधानम्' अर्थात् वाक्य में पदों के अर्थ समन्वित रूप से विद्यमान रहते हैं। वाक्यों को तोड़ने से अलग-अलग पदों का अर्थ ज्ञात होता है। वाक्य से पदों को निकालना 'अपोद्धार' (Analysis) कहलाता है। इस मत के अन्तर्गत वाक्य को महत्त्व दिया गया है। अतः इसे वाक्यवाद भी कह सकते हैं।

'अन्विताभिधानवाद' में पदों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वे वाक्य के अवयव हैं। वाक्य के विश्लेषण के अन्तर्गत उनका अर्थ निकलता है। इस मत में 'वाक्य ही भाषा की इकाई है।' आधुनिक भाषाविज्ञान ने भी यह स्वीकार किया है कि 'Sentence in a significant Unit.' (वाक्य ही सार्थक इकाई है।) आचार्य भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में इसी विचार का समर्थन किया है कि 'पदों में वर्णों की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है और न वर्णों में अवयवों की। वाक्य के अतिरिक्त पदों की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।'

वास्तव में 'वाक्यवाद' ही ग्राह्य मत है। जिस प्रकार हाथ, पाँव, आँख, नाक आदि को मिलाकर शरीर नहीं बना है बल्कि ये सभी अंग हमारे शरीर के अवयव हैं। उसी प्रकार भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का साधन है। विचार या भाव समन्वित रूप में वाक्य के रूप में उदय होते हैं। उन वाक्यों को धारावाहिक रूप में हम उच्चारण द्वारा प्रकट करते हैं। विचार हमारे मन में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया आदि पदों के रूप में उदय नहीं होते। वाक्य एक स्वाभाविक एवं स्वतन्त्र सत्ता है। सामान्य जन को समझाने के लिए वाक्य-विश्लेषण (अपोद्धार) द्वारा नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात के रूप में वाक्य विश्लेषण करके पद बनाए जाते हैं। उनका अर्थ निर्धारित किया जाता है।

वाक्य-प्रयोग वास्तव में एक कठिन मानसिक रचना-प्रक्रिया है। हमारे वाक्य-प्रयोग का मनोवैज्ञानिक क्रम यह है –

1. चिन्तन	:	अपने मन:स्थित अभिप्राय का विचार करना
2. चयन	:	उपयुक्त शब्दों का चुनाव
3. भाषिक संरचना	:	व्याकरण के अनुरूप शब्द-क्रम तथा
4. उच्चारण	:	वाग् अवयवों की सहायता से शब्दों को प्रकट करना।

इन चारों की सहायता से ही भाषा, वाक् तथा वाक्य सुव्यवस्थित होगा। चिन्ता और उच्चारण समरूप होना चाहिए। उच्चारण की गति भी मध्यम होनी चाहिए तभी भावबोध सार्थक, सुस्पष्ट एवं सटीक होगा।

4.1.09. पाठ-सार

01. वाक्य विज्ञान का स्वरूप भाषा की वह प्रक्रिया है जिसमें शब्दों के योग से वाक्य बनने तक की प्रक्रिया एवं नियम-व्यवस्था का अध्ययन होता है।
02. वाक्य विन्यास और रूपावली सम्बन्ध के द्वारा घटकों के मध्य वाक्यात्मक सम्बन्ध प्रकट होता है।
03. वाक्य भाषा की मूल इकाई है। यह व्याकरणिक स्तर पर अभिव्यक्त होती है। सन्देश-सम्प्रेषण की दृष्टि से प्रोक्ति भाषा की मूल इकाई है।
04. उद्देश्य तथा विधेय – व्याकरणिक दृष्टि से, वाक्य के दो अनिवार्य अवयव होते हैं।
05. ध्वनि, व्याकरण और अर्थ भाषा-संरचना के तीन प्रमुख स्तर हैं।
06. उपवाक्य वाक्य का छोटा घटक होता है। एक वाक्य में एक से अधिक उपवाक्य हो सकते हैं।
07. आश्रित एवं स्वतन्त्र दो प्रकार के उपवाक्य हो सकते हैं।
08. दो स्वतन्त्र उपवाक्यों का योग संयुक्त वाक्य कहलाता है।
09. एक उपवाक्य स्वतन्त्र और शेष आश्रित उपवाक्य हों तो उसे मिश्र वाक्य कहते हैं।
10. पदबंध से वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्य पूर्ण होते हैं। इनका अस्तित्व केवल वाक्य के अन्तर्गत ही सम्भव है।
11. पदक्रम, कारक सम्बन्ध, अन्विति, अर्थ संगति और अध्याहार – ये पाँच प्रमुख, वाक्य-संरचना के व्याकरणिक लक्षण होते हैं।
12. किसी घटक विशेष के प्रभाव से रूप बदलने की प्रक्रिया अन्विति कहलाती है।
13. अल्पांग वाक्यों में एक या अधिक घटकों का लोप रहता है। पूर्णांग वाक्यों में वाक्य के सभी घटक उपस्थित रहते हैं।
14. मनोभावसूचक, सन्दर्भ आश्रित, पूरक, संयुक्त तथा आज्ञार्थक कोटियाँ अल्पांग वाक्य के अन्तर्गत होती हैं।

15. संरचना, प्रकार्य, लौकिक अर्थ और सूचना – इन चार स्तरों पर वाक्य का विश्लेषण किया जा सकता है।
16. संरचनापरक विश्लेषण से संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं।
17. प्रकार्यपरक विश्लेषण से कर्त्ता, कर्म, पूरक जैसी कोटियाँ प्राप्ति होती हैं।
18. वाक्य भिन्न-भिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है। वाक्य-साँचा इन पदबंधों की प्रकार्यात्मक कोटियों से निर्मित एक अमूर्त ढाँचा है।
19. प्रत्येक वाक्य-साँचे में उसके विभिन्न घटक एक दूसरे से व्याकरणिक सम्बन्धों के द्वारा जुड़े रहते हैं। यह वाक्य विन्यासात्मक सम्बन्ध कहलाता है।
20. एक प्रकार्य-स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले शब्दों को शब्द-वर्ग कहते हैं। इनके बीच के सम्बन्ध को रूपावली सम्बन्ध कहते हैं।
21. अनिवार्य घटक और ऐच्छिक घटक वाक्य-साँचों के अन्तर्गत होते हैं।
22. अभिहितान्वयवाद में पदों का महत्त्व अधिक है। इसके विपरीत अन्विताभिधानवाद में वाक्य को ही अधिक महत्त्व दिया गया है।

4.1.10. अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाक्य के स्वरूप से आप क्या समझते हैं ?
2. वाक्य-रचना के व्याकरणिक लक्षणों को स्पष्ट कीजिए।

टिप्पणी लिखिए

1. संरचनापरक वाक्य विश्लेषण
2. लौकिक अर्थपरक वाक्य विश्लेषण
3. अनिवार्य और वैकल्पिक घटक
4. पद और वाक्य
5. सकर्मक वाक्य

❖❖❖

खण्ड – 4 : वाक्य विज्ञान

इकाई – 2 : वाक्य की परिभाषा, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व

इकाई की रूपरेखा

4.2.0 उद्देश्य
4.2.1 प्रस्तावना
4.2.2 वाक्य विज्ञान
4.2.3 वाक्य
4.2.3.1 वाक्य की कसौटियाँ
4.2.3.1.1 सभी अनिवार्य शब्दों की उपस्थिति
4.2.3.1.2 सभी शब्दों एवं इकाइयों का उचित अनुक्रम
4.2.3.1.3 अर्थ संगति / अर्थीय तालमेल (Semantic Compatibility)
4.2.4 वाक्य के प्रकार एवं रचनान्तरण के नियम
4.2.4.1 प्रतिस्थापन के नियम (Rule of Substitution)
4.2.4.2 संचालन के नियम (Rule of Movement)
4.2.4.3 संयोजन के नियम (Rule of Conjoining)
4.2.4.4 अध्याहार के नियम (Rule of Deletion)
4.2.5 वाक्य के अनिवार्य तत्त्व
4.2.5.1 वाक्य के आधाभूत तत्त्व
4.2.5.1.1 उद्देश्य या कर्त्ता (Subject)
4.2.5.1.2 विधेय (Predicate)
4.2.5.1.3 क्रिया (Verb)
4.2.5.1.4 कर्म (Object)
4.2.5.1.5 पूरक (Complement)
4.2.5.1.6 विधेय अनुबंध (Adjunct)
4.2.6 पाठ-सार
4.2.7 अभ्यास प्रश्न
4.2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

4.2.0. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. वाक्य विज्ञान के अध्ययन के आधार को समझ सकेंगे।
ii. वाक्य क्या है ! यह जानेंगे।
iii. वाक्य की योग्यता की शर्तों को जानेंगे।

iv. वाक्य की संरचना के रचनान्तरण नियमों (Generative Rules) को समझ सकेंगे।
v. वाक्य के अनिवार्य तत्त्वों को समझेंगे।
vi. वाक्य के आधारभूत तत्त्वों की प्रकृति को जानेंगे।
vii. वाक्य के आधारभूत तत्त्वों के कार्य एवं महत्त्व को समझेंगे।

4.2.1. प्रस्तावना

पिछले पाठ में आपने वाक्य विज्ञान क्या है और किन बातों का अध्ययन करता है, इन बातों को विस्तार से पढ़ा और समझा होगा। प्रस्तुत पाठ में हम वाक्य विज्ञान को संक्षेप में फिर से समझते हुए भाषा की आधारभूत इकाई वाक्य को समझेंगे। परम्परागत व्याकरण (Traditional Grammar) एवं रचनान्तरण प्रजनक व्याकरण (Transformational Generative Grammar), दोनों दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर वाक्य-संरचना के नियमों एवं शर्तों की विस्तृत व्याख्या इस पाठ में की गई है।

वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है और यह कई छोटी इकाइयों से मिलकर बना होता है। ये छोटी इकाइयाँ वाक्य का आधारभूत तत्त्व होती हैं। इन आधारभूत तत्त्वों की भी हम यहाँ विस्तार से चर्चा करेंगे और समझेंगे।

4.2.2. वाक्य विज्ञान

वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत हम उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करते है कि किस प्रकार शब्द आपस में मिलकर पदबंध बनाते हैं और यह पदबंध किस प्रकार एक उचित अनुक्रम में व्यवस्थित होकर एक वाक्य का निर्माण करते हैं। कहने-सुनने में तो यह प्रक्रिया बड़ी सरल लगती है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। इसे हम यूँ समझ सकते है कि मनुष्य प्रतिदिन न केवल अनगिनत वाक्यों का उत्पादन करता है बल्कि कौनसा वाक्य सही है और कौनसा ग़लत इस बात की पुष्टि करने की क्षमता भी रखता है। वह एक ही बात को अलग-अलग ढंग से व्यक्त भी करता है और सरलता से यह सोच लेता है कि वह किस प्रसंग में किस वाक्य का उचित प्रयोग कर सकता है। उदाहरण के तौर पर (1-4) को देखें –

(1) मैं खाना खा रहा हूँ।
(2) खाना मैं खा रहा हूँ।
(3) मैं खा रहा हूँ खाना।
(4) *मैं खा खाना रहा हूँ।

कोई भी भाषाभाषी यह बड़ी सरलता से बता सकता है कि (1), (2), (3) बिल्कुल सही वाक्य हैं और (4) ग़लत। साथ ही साथ वह यह भी समझ सकता है कि (1), (2) और (3) में एक ही बात को अलग-अलग ढंग से क्यों व्यक्त किया गया है और उनमें से किसका प्रयोग किस प्रसंग में किया जाना चाहिए। इन प्रश्नों को समझने

के लिए हमें सर्वप्रथम निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने होंगे। वाक्य विज्ञान का उद्देश्य भी इन्हीं प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ना और उनकी व्याख्या करना है।

(क) वाक्य क्या है ?
(ख) इसकी इकाइयाँ कौन-कौन सी हैं ?
(ग) भाषा के कौन-कौन से तत्त्व मिलकर इन इकाइयों का निर्माण करते हैं ?
(घ) ये इकाइयाँ किस प्रकार और किस क्रम में व्यवस्थित होकर एक वाक्य का निर्माण करती हैं ?

4.2.3. वाक्य

आइए हम जानें कि वाक्य क्या है ? शब्दों का वह समूह जो विचार की एक पूरी इकाई को प्रकट करता है वाक्य कहलाता है। विचार की एक इकाई से हमारा तात्पर्य एक विचार के पूर्ण अर्थ से है यानी शब्दों का समूह जिसने एक वाक्य का रूप लिया है पूर्ण अर्थ को प्रकट करता हो। उसे अर्थ को प्रकट करने के लिए किसी दूसरे समूह या इकाइयों की आवश्यकता नहीं होती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें।

(4) बच्चा सो रहा है।
(5) लड़का पानी भर रहा है।
(6) लड़के ने श्याम से पैसे लिए।

(4), (5) और (6) अपने आप में पूर्ण वाक्य हैं। अगर कोई शब्द-समूह 'क्या', 'क्यों', 'किसने', 'किसको' आदि जैसे सवालों का उत्तर देने में सक्षम हो तो वह एक वाक्य है। (4), (5) और (6) वाक्य हैं और इनसे पूर्ण अर्थ प्रकट हो रहा है। इसका प्रमाण हमें निम्नलिखित प्रश्नों (7, 8) से मिल जाएगा।

(7) बच्चा / लड़का क्या कर रहा है ?
(8) राम ने श्याम को क्या दिया ?

4.2.3.1. वाक्य की कसौटियाँ

अगर कोई शब्द-समूह निम्नलिखित तीन शर्तों को पूरा करता है तो वह वाक्य है –

(क) सभी अनिवार्य शब्दों या शब्द पदबंध की इकाइयों की उपस्थिति।
(ख) सभी शब्दों एवं इकाइयों का उचित अनुक्रम।
(ग) अर्थ संगति / अर्थीय तालमेल।

4.2.3.1.1. सभी अनिवार्य शब्दों की उपस्थिति

वाक्य-निर्माण के लिए सभी अनिवार्य शब्दों की उपस्थिति ज़रूरी है अन्यथा वह उचित अर्थ प्रकट नहीं कर पाएगा और साथ ही साथ क्या, क्यों, कौन और कैसे आदि सवालों का उत्तर नहीं दे पाएगा। उदाहरण के लिए (9), (10) और (11) को देखें –

(9) *राम ने श्याम को दिया।
(10) *लड़के ने बेचा।
(11) *लड़के ने पकाया।

वाक्य (9), (10) और (11) से पूर्ण अर्थ प्रकट नहीं होता क्योंकि ये निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दे सकते –

(12) राम ने श्याम को क्या दिया ?
(13) लड़के ने क्या बेचा ?
(14) लड़के ने क्या पकाया ?

यदि (9), (10) और (11) को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जाए तो शब्दों के इन क्रम को वाक्य का दर्जा मिल जाएगा –

(15) राम ने श्याम को क़र्ज़ दिया।
(16) लड़के ने सामान बेचा।
(17) लड़के ने खाना पकाया।

उपर्युक्त उदाहरण से एक बात तो समझ में आती है कि सिर्फ़ शब्दों के समूह में एकत्रित होने से उन्हें वाक्य का दर्जा नहीं मिलता बल्कि जो शब्द-समूह और इकाइयाँ वाक्य बनाने के लिए आवश्यक हैं उनकी उपस्थिति अनिवार्य है। अगर कोई भी शब्द उस शब्द-समूह से हट जाए तो वह समूह वाक्य नहीं रह जाता। हाँ, अगर छूटा हुआ शब्द / पदबंध प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है तो फिर वहशब्द-समूह वाक्य हो सकता है।

4.2.3.1.2. सभी शब्दों एवं इकाइयों का उचित अनुक्रम

वाक्य की सभी इकाइयों और उनके शब्दों की उपस्थिति के साथ-साथ उनका उचित अनुक्रम में व्यवस्थित होना भी अनिवार्य है अन्यथा पूर्ण और सही अर्थ वे प्रकट नहीं कर पाएँगे और उस इकाई को वाक्य नहीं कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए नीचे के वाक्यों को देखें –

(18) बच्चा खेल रहा है।

(19) खेल रहा है बच्चा।

(20) *रहा बच्चा है खेल।

(18) और (19) दोनों ही वाक्य हैं। (18) को (19) में अलग ढंग से प्रस्तुत किया गया है। (18) बताता है कि *बच्चा क्या कर रहा है* और (19) बताता है कि *कौन खेल रहा है*। इन्हीं फ़र्क़ को बताने के लिए शब्दक्रम में परिवर्तन किया गया है। यह बात ध्यान देने की है कि (18) और (19) में संज्ञा पदबंध और क्रिया पदबंध अलग-अलग स्थान पर रखे गए हैं। (18) में संज्ञा पदबंध वाक्य के शुरू में है और(19) में अन्त में। इन दोनों वाक्यों में क्रिया पदबंध के शब्द-समूह एक साथ हैं। (20) ग़लत इसलिए है कि इसमें क्रियापदबंध के पदों में अलगाव हो गया है यानी बच्चा को *रहा* और है के बीच में ला दिया गया है। हिन्दी उर्दू के शब्दक्रमों का नियम इस बात की आज्ञा नहीं देता है। हिन्दी में कुछ नियमों का अनुसरण करते हुए शब्दों के क्रम में थोड़ी हेर-फेर करने की स्वतन्त्रता है, परन्तु मनमाने ढ़ंग से हेर-फेर करने पर शब्द-समूहों का अर्थ अटपटा-सा हो जाता है और वह समझ में नहीं आता। शब्द-समूहों का ऐसा क्रम फिर वाक्य नहीं रह जाता है। (20) में जो शब्दों का समूह है वह वाक्य नहीं हो सकता या यूँ कहें कि यह सही वाक्य नहीं है और इसका कारण सिर्फ़ यही है कि इसके शब्दों को पदबंधों के अन्तर्गत उचित अनुक्रम में व्यवस्थित नहीं रखा गया है। उचित अनुक्रम का सभी भाषाओं में एक ही नियम है कि एक कोटि के शब्द-समूह की सीमा में दूसरी कोटि के शब्द-समूह को या उसके किसी शब्द को नहीं रखा जा सकता है।

4.2.3.1.3. अर्थ संगति / अर्थीय तालमेल (Semantic Compatibility)

शब्द-समूह जो वाक्यों के निर्माण के लिए अपेक्षित हैं उनकी हर एक इकाई (पदबंध) में आपस में अर्थीय तालमेल नहीं हो तो वाक्य का अर्थ बिगड़ जाएगा। कोई भी शब्द-समूह (पदबंध) जिसमें शब्द उचित संख्या और अनुक्रम में उपस्थित हों परन्तु उनमें अर्थीय तालमेल नहीं है तो वे सही वाक्य नहीं बना सकते। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(21) *पेड़ खेल रहा है।

(22) *कुर्सी पढ़ रही है।

(23) *पत्थर सो रहा है।

(21), (22) और (23) उचित वाक्य नहीं हैं क्योंकि इन तीनों में शब्दों के मध्य अर्थीय तालमेल की कमी है। (21) में *खेलना* क्रिया है जो सजीवों का लक्षण है और इसके लिए संचालन आवश्यक है। यहाँ पर कहा जा रहा है कि *पेड़ खेल रहा है* चूँकि *पेड़* निर्जीव है इसलिए यह खेल नहीं सकता और यहाँ अर्थ संगति नहीं बनती। इस प्रकार यह वाक्य सही नहीं है। (22) में *पढ़ना* क्रिया है जो मनुष्यों की क्षमता है, निर्जीव पढ़ नहीं सकते। *कुर्सी* भी एक निर्जीव वस्तु है इसलिए यह पढ़ नहीं सकती और इस प्रकार यहाँ शब्दों के बीच अर्थ विसंगति उत्पन्न होती है। ठीक इसी प्रकार (23) में भी अर्थ संगति का अभाव है। क्रिया *सोना* सजीवों का लक्षण है और संज्ञा

पत्थर निर्जीव वस्तु है जो सो नहीं सकता। यहाँ हम अभिधा की बात कर रहे हैं, लक्षणा और व्यंजना की नहीं। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्ति के प्रकार हैं जो शब्द के अर्थ का बोध कराती हैं। किसी शब्द का सामान्य अर्थ में प्रयोग होता है तो वह अभिधा शक्ति होती है। उसी प्रकार जब किसी शब्द या वाक्य का सामान्य अर्थ में प्रयोग न होकर उसका किसी विशेष अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो वहाँ लक्षणा शक्ति कार्य करती है। व्यंजना के अन्तर्गत किसी शब्द या वाक्य का अर्थ अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग होता है।

अतः शब्दों के वे अनुक्रम जो व्याकरण के सभी नियमों का पालन करते हैं और सही एवं पूर्ण अर्थ देते हैं, वाक्य कहलाते हैं। व्याकरणिक नियमों के अन्तर्गत केवल शब्दों की उचित संख्या और उनका उचित अनुक्रम ही नहीं आते बल्कि उनके मध्य अर्थीय अनुकूलता भी होनी चाहिए। भारतीय न्याय दर्शन में उच्चारण स्तर पर सन्निधि गुण को भी वाक्य के लिए आवश्यक बताया गया है जिसका तात्पर्य यह है कि शब्दों के उच्चारण के मध्य यदि अवांछित विलम्ब हो तो वाक्य का सही अर्थ नष्ट हो जाता है। इसीलिए वक्ता को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए।

4.2.4. वाक्य के प्रकार एवं रचनान्तरण के नियम

सम्प्रेषण के दौरान जब कोई व्यक्ति किसी भाषा का उपयोग करता है तो अपनी बात को श्रोता तक पहुँचाने के लिए वह व्याकरणिक स्तर पर भाषा की सबसे बड़ी इकाई – वाक्य, का ही इस्तेमाल करता है। इन्हीं वाक्यों का सहारा लेकर वह सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है यानी अपना मत दूसरों के सामने रखता है। आवश्यकतानुसार वाक्यों का स्वरूप भी बदलता है और ये वाक्य विभिन्न प्रकार के होते हैं –

(i) **निश्चयात्मक / घोषणात्मक वाक्य** (Indicative / Declarative Sentence) : ये वाक्य तथ्यों का सामान्य विवरण देते हैं। जैसे –-

(24) सूरज पूरब से निकलता है।
(25) यह खाना अच्छा नहीं है।
(26) बच्चा खेल रहा है। इत्यादि।

(24-26) घोषणात्मक वाक्य हैं। इनमें (24) और (26) सकारात्मक वाक्य (Affirmative Sentence) हैं एवं (25) निषेधात्मक।

(ii) **प्रश्नवाचक वाक्य** (Interrogative Sentence) : कभी-कभी हम सूचना पाने के लिए श्रोता से सवाल करते हैं। जैसे –

(27) सूरज कहाँ से निकलता है ?
(28) खाना कैसा है ?
(29) बच्चा क्या कर रहा है ?

(27) में *स्थान* की सूचना पूछी गई है, (28) में *खाने के स्वाद* का प्रश्न है और (29) में *बच्चे के* क्रियाकलाप पर प्रश्न है।

(iii) **आदेशसूचक वाक्य** (Imperative Sentence) : जब श्रोता से हम किसी काम को करने के लिए कहते हैं या किसी काम के लिए मना करते हैं तो इस प्रकार के वाक्यों का उपयोग करते हैं।

(30) वहाँ जाओ।
(31) यह काम मत करो।

(30) में सकारात्मक आदेश / अनुरोध (Affirmative order / request) है जबकि (31) में आदेश / अनुरोध की प्रकृति निषेधात्मक (Negative) है। आदेशसूचक वाक्य केवल श्रोता के लिए होते हैं।

(iv) **इच्छासूचक वाक्य** (Optative Sentence) : इसमें हम किसी काम के होने की सामूहिक या व्यक्तिगत इच्छा व्यक्त करते हैं।

(32) काश ये काम हो जाए !
(33) हमें चलना चाहिए !

इच्छासूचक में वक्ता भी सम्मिलित रहता है।

(v) **विस्मयादिबोधक वाक्य** (Exclamatory Sentence) : कभी-कभी हम किसी बात को सुनकर आश्चर्य या अफ़सोस व्यक्त करते हैं या फिर आश्चर्य, भावना या अफ़सोस के रूप में किसी बात पर या घटना पर अपनी टिप्पणी देते हैं।

(34) आप कैसी बात कर रहे हैं !
(35) वाह ! क्या ख़ूबसूरत नज़ारा है।

रचनान्तरण प्रजनक व्याकरण (Transformational Generative Grammar) में वाक्य के इन सभी स्वरूपों के मूल रूप होते हैं जिनसे ये वाक्य आवश्यकतानुसार विभिन्न नियमों का अनुसरण कर उत्पन्न होते हैं। नोम चॉम्सकी ने 1957 में सर्वप्रथम रचनान्तरण की इस अवधारणा की व्याख्या की थी। उन्होंने कहा कि वाक्य के दो रूप होते हैं, एक उसकी गहन संरचना (Deep Structure) है और दूसरी उसकी बाह्य संरचना (Surface Structure)। जैसे हम कह सकते हैं कि (36क), (36ख) की गहन संरचना है।

(36) (क). [लड़का [यह काम [करना ---भूतकाल]]]
(ख). लड़के ने यह काम किया।

उन्होंने यह भी कहा कि हर भाषा में वाक्यों की कुछ मूल संरचनाएँ और वाक्यविन्यास के नियम हैं जिनका प्रयोग करके आधार वाक्यों से अन्य वाक्यों को प्रजनित किया जा सकता है। रचनान्तरित वाक्यों की प्रतिज्ञप्त विषयवस्तु (Propositional Content) वही होती है जो उनके आधार वाक्यों की होती है, लेकिन रचनान्तरण के कारण उनके रूप बदल जाते हैं। रूप परिवर्तन की दृष्टि से रचनान्तरण के नियम चार प्रकार के हैं, जो निम्नलिखित हैं –

4.2.4.1. प्रतिस्थापन के नियम (Rule of Substitution)

इस नियम के अन्तर्गत एक 'पूरक' शब्द से किसी शब्द या वाक्यांश को प्रतिस्थापित किया जाता है। उदाहरणस्वरूप हम सर्वनामीकरण की प्रक्रिया को देख सकते हैं जिसके अनुसार दो उपपदों में तादात्म्य (equality) होने पर दूसरे उपपद की जगह पर उपयुक्त सर्वनाम का प्रयोग होता है। जैसा कि (37क) के *राजा* के स्थान पर (37ख) में *वह* का प्रयोग हुआ है।

(37) (क) राजा बहुत शक्तिशाली था, राजा दयालु भी था।
(ख) राजा बहुत शक्तिशाली था, वह दयालु भी था।

4.2.4.2. संचालन के नियम (Rule of Movement)

इस नियम के अनुसार कुछ शर्तों की पूर्ति होने पर वाक्य के किसी पदबंध या वाक्यांश का स्थान परिवर्तन किया जा सकता है / हो सकता है। जैसे, (38क) का प्रश्नवाचक शब्द (38ख) में वाक्य के अन्त में चला गया है।

(38) (क) क्या वह नहीं आएगा ?
(ख) वह नहीं आएगा क्या ?

4.2.4.3. संयोजन के नियम (Rule of Conjoining)

इसके अनुसार कुछ शर्तों को ध्यान में रखते हुए दो वाक्यों को संयोजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें।

(39) (क) राजा बहुत शक्तिशाली था। राजा पराक्रमी था।
(ख) राजा बहुत शक्तिशाली और पराक्रमी भी था।

(39क) के दोनों वाक्य (1. राजा बहुत शक्तिशाली था 2. राजा पराक्रमी था) *राजा* के बारे में हैं इसलिए *राजा* के साथ उसके दोनों गुणों (1. बहुत शक्तिशाली 2. पराक्रमी) को (39ख) में जोड़ दिया गया है।

(40) (क) मैं घर आऊँगा। मैं स्कूल जाऊँगा।

(ख) मैं घर आऊँगा और स्कूल जाऊँगा।
(ग) मैं घर आकर स्कूल जाऊँगा।

(40क) के दोनों वाक्यों (1. मैं घर आऊँगा 2. मैं स्कूल जाऊँगा) में कर्त्ता *मैं* एक ही है लेकिन क्रियापद (क्रमशः 1. घर आऊँगा 2. स्कूल जाऊँगा) अलग-अलग हैं। (40ख) में दोनों क्रियापदों को मिला दिया गया है। (40ग) में भी दोनों क्रियापदों को मिलाकर एक वाक्य बनाया गया है लेकिन दोनों संरचनाओं में अन्तर है। (40ख) में वाक्य संयोजन की प्रक्रिया के द्वारा इन्हें मिलाया गया है अर्थात् दोनों वाक्यों को संयोजक (coordinator) '*और*' द्वारा जोड़ा गया है जबकि (40ग) में पहली क्रिया में *कर* लगा कर उसे दूसरी क्रिया के पहले रखा गया है। (40ग) की संरचना को संयोजककृदन्त संरचना (Conjunctive participle construction) कहते हैं।

4.2.4.4. अध्याहार के नियम (Rule of Deletion)

इसके अनुसार संज्ञा पदबंधों या क्रिया पदबंधों के संयुक्त होने पर या किसी विशिष्ट स्थिति में वाक्य के उभयनिष्ट (common) पदों या पदबंधों का लोप हो जाता है। जैसा कि (40ख) और (40ग) में एक *मैं* का लोप हो गया है।

नोम चॉम्सकी ने यह भी कहा है कि आधार वाक्य सकारात्मक (Positive) और घोषणात्मक (Declarative) होते हैं और इन्हीं आधार वाक्यों पर रूपान्तरण के नियमों का उपयोग करके दूसरे वाक्य जैसे प्रश्नवाचक वाक्य , निषेधात्मक वाक्य आदि प्रजनित किये जाते हैं। जैसे –

(41) (क) राम ने यह काम किया।
(ख) क्या राम ने यह काम किया ? (प्रश्नवाचक रूपान्तरण द्वारा हाँ / नहीं प्रश्न (Yes / No Question))
(ग) राम ने क्या किया ? (प्रश्नवाचक रूपान्तरण द्वारा 'क-प्रश्न' (Wh-Question))
(घ) राम ने यह काम नहीं किया। (निषेधात्मक रूपान्तरण द्वारा निषेधात्मक वाक्य)
(ङ) राम के द्वारा यह काम किया गया। (कर्मवाच्य रूपान्तरण द्वारा निष्क्रिय वाक्य (Passive Sentence))

4.2.5. वाक्य के अनिवार्य तत्त्व

जैसा कि हम बता चुके हैं, शब्दों के समूह जो वाक्य के लिए अनिवार्य हैं, सीधे ही एक वाक्य उत्पन्न नहीं कर लेते बल्कि शब्दों और वाक्यों के मध्य भी प्रक्रियाओं के कई मध्य स्तर होते हैं। वाक्य पदबंधों (Phrases) का एक सुव्यवस्थित समूह होता है। ये पदबंध अपने कार्य और अपनी प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत होते हैं, जो वाक्य के तत्त्व कहलाते हैं। कोई भी वाक्य, चाहे वह साधारण हो या जटिल, उसे दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है अर्थात् हर वाक्य के दो अवयव होते हैं – उद्देश्य और विधेय।

उद्देश्य (Subject) : जिसके बारे में वाक्य में कुछ कहा जा रहा है वह उद्देश्य (Subject) है।

विधेय (Predicate) : जो कुछ उद्देश्य के बारे में कहा जाए वह विधेय (Predicate) है।

उद्देश्य संज्ञा पदबंध है जोकेवल संज्ञा या संज्ञा और उसके सम्बन्धित विशेषण का समूह या उसका प्रतीक सर्वनाम हो सकता है। उसी प्रकार विधेय क्रिया पदबंध है जिसमें या तो केवल क्रिया होगी (यदि वह अकर्मक हो) या क्रिया के साथ संज्ञा पदबंध होंगे (यदि क्रिया सकर्मक हो)। साथ ही उनमें क्रियाविशेषण पदबंध भी हो सकते हैं। संज्ञा पदबंध में संज्ञा का मुख्य स्थान होता है और क्रिया पदबंध में क्रिया का।

(42) लड़का हँसा।
(43) हरा-भरा पेड़ गिर गया।
(44) लड़के ने आम खाया।

जैसे (42) और (44) में सिर्फ़ संज्ञा (क्रमशः *लड़का* और *लड़के*) और (43) में विशेषण और संज्ञा का समूह (*हरा-भरा पेड़*) उद्देश्य हैं। (42) और (43) में सिर्फ़ क्रिया है (*हँसा* और *गिर गया* क्रमशः) क्योंकि *हँसना* और *गिरना* दोनों अकर्मक क्रियाएँ हैं। (43) में क्रिया *खाना* सकर्मक है इसलिए उसके साथ संज्ञा पदबंध*आम* भी आया है – *आम खाया*। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सारे ऐसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जिनका वाक्य के निर्माण में योगदान होता है, जिनकी व्याख्या निम्नलिखित अनुभाग में की गई है।

4.2.5.1. वाक्य के आधाभूत तत्त्व

सिर्फ़ यह कह देने से कि हर वाक्य का एक उद्देश्य होता है और एक विधेय बात पूरी नहीं होती है। वाक्य एक जटिल प्रणाली है जिसका निर्माण कई तत्त्वों और उनके सहायक तत्त्वों से मिलकर होता है। ये आधारभूत तत्त्व निम्नलिखित हैं :- उद्देश्य (Subject) क्रिया (Verb) कर्म (Object), पूरक (Complement), विधेय अनुबंध (Adjunct)।

सामान्यतः किसी भी वाक्य को दो हिस्सों में बाँटा जाता है – उद्देश्य और विधेय। उद्देश्य संज्ञा पदबंध होता है और विधेय क्रिया पदबंध। इन्हीं संज्ञा पदबंध और क्रिया पदबंध केअन्तर्गत ही वाक्य के सभी आधारभूत तत्त्व समाहित होते हैं जिसमें से उद्देश्य स्वयं एक आधारभूत तत्त्व है और अन्य आधारभूत तत्त्व क्रिया (Verb), कर्म (Object), पूरक (Complement) और विधेय अनुबंध (Adjunct) विधेय (Predicate) के अन्तर्गत आते हैं जैसा कि निम्नलिखित चित्र (Tree Diagram) से पता चलता है –

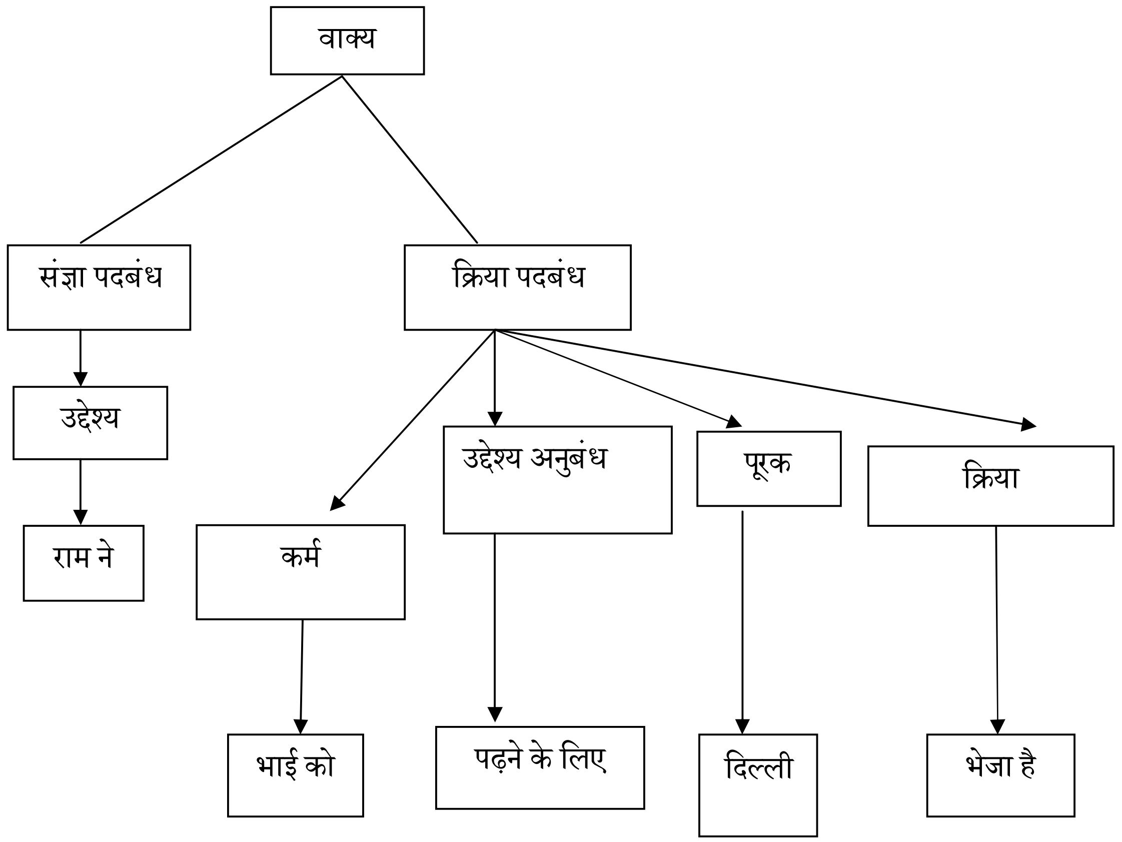

आइए इन्हें विस्तार से जानें।

4.2.5.1.1. उद्देश्य या कर्त्ता (Subject)

जैसा कि ऊपर भी कहा गया है कि उद्देश्य (Subject) वह है जिसके बारे में वाक्य में कुछ कहा जा रहा है। लोग, स्थान, चीज़ें, विचार या हालात जो कार्य करते हैं या जिन पर कार्य हो रहा होता है या जिनका वर्णन वाक्य में होता है सभी उद्देश्य होते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(42) लड़कियाँ खेल रही हैं।
(43) दिल्ली बड़ा शहर है।
(44) गर्म पानी इस बोतल में है।
(45) योजना सफ़ल हुई।
(46) बच्चा पिट गया।

(42), (43), (44), (45) और (46) में क्रमशः *लड़कियाँ*, *दिल्ली*, *गर्म पानी*, *योजना* और *बच्चा* सभी उद्देश्य हैं।

उद्देश्य एक संज्ञा पदबंध होता है जो केवल एक संज्ञा भी हो सकती है या फिर उसका प्रतीक सर्वनाम या फिर शब्दों का समूह जिसमें मुख्य अवयव संज्ञा है।

(47) (क) बच्चा स्कूल जा रहा है।
(ख) वह स्कूल जा रहा है।
(ग) एक अच्छा बच्चा स्कूल जा रहा है।

(47क) में *बच्चा* उद्देश्य है और *स्कूल जा रहा है* विधेय है और (47ख) में सर्वनाम *वह* उद्देश्य है और *स्कूल जा रहा है* विधेय। उसी प्रकार (47ग) में *वह* उद्देश्य है और *स्कूल जा रहा है* विधेय।

किसी भी वाक्य में उद्देश्य (Subject) की पहचान करना काफ़ी आसान है। अंग्रेज़ी में किसी भी वाक्य का प्रारम्भ आमतौर पर उद्देश्य से होता है अर्थात् उद्देश्य साधारणतः वाक्य के प्रारम्भ में होता है लेकिन उद्देश्य को पहचानने का ये मानदण्ड विश्वसनीय नहीं है। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी के निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(48) (क) The sun rises in the East.
(ख) Right now the boy is going to the school.

48(क) में तो पहला पदबंध *The sun* उद्देश्य है परन्तु 48(ख) का पहला पदबंध उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य होने के लिए उसमें संज्ञा या उसके प्रतिरूप का होना आवश्यक है और 48(ख) में पहला पदबंध *Right now* क्रियाविशेषण है इसलिए यह उद्देश्य नहीं हो सकता। अगर हम यहाँ पर यह सवाल पूछते हैं कि "*Who is going to the school* ?" तो इस सवाल का जवाब उद्देश्य (Subject) की ओर इशारा करता है और 48(ख) में *the boy* उद्देश्य (Subject) है।

हिन्दी का मामला अंग्रेज़ी से काफ़ी अलग है और यहाँ पर तो यह मानदण्ड (वाक्य में उद्देश्य का पहला स्थान) प्रायः अविश्वसनीय है। सामान्यतः हिन्दी में भी उद्देश्य वाक्य में पहले स्थान पर होता है परन्तु इसके वाक्यों में उद्देश्य और अन्य पदबंधों के स्थान को आवश्यकतानुसार बदलने की स्वतन्त्रता है। इसलिए यह कह देना कि वाक्य में पहला संज्ञा पदबंध ही उद्देश्य होता है उपयुक्त नहीं है। निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(49) (क) अभी बच्चा स्कूल जा रहा है।
(ख) अभी स्कूल जा रहा है बच्चा।
(ग़) अभी बच्चा जा रहा है स्कूल।
(घ) बच्चा स्कूल जा रहा है अभी।
(ङ) ? स्कूल जा रहा है बच्चा अभी।

49 (क-ङ) में हमने देखा कि एक ही वाक्य *अभी बच्चा स्कूल जा रहा है* को पाँच अलग-अलग ढंगों से व्यक्त किया गया है। 49(ङ) प्राकृतिक नहीं है लेकिन कभी-कभी इस तरह भी बोलते हैं। वाक्य "*अभी बच्चा स्कूल जा रहा है*" में उद्देश्य *बच्चा* है और (49 (क-ङ)) सबमें में यह भिन्न-भिन्न स्थान पर है। इसलिए वाक्यों में उद्देश्य की पहचान *कौन* और *क्या* जैसे सवाल पूछ कर की जा सकती है। अगर हम उपर्युक्त वाक्यों में उद्देश्य को पहचानने के लिए यह सवाल पूछें कि "*स्कूल कौन जा रहा है ?*" तो हमें उत्तर तुरन्त मिल जाएगा कि उद्देश्य कौन है ? हिन्दी में शब्दों का क्रम इतना सख़्त नहीं है जितना अंग्रेज़ी में है इसलिए हिन्दी में वाक्यों के पदबंधों को इधर उधर करने की जितनी स्वतन्त्रता है उतनी अंग्रेज़ी में नहीं है।

4.2.5.1.2. विधेय (Predicate)

वाक्य का वह हिस्सा जिसमें क्रिया होती है और जिसमें उद्देश्य के बारे में कुछ कहा जाता है उसे विधेय कहते हैं। उद्देश्य के बारे में कुछ कहा जाता है इससे यह तात्पर्य है कि उद्देश्य कौन है, कैसा है / कैसी है , क्या कर रहा है / रही है आदि जानकारी मिलती है और यही जानकारी विधेय कहलाती है। जैसे –

(50) मेरे पिता एक शिक्षक हैं।
(51) ये किताबें अच्छी हैं।
(52) लड़कियाँ खेल रही हैं।

(50), (51) और (52) में क्रमशः *एक शिक्षक हैं*, *अच्छी हैं* और *खेल रही हैं* विधेय हैं। (50) में विधेय (Subject) '*एक शिक्षक हैं*' जो यह बता रहा है कि उद्देश्य (*मेरे पिता*) का पेशा क्या है अर्थात् मेरे पिता क्या हैं (*शिक्षक हैं*)। (51) में उद्देश्य (*ये किताबें*) के बारे में पता चलता है कि किताबें कैसी हैं (*अच्छी हैं*)। ठीक उसी प्रकार (52) में उद्देश्य (*लड़कियाँ*) के बारे में यह जानकारी मिलती है कि लड़कियाँ क्या कर रही हैं (*खेल रही हैं*)।

किसी भी वाक्य की संरचना उसमें उपस्थित क्रिया द्वारा निर्धारित होती है। एक वाक्य के पूर्ण होने के लिए वाक्य में कौन-कौन से तत्त्वों का उपस्थित होना अनिवार्य है ये क्रिया की प्रकृति पर ही निर्भर करता है। तो आइए हम जानें कि क्रिया किसे कहते हैं और इसकी प्रकृति क्या होती है ?

4.2.5.1.3. क्रिया (Verb)

वह शब्द जिनसे किसी कार्य के करने या होने का पता चले या किसी व्यक्ति या वस्तु की स्थिति का पता चले उसे क्रिया कहते हैं। जैसे –

(53) लड़का सो रहा है।
(54) लड़का खेल रहा है।
(55) लड़का खाना खा रहा है।

(56) लड़का अच्छा है।

(53), (54), (55) और (56) में क्रमशः '*सो रहा है*', '*खेल रहा है*' , '*खा रहा है*' और 'है' क्रियाएँ हैं। (53), (54) और (55) में हमें ये पता चल रहा है उद्देश्य (*लड़का*) *सो रहा है*, '*खेल रहा है*' और '*खा रहा है*' परन्तु (56) में हमें इस बात का उत्तर मिलता है कि *लड़का कैसा है* ? (*अच्छा है*) और इसमें है (*होना*) एक क्रिया है। अतः अपने कार्य (Function) के अनुरूप क्रिया की प्रकृति बदलती है। क्रिया के निम्नलिखित प्रकार हैं – अकर्मक क्रिया (Intransitive Verb), सकर्मक क्रिया (Transitive Verb), संयोजक क्रिया (Linking Verb)।

(i) **अकर्मक क्रिया** (Intransitive Verb)

ऐसी क्रिया जिसे वाक्य के अर्थ को पूरा करने के लिए उद्देश्य के अतिरिक्त किसी और की आवश्यकता नहीं पड़ती उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। *चलना*, *हँसना*, *उड़ना* आदि अकर्मक क्रियाएँ हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(57) (क). गाड़ी चल रही है।
(ख). गाड़ी तेज़ चल रही है।
(58) (क). बच्चे हँस रहे हैं।
(ख). बच्चे ज़ोर ज़ोर से हँस रहे हैं।
(59) (क). पक्षी उड़ रहा है।
(ख). पक्षी आसमान में उड़ रहा है।

(57क), (58क) और (59क) में हम देखते हैं कि उनमें केवल एक उद्देश्य क्रमशः *गाड़ी*, *बच्चे* और *पक्षी* – और क्रिया पदबंध क्रमशः *चल रही है*, *हँस रहे हैं* और *उड़ रहा है* हैं जो केवल विभिन्न मुख्य एवं सहायक क्रियाओं का समूह है। हालाँकि हम इनमें कुछ अतिरिक्त (Additional) जानकारियाँ भी जोड़ सकते हैं परन्तु इन जानकारियों का होना वाक्य के पूरे होने के लिए आवश्यक नहीं है। जैसा कि हमें (57), (58) और (59) को देखकर पता चलता है। (57क), (58क) और (59क) और (57ख), (58ख) और (59ख) सभी वाक्य बिल्कुल सही हैं और पूर्ण अर्थ देते हैं। (57ख) और (58ख) में क्रियाविशेषण क्रमशः *तेज़* और *ज़ोर ज़ोर से* क्रिया *चलना* (चल रही है) और *हँसना* (हँस रहे हैं) की यह विशेषता बता रहे हैं कि क्रिया कैसी हो रही है ? (59ख) में हमें यह पता चल रहा है कि *पक्षी* कहाँ (*आसमान में*) उड़ रहा है।

(ii) **सकर्मक क्रिया** (Transitive Verb)

ऐसी क्रियाएँ जिन्हें एक पूर्ण वाक्य के निर्माण के लिए उद्देश्य सहित एक या एक से अधिक कर्म (Object) की आवश्यकता होती है सकर्मक क्रिया कहलाती है। कुछ सकर्मक क्रियाएँ ऐसी होती हैं जिसमें कर्म

के अलावा कुछ और पूरक की आवश्यकता होती है। साथ ही कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जो सकर्मक नहीं हैं लेकिन वाक्य पूरा करने के लिए उन्हें पूरक की आवश्यकता होती है। कर्म एक संज्ञापदबंध होता है।

(60) क. मैंने खाना बनाया।
ख. *मैंने बनाया।

(61) क. उसने मेरी मदद की।
ख. *उसने मदद की।

(62) क. उसने चाय में शक्कर मिलाई है।
ख. *उसने चाय में मिलाई है।
ग. *उसने शक्कर मिलाई है।

(63) क. वह पहाड़ पर चढ़ गया।
ख. *वह चढ़ गया।

(64) क. बच्चा कूद रहा है।
ख. बच्चा पानी में कूदा।
ग. *बच्चा कूदा।

(60) और (61) दोनों में क्रमशः *खाना* और *मेरी* कर्म (Object) हैं और इनके बिना वाक्य अधूरा होगा अर्थात् वाक्य का सही अर्थ नहीं निकलेगा। जैसा कि हमें (60ख) और (61ख) से पता चलता है। उसी प्रकार (62) में वाक्य को पूरा करने के लिए क्रिया *मिलाना* (मिलाई है) को दो कर्म पदबंध – *चाय* और *शक्कर* की आवश्यकता है। अगर इन दोनों कर्मों में से किसी एक को भी हटा दिया जाए तो वाक्य अपूर्ण होगा जैसा कि हम (62ख) और (62ग) में देख सकते हैं। उसी प्रकार (63क) में क्रिया *चढ़ना* सकर्मक क्रिया है जिसको वाक्य के निर्माण के लिए उद्देश्य *वह* के अतिरिक्त परसर्ग पदबंध के रूप में एक पूरक *पहाड़ पर* की आवश्यकता है। यदि पूरक ना हो तो वाक्य अपूर्ण होगा जैसा कि (63ख) से पता चलता है। (64क) में क्रिया *कूदना* अकर्मक क्रिया है और वाक्य को पूरा करने के लिए इसे किसी कर्म या पूरक की आवश्यकता नहीं है। परन्तु (64ख) में हम देखते हैं कि इसमें परसर्ग पदबंध *पानी में* आया है और यदि इसे वाक्य से हटा दें तो वाक्य अधूरा होगा जैसा कि (64ग) से पता चलता है अर्थात् यहाँ क्रिया सकर्मक की तरह कार्य कर रही है और इसे पूरक के तौर पर परसर्ग पदबंध *पानी में* की आवश्यकता है।

(iii) **संयोजक क्रिया** (Linking Verb)

कुछ लोग क्रिया के सिर्फ़ दो भेद मानते हैं – (क) अकर्मक और (ख) सकर्मक। उनके अनुसार जो क्रियाएँ सकर्मक नहीं हैं वे सभी अकर्मक हैं। कुछ लोग मानते हैं कि क्रिया का एक और भेद है जो न सकर्मक है और न अकर्मक। वह सिर्फ़ वाक्य के अनुबंधों के बीच की कड़ी है, यानी उन्हें जोड़ती है। ये क्रियाएँ संयोजक क्रियाएँ (Linking Verb) कहलाती हैं। जैसे –

(65) वह मेरा भाई है।

यहाँ (65) में संयोजक क्रिया 'है' *वह* और *मेरा भाई* को जोड़ती है उसी प्रकार (66) में 'है' पाण्डेयजी और *बड़े विद्वान्* के बीच की कड़ी है।

(66) पाण्डेयजी बड़े विद्वान् हैं।

4.2.5.1.4. कर्म (Object)

वाक्य में क्रिया के काम का असर जिस पर पड़ता है उसे कर्म (Object) कहते हैं। जैसे –

(67) धोबी कपड़े धो रहा है।
(68) लड़की खाना बना रही है।

धोबी ने कपड़े धोए उसका परिणाम यह हुआ कि कपड़े धुल गए। (67) और (68) में क्रमशः *कपड़े* और *खाना* कर्म हैं। इसे यूँ समझें कि *धोबी कपड़े धो रहा है* और *कपड़े धुल रहे हैं* और *लड़की खाना बना रही है* और *खाना पक रहा है*। एक वाक्य में एक से अधिक कर्म की भी आवश्यकता हो सकती है जैसे –

(69) क. उसने मुझे पैसे दिए।
ख. *उसने मुझे दिए।
ग. *उसने पैसे दिए।

(69क) में *मुझे* और *पैसे* दोनों कर्म हैं परन्तु इन दोनों में थोड़ा अन्तर है। कर्म पैसे पर क्रिया *दिए* (*देना*) का सीधा (प्रत्यक्ष रूप से) असर पड़ रहा है क्योंके पैसे उसके पास (*उसने*) से हस्तानान्तरित हो कर किसी और के पास (*मुझे*) जा रहे हैं। कर्म *मुझे* पर सीधा असर नहीं पड़ रहा है क्योंकि जब पैसे उसने मुझे दिए तब मुझे लाभ (फायदा) हुआ। अतः जिस कर्म पर क्रिया का प्रत्यक्ष असर पड़ता है उसे मुख्य कर्म (Direct Object) कहते हैं और जिस कर्म पर क्रिया का परोक्ष रूप से (अप्रत्यक्ष रूप से) असर पड़ता है उसे गौण कर्म या अनुक्त कर्म (Indirect Object) कहते हैं।

4.2.5.1.5. पूरक (Complement)

मुख्य कर्म और गौण कर्म के अतिरिक्त क्रिया को अपने वाक्य की पूर्ति हेतु जिन पदबंधों या वाक्यों की आवश्यकता होती है उन्हें पूरक कहते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(70) क. वह शिक्षक है।
ख. वह है।

(71) क. मुझे बच्चे को ख़ुश करना है।
ख. *मुझे बच्चे को करना है।

(72) क. वह यहाँ रहता है।
ख. *वह रहता है।

(70) में संज्ञा पदबंध *शिक्षक* पूरक है जो उद्देश्य के बारे में सूचना दे रहा है लेकिन वह कर्म नहीं है। (71क) में '*ख़ुश*' कर्म बच्चे की विशेषता बता रहा है और इसे हटा देने पर वाक्य का अर्थ अपूर्ण होगा। उसी प्रकार (72) में क्रियाविशेषण '*यहाँ*' क्रिया '*रहता है*' का पूरक है पर वह कर्म नहीं है। यदि *शिक्षक ख़ुश* और *यहाँ* को क्रमशः (70क), (71क) और (72क) से हटा दिया जाए तो वाक्य ग़लत होगा जैसा कि (70ख) (71ख) और (72ख) से पता चलता है।

समग्रतः पूरक तीन प्रकार के होते हैं – उद्देश्य पूरक, कर्म पूरक एवं क्रिया पूरक।

उद्देश्य पूरक उद्देश्य के बारे में आवश्यक सूचना देते हैं कि उद्देश्य कैसा है, कौन है आदि। ये संयोजक क्रिया की सहायता से उद्देश्य के साथ जुड़ते हैं। (70क) में *शिक्षक* उद्देश्य पूरक है क्योंकि यह उद्देश्य *वह* के बारे में जानकारी दे रहा है और यदि इसे हटा दें तो वाक्य ग़लत होगा। उसी प्रकार (71क) में विशेषण *ख़ुश* कर्म पूरक है एवं (72क) में क्रियाविशेषण *यहाँ* क्रिया पूरक है।

4.2.5.1.6. विधेय अनुबंध (Adjunct)

ऐसे तत्त्व जो वाक्य को पूर्ण करने के लिए तो आवश्यक नहीं परन्तु इनके द्वारा कुछ अतिरिक्त जानकारी प्रदान की जा सकती है विधेय अनुबंध कहलाते हैं।

(73) क. उसने मुझे ये पैसे कल दिए।
ख. उसने मुझे ये पैसे दिए।

(74) क. उसने मुझे ये पैसे कक्षा में दिए।
ख. उसने मुझे ये पैसे दिए।

(73) और (74) में हम देखते हैं कि क्रियाविशेषण '*कल*' और परसर्ग पदबंध '*कक्षा में*' विधेय अनुबंध हैं क्योंकि ये हमें अतिरिक्त जानकारी दे रहे हैं कि उसने मुझे पैसे कब दिए और उसने मुझे पैसे कहाँ दिए ? वाक्य में इनके नहीं होने से भी वाक्य व्याकरण की दृष्टि एवं अर्थीय दृष्टि दोनों से बिल्कुल सही होगा।

4.2.6. पाठ-सार

(i) शब्दों का ऐसा समूह जो वाक्य-निर्माण की सारी शर्तों को पूरा करता हो और क्या, क्यों, कैसे, किसको आदि सवालों का उत्तर देने में सक्षम हो साथ ही साथ एक पूर्ण विचार को सार्थक रूप से प्रकट करता हो वाक्य कहलाता है।

(ii) वाक्य पदबंधों का समूह है और पदबंध शब्दों का समूह।

(iii) शब्द दो तरह के होते हैं, एक, जो व्याकरणिक सम्बन्ध के घोतक होते हैं जैसे निश्चयसूचक (Determiner), परसर्ग (postposition / preposition), कालबोधक सहायक क्रियाएँ (Auxiliary Verbs जैसे – होना, रहना इत्यादि) और दूसरे अर्थबोधक (Substantive) जैसे *लड़का*, *भाई*, *खाना* इत्यादि।

(iv) कार्य (function) की दृष्टि से वाक्य पाँच प्रकार के होते हैं – निश्चयात्मक, प्रश्नसूचक, इच्छासूचक, आदेशसूचक और विस्म्यादिबोधक।

(v) कार्य की दृष्टि से वाक्य के भी दो भाग होते हैं – उद्देश्य और विधेय।

(vi) उद्देश्य एक संज्ञा पदबंध होता है जिसे सिर्फ़ एक संज्ञा, सर्वनाम या पूरे संज्ञा पदबंध के रूप में व्यक्त किया जा सकता है यानी उसमें निश्चयसूचक शब्द (Determiner), विशेषण पदबंध (Adjective Phrase) और संज्ञा होंगे।

(vii) विधेय में सिर्फ़ अकर्मक क्रिया हो सकती है या क्रिया के साथ कर्म हो सकते हैं। दोनों क्रियाओं में आवश्यकतानुसार पूरक पदबंध भी हो सकते हैं और ऐच्छिक रूप से (optionally) विधेय अनुबंध भी आ सकते हैं।

(viii) पूरकपदबंध किसी भी रूप में यानी संज्ञा पदबंध, विशेषण पदबंध या क्रियाविशेषण पदबंध हो सकते हैं या कोई उपवाक्य (Clause) जो उनके स्थान पर आए।

4.2.7. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाक्य-संरचना की शर्तों का विस्तार से उल्लेख कीजिए। वाक्य-निर्माण में संचालन के नियमों का क्या योगदान है ? उदाहरणसहित विस्तार से समझाइए।
2. वाक्य के मुख्य अंग कौन-कौन से हैं ? किन आधारभूत तत्त्वों से मिलकर इनका निर्माण होता है ? उदाहरणसहित समझाइए।

टिप्पणी लिखिए –

1. कर्म (Object) और पूरक (Complement) में अन्तर।
2. मुख्य कर्म (Direct Object) और गौण कर्म (Indirect Object) में अन्तर।

3. अर्थसंगति (Semantic Compatibility)
4. संयोजन के नियम (Rule of Conjoining)

अभ्यास 1

निम्नलिखित कथनों में सही और ग़लत कथनों की पहचान कीजिए और सही कथन के आगे (✔) तथा ग़लत कथन के आगे (X) का निशान लगाइए।

(i) संरचना की दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे छोटी इकाई है। (सही / ग़लत)

(ii) उद्देश्य एक क्रिया पदबंध होता है। (सही / ग़लत)

(iii) विधेय में उद्देश्य के बारे में जानकारी निहित होती है। (सही / ग़लत)

(iv) हिन्दी में उद्देश्य और अन्य पदबंधों के स्थान को आवश्यकतानुसार परिवर्तित करने की कोई स्वतन्त्रता नहीं है। (सही / ग़लत)

(v) वाक्य में क्रिया के काम का असर कर्म पर पड़ता है। (सही / ग़लत)

(vi) अकर्मक क्रिया को वाक्य की पूर्ति हेतु कर्म की आवश्यकता नहीं पड़ती है। (सही / ग़लत)

(vii) क्रिया '*रोना*' सकर्मक है। (सही / ग़लत)

(viii) विधेय अनुबध वाक्य-निर्माण हेतु आवश्यक नहीं हैं। (सही / ग़लत)

(ix) रचनान्तरण के नियमों का प्रयोग करके आधार वाक्यों से अन्य वाक्यों को प्रजनित किया जाता है। (सही / ग़लत)

(x) व्याकरणिक और अर्थीय दोनों दृष्टि से वाक्य के सही होने के लिए वाक्य के अन्तर्गत सभी शब्दों या पदबंधों के मध्य अर्थीय तालमेल का होना आवश्यक है। (सही / ग़लत)

अभ्यास 2

कोष्ठक में दिए गए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो उत्तर सही है उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

(i) --------------------- वाक्य द्वारा हम आश्चर्य, दर्द, ख़ुशी आदि भावनाओं को व्यक्त करते हैं।
(निश्चयवाचक / प्रश्नवाचक / आदेशसूचक)

(ii) वाक्य "मोहन कमरे के अंदर गया है" में 'कमरे के अंदर' -------------------- है।
(मुख्य कर्म / गौण कर्म / पूरक)

(iii) आधार वाक्य सकारात्मक (Positive) और -------------------- होते हैं।
(घोषणात्मक (Declarative) / इच्छासूचक (Optative) / प्रश्नवाचक (Interrogative))

(iv) ----------------- पर क्रिया का परोक्ष रूप से (अप्रत्यक्ष रूप से) असर पड़ता है।
(पूरक / गौण कर्म / विधेय)

(v) ----------------------- ऐच्छिक रूप से (optionally) वाक्य में आते हैं।

(क्रिया / विधेय अनुबंध / विधेय)

अभ्यास 3

निम्नलिखित वाक्यों में पूरक (उद्देश्य पूरक, कर्म पूरक और क्रिया पूरक) की पहचान कीजिए –

(i) मैंने उस बच्चे को खेलता पाया।

(ii) बच्चा ख़ुश था।

(iii) बच्चा मेरे पास नहीं आया।

अभ्यास 4

निम्नलिखित वाक्यों में उद्देश्य और विधेय की पहचान कीजिए एवं साथ ही इन वाक्यों में निहित पूरक और विधेय अनुबंध का उल्लेख कीजिए –

(i) मैं उससे कल मिलूँगा।

(ii) मैंने पुस्तकें अलमारी में रख दी हैं।

(iii) मैंने अपने दोस्तों को होटल में बुलाया था।

(iv) उसने वादा किया है कि वह यह काम करेगा।

4.2.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. Carnie, Andrew. 2005. *Syntax A Generative Introduction*. Blackwell Publishing Limited.
2. Chomsky, Noam. 1957. *Syntactic Structures*. The Hague: Mouton.
3. Culicover, P.W. 2009. *Natural Language Syntax*. New York: Oxford University Press.
4. Haegeman, L. 1991. *Introduction to Government and Binding Theory*, Cambridge : Cambridge University Press.
5. Sinha, Anjani Kumar. 2000. *Chomskyan Paradigm*. CIIL Publication
6. Sinha, Anjani Kumar. *Noam Chomsky: vyaktitv aur krititv*, Bhasha ke Sutrdhaar
7. Sinha, Anjani. 2016. *Empowering Communication Skills*. Shipra Publication

❖❖❖

खण्ड – 4 : वाक्य विज्ञान

इकाई – 3 : वाक्य और पदक्रम, वाक्यों के प्रकार

इकाई की रूपरेखा

4.3.0 उद्देश्य
4.3.1 प्रस्तावना
4.3.2 वाक्य और पदक्रम
4.3.3 पदबंध और उसके प्रकार
4.3.3.1 संज्ञा पदबंध (Noun Phrase)
4.3.3.2 विशेषण पदबंध (Adjectival Phrase (AdjP))
4.3.3.3 क्रियाविशेषण पदबंध (Adverbial Phrase (AdvP))
4.3.3.4 पूर्वसर्ग पदबंध / परसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase / Postpositional Phrase)
4.3.3.5 क्रिया पदबंध (Verb Phrase (VP))
4.3.4 वाक्यों के अन्तर्गत पदबंधों/पदों का क्रम
4.3.5 वाक्यों के प्रकार
4.3.5.1 साधारण वाक्य (Simple Sentence)
4.3.5.2 संयोजक वाक्य (Compound Sentence)
4.3.5.3 उपवाक्य
4.3.5.4 जटिल वाक्य (Complex Sentence)
4.3.5.5 मिश्रित वाक्य (Mix Sentence)
4.3.6 पाठ-सार
4.3.7 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न
4.3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

4.3.0. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. वाक्य-निर्माण की मूल बातों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
ii. वाक्य के संघटकों को समझेंगे।
iii. पदबंध और उसकी संरचना को जानेंगे।
iv. विभिन्न भाषाओं के पदबंधों की संरचना को जानेंगे।
v. वाक्य के अन्तर्गत पदों के क्रम को समझेंगे।
vi. वाक्य के प्रकार को जानेंगे।
vii. वाक्य के अन्तर्गत उपवाक्यों और उनकी व्यवस्था को समझेंगे।

4.3.1. प्रस्तावना

पिछली पाठ में आपने वाक्य की परिभाषा और उसके अनिवार्य तत्त्वों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत पाठ में हम वाक्य की संरचना को समझेंगे। वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है और यह कई छोटी इकाइयों से मिलकर बना होता है। ये छोटी इकाइयाँ संघटक कहलाती हैं। वाक्य के संघटक (Constituents) नियमों के तहत एक नियत क्रम में व्यवस्थित होते हैं। यह व्यवस्था कैसी है और वाक्य के अन्तर्गत पदबंध और पद किस प्रकार और किस स्थान पर आते हैं, और साथ ही साथ वाक्य कितने प्रकार के होते हैं। इन बातों की चर्चा नोम चॉम्सकी के पदबंध संरचना व्याकरण (Phrase Structure Grammar) एवं रचनान्तरण प्रजनक व्याकरण (Transformational Generative Grammar) को आधार मान कर प्रस्तुत पाठ में विस्तार से की गई है।

4.3.2. वाक्य और पदक्रम

वाक्य विज्ञान वाक्य की संरचना का अध्ययन है। यहाँ संरचना का तात्पर्य वाक्य के पदबंधों या शब्दों के क्रम से भी है। वाक्य का अर्थ बहुत हद तक पदबंधों या शब्दों के क्रम पर भी निर्भर करता है जिसमें पदबंध या शब्द सुव्यवस्थित रहते हैं। प्रत्येक वाक्य शब्दों का एक क्रम होता है परन्तु सभी शब्दक्रम वाक्य नहीं हो सकते। पदबंधों या शब्दों के वे क्रम जो वाक्य में सम्बन्धित भाषा के रचना के नियमों का पालन करते हैं और सही अर्थ देते हैं, व्याकरणिक और आर्थी दृष्टि से सही होते हैं, वे वाक्य कहलाते हैं। इसके विपरीत जो इन नियमों का उल्लंघन करते हैं वे ग़लत होते हैं, उन्हें वाक्य नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(1) क. बच्चा खाना खा रहा है।
ख. बच्चा खा रहा है खाना।
ग. खाना खा रहा है बच्चा।
घ. *बच्चा खा खाना रहा है।
ङ *बच्चा खाना रहा खा है।
च. *बच्चा रहा खा खाना है।

हिन्दी में किसी वाक्य के पदबंधों के स्थान को बदला जा सकता परन्तु पदबंधों के अन्तर्गत आने वाले शब्दों से छेड़छाड़ नहीं कर सकते अन्यथा वाक्य ग़लत हो जाता है। (1क), (1ख) और (ग) बिल्कुल सही वाक्य हैं परन्तु (1घ), (1ड.) और (1च) बिल्कुल ग़लत हैं। (1घ) में 'खा रहा है' के मध्य 'खाना' शब्द आ गया है, (1ड.) में सहायक क्रिया 'रहा' मुख्य क्रिया 'खा' के पहले आ गई है और (1च) में सहायक क्रिया 'रहा' मुख्य क्रिया 'खा' के पहले आ गई है साथ ही साथ कर्म 'खाना' भी इनके मध्य आ गया है जो वाक्यात्मक नियमों के अनुसार नहीं है। इसलिए ये वाक्य ग़लत हैं। अतः वाक्य पदबंधों या शब्दों का मनमाना क्रम नहीं है बल्कि यह एक सुव्यवस्थित क्रम है जो भाषा के वाक्यात्मक नियमों द्वारा निर्धारित और संचालित होता है।

वाक्य के अनिवार्य तत्त्वों में उद्देश्य (Subject), कर्म (Object) और क्रिया (Verb) सार्वभौमिक तत्त्व हैं। प्राथमिक तौर पर सार्वभौमिक स्तर पर इन्हीं तीन तत्त्वों के सन्दर्भ में किसी भी भाषा के पदक्रम को देखा जाता है। छह प्रकार के पदक्रम हमें विश्वभर की भाषाओं में मिलते हैं – SVO, SOV, VSO, VOS, OSV, OVS। उद्देश्य, क्रम, क्रिया और वाक्य के अन्य अनिवार्य तत्त्व एक शब्द भी हो सकते हैं और शब्दों के सुव्यवस्थित समूह भी। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(2) क. पिताजी किताबें लाए हैं।
ख. मेरे दोस्त के पिताजी बहुत सारी किताबें लाए हैं।

(2क) में पिताजी उद्देश्य (Subject) है और किताबें कर्म (Object) और लाए हैं क्रिया (Verb) है। (2क) में उद्देश्य, कर्म और क्रिया केवल एक-एक शब्द हैं परन्तु (2ख) में उद्देश्य, कर्म और क्रिया केवल एक शब्द न होकर कई शब्दों के समूह हैं। अतः वाक्य को एक रेखीय तंत्र (Linear System) कहना उचित नहीं है बल्कि वाक्य एक पदानुक्रमित तंत्र (Hierarchical System) है। वाक्य में शब्द जो वाक्य की सबसे छोटी इकाई है दूसरे शब्द / शब्दों से मिलकर अपने से बड़ी इकाई का निर्माण करता है फिर यह इकाई दूसरी इकाई / इकाइयों से मिलकर बड़ी इकाई का निर्माण करती है। यह प्रक्रिया वाक्य के निर्मित होने तक चलती रहती है।

जो शब्द या शब्द-समूह आपस में मिलकर अपने से बड़ी इकाई का निर्माण करते हैं वे शब्द या शब्द-समूह अपने से बड़ी इकाइयों के संघटक (Constituent) कहलाते हैं। वाक्य में पदबंध, शब्द और रूपिम वाक्य के संघटक होते हैं जो अधिक्रमिक रूप से (Hierarchically) व्यवस्थित होते हैं। वाक्य अपने से छोटी इकाई पदबंधों (विभिन्न प्रकार के पदबंधों) के मिलने से बनता है और ये पदबंध स्वयं से छोटी इकाई शब्दों से मिलकर निर्मित होते हैं। कभी-कभी दो पदबंध मिलकर एक नए पदबंध का निर्माण करते हैं। इन संघटकों के अधिक्रम श्रेणीमान (Rank Scale) कहलाते हैं और अधिक्रम का प्रत्येक स्तर एक श्रेणी (Rank) है (Halliday & Matthiessen, 2004:9)। निम्नलिखित आरेख इसी बात को दर्शाता है।

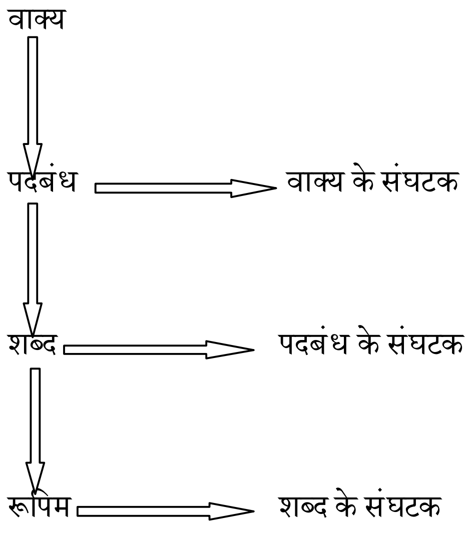

वाक्य से छोटी इकाई पदबंध है। पदबंध शब्दों के वे समूह होते हैं जो आपस में वाक्यविन्यासिक तौर पर (Synatctically) आपस में जुड़े होते हैं और एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। वाक्य के लिए यह आवश्यक है कि उसमें एक क्रिया हो परन्तु एक पदबंध होने के लिए उसमें क्रिया का होना आवश्यक नहीं है। वाक्य में यह पदबंध एक ख़ास क्रम में पदबंध संरचना नियमों(Phrase Structure Rules) के अनुसार व्यवस्थित होते हैं और सही अर्थ देते हैं। पदबंधों के क्रम की प्रकृति के अनुसार भी भाषाओं को वर्गीकृत किया जाता है। यथा –

(i) **नियत शब्दक्रम भाषा** (Fix Word Order Language) : इन भाषाओं में शब्दों / पदों या पदबंधों का क्रम निश्चित होता है अर्थात् उनके क्रम को यदि बदला जाएगा तो वाक्य ग़लत हो जाएगा। जैसे – अंग्रेज़ी

(3) क. That boy is good.
ख. * Is good that boy.

(ii) **अपेक्षाकृत स्वतन्त्र शब्दक्रम भाषा** (Relatively Free Word Order Language) : इन भाषाओं में पदबंधों का क्रम स्वतन्त्र होता है परन्तु वाक्य या उसके पदबंधों में उपस्थित किसी भी शब्द को किसी भी स्थान पर मनमाने ढंग से रखने की स्वतन्त्रता नहीं है। जैसे – हिन्दी और उर्दू

(4) क. वह लड़का अच्छा है।
ख. अच्छा है वह लड़का।
ग. *अच्छा वह लड़का है।

(iii) **स्वतन्त्र शब्दक्रम भाषा** (Free Word Order Language) : इस वर्ग की भाषाओं में शब्दों / पदों या पदबंधों का क्रम बिल्कुल स्वतन्त्र होता है। जैसे – संस्कृत। संस्कृत के वाक्यों में किसी भी शब्द को वाक्य में कहीं भी रखने की स्वतन्त्रता है इससे वाक्य के अर्थ में कोई भी परिवर्तन नहीं आता है। उदाहरणार्थ –

(5) क. बालक: उत्तमः अस्ति।
"लड़का अच्छा है।"
ख. उत्तमः बालकः अस्ति।
"लड़का अच्छा है।"
ग. अस्ति उत्तमः बालकः।
"लड़का अच्छा है।"
घ. उत्तमः अस्ति बालकः।
"लड़का अच्छा है।"

वाक्य के अर्थ का भी उसके पदबंधों और शब्दों के क्रम से गहरा सम्बन्ध है। अपेक्षाकृत स्वतन्त्रक्रम भाषाओं और स्वतन्त्र शब्दक्रम भाषाओं में किसी वाक्य में क्रमशः पदबंधों के क्रम और शब्दों या पदबंधों के क्रम को केवल बदल कर ही विभिन्न सूचनात्मक अभिरचना (Informational Pattern) को प्रजनित किया जा

सकता है जैसा कि पिछले अध्याय में भी वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए हिन्दी के निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(6) क. वह लड़का कहानी पढ़ रहा है।
ख. कहानी पढ़ रहा है वह लड़का।
ग. कहानी वह लड़का पढ़ रहा है।

(6क) एक कथन है जो कह रहा है कि *वह लड़का कहानी पढ़ रहा है*। (6ख) इस सवाल का उत्तर है कि *वह लड़का क्या कर रहा है* जबकि (6ग) इस सवाल का उत्तर देता है कि *कहानी कौन पढ़ रहा है*।

किसी वाक्य के पदक्रम को समझने के लिए पहले पदबंध एवं उनकी संरचना को समझना आवश्यक है। उद्देश्य, कर्म और क्रिया पदबंध के रूप में ही वाक्य में व्यवस्थित होते हैं। पदों का क्रम हर भाषा में एक-सा नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक पदबंध जिन शब्दों से मिलकर बना होता है उन शब्दों का क्रम भी हर भाषा में एक-सा नहीं होता। एक पदबंध में कौन-कौन से शब्द हो सकते हैं और पदबंध संरचना के नियम क्या हैं यदि इस बात की जानकारी हो तो किसी भी वाक्य के पदक्रम को आसानी से समझा जा सकता है। तो आइए पहले पदबंधों की संरचना को देखें।

4.3.3. पदबंध और उसके प्रकार

पदबंध जिन संघटकों/ शब्दों से मिलकर बना होता है उन संघटकों में एक संघटक मुख्य(Head) होता है जिसके नाम पर पदबंध का नाम निर्धारित होता है। इस प्रकार पदबंध कई प्रकार के होते हैं।यथा – संज्ञा पदबंध (Noun Phrase), क्रिया पदबंध (Verb Phrase), पूर्वसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase) / परसर्ग पदबंध (Postpositional Phrase), विशेषण पदबंध (Adjectival Phrase), क्रियाविशेषण पदबंध (Adverbial Phrase)

4.3.3.1. संज्ञा पदबंध(Noun Phrase)

संज्ञा पदबंध का मुख्य घटक संज्ञा होती है। व्यक्तिवाचक संज्ञा(Proper Noun), सर्वनाम (Pronoun), राशिवाचक संज्ञा (Mass Noun) और बहुवचन संज्ञा (Plural Noun) में से कोई संज्ञा पदबंध के संज्ञा घटक हो सकते हैं जैसे – राम, वह, लोग और लड़के आदि। संज्ञा के अतिरिक्त, निर्धारक (Determiners), विशेषण (Adjective), क्रियाविशेषण (Adverbs), पूर्वसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase) / परसर्ग पदबंध (Postpositional Phrase) और एक वाक्य (Sentence) संज्ञा पदबंध के अन्य संघटक हो सकते हैं। संज्ञा को छोड़कर सभी संघटक वैकल्पिक होते हैं। साधारण संज्ञा पदबंध में केवल संज्ञा होती है। पदबंध संरचना नियम (Phrase Structure Rule) के आधार पर हम इसे निम्नलिखित प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं –

Ia. NP ⟶ N

और इस संज्ञा पदबंध का वृक्ष आरेख (Tree-Diagram) निम्नलिखित होगा –

b.

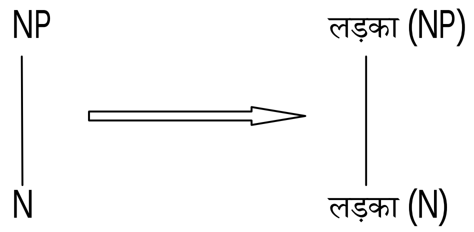

जटिल संज्ञा पदबंध में संज्ञा के अतिरिक्त अन्य संघटक भी होते हैं उनके पदबंध संरचना के नियम (Phrase Structure Rule) और उनके वृक्ष आरेख (Tree-Diagram) निम्नलिखित हैं –

IIa. NP ⟶ (D) N

b.

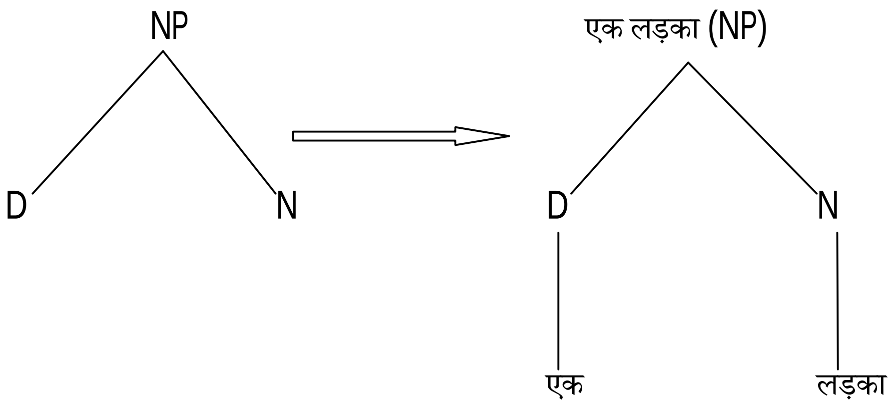

(IIa) का तात्पर्य यह है कि NP में दो संघटक हैं – निर्धारक (Determiner) और संज्ञा (Noun)। हिन्दी में निर्धारक (Determiner) अंग्रेज़ी की तरह संज्ञा से पहले आता है परन्तु हर भाषा में ऐसा नहीं है जैसे फ़ारसी में निर्धारक संज्ञा के बाद आता है। उदाहरण के लिए फ़ारसी के निम्नलिखित संज्ञा पदबंध को देखें–

(7) क. किताब-ए-मन।
‘मेरी किताब’
ख. *मन किताब

(7) में किताब संज्ञा है –ए– फ़ारसी की एक ख़ास व्याकरणिक इकाई है जिसे इज़ाफ़त कहते हैं और *मन* ‘*मेरा*’ आधिकारिक निर्धारक (Possessive Determiner) है। यहाँ हम देखते हैं कि निर्धारक *मन* हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी के विपरीत, संज्ञा संघटक के बाद आया है। यदि इसे संज्ञा के पहले रखा जाएगा तो यह ग़लत होगा जैसा कि (7ख) से पता चलता है।

IIIa. NP ⟶ (D) (AdjP) N

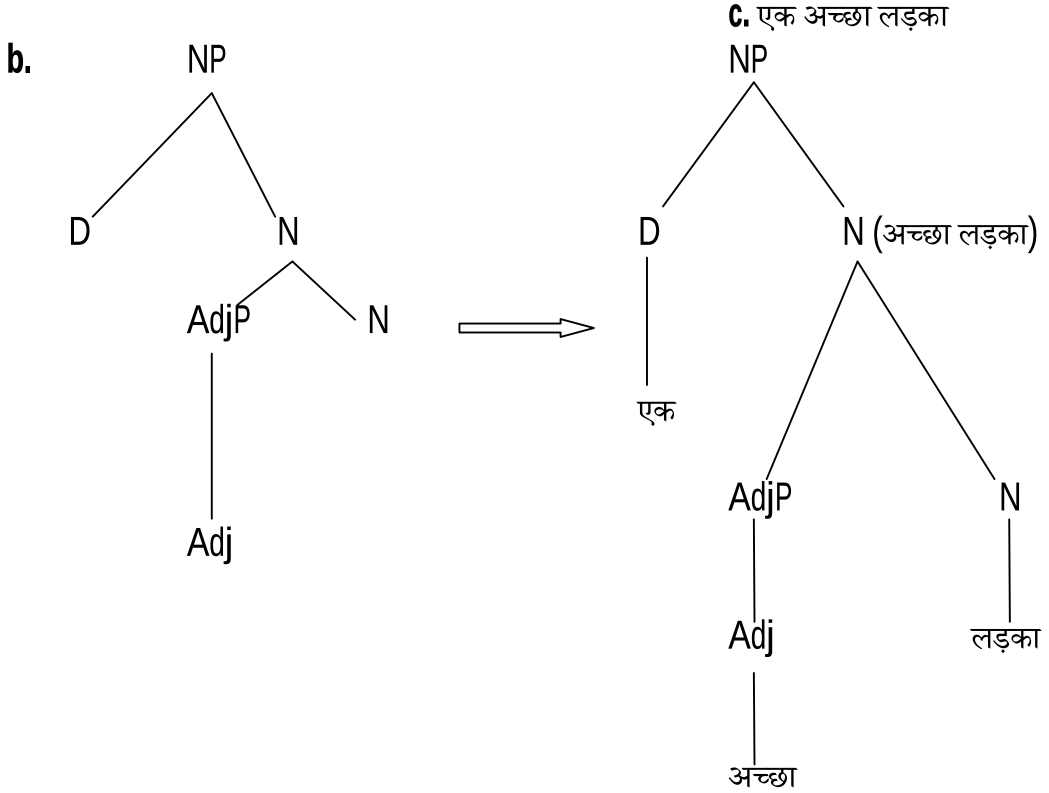

(IIIa) में संज्ञा के उपसंघटक हैं – निर्धारक (Determiner), विशेषण पदबंध (Adjective Phrase) और संज्ञा (Noun)। संज्ञा पदबंध के अन्तर्गत एक से अधिक विशेषण / विशेषण पदबंध हो सकते हैं –

(8) घने मुलायम काले बाल।

(8) में '*घने*', *मुलायम*, और '*काले*' तीनों विशेषण पदबंध हैं और ये तीनों एक ही संज्ञा पदबंध के अन्तर्गत हैं।

उर्दू, हिन्दी और अंग्रेज़ी तीनों में संज्ञा पदबंध के अन्तर्गत विशेषण पदबंध संज्ञा से पहले आता है जैसा कि (III b) के वृक्ष आरेख में दर्शाया गया है परन्तु फ़ारसी भाषा में विशेषण पदबंध संज्ञा के बाद आएगा। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(9) किताब-ए-ख़ूब।
'अच्छी किताब'

(9) में *किताब* संज्ञा है *ख़ूब* 'अच्छा' विशेषण है और *ख़ूब* संज्ञा के उपरान्त संज्ञा पदबंध में आया है।

IV. NP ⟶ (D) (AdjP) (PP) N

(IV) में संज्ञा पदबंध (Noun Phrase) के चार उपसंघटक हैं – निर्धारक (Determiner), विशेषण पदबंध (Adjectival Phrase), पूर्वसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase) / परसर्ग पदबंध (Postpositional Phrase) और संज्ञा (Noun)। हिन्दी और उर्दू दोनों में संज्ञा पदबंध केअन्तर्गत सबसे पहले निर्धारक फिर विशेषण (विशेषण पदबंध), उसके पश्चात् परसर्ग पदबंध (Postpositional Phrase) और अन्त में संज्ञा होती है परन्तु अन्य भाषाओं में यही क्रम हो यह आवश्यक नहीं। अंग्रेज़ी में पूर्वसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase) होता है क्योंकि यह संज्ञा के बाद आता है –

(10) एक बहुत अच्छी कहानी की किताब।
(11) A very good book of poem

(10) में सबसे पहले निर्धारक *एक* है, विशेषण पदबंध *बहुत अच्छी* है, इसके उपरान्त परसर्ग पदबंध *कहानी की* है और फिर संज्ञा *किताब* है। (11) में *of poem* जो पूर्वसर्ग पदबंध है संज्ञा*book* के बाद स्थित है। एक पूरा वाक्य भी संज्ञा पदबंध का उपसंघटक होता है। इसके लिएनिम्नलिखित नियम को देखें –

V. NP ⟶ (D) (AdjP) (PP) N (S)

(12) एक बहुत अच्छी कहानी की किताब जो तुमने मुझे दी थी।

(12) में एक निर्धारक *एक*, विशेषण पदबंध *बहुत अच्छी*, एक परसर्ग पदबंध *कहानी की*, मुख्य घटक संज्ञा *किताब* एवं एक सम्बन्ध वाचक उपवाक्य (Relative Clause) *जो तुमने मुझे दी थी* है। यहाँ पर परसर्ग पदबंध *कहानी की* और सम्बन्ध वाचक उपवाक्य (Relative Clause) *जो तुमने मुझे दी थी* दोनों संज्ञा पदबंध के विशेषक के तौर पर कार्य कर रहे हैं –

VI. NP ⟶ (D) (AdjP+) (PP+) N (S)

एक संज्ञा पदबंध के अन्तर्गत एक से अधिक विशेषण पदबंध (Adjectival Phrase) एवं एक से अधिक पूर्वसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase) / परसर्ग पदबंध (Postpositional Phrase) हो सकते हैं। नियम (VI) में (+) का चिह्न इसी बात को दर्शाता है। उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित वाक्य को देखें –

(13) एक बहुत अच्छी शानदार बच्चों की कहानी की किताब जो तुमने मुझे दी थी।

4.3.3.2. विशेषण पदबंध (Adjectival Phrase (AdjP))

विशेषण पदबंध का मुख्य घटक विशेषण होता है। केवल एक विशेषण भी एक विशेषण पदबंध होता है। वाक्य में इनकी उपस्थिति विभिन्न स्थानों पर हो सकती है। विशेषण पदबंध संज्ञा पदबंध में संज्ञा के पूर्व आते हैं जैसे (VIIc) और संज्ञा की विशेषता बतलाते हैं। संज्ञा से पूर्व आने वाले विशेषण पदबंध गुणात्मक (qualitative) या मात्रात्मक (quantitative) दोनों प्रकार के हो सकते हैं। संयोजक वाक्य (Copula Sentence) में विशेषण पदबंध संज्ञा पदबंध के बाद और क्रिया पदबंध केअन्तर्गत संयोजक क्रिया (Linking Verb) के पूर्व जैसे (VIId) या ठीक उसके बाद आते हैं। इन विशेषण पदबंधों को विधेय विशेषण (Predicate Adjective) या विधेय विशेषण पदबंध (Predicative Adjective Phrase) कहते हैं। विशेषण पदबंध की पदबंध संरचना के नियम और वृक्ष-आरेख निम्नलिखित हैं –

VIIa. AdjP → Adj

b.

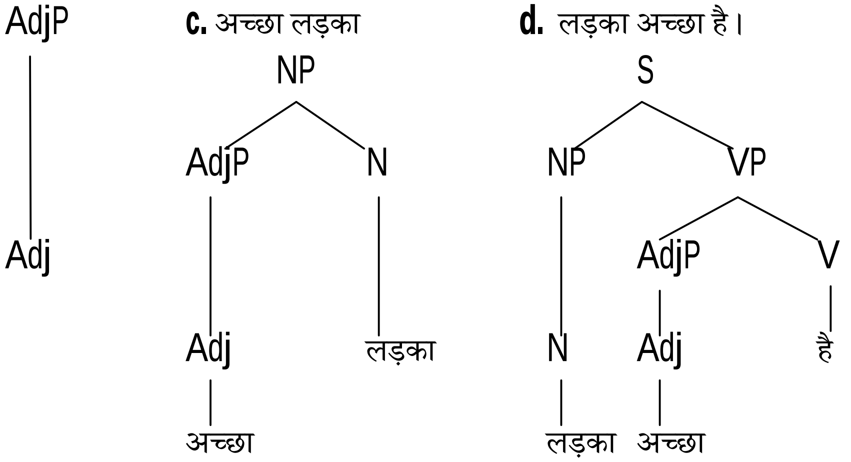

भाषा की विशेषता के अनुसार संज्ञा पदबंध में विशेषण पदबंध या संयोजक वाक्य (Copula Sentence) में विधेय विशेषण पदबंध (Predicate Adjective Phrase) का क्रम निश्चित होता है। हिन्दी (उदाहरण 14), उर्दू (उदाहरण 14) और फ़ारसी (उदाहरण 15) में विधेय विशेषण पदबंध संयोजक क्रिया के पूर्व आते हैं और अंग्रेज़ी (उदाहरण 16) में इसका क्रम संयोजक क्रिया के उपरान्त आता है।

(14) पुस्तक अच्छी है। (हिन्दी / उर्दू)

(15) किताब ख़ूब अस्त। (फ़ारसी)
किताब अच्छी है
“किताब अच्छी है”

(16) The book is good. (अंग्रेज़ी)
किताब है अच्छी

"किताब अच्छी है"

(15) में *अस्त* 'है' संयोजक क्रिया है जो विशेषण पदबंध *ख़ूब* 'अच्छी' के बाद आया है।

विशेषण पदबंध के अन्य उपसंघटकों के रूप में क्रियाविशेषण पदबंध (Adverbial Phrase (AdvP)) और पूर्वसर्ग पदबंध / परसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase / Postpositional Phrase (PP / PoP)) भी आते हैं। क्रियाविशेषण पदबंध और पूर्वसर्ग पदबंध / परसर्ग पदबंध दोनों ही विशेषण की विशेषता बतलाते हैं। विशेषण पदबंध के पदबंध संरचना के नियमों एवं वृक्ष आरेखों– (VIII) एवं (IX) को क्रमशः देखें –

VIIIa. AdjP → (AdvP) Adj

b.

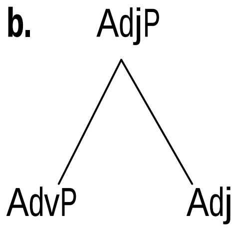

c. धूप बहुत तेज़ है।

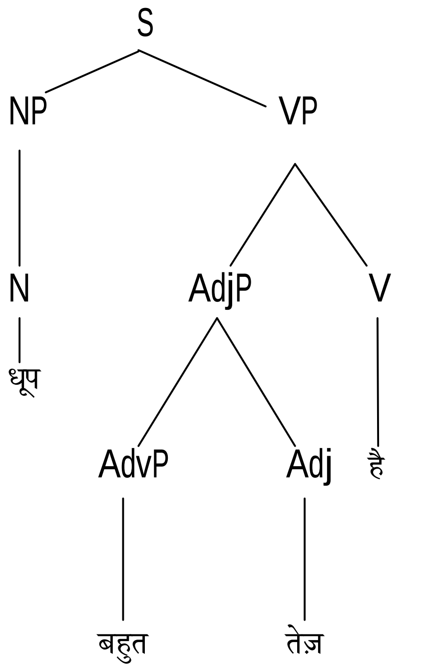

(VIIIc) में *धूप बहुत तेज़ है* एक संयोजक वाक्य है जिसमें विशेषण पदबंध (Adjectival Phrase) '*बहुत तेज़*' क्रिया पदबंध (Verb Phrase) के अन्तर्गत संयोजक क्रिया के पहले आया है। यहाँ विशेषण पदबंध के दो उपसंघटक हैं – क्रियाविशेषण पदबंध '*बहुत*' एवं विशेषण '*तेज़*'। संयोजक क्रिया 'है' यहाँ मुख्य क्रिया की तरह कार्य कर रही है।

IXa. AdjP ⟶ (PP/PoP) Adj

b(i). AdjP **b(ii).** वह खाने का शौक़ीन है

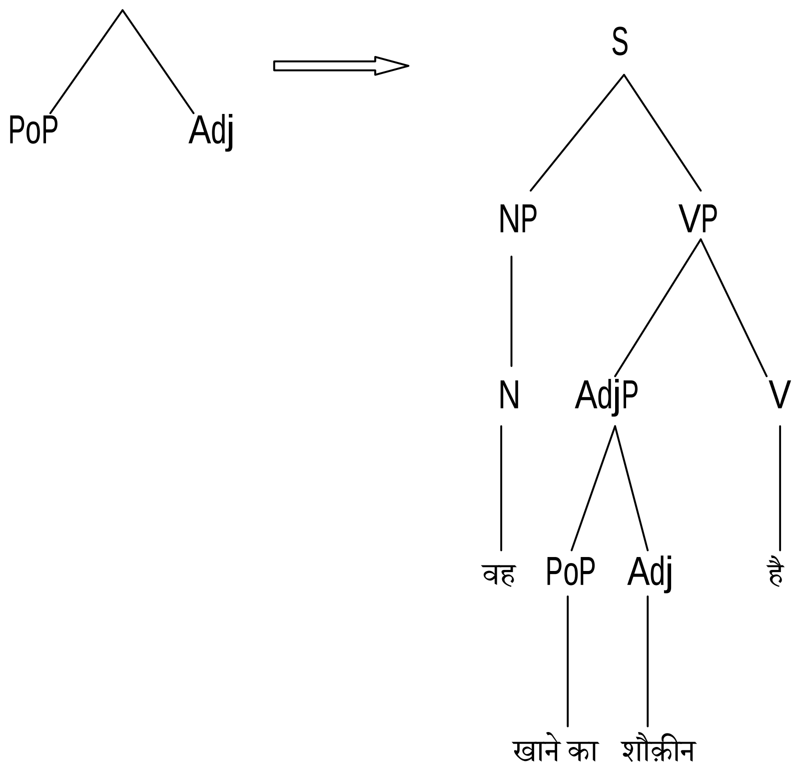

c(i). AdjP **c(ii).** He is fond of food.

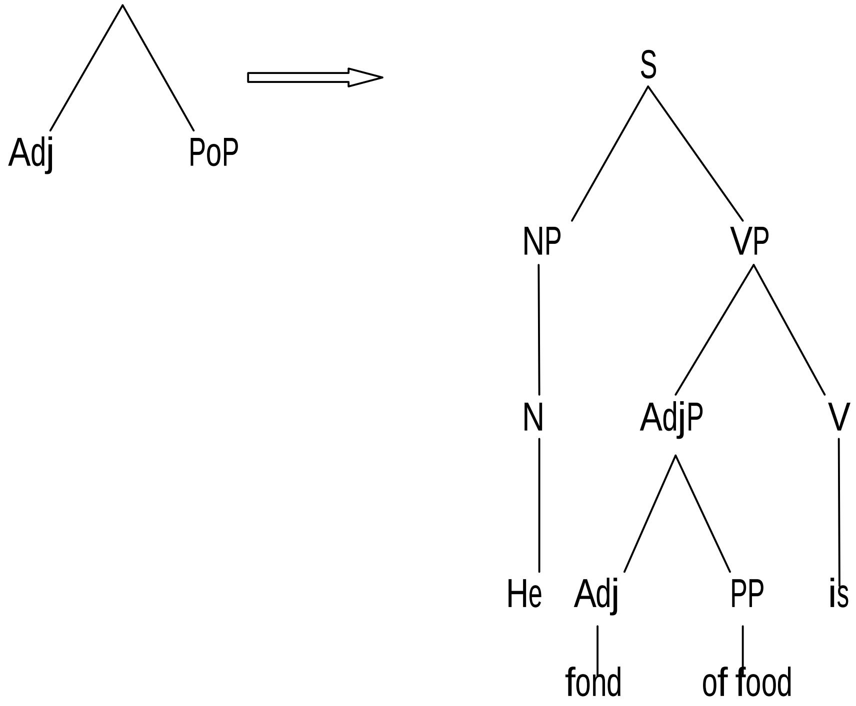

अंग्रेज़ी में परसर्ग पदबंध संज्ञा या संज्ञा पदबंध से पहले आते हैं इसलिए इन्हें पूर्वसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase) कहते हैं इसके विपरीत हिन्दी-उर्दू में ये संज्ञा या संज्ञा पदबंध के बाद आते हैं इसलिए इन्हें परसर्ग पदबंध (Postpositional Phrase) कहते हैं।

4.3.3.3. क्रियाविशेषण पदबंध (Adverbial Phrase (AdvP))

साधारण क्रियाविशेषण पदबंध में केवल एक क्रियाविशेषण होता है जो किसी विशेषण की विशेषता बताता है या किसी क्रिया पदबंध में क्रिया की विशेषता बताता है। जो क्रियाविशेषण पदबंध विशेषण की विशेषता बताता है वह विशेषण पदबंध के अन्तर्गत आता है जैसा कि नियम संख्या (VIII) में दर्शाया गया है। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी तीनों में क्रियाविशेषण पदबंध विशेषण के पहले आता है। क्रिया की विशेषता बताने वाला क्रियाविशेषण पदबंध क्रिया पदबंध के अन्तर्गत आता है। हिन्दी और उर्दू में क्रियाविशेषण पदबंध क्रिया पदबंध के अन्तर्गत क्रिया के पूर्व में आता है परन्तु अंग्रेज़ी में यह क्रम उल्टा हो जाता है। उदाहरण (17) एवं (18) को देखें –

(17) **a.** मोहन ज़ोर से हँसता है।

b.

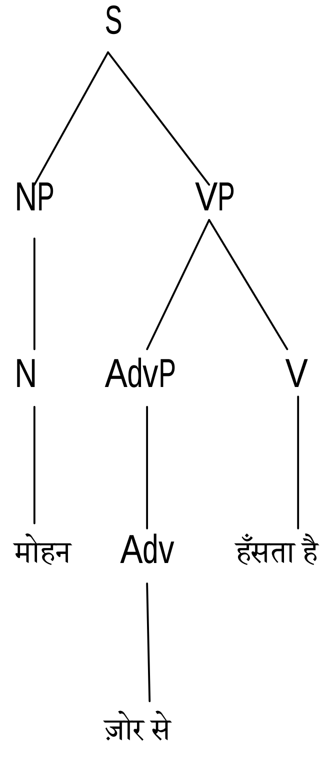

(18) **a.** Mohan laughs loud.

b.

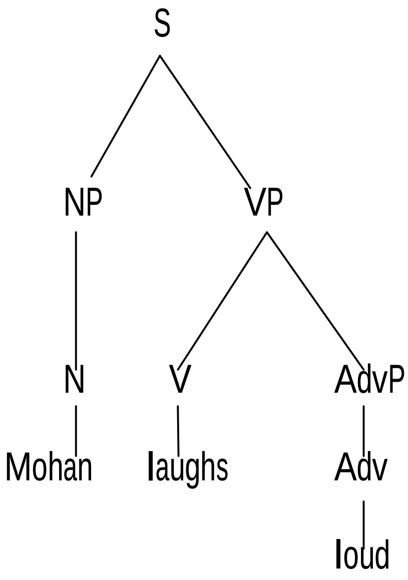

यह पदबंध विशेषण एवं क्रिया के अतिरिक्त अन्य क्रियाविशेषण की भी विशेषता बताता है । अतः क्रियाविशेषण पदबंध का उपसंघटक एक क्रियाविशेषण पदबंध भी होता है इसकी पदबंध संरचना का नियम निम्नलिखित प्रकार से होगा –

Xa. AdvP ⟶ (AdvP) Adv

b.

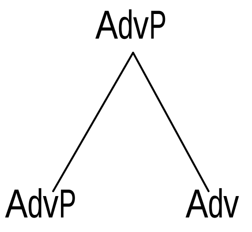

c. मोहन बहुत ज़ोर से हँसता है ।

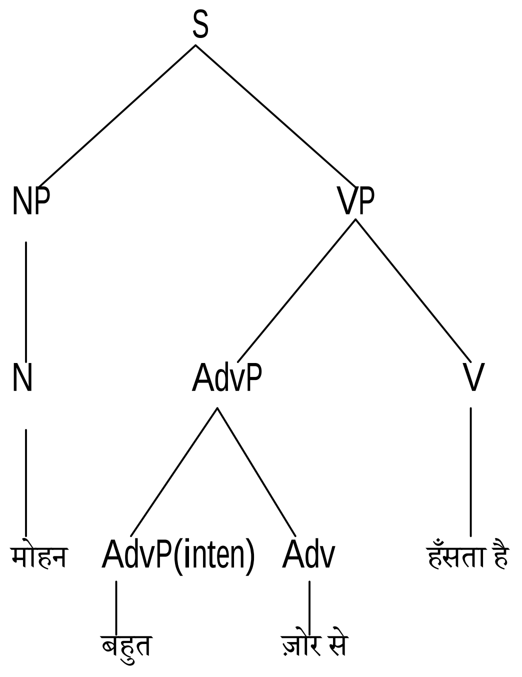

4.3.3.4. पूर्वसर्ग पदबंध / परसर्ग पदबंध (Prepositional Phrase / Postpositional Phrase (PP / PoP))

इस पदबंध के अन्तर्गत दो उपसंघटक होते हैं – पूर्वसर्ग पदबंध/ परसर्ग पदबंध एवं संज्ञा पदबंध जिसमें पूर्वसर्ग / परसर्ग मुख्य संघटक होता और इसी के नाम पर पदबंध का नाम होता है।हिन्दी और उर्दू में परसर्ग (Postposition) संज्ञा पदबंध के बाद आता है इसलिए इसे परसर्ग कहते हैं और पूरे पदबंध को परसर्ग पदबंध कहते हैं। अंग्रेज़ी और फ़ारसी में पूर्वसर्ग (Preposition) संज्ञा पदबंध के पहले आता है इसलिए इसे पूर्वसर्ग पदबंध कहते हैं।

XIa. PP ⟶ P (NP)

b. किताब अलमारी में है। **c.** The book is in the cupboard.

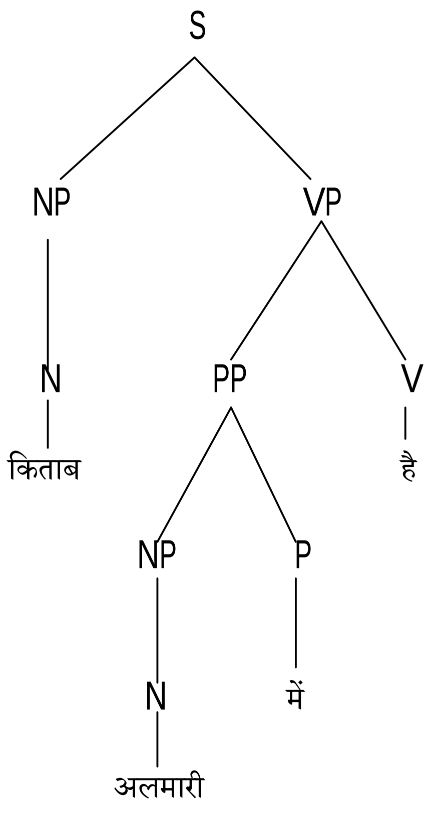

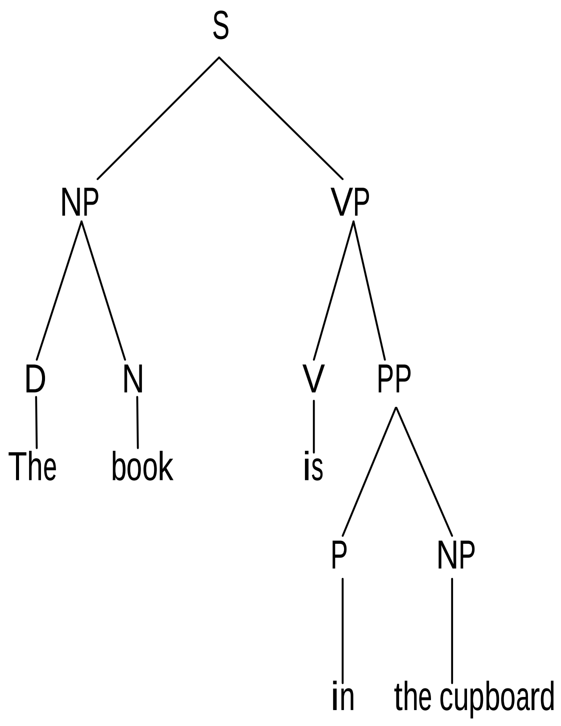

नियम (XI) के अनुसार पूर्वसर्ग / परसर्ग एवं संज्ञा पदबंध दोनों ही पूर्वसर्ग पदबंध/ परसर्ग पदबंध संघटक के अनिवार्य उपसंघटक हैं जिसमें पूर्वसर्ग/ परसर्ग संज्ञा पदबंध का क्रिया के साथसम्बन्ध स्थापित करते हैं।

4.3.3.5. क्रिया पदबंध (Verb Phrase (VP))

केवल क्रिया भी क्रियापदबंध पदबंध बनाती है एवं क्रिया पदबंध में क्रिया केसाथ-साथ सहायक क्रियाएँ भी आती हैं। क्रिया और सहायक क्रिया के अतिरिक्त और अन्य उपसंघटक भी क्रिया पदबंध के अन्तर्गत आते हैं और यह बात क्रिया की प्रकृति पर निर्भर करती है। यदि क्रिया अकर्मक होती है तो क्रिया पदबंध के अन्तर्गत केवल क्रिया या क्रिया और सहायक क्रिया होती हैं जो मिलकर क्रिया पदबंध का निर्माण करती हैं। क्रिया और सहायक क्रिया का क्रम भी सभी भाषाओं में एक सा नहीं। हिन्दी-उर्दू में सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के बाद आती है इसके विपरीत अंग्रेज़ी में सहायक क्रिया मुख्य क्रिया से पहले आती है।

XIIa. VP $\longrightarrow$ V

b. लड़का आया।

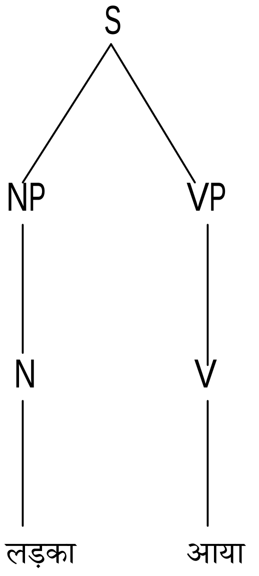

c. लड़का आया है।

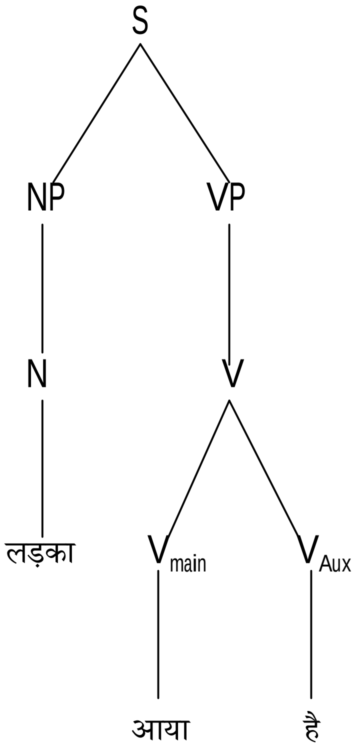

(XIIa) का तात्पर्य है कि क्रियापदबंध के अन्तर्गत केवल क्रिया (क्रिया एवं सहायक क्रिया) है जिसे (XIIb) एवं (XIIc) में स्पष्ट रूप से वृक्ष आरेख द्वारा दर्शाया गया है।

इसके अतिरिक्त एक क्रिया पदबंध में क्रिया के अतिरिक्त एक संज्ञा पदबंध भी हो सकता है जो कर्म पूरक होता है। पदबंध संरचना नियम (XIIIa) इसी बात को दर्शाता है।

XIIIa. VP ⟶ $(NP)^{viii}$ V

b. शीला किताब पढ़ रही है।

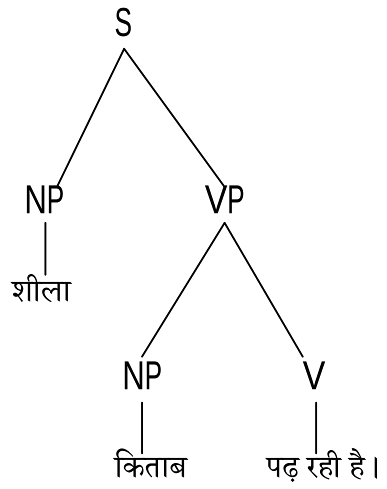

(XIIIb) में किताब पढ़ रही है क्रिया पदबंध है जैसा कि वृक्ष आरेख में दर्शाया गया है। क्रिया पदबंध किताब पढ़ रही है में किताब संज्ञा पदबंध है और पढ़ रही है क्रिया है।हिन्दी-उर्दू में क्रिया पदबंध के अन्तर्गत संज्ञा पदबंध साधारणतः क्रिया से पहले आता है। चूंकि हिन्दी-उर्दू का पदक्रम बहुत हद तक स्वतन्त्र है इसलिए इसके संघटकों के स्थान में सम्बन्धित नियमों का पालन करते हुए आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। बातों को अलग-अलग ढंग से व्यक्त करने के लिए ऐसा किया जाता है। अंग्रेजी में यह स्वतन्त्रता नहीं है। पदबंधों एवं शब्दों का कर्म अंग्रेजी में निश्चित है। अंग्रेजी में कर्म संज्ञापदबंध या अन्य पदबंध सभी क्रिया के बाद आते हैं।

(19) a. Sheela is reading a book.

b.

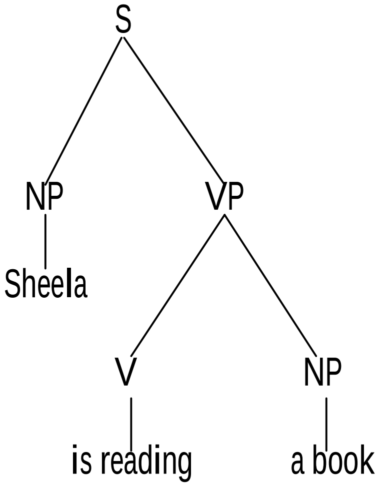

क्रियापदबंध के अन्तर्गत क्रिया के अतिरिक्त पूर्वसर्ग पदबंध/ परसर्ग पदबंध भी आते हैं।

XIVa. VP ⟶ (PP / PoP) V

b. लड़का पहाड़ पर चढ़ गया। **c.** The boy is running on the mountain.

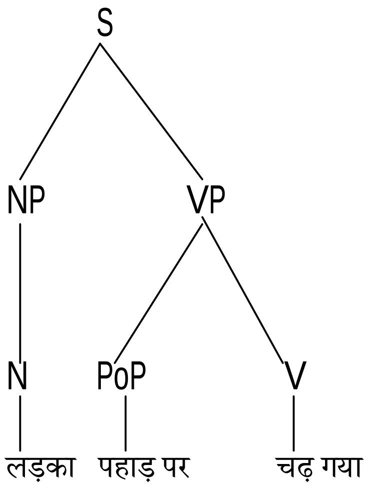

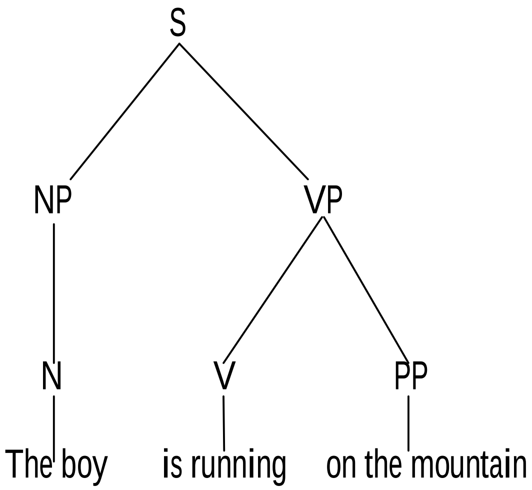

क्रिया पदबंध के अन्तर्गत NP और PP / PoP दोनों एक साथ भी आते हैं।

XVa. VP ⟶ (NP) (PP / PoP) V

b. मैंने किताब टेबल पर रखी है। **c. I** put the book on the table.

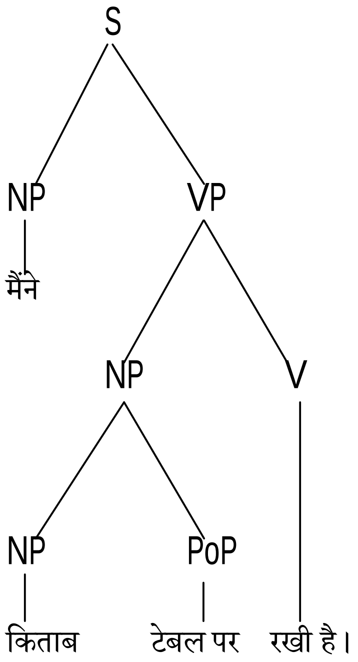

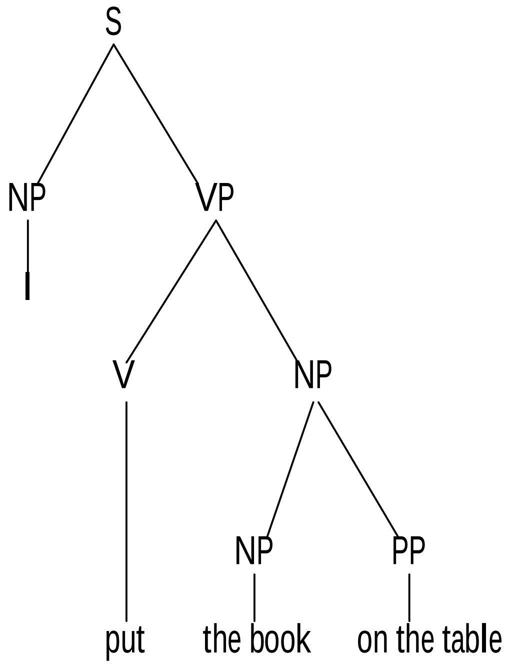

क्रिया पदबंध में क्रिया के अतिरिक्त दो संज्ञा पदबंध भी हो सकते हैं जिसमें एक मुख्य कर्म संज्ञा पदबंध होता है और दूसरा गौण कर्म संज्ञा पदबंध। मुख्य कर्म संज्ञा पदबंध को क्रिया से जुड़ने के लिए किसी अन्य तत्त्व की आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु गौण कर्म संज्ञा पदबंध को क्रिया से जुड़ने के लिए पूर्वसर्ग/ परसर्ग की आवश्यकता पड़ती है। हिन्दी-उर्दू में गौण कर्म संज्ञा पदबंध का सम्बन्ध कारक चिह्न 'को' से स्थापित होता है जो परसर्ग / पूर्वसर्ग की तरह कार्य करता है। अंग्रेजी में जब गौण कर्म मुख्य कर्म से पूर्व आता है तब इसे पूर्वसर्ग की आवश्यकता नहीं होती परन्तु जब मुख्य कर्म पहले आता है और गौण कर्म बाद में तब गौण कर्म को क्रिया से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पूर्वसर्ग की आवश्यकता होती है। पूर्वसर्ग लगने के कारण गौण कर्म की संरचना PP / Pop की हो जाती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(20) a. मैं श्याम को एक किताब दूँगी।
b. मैं एक किताब श्याम को दूँगी।
(21) a. I will give shyam a book.
b. I will give a book to shyam.

क्रिया पदबंध के अन्तर्गत एक या एक से अधिक क्रियाविशेषण पदबंध भी आते हैं –

(22) वह बहुत देर तक ज़ोर-ज़ोर से हँसता रहा।

(22) में '*देर तक*' और '*ज़ोर-ज़ोर से*' दोनों ही क्रियाविशेषण पदबंध हैं और ये दोनों क्रिया की विशेषता बता रहे हैं अर्थात् ये क्रिया '*हँसना*' के विशेषक (Modifier) हैं।

क्रियाविशेषण पदबंध वाक्य के विशेषक के रूप में भी कार्य करते हैं और इसके लिए वे वाक्य के शुरु में आते हैं – जैसे (23) या अन्त में आते हैं – जैसे (24)। स्वतन्त्र शब्दक्रम वाली भाषाओं में क्रियाविशेषण पदबंध वाक्य के मध्य में भी आ सकते हैं – जैसे (25)।

(23) a. कल सुबह मैं यहाँ से चला जाऊँगा ।
b. Tomorrow morning, I will go from here.
(24) a. मैं यहाँ से चला जाऊँगा कल सुबह।
b. I will go from here tomorrow morning.
(25) a. मैं कल सुबह यहाँ से चला जाऊँगा।
b. *I will go tomorrow morning from here.

क्रिया पदबंध के अन्तर्गत एक पूरा वाक्य भी एक संघटक के रूप में आता है और किसी Complementizer की सहायता से क्रिया से जुड़ा होता है जो यह बताता है कि सम्बन्धित वाक्य एक पूरक के

रूप में कार्य कर रहा है। इसलिए इस प्रकार के वाक्य संघटक को Complementizer Phrase (CP) कहते हैं। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों में ये क्रिया के बाद आते हैं। निम्नलिखित नियम और उसके उदाहरण को देखें –

XIVa. VP ⟶ V (CP)

b. उसने कहा कि सोहन कल आएगा।

(XIVb) में *कि सोहन कल आएगा* CP है जो क्रिया पदबंध में क्रिया '*कहा*' के उपरान्त आया है।

ऊपर हमने विभिन्न प्रकार के पदबंधों की संरचना को देखा। वाक्य में अलग-अलग स्थानों पर इनकी अलग-अलग भूमिका होती है साथ ही साथ इनकी व्याकरणिक कोटि भी बदलती है। संज्ञा पदबंध कर्त्ता के स्थान पर भी आता है, मुख्य कर्म को भी दर्शाता है और गौण कर्म को भी। यह पूरक की भूमिका भी निभाता है और विधेय अनुबंध (Adjunct) के तौर पर वाक्य में उपस्थित रहता है। ठीक इसी प्रकार PoP / PP एक पूरक भी हो सकता है और विधेय अनुबंध भी।

4.3.4. वाक्यों के अन्तर्गत पदबंधों / पदों का क्रम

ऊपर आपने पढ़ा कि वाक्य अपने से छोटी इकाई पदबंधों से मिलकर निर्मित होते हैं और वाक्य में उसके संघटकों की उपस्थिति क्रिया की प्रकृति पर निर्भर करती है अर्थात् एक वाक्य में कितने और किस प्रकार के पदबंध होंगे ये क्रिया तय करती है। यहाँ हम हिन्दी की संरचना से सम्बन्धित उसके पदों एवं पदबंधों के क्रमों का वर्णन करेंगे। आवश्यकतानुसार अन्य भाषा का ज़िक्र होगा।

यदि क्रिया अकर्मक है तो एक वाक्य में एक उद्देश्य संज्ञा पदबंध होगा और क्रिया पदबंध में केवल क्रिया या क्रिया और सहायक क्रिया होगी और उनका निम्नलिखित पदक्रम होगा।

i. S ⟶ Subject NP + Verb

जैसे – बच्चा खेल रहा है।

यदि क्रिया सकर्मक होगी तो उसमें उद्देश संज्ञा पदबंध (Subject NP) और क्रिया पदबंध में क्रिया और कर्म संज्ञा पदबंध (Object NP) होंगे।

ii. S ⟶ Subject NP + Object NP + Verb

जैसे – मोहन ने एक किताब ख़रीदी है।

सकर्मक क्रिया को दो कर्म संज्ञा पदबंध की भी आवश्यकता होती है जिसमें एक मुख्य कर्म संज्ञा पदबंध (Direct object NP) होता है और दूसरा गौण कर्म संज्ञा पदबंध (Indirect object NP) जैसा कि पहले भी वर्णन किया जा चुका है।

iii. S ⟶ Subject NP + Indirect object NP + Direct object NP + Verb

जैसे – मोहन ने सोहन को एक किताब दी।

पदबंधों के ये क्रम भाषानुसार बदलते भी हैं जैसे हिन्दी में घोषणात्मक वाक्य का पदक्रम SOV है परन्तु अंग्रेजी में घोषणात्मक वाक्य का पदक्रम SVO होता है। वाक्यों के प्रकार के आधार पर भी कुछ पदों के क्रम में परिवर्तन होता है।

निषेधात्मक वाक्य – निषेधात्मक वाक्य बनाने के लिए घोषणात्मक वाक्य / प्रश्नवाचक वाक्य में 'नहीं' जोड़ते हैं। हिन्दी में इसके संघटक/ पदबंध निम्नलिखित क्रम में व्यवस्थित होते हैं –

iv. Subject NP + Indirect object NP + Direct object NP + Negation (नहीं) + Verb

जैसे – मैं सोहन को किताब नहीं दूँगी ।, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।

प्रश्नवाचक वाक्य – प्रश्नवाचक वाक्य में पदबंध निम्नलिखित क्रम में उपस्थित होते हैं –

हाँ / ना उत्तर वाले प्रश्नवाचक वाक्यों में प्रश्नवाचक शब्द वाक्य के प्रारम्भ में आएगा।

v. Question word (क्या) + Subject NP + Indirect object NP + Direct Object NP + Main Verb (मुख्य क्रिया) ?

जैसे – क्या तुम उसे किताब दोगे ?, क्या तुम तैयार हो ?

अन्य प्रश्नवाचक वाक्यों में प्रश्नवाचक शब्द क्रियापदबंध में मुख्य क्रिया से पहले आएगा।

vi. Subject NP + Indirect object NP + Direct object NP + Question word (क्या, क्यों, कैसे, कब आदि) + Main verb

जैसे – तुम सोहन को किताब कब दोगे ?, सोहन कहाँ रहता है ? इत्यादि।

अंग्रेज़ी में प्रश्नवाचक वाक्य का मूल पदक्रम निम्नलिखित है –

vii. Question word + Auxiliary verb + Subject NP + Main Verb + Direct object NP + Indirect object NP

हाँ / नहीं उत्तर वाले प्रश्नवाचक वाक्य का निर्माण सहायक क्रिया को उद्देश्य संज्ञा पदबंध के पहले ला कर किया जाता है –

viii. Auxiliary verb + Subject NP + Main Verb + Direct object NP + Indirect object NP

4.3.5. वाक्यों के प्रकार

ऊपर के खण्ड में हमने कर्म (function) के आधार पर वाक्यों के प्रकार को पढ़ा। संरचना के आधार पर भी वाक्यों को वर्गीकृत किया जाता है। ये भेद निम्नलिखित हैं – साधारण वाक्य (Simple sentence), संयोजक वाक्य (Compound sentence), जटिल वाक्य (Complex sentence), मिश्रित वाक्य (Mixed sentence)

4.3.5.1. साधारण वाक्य (Simple sentence)

ऐसा वाक्य जिसमें एक कर्त्ता और विधेय में एक विधेय क्रिया (finite verb) हो उसे साधारण वाक्य कहते हैं। ऊपर जिन वाक्यों का वर्णन हुआ है सभी साधारण वाक्य हैं।

(26) शीला स्कूल जाती है।
(27) शीला ने सोहन को किताब दी है।

4.3.5.2. संयोजक वाक्य (Compound sentence)

दो या दो से अधिक वाक्यों का मिश्रण संयोजक वाक्य कहलाता है। ये वाक्य संयोजक (coordinator) की सहायता से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। संयोजक हमेशा बराबर हैसियत वाले वाक्यों, संघटकों, पदबंधों और शब्दों को जोड़ता है। संयोजक वाक्य के अन्तर्गत आने वाले ये वाक्य उपवाक्य कहलाते हैं। जब कोई वाक्य किसी बड़े वाक्य का हिस्सा होता है तो यह उपवाक्य कहलाता है। अगर इन उपवाक्यों को अलग किया जाए तो ये अपने आप में एक पूरा वाक्य होंगे। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखें –

(28) a.सोहन पढ़ रहा है और शीला खेल रही है।
b.सोहन पढ़ रहा है।
c. शीला पढ़ रही है।

(29) a. सोहन आएगा या सोहन की बहन आएगी।
b. सोहन आएगा।
c. सोहन की बहन आएगी।

संयोजक वाक्य में वाक्य / उपवाक्य संयोजक की सहायता से जुड़े होते हैं जो विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों को दर्शाते हैं। ये सम्बन्ध निम्नलिखित हैं –

(i) **समतुल्य** (Coordinate) : संयोजक 'और', 'एवं', 'अथवा' समवर्ती घटनाओं या समानान्तर मामलों को दर्शाने वाले वाक्यों को जोड़ते हैं। जैसे –

(30) राम शिक्षक है और श्याम इंजीनियर है।

(ii) **विरोधवाची** (Adversative) : संयोजक 'पर', 'लेकिन', 'किन्तु', 'परन्तु' विपरीत या विरोधाभासी संरचना को जोड़ते हैं। जैसे –

(31) मैंने उसे बहुत समझाया पर / लेकिन वह नहीं माना।

(iii) **वियोजक** (Disjunctive) : संयोजक 'या' और 'अथवा' विकल्प को दर्शाते हैं। जैसे –

(32) तुम स्वयं घर जाओगे या मैं तुम्हें वहाँ छोड़ दूँ?

(33) तुम मेरे घर आ जाओ या मैं तुम्हारे घर आ जाऊँ जैसा तुम कहो।

(iv) **अनुमोदनसूचक** (Concessive) : विपरीत परिस्थिति के होते हुए भी अगर कोई बात हो जाती है तो उसे हम अनुमोदनसूचक कहते हैं। संयोजक 'यद्यपि', 'फिर भी', 'इसके बावजूद', 'हालाँकि' वाक्यों / उपवाक्यों को जोड़ते हैं और इस प्रकार की संरचना का निर्माण करते हैं।

(34) वो अस्सी बरस का है फिर भी तेज़ चलता है।

(v) **प्रतिपक्षीय** (Antithetical) : प्रतिपक्षीय सम्बन्ध को दर्शाने के लिए 'वरन्' और बल्कि संयोजक का उपयोग करते हैं।

(35) तुम वहाँ क्या जाओगे बल्कि मैं ही चला जाता हूँ।

4.3.5.3. उपवाक्य

मूलतः उपवाक्य के दो भेद हैं – मुख्य उपवाक्य (Main clause), आश्रित उपवाक्य (Subordinate clause)

(i) **मुख्य उपवाक्य** : ये अपने आप में पूर्ण अर्थ रखते हैं। इनको अपने अर्थ की पूर्ति के लिए किसी अन्य वाक्य पर निर्भर नहीं करना पड़ता।

(ii) **आश्रित उपवाक्य** : ये उपवाक्य अपने आप में पूर्ण अर्थ नहीं दे सकते हैं। ये अपने अर्थ की पूर्ति के लिए मुख्य उपवाक्य पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य को देखें –

(36) वह लड़का मेरा भाई है जो कल आया था।

(36) में "*वह लड़का मेरा भाई है*" मुख्य उपवाक्य है और "*जो कल आया था*" आश्रित उपवाक्य है। इसमें एक उद्देश्य '*जो*' है और एक विधेय '*कल आया था*' फिर भी ये एक आश्रित उपवाक्य है क्योंकि '*जो*' का स्पष्टीकरण '*वह लड़का*' पर निर्भर करता है। आश्रित उपवाक्य वाक्य में अपने कार्य एवं स्थिति के अनुसार अलग-अलग प्रकार के होते हैं। यथा – संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य[xii], क्रियाविशेषण उपवाक्य।

4.3.5.4. जटिल वाक्य (Complex sentence)

ऐसे वाक्य जिनमें एक मुख्य उपवाक्य और एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं जटिल वाक्य कहलाते हैं। यदि उपवाक्य Complementizer की सहायता से मुख्य वाक्य से जुड़ते हैं तो ये उपवाक्य Complementizer subordinate clause कहलाते हैं।

(37) वह लड़का जो कल आया था चला गया क्योंकि उसकी छुट्टियाँ कल ख़त्म हो गई थीं।

(37) में दो आश्रित उपवाक्य हैं "जो कल आया था" और "क्योंकि उसकी छुट्टियाँ ख़त्म हो गई थीं।" इन दोनों उपवाक्यों के कार्य अलग-अलग हैं। "*जो कल आया था*" सम्बन्धवाचक उपवाक्य (Relative Clause) है। सम्बन्धवाचक उपवाक्य संज्ञा पदबंध की सीमा निर्धारित करता है या उसके बारे में अतिरिक्त सूचना देता है। सम्बन्धवाचक उपवाक्य सम्बन्धवाचक सर्वनाम से शुरु होता है। उपवाक्य "*क्योंकि उसकी छुट्टियाँ ख़त्म हो गई थीं*" क्रियाविशेषण विधेय अनुबंध के तौर पर कार्य कर रहा है जो क्रिया के होने का कारण बता रहा है कि *वह लड़का जो कल आया था क्यों चला गया* ?

हिन्दी के जटिल वाक्यों में आश्रित उपवाक्य कर्म, पूरक या क्रियाविशेषण विधेय अनुबंध के स्थान पर आ सकते हैं।

(i) कर्म के स्थान पर –

(38) उसने वादा किया है कि वह ये काम पूरा करेगा।

(ii) कर्त्ता पूरक के स्थान पर –

(39) यह बात सही है कि वह इस काम में माहिर है। / यह बात कि वह इस काम में माहिर है सही है।

(iii) कर्म पूरक के स्थान पर –

(40) इस घटना ने मुझे सिखाया है कि कोई भी काम ईमानदारी से करना चाहिए।

(iv) क्रियाविशेषण विधेय अनुबंध के स्थान पर –

(41)	सूरज निकलने से पहले मैं उठ जाती हूँ।	(समय)
(42)	वह आज यहाँ नहीं आएगी क्योंकि उसके इम्तिहान चल रहे हैं।	(कारण)
(43)	मैं कड़ी मेहनत करता हूँ ताकि कामयाब हो सकूँ।	(उद्देश्य)
(44)	मैं उसे बुलाऊँगा तब ही वह आएगा।	(शर्त)

हिन्दी में कोई भी वाक्य Complementizer subordinate clause से शुरू नहीं होता परन्तु कुछ भाषाओं, जैसे अंग्रेज़ी में, ऐसा चलन है।

4.3.5.5. मिश्रित वाक्य (Mix Sentence)

जब संयोजक वाक्य एवं मिश्रित वाक्य को मिलाकर एक वाक्य का निर्माण होता है तो ऐसे वाक्य को मिश्रित वाक्य कहते हैं।

(45) राम आएगा और श्याम जाएगा क्योंकि उनके घर में कोई नहीं है।

(46) जीवन जीने का विवेक यदि नहीं होगा तो न यह धरती बचेगी न हम लोग क्योंकि धरती का कोष सीमित है और यह धीरे-धीरे कम हो रहा है।

(45) में "*राम आएगा और श्याम जाएगा*" संयोजक वाक्य हैं और "*क्योंकि उनके घर में कोई नहीं है*" आश्रित उपवाक्य है जो क्रियाविशेषण विधेय अनुबंध है। (46) में "*जीवन जीने का विवेक यदि नहीं होगा तो न यह धरती बचेगी न हम लोग क्योंकि धरती का कोष सीमित है*" जटिल वाक्य है जिसके अन्तर्गत कई जटिल वाक्य हैं (या उपवाक्य हैं) और "*धरती का कोश सीमित है और यह धीरे-धीरे कम हो रहा है*" संयोजक वाक्य है जो दो वाक्यों से मिलकर बना है – "*धरती का कोश सीमित है*" और "*यह धीरे-धीरे कम हो रहा है*"।

4.3.6. पाठ-सार

(i) वाक्य को एक रेखीय तंत्र (Linear System) कहना उचित नहीं है बल्कि वाक्य एक पदानुक्रमित तंत्र (Hierarchical System) है।

(ii) जो शब्द या शब्द-समूह आपस में मिलकर अपने से बड़ी इकाई का निर्माण करते हैं वे शब्द या शब्द-समूह अपने से बड़ी इकाइयों के संघटक (Constituent) कहलाते हैं।

(iii) वाक्य से छोटी इकाई पदबंध है। पदबंध शब्दों के वे समूह होतेहैं जो आपस में वाक्यविन्यासिक तौर पर (Synatctically) आपस में जुड़े होते हैं और एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं।

(iv) पदबंधों के क्रम की प्रकृति के अनुसार भी भाषाओं को वर्गीकृत किया जाता है।

(v) वाक्य के अर्थ का भी उसके पदबंधों और शब्दों के क्रम से गहरा सम्बन्ध है।

(vi) ऐसा वाक्य जिसमें एक कर्त्ता और विधेय में एक विधेय क्रिया (finite verb) हो उसे साधारण वाक्य कहते हैं।

(vii) दो या दो से अधिक वाक्यों का मिश्रण संयोजक वाक्य कहलाता है । ये वाक्य संयोजक (coordinator) की सहायता से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं।

(viii) जटिल उपवाक्यों में एक मुख्य उपवाक्य और एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं।

4.3.7. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संघटक किसे कहते हैं ? वाक्य के अन्तर्गत संघटकों की व्यवस्था को समझाइए। पदबंध और उसकी संरचना का विस्तार से उदाहरणसहित उल्लेख कीजिए।
2. कर्म और संरचना के आधार पर वाक्यों के प्रकार को समझाइए ? वाक्य के अन्तर्गत पदबंधों एवं उपवाक्यों की व्यवस्था उदाहरणसहित समझाइए।

टिप्पणी लिखिए –

1. मुख्य वाक्य और आश्रित उपवाक्य में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. क्रिया पदबंध के विभिन्न पदबंध संरचना नियमों को उदाहरण देकर संक्षेप मेंसमझाइए।
3. पदबंधों और पदों के क्रम के आधार पर हिन्दी और अंग्रेज़ी भाषा में चार अन्तर बताइए।
4. संयुक्त वाक्य के अन्तर्गत संयोजक वाक्यों के किस-किस प्रकार के सम्बन्धों को दर्शाते हैं ? संक्षेप में उदाहरणसहित समझाइए।

अभ्यास 1

निम्नलिखित कथनों में सही और ग़लत कथनों की पहचान कीजिए और सही कथन के आगे (✔) तथा ग़लत कथन के आगे (X) का निशान लगाइए।

(i) वाक्य एक रेखीय तंत्र नहीं है। (सही / ग़लत)

(ii) वाक्य में पदबंध आपस में वाक्यविन्यासिक तौर पर (Synatctically) नहीं जुड़े होते हैं। (सही / ग़लत)

(iii) वाक्य में पदों एवं पदबंधों का अर्थ से गहरासम्बन्ध होता है। (सही/ग़लत)

(iv) हिन्दी में क्रिया पदबंध कर्म के पहले नहीं आता है। (सही / ग़लत)

(v) संस्कृत में शब्दों का क्रम पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। (सही / ग़लत)

(vi) फ़ारसी भाषा में विशेषण पदबंध संज्ञा के पहले आता है। (सही / ग़लत)

(vii) संयोजक 'पर' और 'लेकिन' समवर्ती घटनाओं या समानान्तर मामलों को दर्शाने वाले वाक्यों को जोड़ते हैं। (सही / ग़लत)

(viii) आश्रित उपवाक्य अपने आप में पूर्ण अर्थ नहीं दे सकते हैं। (सही/ग़लत)

अभ्यास 2

कोष्ठक में दिए गए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो उत्तर सही है उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

(i) --------------- में कोई भी वाक्य Complementizer subordinate clause से नहीं शुरु होता है।
(अंग्रेज़ी / हिन्दी)

(ii) "राम ने सूचना दी है कि श्याम आएगा" में "कि श्याम आएगा" -------------------- है।
(कर्म पूरक / कर्त्ता पूरक)

(iii) हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी तीनों में क्रिया पदबंध केअन्तर्गत Complementizer phrase क्रिया के ---------------- आते हैं।
(पहले / बाद / मध्य)

(iv) ------------------ हाँ / नहीं उत्तर वाले प्रश्नवाचक वाक्य का निर्माण सहायक क्रिया को उद्देश्य संज्ञा पदबंध के पहले ला कर किया जाता है।
(अंग्रेज़ी / हिन्दी)

(v) वाक्य "मैं कल सुबह तुम्हें यह किताब दूँगी" में "कल सुबह" ------------------ है।
(संज्ञा पदबंध/ विशेषण पदबंध / क्रिया पदबंध / क्रियाविशेषण पदबंध)

अभ्यास 3

निम्नलिखित वाक्यों में पदबंधों (संज्ञा पदबंध/ विशेषण पदबंध / क्रिया पदबंध / क्रियाविशेषण पदबंध / पूर्वसर्ग पदबंध) की पहचान कीजिए –

(i) मैं कल सुबह तुम्हें यहाँ से ले जाऊँगा।
(ii) कल जो किताब मैंने तुम्हें दी थी तुम ले आओ।
(iii) बच्चा मेरे पास नहीं आया।

अभ्यास 4

निम्नलिखित वाक्यों में निहित संयोजक सम्बन्ध और क्रियाविशेषण विधेय अनुबंध के प्रकार का उल्लेख कीजिए एवं साथ ही संयोजक सम्बन्ध को बताइए –

(i) मैं उससे कल मिलूँगा या फिर परसों मिलूँगा।
(ii) तुम बाहर का काम करो और मैं घर का काम निपटाती हूँ।
(iii) वाक्यात्मक स्तर पर हिन्दी-उर्दू में अन्तर नहीं पर शाब्दिक स्तर पर दोनों भाषाओं में काफ़ी अन्तर है।

(iv) स्वामीजी कुछ घंटों के लिए यहाँ नहीं आएँगे बल्कि एक रात यहाँ रुकेंगे ।

अभ्यास 5

निम्नलिखित वाक्यों में निहित क्रियाविशेषण विधेय अनुबंध के प्रकार का उल्लेख कीजिए –

(i) उसने स्टेशन पहुँचने में बहुत देर कर दी इसलिए उसकी ट्रेन छूट गई।
(ii) मैंने अपने दोस्तों को होटल में बुलाया था क्योंकि घर में बहुत सारे लोग पहले से थे।
(iii) मैं सुबह होने तक आ जाऊँगा।

4.3.8. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. Carnie, Andrew. 2005. *Syntax: A Generative Introduction*. Blackwell Publishing Limited.
2. Chomsky, Noam. 1957. *Syntactic Structures*. The Hague: Mouton.
3. Culicover, P.W. 2009. *Natural Language Syntax*. New York: Oxford University Press.
4. Haegeman, L. 1991. *Introduction to Government and Binding Theory*, Cambridge: Cambridge University Press.
5. Kachru, Yamuna. 2006. *Hindi*, John Benjamins Publishing Company
6. Sinha, Anjani Kumar. 2000. *Chomskyan Paradigm*. CIIL Publication
7. Sinha, Anjani Kumar. *Noam Chomsky: vyaktitv aur krititv*, Bhasha ke Sutrdhaar
8. Sinha, Anjani. 2016. *Empowering Communication Skills*. Shipra Publication

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : वाक्य विज्ञान

इकाई – 4 : उपवाक्य और उसके प्रकार

इकाई की रूपरेखा

4.4.0 उद्देश्य
4.4.1 प्रस्तावना
4.4.2 उपवाक्य की परिभाषा
4.4.3 वाक्य और उपवाक्य का सम्बन्ध
4.4.4 उपवाक्य के प्रकार
4.4.4.1 संज्ञा-उपवाक्य (Noun Clause)
4.4.4.2 विशेषण-उपवाक्य (Adjective Clause)
4.4.4.3 क्रियाविशेषण-उपवाक्य (Adverb Clause)
4.4.5 उपवाक्य और अन्य वाक्यांश
4.4.6 पाठ-सार
4.4.7 बोधात्मक प्रश्न
4.4.8 कठिन शब्दावली
4.4.9 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.4.0 उद्देश्य

वाक्य विज्ञान में भाषा सम्बन्धी उन नियमों एवं अभिव्यक्ति की प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है जिनसे शब्द एक दूसरे से जुड़कर वाक्य की रचना करते हैं। अतः मनुष्य द्वारा भाषिक सम्प्रेषण की प्रक्रिया में वाक्य शब्द की तुलना में ज्यादा महत्त्वपूर्ण इकाई है। अर्थ अभिव्यक्ति में उसकी केन्द्रीय भूमिका होती है। प्रस्तुत पाठ में उपवाक्य से सम्बन्धित निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जाएगा –

i. उपवाक्य की परिभाषा
ii. उपवाक्य की पहचान
iii. वाक्य और उपवाक्य का सम्बन्ध
iv. उपवाक्य के विविध प्रकारों का विस्तारपूर्वक विवेचन-विश्लेषण
v. उपवाक्य और अन्य वाक्यांश
vi. उपवाक्यों के विविध प्रयोग

4.4.1 प्रस्तावना

अब तक वाक्य विज्ञान के विविध पाठों के अध्ययन के क्रम में आपने अनुभव किया होगा कि सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास के क्रम में सशक्त अभिव्यक्ति के प्रति सचेत मनुष्य ने वाक्य-रचना के क्षेत्र में काफी सफलता अर्जित कर ली है। इधर हाल के दिनों में कंप्यूटर, मोबाइल, टैबलेट आदि पोपुलर गजेट्स के प्रयोग ने व्याकरण के मानक सिद्धान्तों एवं वाक्य की पारम्परिक रचना-पद्धतियों में भूचाल ला दिया है। वैसे लेखन एवं वाचन के क्रम में उत्कृष्ट भाषिक प्रयोग के अन्तर्गत शाब्दिक अपव्यय को पहले भी अनुचित माना जाता था, किन्तु आज का भाषिक प्रयोग वर्तमान पीढ़ी की शाब्दिक दरिद्रता को दर्शाता है। यही नहीं, गजेट्स की भाषा में मनचाहे संक्षिप्ति और कूटभाषा के अतिरेक ने भाषिक अराजकता को भी जन्म दिया है, जिसका कोई ओर-छोर दिखाई नहीं देता। यह ठीक है कि प्रत्येक युग में अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ भाषा की आन्तरिक संरचना में भी बदलाव होते हैं और भाषाविदों की विवशता उन्हें सैद्धान्तिक सूत्रों में बाँधने की होती है, लेकिन दोनों के बीच छोटी-बड़ी फाँक सदैव बनी रह जाती है। इस पाठ में भाषिक शुचिता को ध्यान में रखकर वाक्य और उपवाक्य के विविध पक्षों का विश्लेषण किया गया है ताकि शासन-प्रशासन, सम्पर्क-भाषा, शिक्षा की माध्यम भाषा आदि के रूप में हिन्दी भाषा की अभिव्यक्तिगत सामर्थ्य को स्थापित किया जा सके। यह भी ध्यातव्य है कि वैश्विक स्तर पर बाजार एवं तकनीकी क्षेत्र के दबाव का असर इन क्षेत्रों में कार्यरत मनुष्य के भाषिक तेवर को देखकर आँका जा सकता है, जहाँ उसके स्वभाव में ऐन्द्रजालिक भाषा के जरिये सर्वाधिक कार्य निष्पादन का श्रेय झपट लेने की भावना सदैव सक्रिय रहती है। कुछ भाषाशास्त्री यह भी मानते हैं कि हाल के दिनों में वैश्वीकरण और भाषा प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में आए क्रान्तिकारी बदलाव ने भाषा अध्ययन को अनुपम निधि की श्रेणी में ला खड़ा किया है।

4.4.2 उपवाक्य की परिभाषा

अपनी मूल प्रकृति में वाक्य और उपवाक्य दोनों भाषिक अभिव्यक्ति के उपकरण हैं और मनुष्य की अभिव्यक्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भाषाविदों में इस बात को लेकर काफी मतभेद है कि वाक्य को अर्थ की एक इकाई के रूप में स्वीकार करें या संरचना की एक इकाई के रूप में, किसी वक्ता की मानसिक इकाई के रूप में देखें या सामाजिक सन्दर्भ की एक इकाई के रूप में। जाहिर है भाषा के क्षेत्र में प्रचलित अध्ययन की विभिन्न पद्धतियों से जुड़े भाषाशास्त्रियों ने वाक्य के सन्दर्भ में भी अपनी-अपनी व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। इस पाठ में उनके विचारों को समेकित रूप में ग्रहण करते हुए वाक्य और उपवाक्य के सम्बन्ध में विचार किया जाएगा और इस विश्लेषण का झुकाव वाक्य को अर्थपरक इकाई एवं संरचनापरक इकाई मानने वाले मतों की ओर रहेगा।

यदि किसी भाव या विचार को पूर्णता से प्रकट करने वाले शब्द-समूह को वाक्य कहा जाता है, तो उपवाक्य भी शब्दों का समूह ही होता है जो स्वतन्त्र या प्रधान उपवाक्य के रूप में भाव अथवा विचार की पूर्णता से अभिव्यक्ति करने में सक्षम होता है और आश्रित उपवाक्य के रूप में अर्थ अभिव्यक्ति करने में सहायक सिद्ध होता है। उद्देश्य और विधेय वाक्य के दो महत्त्वपूर्ण अवयव हैं। वाक्य के अन्तर्गत जिस वस्तु के विषय में कुछ कहा जाता है, उसे सूचित करने वाले शब्दों को उद्देश्य कहते हैं। जैसे – आत्मा अमर है, घोड़ा दौड़ रहा है, राम ने

रावण को मारा। इन वाक्यों में आत्मा, घोड़ा और राम उद्देश्य हैं क्योंकि इनके विषय में कुछ कहा गया है। वहीं उद्देश्य के विषय में जो कहा जाता है या विधान किया जाता है, उसे सूचित करने वाले शब्दों को विधेय कहते हैं। जैसे – उपर्युक्त वाक्यों में आत्मा, घोड़ा, राम के विषय में क्रमशः अमर है, दौड़ रहा है, रावण को मारा – ये विधान किये गए हैं, इसलिए इन्हें विधेय कहते हैं। सामान्यतः प्रत्येक वाक्य में उद्देश्य और विधेय की स्थिति स्पष्ट रहती है, परन्तु भाववाच्च में उद्देश्य प्रायः क्रिया में ही सम्मिलित कर दिया जाता है। जैसे – मुझसे चला नहीं जाता, लड़के से बोलते नहीं बनता। इन वाक्यों में क्रमशः चलना और बोलना उद्देश्य क्रिया के साथ ही अर्थ में मिले हुए हैं। उद्देश्य और विधेय को जान लेने के बाद उपवाक्यों को आसानी से समझा जा सकता है।

'उपवाक्य' शब्द में वाक्य के साथ 'उप' उपसर्ग लगा हुआ है और 'उप' उपसर्ग का योग समीप, निकट, पास, अंग, हिस्सा, सहायक आदि के अर्थ में किया जाता है। इस दृष्टि से उपवाक्य वाक्य की ही निकटतम भाषिक संरचना है, जो कभी वाक्य से अभिन्न तो कभी-कभी वाक्य की रचना और अर्थ अभिव्यक्ति में सहायता करता है। हिन्दी के व्याकरण और भाषा सम्बन्धी पुस्तकों में उपवाक्य की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से दी गई है –

"मिश्रवाक्य के मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय से जो वाक्य बनता है उसे उपवाक्य कहते हैं।"

(हिंदी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरु, पृष्ठ-408)

"जब दो या अधिक सरल वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बना देते हैं तो उस एक वाक्य में जो वाक्य मिले होते हैं उन्हें उपवाक्य कहते हैं।"

(भाषाविज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ-217)

"वाक्य से छोटा घटक उपवाक्य है। वाक्य एक उपवाक्य का भी हो सकता है और एक से अधिक उपवाक्यों का भी। जहाँ वाक्यों में केवल एक उपवाक्य होता है वहाँ वह स्वतन्त्र उपवाक्य होता है और सरल वाक्य कहलाता है।"

(हिंदी संरचना, एम.एच.डी.-7, इग्नू, पृष्ठ-59)

इन परिभाषाओं के विश्लेषण के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऐसा पदसमूह, जिसका अपना अर्थ हो, जो वाक्यविशेष का एक भाग या अंश हो और जिसमें उदेश्य और विधेय उपस्थित हों, उपवाक्य कहलाता है। उपवाक्य को पहचानने का सरल सूत्र यह है कि सामान्यतः उपवाक्यों के आरम्भ में कि, जिससे, ताकि, जो, जितना, ज्यों-त्यों, चूँकि, क्योंकि, यदि, यद्यपि, जब, जहाँ इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

4.4.3 वाक्य और उपवाक्य का सम्बन्ध

वाक्य और उपवाक्य के सम्बन्धों को सूक्ष्मता से समझने के लिए हमें रचना की दृष्टि से विभाजित वाक्यों को एक-एक करके विश्लेषित करना होगा। रचना के आधार पर वर्गीकृत वाक्यों के तीन प्रकार हैं। उनमें से पहला प्रकार है सरल या साधारण वाक्य।

सरल वाक्य : जिस वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय रहता है, उसे सरल वाक्य कहते हैं। जैसे –

(i) आज बहुत गर्मी है।
(ii) लू चल रही है।

यदि इन सरल वाक्यों को किसी योजक की सहायता से संयुक्त कर दिया जाए तो ये उपवाक्य की श्रेणी में आ जाएँगे। जैसे – आज बहुत गर्मी है और लू चल रही है।

इससे यह सिद्ध होता है कि सरल वाक्य और उपवाक्य अभिन्न होते हैं।

मिश्र वाक्य : जिस वाक्य में मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय के अलावा एक या एक से अधिक समापिका क्रियाएँ होती हैं उसे मिश्र वाक्य कहते हैं। जैसे –

(i) वह कैसा शिष्य है, जो अपने गुरु का आदर तक नहीं करता।
(ii) जब पुत्र पाँच साल का हो गया, तब पिता ने उसे विद्यालय पढ़ने के लिए भेजा।

इन उदाहरणों को देखने पर पता चलता है कि मिश्र वाक्य के मुख्य उद्देश्य और मुख्य विधेय से जो वाक्य बनता है, उसे उपवाक्य कहते हैं और दूसरे वाक्यों को आश्रित उपवाक्य कहते हैं। आश्रित उपवाक्य स्वयं सार्थक नहीं होते, किन्तु मुख्य वाक्य के साथ आने के पश्चात् वे अर्थधारण करने में सक्षम हो जाते हैं। ऊपर के वाक्यों में 'वह कैसा शिष्य है' और 'तब पिता ने उसे विद्यालय पढ़ने के लिए भेजा' – ये मुख्य उपवाक्य हैं और शेष उपवाक्य मुख्य उपवाक्य पर आश्रित होने के कारण आश्रित उपवाक्य हैं। मिश्र वाक्य में मुख्य उपवाक्य एक ही रहता है, पर आश्रित उपवाक्य एक से अधिक आ सकते हैं।

संयुक्त वाक्य : जिन वाक्यों में दो या अधिक स्वतन्त्र उपवाक्यों को किसी योजक के सहारे एक साथ जोड़कर संयोजित किया जाता है, उन्हें संयुक्त वाक्य कहतेहैं। जैसे –

(i) शिक्षक ने अपने थैले से पुस्तक निकाली और विद्यार्थी को दे दी।
(ii) शीशे का बर्तन हाथ से गिरा और चूर-चूर हो गया।

इन उदाहरणों में दो उपवाक्य हैं और इनका स्वतन्त्र प्रयोग भी सम्भव है। जैसे – शिक्षक ने अपने थैले से पुस्तक निकाली। शिक्षक ने पुस्तक विद्यार्थी को दे दी। फिर शीशे का बर्तन हाथ से गिरा। बर्तन चूर-चूर हो गया। अतः यह निर्विवाद तथ्य है कि संयुक्त वाक्यों की रचना में उपवाक्यों कीमहत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संयुक्त वाक्यों में विभिन्न व्याकरणिक स्थितियों में प्रयुक्त उपवाक्यों के बीच चार प्रकार के सम्बन्ध पाया निर्धारित किये जा सकते हैं – संयोजक, विभाजक, विरोधदर्शक और परिणामबोधक । यह सम्बन्ध बहुधा समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्ययों के द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। जैसे –

संयोजक :

(i) मैं खाना खाकर उठ गया और वह खाता ही रह गया।
(ii) विद्या से ज्ञान बढ़ता है, तर्कशक्ति विकसित होती और यश मिलता है।
(iii) कृषि किसानों के जीवन का केवल आधार ही नहीं है वरन् कई अन्य जीव भी उस पर आश्रित होते हैं

विभाजक :

(i) या तो मेरा भाई यहाँ आएगा या मैं ही उसके पास जाऊँगा।
(ii) विद्यार्थियों को परीक्षा के दिनों में न तो ढंग से नींद आती है, न ही उन्हें भूख-प्यास लगती है।

विरोधदर्शक :

(i) स्थानीय निवासी शरणार्थियों के साथ सदैव लड़ा करते थे परन्तु बाद में उन्हें वहाँ से भगा दिया गया।
(ii) मनुष्य इच्छाओं के प्रबल हो जाने के कारण दुराचार में प्रवृत नहीं होता बल्कि मानसिक दुर्बलताओं से वशीभूत होकर वैसा करता है।

परिणामबोधक :

(i) महाराणा प्रताप को अपनी मातृभूमि से बहुत प्रेम था इसलिए वे जीवनपर्यन्त उसकी रक्षा के लिए युद्ध करते रहे।
(ii) मुझे काव्य में बहुत अधिक रुचि थी सो मैं कार्यक्रम के अन्त तक कवियों को सुनता रहा।

कभी-कभी कुछ उपवाक्य बिना किसी समुच्चयबोधक के आपस में जोड़ दिए जाते हैं। इस स्थिति में संयोजक अव्ययों में से किसी एक का लोप हो जाता है। जैसे –

(i) नौकर तो क्या उनके मालिक भी जीवन भर मुझे भूल नहीं पाएँगे।
(ii) उन्हें न तो मंत्रीजी के आने का हर्ष, न जाने का दुःख।

यह भी ध्यान रहे कि जिस प्रकार संयुक्त वाक्यों के अन्तर्गत मुख्य या प्रधान उपवाक्य समानाधिकरण समुच्चयबोधकों के द्वारा जोड़े जाते हैं, उसी प्रकार मिश्र वाक्य के आश्रित उपवाक्य भी इन अव्ययों के द्वारा जोड़े जा सकते हैं। जैसे –

(i) क्या संसार में ऐसे मनुष्य नहीं दिखाई देते, जो करोड़पति तो हैं, पर जिनका सच्चा मान कुछ भी नहीं है।

इस पूरे वाक्य में 'जिनका सच्चा मान कुछ भी नहीं है' आश्रित उपवाक्य है और वह 'जो करोड़पति तो हैं', इस उपवाक्य का विरोधदर्शक समानाधिकरण है। तो भी इन उपवाक्यों के कारण पूरा वाक्य संयुक्तवाक्य नहीं हो सकता क्योंकि इसमें केवल एक ही प्रधान उपवाक्य है।

4.4.4 उपवाक्य के प्रकार

वाक्य को अभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्ण घटक स्वीकार किया जाता है और वाक्य से छोटा घटक उपवाक्य कहलाता है। वाक्य की प्रकृति उपवाक्यों की संख्या पर निर्भर करती है। किसी वाक्य में केवल एक उपवाक्य भी हो सकता है और एक से अधिक उपवाक्य भी। जब किसी वाक्य में सिर्फ एक उपवाक्य उपस्थित होता है, तब वह स्वतन्त्र उपवाक्य होता है और सरल वाक्य कहलाता है। ऐसी अवस्था में वाक्य और उपवाक्य के बीच कोई अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि इसमें एक वाक्य की सत्ता विद्यमान रहती है। उदाहरण के लिए –

i. रोहन ने खाना खाया। (एक स्वतन्त्र उपवाक्य = वाक्य)

यह एक सरल वाक्य के साथ-साथ स्वतन्त्र उपवाक्य भी है। इसके विपरीत दूसरे उदाहरण को देखें –

ii. रोहन ने खाना खाया जिसमें रोटी-दाल दोनों थे। (स्वतन्त्र उपवाक्य + आश्रित उपवाक्य = वाक्य)

इनमें से पहला उदाहरण स्वतन्त्र उपवाक्य का है, जो सरल वाक्य भी है। दूसरे उदाहरण में दो उपवाक्य हैं, जिनमें एक स्वतन्त्र और दूसरा अस्वतन्त्र या आश्रित उपवाक्य है। इन उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी वाक्य में उपवाक्यों की संख्या एक या एक से अधिक हो सकती है। जिन वाक्यों में एक से अधिक उपवाक्य होते हैं, उनमें उपवाक्यों के बीच दो प्रकार के सम्बन्ध की सम्भावना होती है। एक तो यह कि कोई उपवाक्य दूसरे उपवाक्य से स्वतन्त्र हो सकता है और दूसरा यह कि कोई उपवाक्य दूसरे उप वाक्य से जुड़ा या उस पर आश्रित हो। संयुक्त वाक्यों में उपवाक्य एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं जबकि मिश्र वाक्यों में एक मुख्य या प्रधान उपवाक्य होता है और दूसरा आश्रित उपवाक्य। जैसे –

i. विद्यार्थी ने खाना खाया जो उसकी माँ ने बनाकर दिया था।
ii. अध्यापक ने अपना कोट उतारा और कोट भिखारी को दे दिया।

पहला उदाहरण मिश्र वाक्य का है और इसमें 'विद्यार्थी ने खाना खाया' मुख्य वाक्य है और 'उसकी माँ ने बनाकर दिया था' आश्रित उपवाक्य है। वहीं दूसरा उदाहरण संयुक्त वाक्य का है जिसमें 'अध्यापक ने अपना कोट उतारा' और 'कोट भिखारी को दे दिया' – दोनों मुख्य वाक्य हैं। इन दोनों वाक्यों का स्वतन्त्र प्रयोग भी सम्भव है और संयुक्त वाक्य के अन्तर्गत ये एक साथ भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

यदि किसी वाक्य में एक से अधिक समापिका क्रियाएँ होती हैं तो वह वाक्य उपवाक्यों में बँट जाता है और उसमें जितनी समापिका क्रियाएँ होती हैं उतने ही उपवाक्य भी होते हैं। इस आधार पर उपवाक्यों में से जो वाक्य के केन्द्र में होता है, उसे मुख्य या प्रधान वाक्य कहते हैं और शेष को आश्रित उपवाक्य कहते हैं। अतः उपवाक्य के मूल रूप से दो भेद हैं – (1) मुख्य या प्रधान उपवाक्य और (2) आश्रित उपवाक्य। इनमें से आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं – (i) संज्ञा-उपवाक्य (Noun Clause), (ii) विशेषण-उपवाक्य (Adjective Clause) और (iii) क्रियाविशेषण-उपवाक्य (Adverb Clause)।

4.4.4.1 संज्ञा-उपवाक्य (Noun Clause)

जो आश्रित उपवाक्य संज्ञा की तरह व्यवहृत होते हैं, उन्हें संज्ञा-उपवाक्य कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जो आश्रित उपवाक्य प्रधान वाक्य की क्रिया के कर्त्ता, कर्म अथवा पूरक के रूप में प्रयुक्त हों उन्हें संज्ञा-उपवाक्य कहते हैं। संज्ञा-उपवाक्य की पहचान यह है कि इस उपवाक्य के पूर्व 'कि' होता है। जैसे – 'राम ने कहा कि मैं पढूँगा' यहाँ 'मैं पढूँगा' संज्ञा-उपवाक्य है। इसी प्रकार 'मैं नहीं जानता कि वह कहाँ है' – इस वाक्य में 'वह कहाँ है' संज्ञा-उपवाक्य है।

मुख्य वाक्य के साथ संज्ञा-उपवाक्य निम्नलिखित अवस्थाओं में प्रयुक्त किया जाता है –

(i) उद्देश्य :

i. इससे जान पड़ता है, कि 'बुरी संगति का फल बुरा होताहै।'
ii. मालूम होता है, कि 'हिन्दू लोग भी इसी घाटी से होकर हिन्दुस्तान में आए थे।'

(ii) कर्म :

i. वह जानता ही नहीं कि धर्म किसे कहते हैं।
ii. मैंने सुना है कि आपके देश में अच्छा राजप्रबन्ध है।

संज्ञा-उपवाक्य केवल मुख्य विधेय ही का कर्म नहीं होता, बल्कि मुख्य उपवाक्य में आने वाले कृदन्त का भी कर्म हो सकता है जैसे –

i. आप यह सुनकर प्रसन्न होंगे कि इस नगर में अब शान्ति है।
ii. चोर से यह कहना कि तू साहूकार है, वक्रोक्ति कहलाती है।

(iii) पूर्ति :

i. मेरा विचार है कि हिन्दी का एक साप्ताहिक पत्र निकालूँ।

ii. उसकी इच्छा है कि आपको मारकर दिलीप सिंह को गद्दी पर बैठाए।

(iv) समानाधिकरण शब्द :

i. इसका फल यह होता है कि इनकी तादाद अधिक नहीं होने पाती।

ii. यह विश्वास दिन पर दिन बढ़ता जाता है कि मरे हुए मनुष्य इस संसार में लौट आते हैं।

(v) प्रश्नवाचक :

i. राजा यह न जान पाया कि मैं क्या कह रहा हूँ।

ii. सुबह उठते ही रमा क्या देखती है कि चारों ओर बिजली चमकने लगी।

4.4.4.2 विशेषण-उपवाक्य (Adjective Clause)

जो आश्रित उपवाक्य विशेषण की तरह व्यवहृत हो, उसे विशेषण-उपवाक्य कहते हैं। दूसरे शब्दों में जब कोई आश्रित उपवाक्य प्रधान वाक्य की संज्ञा पद की विशेषता बताते हैं, उन्हें विशेषण उपवाक्य कहते हैं, जैसे –

i. मैंने एक व्यक्ति को देखा **जो बहुत मोटा था**।

ii. वे फल कहाँ है **जिनको आप लाए थे**।

iii. वह आदमी, **जो कल आया था**, आज भी आया है।

इन वाक्यों में मोटे अक्षरों वाले अंश विशेषण उपवाक्य हैं। विशेषण उपवाक्य का प्रारम्भ 'जो', 'जैसा', 'जितना' अथवा इसके किसी अन्य रूप के द्वारा होता है। तीसरे उदाहरण में 'जो कल आया था' विशेषण-उपवाक्य है।

विशेषण उपवाक्य मुख्य उपवाक्य के अन्तर्गत किसी संज्ञा की विशेषता बतलाते हैं, इसलिए वाक्य में जिन-जिन स्थानों में संज्ञा आती है, उन स्थानों पर उसके साथ विशेषण उपवाक्य प्रयुक्त किया सकता है। जैसे –

(i) उद्देश्य के साथ :

i. जो सोया उसने खोया।

ii. एक बड़ा बुद्धिमान डाक्टर था जो राजनीति के तत्त्व को अच्छी तरह समझता था।

(ii) कर्म के साथ :

i. वहाँ जो कुछ देखने योग्य था, मैंने सब देख लिया।

ii. यह ऐसी बातें कहता है, जिनसे सबको बुरा लगता है।

(iii) पूर्ति के साथ :

i. वह कौन सा मनुष्य है, जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो।

ii. राजा का घातक एक सिपाही निकला, जिसने एक समय उसके प्राण बचाए थे।

(iv) विधेय विस्तारक के साथ :

i. आप उस अपकीर्ति पर ध्यान नहीं देते जो बाल हत्या के कारण सारे संसार में होती है।
ii. उन्होंने जो कुछ दिया उसी से मुझे परम संतोष है।

4.4.4.3 क्रियाविशेषण-उपवाक्य (Adverb Clause)

जो उपवाक्य क्रियाविशेषण की तरह व्यवहृत हो, उसे क्रियाविशेषण-उपवाक्य कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जब कोई आश्रित उपवाक्य प्रधान वाक्य की क्रिया की विशेषता बताए, उसे क्रियाविशेषण-उपवाक्य कहते हैं। ये प्रायः क्रिया के काल, स्थान, रीति, परिमाण, कारण, प्रयोजन, विरोध आदि के सूचक क्रियाविशेषणों के द्वारा प्रधान वाक्य से जुड़े रहते हैं। जैसे –

i. जब वर्षा हो रही थी तब मैं कमरे में था।
ii. जहाँ-जहाँ वे गए, उनका स्वागत हुआ।
iii. मैं वैसे ही जाता हूँ, जैसे रमेश जाता है।
iv. यदि मैंने परिश्रम किया होता तो अवश्य सफल होता।
v. जब पानी बरसता है, तब मेढक बोलते हैं।

यहाँ 'जब वर्षा हो रही थी', 'जहाँ-जहाँ वे गए', 'मैं वैसे ही जाता हूँ', 'यदि मैंने परिश्रम किया होता', 'जब पानी बरसता है' क्रियाविशेषण-उपवाक्य हैं। इस प्रकार के वाक्यों में प्रायः जब, जहाँ, जिधर, ज्यों, यद्यपि इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता है। इन शब्दों के प्रयोग के द्वारा समय, स्थान, कारण, उद्देश्य, फल, अवस्था, समानता, मात्रा इत्यादि का भाव प्रकट किया जाता है।

क्रियाविशेषण उपवाक्यों को सात भागों में विभाजित किया जाता हैं – (i) कालवाचक, (ii) स्थानवाचक, (iii) रीतिवाचक, (iv) परिमाणवाचक, (v) कार्य-कारणवाचक (vi) प्रयोजनवाचक (vii) शर्तवाचक (viii) विरोधवाचक।

(i) कालवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य :

कालवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य वे हैं जिनमें समय सम्बन्धी सूचना होती है। कालवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यों की कई स्थितियाँ सम्भव हैं। उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं –

(क) निश्चित काल :
   i. जब शिकारी फंदा खोलने को आए, तब तुम साँस रोककर मुर्दे के समान पड़े रहना।
   ii. ज्यों ही मैं दरवाजा खोलने के लिए उठा, त्यों ही आप प्रकट हो चुके थे।

(ख) काल की अवस्थिति :
   i. जब मैं हरिद्वार में था तब नित्य गंगा स्नान करने जाता था।

ii. जब उसे तेज भूख लगी, वह एक मिठाई की दूकान पर जा पहुँचा।

(ग) काल का संयोग :

i. जब-जब मुझे आर्थिक संकट हुआ, तब-तब आपने मेरी सहायता की।

ii. जब कभी कोई दीन-हीन उसके पास आता, तब वह उसे यथसम्भव मदद करता।

कालवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य 'जब', 'ज्यों ही', 'जब-जब', 'जब-तब', और 'जब कभी' सम्बन्धवाचक क्रियाविशेषणों से आरम्भ होते हैं तथा मुख्य उपवाक्य में उनके नित्यताबोधक शब्द 'तब', 'त्यों ही', 'तब-तब', 'तब तक' आदि प्रयुक्त किये जाते हैं।

(ii) स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य :

इस प्रकार के उपवाक्यों में स्थान सम्बन्धी सूचनाएँ होती हैं। स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित अवस्थाओं को सूचित करते हैं :-

(क) स्थिति का बोध :

i. जहाँ अभी हिमालय है, वहाँ किसी समय समुद्र था।

(ख) आरम्भ का बोध :

i. वे लोग भी वहीं से आए, जहाँ से आर्य लोग आए थे।

(ग) अन्त का बोध :

i. मैं तुम्हें वहाँ भेजने वाला हूँ, जहाँ राम ने रावण को भेजा था।

स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य में 'जहाँ', 'जहाँ से', 'जिधर' शब्द आते हैं और मुख्य उपवाक्य में क्रमशः उनके नित्यसम्बन्धी 'तहाँ', 'वहाँ से' और 'उधर' शब्द जुड़े रहते हैं। जहाँ का अर्थ कभी-कभी कालवाचक होता है। जैसे – लंदन की यात्रा में जहाँ पहले कई दिन लगते थे वहाँ अब चंद घंटे ही लगते हैं। वैसे 'जहाँ तक' का अर्थ ज्यादातर परिमाणवाचक सिद्ध होता है जैसे – जहाँ तक हो सके इन टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ को सीधी कर दी जाए।

(iii) रीतिवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य

रीतिवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यों से समता और विषमतामूलक भावों की अभिव्यक्ति होती है। जैसे –

i. दोनों वीर ऐसे टूट पड़े, जैसे हाथियों के झुंड पर सिंह।

ii. जैसे मनुष्य भोजन पर जीवित रहते हैं वैसे ही वृक्ष खाद-पानी से बढ़ते हैं।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि रीतिवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य 'जैसे', 'ज्यों', 'मानो' आदि शब्दों से आरम्भ होते हैं और मुख्य उपवाक्य में उनके नित्यसम्बन्धी 'वैसे', 'ऐसे', 'कैसे', 'त्यों' प्रयुक्त होते हैं।

(iv) परिमाणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य

परिमाणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य से अधिकता, तुल्यता न्यूनता अनुपात आदि प्रकार के अर्थ का बोध होता है। जैसे –

i. जैसे-जैसे आमदनी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे खर्च भी बढ़ता जाता है।
ii. जहाँ तक सम्भव हो, अपनी पढ़ाई अवश्य जारी रखें।

अतः परिमाणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य में 'ज्यों-ज्यों', 'जैसे-जैसे', 'जहाँ तक', 'जितना कि' आदि शब्द वाक्य के अन्तर्गत आते हैं और मुख्य उपवाक्य में उनके समानान्तर शब्द 'वैसे-वैसे', 'त्यों-त्यों', 'वहाँ तक', 'उतना', 'यहाँ तक' शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। उपर्युक्त उपवाक्यों में जो सम्बन्धवाचक क्रियाविशेषण और उनके नित्यसम्बन्धी शब्द आए हैं, उनमें कभी-कभी किसी एक प्रकार के शब्दों का लोप हो जाता है। जैसे – जब तक बीमारी का कारण समझ नहीं आते, डॉक्टर दवाई नहीं दे पाते। इस वाक्य में 'तब तक' का लोप है। कभी-कभी सम्बन्धवाचक क्रियाविशेषणों के बदले सम्बन्धवाचक विशेषण और संज्ञा से बने हुए वाक्यांश और नित्यसम्बन्धी शब्दों के बदले निश्चयवाचक विशेषण और संज्ञा से बने हुए वाक्यांश आते हैं। जैसे –

i. जिस जगह से वह आता है, उसी जगह लौट जाता है।
ii. जिस प्रकार तहखानों का पता नहीं चलता, उसी प्रकार मनुष्य के मन का रहस्य भी नहीं मालूम होता।

ऐसी अवस्थाओं में आश्रित उपवाक्यों को विशेषण उपवाक्य मानना उचित है, क्योंकि यद्यपि ये वाक्यांश क्रियाविशेषणों के पर्याय हैं, तथापि इसमें संज्ञा की प्रधानता रहती है।

(v) कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य

कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यों से किसी कार्य के पीछे निहित कारण, संकेत, विरोध आदि की अभिव्यक्त होती है। इन्हें निम्नलिखित अवस्थाओं में समझा जा सकता है –

(क) हेतु या कारण :
   i. हम उन्हें पर्याप्त सुख देंगे, क्योंकि उन्होंने हमारे लिए बहुत कष्ट झेला है।

(ख) संकेत :
   i. यदि उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई कुछ कहता है, तो वे उस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं।

(ग) विरोध :
   i. यद्यपि इस समय मेरी चेतनाशक्ति शून्य हो रही है, तो भी वह दृश्य मेरी आँखों के सामने घूम रहा है।

ii. सब काम तुम अकेले नहीं कर सकते, चाहे तुम कितने ही बुद्धिमान क्यों न हो।

(घ) निमित्त :

i. मैंने तुमसे इस बात की चर्चा इसलिए की है ताकि तुम्हारी शंकाएँ दूर हो सकें।

ii. ऋषियों की तपस्या में कोई विघ्न न डाले, इसलिए सैनिकों को यहीं रखिए।

(ङ) परिणाम :

i. इन नदियों में जल-स्तर इतना बढ़ जाता है कि कई गाँव डूब जाते हैं।

ii. मुझे मरना नहीं जो मैं उसके पक्ष में दलील दूँ।

कार्य-कारणवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य व्यधिकरण समुच्चय-बोधकों से आरम्भ होते है जो बहुधा जोड़े से आते हैं।

(vi) प्रयोजनवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य

इस प्रकार के वाक्यों में किसी कार्य के प्रयोजन सम्बन्धी अर्थ निहित होते हैं। जैसे – 'तुम घर पर ही आराम करो ताकि बीमारी जल्दी ठीक हो सके।'; 'गोदाम की बढ़िया से सफाई करवा दो ताकि सामान सुरक्षित रखा जा सके।'

(vii) शर्तवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य

इस प्रकार के वाक्यों में कुछ आवश्यक शर्तों का हवाला दिया जाता है। जैसे – 'यदि तुम शीघ्र पहुँचने का वचन देते हो तो मैं कॉलेज में तुम्हारी अवश्य प्रतीक्षा करूँगा।'; 'यदि आप मेरा सम्मान करते हैं तो आज यहीं रुक जाइए।'

(viii) विरोधवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य

इस प्रकार के क्रियाविशेषण उपवाक्यों में विरोधी भाव निहित होते हैं। जैसे – 'चाहे तुम जितना प्रयास कर लो रहोगे वहीं के वहीं।'; 'यद्यपि वह बहुत कमजोर विद्यार्थी है फिर भी सभी शिक्षक सदैव उसकी प्रशंसा करते हैं।'

आश्रित उपवाक्यों के संज्ञा-उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य और क्रियाविशेषण उपवाक्य ये तीन ही भेद होते हैं। उनके इससे अधिक भेद नहीं हो सकते, क्योंकि संज्ञा, विशेषण और क्रियाविशेषण के स्थान पर दूसरे उपवाक्य तो आ सकते हैं परन्तु क्रिया का आशय दूसरे उपवाक्य से प्रकट नहीं किया जा सकता। इनको छोड़कर वाक्य में कोई दूसरे ऐसे अवयव या घटक नहीं होते, जिनके स्थान में उपवाक्यों की योजना की जा सके।

4.4.5 उपवाक्य और अन्य वाक्यांश

वाक्य और वाक्यांश में अर्थ और रूप दोनों का अन्तर होता है। वाक्य में एक पूर्ण विचार रहता है परन्तु वाक्यांश में केवल एक या अधिक भावनाएँ रहती हैं। रूप के अनुसार दोनों में यह अन्तर है कि वाक्य में एक क्रिया रहती है परन्तु वाक्यांश में बहुधा कृदन्त वा सम्बन्धसूचक अव्यय रहता है जैसे – काम करना, सवेरे जल्दी उठना, नदी के किनारे, दूर से आया हुआ। वाक्यों के अन्तर्गत वाक्यांशों को इस प्रकार नियोजित किया जा सकता हैं –

(क) संज्ञा या संज्ञा वाक्यांश के रूप में:

i. वह घर गया।
ii. दिन भर चले अढ़ाई कोस।
iii. एक समय बड़ा अकाल पड़ा।
iv. उसने कई वर्ष राज्य किया।

(ख) क्रियाविशेषण के समान उपयोग में आने वाला विशेषण :

i. वह अच्छा लिखता है।
ii. स्त्री मधुर गाती है।
iii. मैं स्वस्थ बैठा हूँ।

(ग) विशेष्य के परे आने वाला विशेषण :

i. गोपियाँ उदास बैठी थीं।
ii. मैं चुपचाप चला गया।
iii. कुत्ता भौंकता हुआ भागा।
iv. तुम मारे-मारे फिरोगे।

(घ) पूर्ण तथा अपूर्ण क्रियाबोधक कृदन्त :

i. कुत्ता पूँछ हिलाते हुए आया।
ii. भिखारिन बकते-बकते चली गई।
iii. लड़का बैठे-बैठे उकता गया।

(ङ) पूर्वकालिक कृदन्त :

i. वह उठकर भागा।
ii. तुम दौड़ते हुए चलते हो।
iii. वे नहाकर लौट आए।

(च) तत्कालबोधक कृदन्त :

i. उसने आते ही उपद्रव मचाया।
ii. हिरनी गिरते ही मर गई।

iii. वह लेटते ही सो गया।

(छ) स्वतन्त्र वाक्यांश :

i. इससे थकावट दूर होकर अच्छी नींद आती है।
ii. तुम इतनी रात गए क्यों आए।
iii. सूरज निकलते ही वे लोग भागे ?
iv. दिन रहते यह काम हो जाएगा।
v. दो बजे गाड़ी आती है।
vi. मुझे सारी रात तलफते बीती।
vii. उनको गए एक साल हो गया।
viii. लाश गड्ढा खोदकर गाड़ दी गई।

(ज) क्रियाविशेषण वा क्रियाविशेषण वाक्यांश :

i. गाड़ी जल्दी चलती है।
ii. राजा आज आये।
iii. वे मुझसे प्रेमपूर्वक बोले।
iv. चोर कहीं न कहीं छिपा है।
v. पुस्तक हाथों-हाथ बिक गई।
vi. उसने जैसे-तैसे काम पूरा किया।

(झ) सम्बन्धसूचक शब्द :

i. चिड़िया धोती समेत उड़ गई।
ii. वह भूख के मारे मर गया।
iii. मैं उनके यहाँ रहता हूँ।
iv. अँगरेजों ने कर्मनाशा तक उसका पीछा किया।
v. मरने के सिवा और क्या होगा ?
vi. यह काम तुम्हारी सहायता के बिना नहीं हो सकता।

(ञ) अन्य कारक :

i. मैंने चाकू से फल काटा।
ii. वह नहाने गया।
iii. वृक्ष से फल गिरा।
iv. मैं अपने किए पर पछताता हूँ।

4.4.6 पाठ-सार

यद्यपि भाषा का गहरा सम्बन्ध मनुष्य के मनोविज्ञान एवं सामाजिक सरोकारों से है किन्तु वाक्य और उपवाक्य के विश्लेषण के क्रम में वाक्य को अर्थपरक एवं संरचनापरक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत पाठ में इन अध्ययन पद्धतियों के अनुसार सबसे पहले उपवाक्य की परिभाषा प्रस्तुत की गई है, फिर उन परिभाषाओं के अनुसार उपवाक्य के स्वरूप पर विचार किया गया है। उपवाक्य की पहचान को स्पष्ट करने के क्रम में उन व्याकरणिक अवयवों या घटकों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है जिनका उपयोग अनिवार्य रूप से किसी उपवाक्य के निर्माण के लिए किया जाता है। साथ ही सरल, मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों में उपवाक्य की स्थिति पर भी विचार किया गया है। पाठ में उपवाक्य की प्रकृति और पहचान के साथ-साथ उपवाक्यों के प्रकारों का सोदाहरण विवेचन किया गया है। उपवाक्य के अन्य व्याकरणिक वाक्यांशों से भिन्नता को भी सोदाहरण स्पष्ट किया गया है।

4.4.7 बोधात्मक प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. उपवाक्य को स्पष्ट करते हुए वाक्य और उपवाक्य के सम्बन्धों का विश्लेषण कीजिए।
2. उपवाक्य के भेदों को संक्षेप में उदाहरणसहित लिखिए।
3. स्वतन्त्र और आश्रित उपवाक्यों में अन्तर बताते हुए आश्रित उपवाक्यों के भेदों का सोदाहरण परिचय दीजिए।

टिप्पणी लिखिए –

1. संज्ञा-उपवाक्य
2. विशेषण उपवाक्य
3. क्रियाविशेषण उपवाक्य
4. वाक्य और वाक्यांश
5. उपवाक्य का स्वरूप
6. मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य

4.4.8 कठिन शब्दावली

विशेष्य : जिस विकारी शब्द से संज्ञा और सर्वनाम की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेषण कहा जाता है। पुनः विशेषण के द्वारा जिस संज्ञा या सर्वनाम की व्याप्ति मर्यादित होती है उसे विशेष्य कहते हैं। अन्य शब्दों में जिस संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतायी जाती है

वह विशेष्य है। उदाहरण के लिए – 'सफ़ेद भालू', 'बड़ा मकान' वाक्यांशों में 'भालू' और 'मकान' संज्ञा शब्द विशेष्य के रूप में आए हैं जबकि 'सफ़ेद' और 'बड़ा' विशेषण हैं।

कृदन्त : धातु के पश्चात् लगकर व्याकरणिक कोटि में परिवर्तन करने वाले प्रत्यय व्युत्पादक प्रत्यय कहलाते हैं, इन्हें कृदन्त भी कहा जाता है। कृदन्त दो शब्दों से मिलकर बनाए जाते हैं – कृत + अन्त अर्थात् कृदन्त ऐसे शब्द हैं, जिनके अन्त में कृत प्रत्यय हो। कृत प्रत्यय उन प्रत्ययों को कहा जाता है, जो धातु में जोड़े जाते हैं। जैसे – चल (धातु) + त + आ = चलता, फिर चल के साथ- त + ई = चलती। इसी प्रकार – चल + आ = चला, पढ़ + ई = पढ़ी, जा + कर = जाकर, मिल + आप = मिलाप, बेल + ना = बेलना आदि।

कार्य-कारण : कार्य-कारण का सिद्धान्त तर्कशास्त्र और विज्ञान की दृष्टि से मान्यता प्राप्त है। संसार की कोई भी घटना अकारण नहीं है। यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई कारण निहित होता है। उदाहरण के लिए – 'वह डर के मारे काँपने लगा।'; 'कड़ी धूप के कारण वह थोड़ी देर पेड़ के नीचे खड़ा हो गया।' पहले वाक्य में 'काँपना' कार्य है और 'डर' कारण। इस वाक्य में इनके सम्बन्धों को भलिभाँति दर्शाया गया है। इसी प्रकार दूसरे वाक्य में 'पेड़ के नीचे खड़ा होना' कार्य है और 'कड़ी धूप' कारण। इस वाक्य में भी कार्य के घटित होने के पीछे मौजूद कारण को स्पष्ट किया गया है।

निमित्त : कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि दृश्य और अदृश्य जगत् में घटित होने वाली प्रत्येक घटना किसी न किसी कारण से अभिप्रेरित होती हैं। बहुत चर्चित उदाहरण है कि कुम्हार एवं मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बन सकता, जुलाहे एवं धागे के बिना कपड़ा नहीं बनता। घड़ा बनाने के लिए कुम्हार और मिट्टी के साथ-साथ दण्ड और चक्र का भी होना भी अनिवार्य है। इस निर्माण में कुम्हार निमित्त कारण है, मिट्टी उपादान कारण और दण्ड, चक्र आदि साधारण कारण हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में मिट्टी और धागे उपादान कारण हैं, जिन्हें अनिवार्य कारण माना जाता है, जबकि कुम्हार और जुलाहे की रचना-शक्ति की क्षमता, उत्पन्न करने की मेधा-शक्ति, निर्माण अथवा बनाने की कला में निपुण होना, नवीन उद्भावनाओं में समर्थ होना निमित्त कारण है।

योजक : जो दो शब्दों या वाक्यों अथवा वाक्यांशों को परस्पर जोड़ते है, उन्हें योजक या समुच्चयबोधक कहते हैं। वाक्यों में इनका उपयोग संयोजक, विभाजक एवं

विकल्पसूचक के रूप में भी किया जाता है। उदाहरण के लिए 'और', 'तथा', 'एवं' का उपयोग वाक्य में संयोजक के रूप में किया जाता है। जैसे – 'राम, लक्ष्मण और सीता वन में गए।'; 'रामसिंह तथा श्यामसिंह दो पक्के मित्र थे।'; 'महापुरुष एवं गुरुजन सभी पूजनीयहैं।' जो शब्दभेद बताते हुए भी वाक्यों को मिलाते है, वे विभाजक कहलाते है। 'परन्तु', 'मगर', 'तो' ऐसे ही योजक हैं। जैसे – 'राम तो आया परन्तु श्याम नहीं आया।'; 'सुरेश ने बहुत प्रयत्न किया मगर सफल न हो सका।'; 'तुम चलोगे तो में चलूँगा।' इनसे भिन्न जो शब्द विकल्प का बोध कराते है, वे विकल्पसूचक कहलाते है। 'या', 'अथवा' का प्रयोग विकल्प के रूप में किया जाता है। जैसे – 'शिकारी शेर या हिरण का शिकार करेगा।'; 'तुम जाओगे अथवा कैलाश जाएगा।'

4.4.9 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

01. श्रीवास्तव, रवीन्द्रनाथ, (1997), भाषाविज्ञान : सैद्धान्तिक चिन्तन, दिल्ली-51, राधाकृष्ण प्रकाशन, 81-7119-339-0.
02. गुरु, कामताप्रसाद, (2009), हिंदी व्याकरण, दिल्ली-2, प्रकाशन संस्थान, 81-7714-329-8.
03. सक्सेना, बाबूराम, (1995), सामान्य भाषाविज्ञान, प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन.
04. तिवारी, भोलानाथ, (1993), भाषाविज्ञान, नई दिल्ली, किताब महल.
05. तिवारी, भोलानाथ, (19 99), हिंदी भाषा की संरचना, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन.
06. शर्मा, डॉ॰ राजमणि, (2009), आधुनिक भाषा-विज्ञान, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-7055-483-7.
07. शर्मा, डॉ॰ हरीश, (1997), भाषाविज्ञान की रूपरेखा, गाजियाबाद, अमित प्रकाशन, 81-85309-15-9.
08. सिंह, डॉ॰ कर्ण, (1992), भाषाविज्ञान, मेरठ, शिक्षा साहित्य प्रकाशक.
09. त्रिपाठी, आचार्य रामदेव, (1990), हिंदी भाषाविज्ञान, राजेन्द्र नगर-पटना, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी.
10. शर्मा, डॉ॰ रत्नचन्द्र, (1977), भाषाविज्ञान और मानक हिंदी, दिल्ली-6, सूर्य प्रकाशन.
11. MHD-7, पाठ-सामग्री, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदानगढ़ी, दिल्ली
12. एम.ए. हिंदी, पूर्वार्द्ध, प्रश्नपत्र-8, भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा, पाठ सामग्री, पत्राचार पाठ्यक्रम एवं अनुवर्ती शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-7

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. https://hi.wikibooks.org/wiki/हिन्दी.../वाक्य_पृथक्करण
2. http://hindigrammar.in/clause.html
3. https://sol.du.ac.in/mod/book/view.php?id=1370&chapterid=1110

खण्ड – 4 : वाक्य विज्ञान

इकाई – 5 : पदिम

इकाई की रूपरेखा

4.5.0 उद्देश्य
4.5.1 प्रस्तावना
4.5.2 पद की संकल्पना
4.5.3 पदिम (Taxeme)
4.5.4 वाक्य-विभाजन
- 4.5.4.1 अर्थमूलक भेद
- 4.5.4.2 क्रियामूलक भेद
- 4.5.4.3 प्रचलन-मूलक
- 4.5.4.4 प्रश्न वाक्य
- 4.5.4.5 मुहावरे
- 4.5.4.6 विज्ञापनों, समाचार पत्रादि के शीर्षकों में
- 4.5.4.7 आतंक, भय, विस्मिय आदि के सूचक वाक्य
- 4.5.4.8 शैलीमूलक भेद

4.5.5 पदिम में वाक्य विश्लेषण की चार पद्धति
- 4.5.5.1 पदक्रम (Morpheme Order)
  - 4.5.5.1.1 वाक्य में स्वराघात
  - 4.5.5.1.2 वाक्य में पद-लोप
  - 4.5.5.1.3 वाक्य और पदक्रम-विषयक तथ्य
- 4.5.5.2 स्वर परिवर्तन (Modulation)
- 4.5.5.3 ध्वनि परिवर्तन (Phonetic Modification)
- 4.5.5.4 चयन (Selection)

4.5.6 पदिम-विज्ञान
- 4.5.6.1.पदिम या रूपिम (रूप ग्राम, Morpheme)
  - 4.5.6.1.1.पदिम का लक्षण
- 4.5.6.2. अंग पदिम, प्रत्यय पदिम
- 4.5.6.3. सम्बन्ध तत्त्व के भेद

4.5.7 पाठ-सार
4.5.8 अभ्यास-प्रश्न

4.5.0. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आपको स्पष्ट होगा कि –

i. पद रूपविज्ञान और वाक्यविज्ञान का सेतु है।
ii. पद वाक्य में शब्दों के प्रयोग की स्थिति को स्पष्ट करता है।
iii. पदिम (Taxeme) से क्या आशय है।
iv. पदिम के सन्दर्भ में पदक्रम, स्वर-परिवर्तन, ध्वनि-परिवर्तन तथा चयन आदि का क्या तात्पर्य है।

4.5.1. प्रस्तावना

पिछले पाठों में आपने वाक्यविज्ञान का स्वरूप, पद और वाक्य, वाक्य की परिभाषा, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व, वाक्य और पदक्रम, वाक्यों के प्रकार, उपवाक्य और उसके प्रकार आदि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत पाठ में आप वाक्य के लघुतम अवयव 'पदिम' का अध्ययन करेंगे। वाक्य का लघुतम अवयव पद होता है। वाक्य के अंग के रूप में 'पद' का अध्ययन 'पदिम' कहलाता है। वाक्य में पद किस प्रकार कार्य करते हैं, वे किन अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं, उनके स्थान-परिवर्तन से क्या अर्थभेद होता है ? आदि का विवेचन 'पदिम' का विषय है। पदिम के अवयव को 'संपद' (Allotax) कहते हैं।

4.5.2. पद की संकल्पना

` पद की संकल्पना वाक्य के अन्तर्गत परिलक्षित होती है। एक वाक्य द्रष्टव्य है –

(क) इस बच्चे ने बिल्ली को मारा।

इस वाक्य में कौन-कौन से शब्द हैं ? 'इस' मूलतः शब्द नहीं है, 'यह' का तिर्यक रूप है। 'बच्चे' भी 'बच्चा' का तिर्यक रूप है। 'ने' एकारान्त में बदल गया है। 'मारा' क्रिया 'मार' शब्द का आकारान्त हो गया है। इस वाक्य में आए हुए शब्दों के मूल रूप या कोशीय रूप इस प्रकार है –

(ख) यह बच्चा ने बिल्ली को मार।

ये मूल शब्द साथ प्रयुक्त होने पर भी कोई सार्थक अभिव्यक्ति नहीं कर पा रहे हैं। सार्थकता वाक्य का गुण है। ये मूल शब्द वाक्य की सृष्टि तभी कर सकेंगे जब वे पहले दिये गए वाक्य (क) के अनुसार वाक्यगत सम्बन्ध स्पष्ट करें। केवल शब्द स्तर पर वाक्य की विशेषताएँ प्रस्तुत नहीं होती। यथा – संज्ञा शब्द वाक्य में कर्त्ता या कर्म का प्रकार्य वहन कर सकता है। परसर्गीय शब्द 'ने' तथा 'को' क्रमश: शब्द के व्याकरणिक अर्थ को प्रकट करते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वाक्य के घटक शब्द नहीं है (जैसे ऊपर के वाक्य (ख) में है) बल्कि पद

हैं (जैसे कि उपर्युक्त वाक्य (क) में है) एक वाक्य में शब्द जिस रूप में आते हैं, वे पद कहलाते हैं। इस प्रकार पद रूपविज्ञान और वाक्यविज्ञान का सेतु है। इस तथ्य को इस प्रकार समझ सकते हैं –

शब्द (मेरा, लड़का, ने) —> रूप (मेरे लड़के ने) —> पदबंध (दोनों बेटे) —> उपवाक्य (जो पैसे मैंने उसे दिए थे) —> वाक्य (दोनों बेटों ने एक मकान खरीदा जिसमें पाँच कमरे हैं)

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि पद की संकल्पना में रूपविज्ञान तथा वाक्यविज्ञान दोनों का अध्ययन समाविष्ट है। वाक्यविज्ञान का सबसे छोटा खण्ड पदबंध कहलाता है क्योंकि यह पदों से निर्मित होता है। अस्तु वाक्य में आने वाले पदों की, वाक्य-संरचना के सन्दर्भ में, विशेषताएँ बताने वाले कार्य को पद परिचय कहते हैं।

पद परिचय : उपर्युक्त वाक्य (क) का पद परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है –

इस : निर्देशवाचक सर्वनाम 'यह' का तिर्यक रूप, संज्ञा, पदबंध में संज्ञा का विशेषणवतप्रयोग, एकवचन।

बच्चे : आकारान्त पुलिंग एकवचन संज्ञा शब्द का विकारी रूप, कर्त्ता या कर्म पदबंध में आ सकता है।

ने : कर्त्ता पदबंध सूचित करने वाला परसर्ग।

बिल्ली : ईकारान्त, स्त्रीलिंग, एकवचन, संज्ञा।

को : परसर्ग, कर्म पदबंध को द्योतक।

मारा : इस वाक्य में कर्म + को के कारण अविकारी, सामान्य भूतकाल, पूर्ण पक्ष।

इस प्रकार पद परिचय वाक्य में पदों के विविध प्रकार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वाक्य में उनका स्थान तथा प्रकार्य प्रकट होता है। इसीलिए पद की संकल्पना को रूपविज्ञान तथा वाक्यविज्ञान का सेतु कहा जाता है।

4.5.3. पदिम (Taxeme)

पदिम (Taxeme) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम प्रो॰ ब्लूमफील्ड ने किया था। अब इसका प्रचलन समाप्त हो रहा है। Taxeme शब्द Syntax के Tax शब्द को लेकर eme (ईम) प्रत्यय लगाकर बना है। 'टैक्सीम' शब्द के लिए हिन्दी में 'पदिम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'पदिम' के लिए अंग्रेजी में ग्रीक शब्द Syntagma (सीनटेग्मा) भी प्रयुक्त होता है। इसका तात्पर्य है, 'एक साथ रखे हुए पद'।

पदिम क्या है ? वाक्य के लघुतम अवयव को 'पदिम' कहते हैं। भाषा के अन्तर्गत वाक्य का लघुतम अवयव 'पद' माना जाता है। 'पदिम' अपने आप में वाक्य के अंग के रूप में एक प्रकार से 'पद' का ही अध्ययन

है। पद का कार्य वाक्य में किस प्रकार होता है, उनके द्वारा किन अर्थों की अभिव्यक्ति होती है, पद के स्थान परिवर्तन से किस प्रकार से अर्थ भेद घटित होता है ? आदि बातों का विवेचन, विश्लेषण तथा अध्ययन 'पदिम' के अन्तर्गत किया जाता है। 'पदिम' के अवयव को 'संपद' (Allotax) कहते हैं।

4.5.4. वाक्य-विभाजन

रचना के आधार पर वाक्य के मुख्यतः तीन भेद किये गए हैं – सामान्य वाक्य, मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य। वास्तव में संसार की सम्पूर्ण भाषाओं में वाक्य-रचना पद्धति एक प्रकार की नहीं है। उनके वाक्यों का विभाजन भी एक प्रकार का नहीं हो सकता। प्रत्येक भाषा में कर्त्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण आदि का स्थान भी भिन्न-भिन्न है। संस्कृत तथा हिन्दी में सामान्यतया क्रम है – 1. कर्त्ता, 2. कर्म, 3. क्रिया। कर्त्ता के विशेषण कर्त्ता से पहले और क्रियाविशेषण क्रिया से पहले आते हैं, जैसे – मेहनती विद्यार्थी अपनी पाठ्यपुस्तक को रोज नियम से पढ़ते हैं।

अंग्रेजी में कर्त्ता के बाद क्रिया और उसके बाद कर्म प्रयुक्त होता है, यथा – Good students always read their course book daily.

संस्कृत में क्रम बदलकर भी बोलते या लिखते हैं। जैसे – बालकः पुस्तकं पठति। पुस्तकं पठति बालकः। बालकः पठति पुस्तकं।

हिन्दी में भी अब क्रमभेद मिलता है। जैसे – बोल रहे थे तुम। उठा लो तुम यह बोझ। पुस्तक पढ़ ली न तुमने ? आ गए मेहमान। न तो तुम आए, न वो आया।

पद-क्रम की इन भिन्नताओं के बावजूद सामान्य रूप से भाषाओं के वाक्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है –

(i)	उद्देश्य (Subject)	:	जिसके विषय में कुछ कहा जाता है। जैसे – राम स्कूल जाता है।
(ii)	विधेय (Predicate)	:	जो कुछ कहा जाता है। जैसे – खाता है, सोता है, पढ़ता है आदि।

अंग्रेजी के भाषाविद् इसे 'Actor = Action Construction' (कर्त्ता-क्रिया वाली रचना) कहते हैं। कर्त्ता के स्थान पर आने वाले शब्द को संज्ञा-स्थानीय शब्द (Nominative Substantive Expressions) कहते हैं। क्रिया के स्थान पर आने वाले शब्द को क्रिया-स्थानीय शब्द (Finite Verb Expression) कहते हैं। क्रिया शब्द क्रिया का कार्य सम्पादित करते हैं किन्तु संज्ञा शब्द 'विधेय' के पूरक के रूप में भी प्रयुक्त हो सकते हैं। यथा, वे हैं सन्त। मैं हूँ सोहन।

उद्देश्य को दो भागों में बाँटा जाता है – (1) कर्त्ता, (2) कर्त्ता का विस्तार। जैसे – मेरा बड़ा बेटा मोहन।

विधेय के अनेक भाग हैं – कर्त्ता, कर्म, करण आदि कारकों का विस्तार, क्रिया, क्रिया-विशेषण, पूरक, पूर्वकालिक क्रिया आदि। जैसे – राम ने रावण को बाण से मारा।

पूर्वकालिक क्रिया के उदाहरण वाक्य :

मैं अभी सोकर उठा हूँ।

राकेश पुस्तक पढ़ कर जाएगा।

रचना के आधार पर वाक्य के तीन भेद किये जाते हैं –

(क) सामान्य वाक्य (Simple Sentence) : इसमें एक उद्देश्य होता है और एक विधेय अर्थात् एक संज्ञा और एक क्रिया होती है। जैसे – मोहन खाना खाता है।

(ख) मिश्र वाक्य (Complex Sentence) : इसके अन्तर्गत एक मुख्य उपवाक्य होता है तथा उसके आश्रित एक या एकाधिक उपवाक्यि होते हैं। जैसे – जिसके पास धन होता है, उसकी सभी इज्जत करते हैं। जिसके पास ज्ञान है, उसका सर्वत्र सम्मान होता है।

(ग) संयुक्त वाक्य (Compound Sentence) : इसमें एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं। इनके साथ आश्रित उपवाक्य एक या अनेक होते हैं अथवा नहीं भी होते। जैसे – जब मैं उसके घर पहुँचा तो वह बाजार गया था।

4.5.4.1. अर्थमूलक भेद

अर्थ या भाव (Mood) की दृष्टि से वाक्य के प्रमुख आठ भेद किये जाते हैं –

(1) विधि-वाक्य	–	मोहन स्कूल जाता है।
(2) निषेध-वाक्य	–	मोहन स्कूल नहीं जाता है।
(3) प्रश्न-वाक्य	–	क्या मोहन स्कूल जाता है ?
(4) अनुज्ञा-वाक्य	–	तुम जाओ।
(5) सन्देह-वाक्य	–	मोहन स्कूल जाता होगा।
(6) इच्छार्थक वाक्य	–	ईश्वर तुम्हें सद्‌बुद्धि दे।
(7) संकेतार्थक वाक्य	–	यदि मोहन स्कूल जाता तो अवश्य पास होता।
(8) विस्मयार्थक वाक्य	–	अरे ! तुम पास हो गए !

सुर आदि के आधार पर अन्य भेद भी किये जा सकते हैं।

4.5.4.2. क्रियामूलक भेद

वाक्य में क्रिया के आधार पर दो भेद हैं – क्रियायुक्त वाक्य और क्रियाहीन वाक्य।

(क) क्रियायुक्त वाक्य : सभी भाषाओं में सामान्यतः एक वाक्य में एक क्रिया होती है। यह विधेय के रूप में होती है। अधिकतर वाक्य इसी कोटि के होते हैं। यथा – सः पुस्तकं पठति। (वह पुस्तक पढ़ता है।)

वाच्य (Voice) के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं – (i) कर्तृवाच्य (ii) कर्मवाच्य और (iii) भाववाच्य।

(i) कर्तृवाच्य : इसमें कर्त्ता प्रमुख होता है। कर्त्ता में प्रथमा होती है। जैसे रामः पुस्तकं पठति। (राम पुस्तक पढ़ता है।)

(ii) कर्मवाच्य : इसमें कर्म मुख्य होता है। अतः कर्म में प्रथमा होती है और कर्त्ता में तृतीया। जैसे – मया पुस्तकं पठ्यते। (मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है।)

(iii) भाववाच्य : इसमें क्रिया मुख्य होती है। कर्म नहीं होता। कर्त्ता में तृतीया होती है। क्रिया में सदा प्रथम पुरुष एकवचन होता है। जैसे – मया हस्यते। (मेरे द्वारा हँसा जाता है।) मया हसितम्। (मैं हँसा।)

(ख) क्रियाहीन वाक्य : कई भाषाओं में क्रियाहीन वाक्य प्रयुक्त होते हैं। वहाँ क्रिया पद गुप्त रहता है।

4.5.4.3. प्रचलन-मूलक

प्रचलन के आधार पर संस्कृत, रूसी, बांग्ला आदि में सहायक क्रिया के बिना भी वाक्यों का प्रयोग होता है। क्रिया अन्तर्निहित (Understood) मानी जाती है। हिन्दी, अंग्रेजी में सामान्य रूप से सहायक क्रिया का होना अनिवार्य है। जैसे – तुम्हें एक साथ काम करना चाहिए। You Should work Together.

4.5.4.4. प्रश्न वाक्य

प्रश्न वाक्यों में प्रश्न और उत्तर दोनों स्थलों पर या केवल उत्तर-वाक्य में क्रिया नहीं होती। जैसे –

कहाँ से ?

प्रयाग से।

यहाँ पर पूरा प्रश्न वाक्य होगा – ‘तुम कहाँ से आ रहे हो ? उत्तर – मैं प्रयाग से आ रहा हूँ। प्रयत्न लाघव के कारण क्रियाहीन वाक्यों का प्रयोग होता है।

4.5.4.5. मुहावरे

लोकोक्तियों या मुहावरे में क्रियाहीन वाक्य प्रयुक्त होते हैं। जैसे – यथा राजा तथा प्रजा, गुण पूजा के स्थान हैं, बुद्धिहीन अन्धा है।

4.5.4.6. विज्ञापनों, समाचार पत्रादि के शीर्षकों में

भाषा में कुछ चामत्कारिक प्रयोग दिखाई देते हैं, जैसे – 'बूढ़े से जवान', 'नक्कालों से सावधान, देश में दुर्भिक्ष', 'युवती पर हमला', 'हिन्दुओ ! सावधान', 'इस्लाम खतरे में' आदि।

4.5.4.7. आतंक, भय, विस्मिय आदि के सूचक वाक्य

आग !, चोर-चोर !, हाय !, दुर्भाग्य !, बाढ़ !, भूकम्प !

4.5.4.8. शैलीमूलक भेद

शैली के आधार पर वाक्यों के तीन भेद कर दिए जाते हैं। यथा – (i) शिथिल वाक्य (ii) समीकृत (iii) आवर्तक।

(i) शिथिल वाक्य : इसमें अलंकृत या मुहावरेदार वाक्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। वक्ता या लेखक मनमाने ढंग से बात कहता है। जैसे – "एक थी रानी कुन्ती, उसके पाँच पुत्तर, एक का नाम युधिष्ठिर, एक का नाम भीम, एक का नाम, एक का नाम कुछ और, एक का नाम कुछ और, एक का नाम भूल गया।" यह कथावाचकों की शैली होती है।

(ii) समीकृत वाक्य : इसमें संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जैसे – 'जिसके पास पैसा, उसी के मित्र', 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', 'न घर का न घाट का' आदि। समीकृत वाक्य संतुलन आदि गुणों के कारण लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाते हैं।

(iii) आवर्तक वाक्य : इसमें कथनीय वस्तु अन्त में दी जाती है। श्रोता की जिज्ञासा अन्तिम वाक्य सुनने पर ही पूर्ण हो जाती है। 'यदि', 'अगर' लगाकर वाक्यों को लम्बा किया जाता है। जैसे – "यदि धन चाहिए, यदि सफलता चाहिए, यदि शान्ति चाहिए, तो अध्ययनरत होने, स्वाध्याय करने में एकाग्र हो।"

4.5.5. पदिम में वाक्य विश्लेषण की चार पद्धति

'पदिम' में सामान्य, मिश्र और संयुक्त वाक्यों का चार प्रकार से अध्ययन किया जाता है –

4.5.5.1. पदक्रम (Morpheme Order)

पदों को किस क्रम से रखना चाहिए तथा सम्बन्ध तत्त्व का क्या क्रम होगा। इस विषय में विचार किया जाता है। विश्व की अधिकांश भाषाओं में वाक्य में पदक्रम निश्चित होता है। उस भाषा में उसी क्रम से वाक्य प्रयुक्त होता है। पदक्रम की दृष्टि से विश्व की भाषाओं को दो वर्गों में बाँट सकते हैं –

(क) परिवर्तनीय पदक्रम : जिन भाषाओं में वक्ता की इच्छा के अनुसार पद-क्रम में परिवर्तन किया जा सकता है, वे परिवर्तनीय पदक्रम वाली भाषाएँ कहलाती हैं। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अरबी, फारसी आदि ऐसी ही भाषाएँ हैं। इनमें शब्दों में विभक्तियाँ लगी होती हैं। अतः स्थान परिवर्तन के बाद भी कर्त्ता आदि का भेद ज्ञात होने से अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता। यथा – 'रामः रावणं हन्ति' अथवा 'रावणं हन्ति रामः।' दोनों स्थितियों में अर्थ एक ही है – 'राम रावण को मारता है।'

(ख) अपरिवर्तनीय पदक्रम : जिन भाषाओं में पदक्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता वे अपरिवर्तनीय पदक्रम वाली भाषाएँ कहलाती हैं। इनमें पदक्रम के परिवर्तन से अर्थ में अन्तर आ जाता है। जैसे, चीनी भाषा में पदक्रम है – कर्त्ता, क्रिया, कर्म। हिन्दी, अंग्रेजी आदि में भी सामान्यतया पदक्रम अपरिवर्तनीय है।

4.5.5.1.1.वाक्य में स्वराघात

वाक्य में संगीतात्मक और बलात्मक दोनों प्रकार का स्वराघात प्राप्त होता है। संगीतात्मक स्वराघात से आश्चर्य, शंका, निराशा आदि का भाव अभिव्यक्त होता है। यथा – 'वे आ गए' के अनेक अर्थ हो सकते हैं। संगीतात्मक स्वराघात वाक्य-सुर के रूप में होता है। किसी पद विशेष पर बल देने से बलात्मक स्वराघात (Stress accent) होता है। यथा – 'वह अभी जाएगा' में वह, अभी और जाएगा में से जिस पर बल दिया जाएगा, वह अर्थ मुख्य होगा।

4.5.5.1.2.वाक्य में पद-लोप

प्रयोग और व्यवहार के आधार पर वाक्य में संक्षेप के लिए पदों का लोप हो जाता है। ऐसे स्थानों पर क्रिया का लोप रहता है। उसका अध्याहार (स्मरण) करके पूर्ण अर्थ का ज्ञान होता है। यथा – कुतः ? (कहाँ से ? अर्थात् कहाँ से आ रहे हो ?) प्रयागात् (प्रयाग से। अर्थात् प्रयाग से आ रहा हूँ।)

इस प्रकार कर्त्ता, क्रिया आदि से हीन वाक्यों में यथायोग्य कर्त्ता, क्रिया आदि का अध्याहार कर लिया जाता है।

4.5.5.1.3.वाक्य और पदक्रम-विषयक तथ्य

वाक्य तथा पदक्रम के सम्बन्ध में विचार करते समय निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यानाकर्षण आवश्यक है –

(क) कोई भाषा यदि दीर्घकाल से चली आ रही है तो दो विभिन्न कालों में उसकी वाक्य-रचना भिन्न हो सकती है।

(ख) वाक्य-रचना पर अन्य भाषाओं का भी प्रभाव पड़ता है। आधुनिक बोल-चाल की हिन्दी पर अंग्रेजी वाक्य-रचना का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा – 'उसने कहा कि मैं कानपुर नहीं जाऊँगा' के स्थान पर 'उसने कहा कि वह कानपुर जाएगा।'

(ग) शिक्षा के प्रभाव से शिक्षितों के द्वारा प्रयुक्त भाषा में कुछ कृत्रिमता रहती है। अतः शिक्षितों की अपेक्षा अशिक्षितों की भाषा में प्रयुक्त पदक्रम अधिक मान्य एवं विश्वसनीय होता है।

(घ) पदक्रम के विशिष्ट अध्ययन के लिए पद्यात्मक काव्यों आदि की अपेक्षा गद्य की भाषा अधिक उपयोगी होती है।

(ङ) पदक्रम के ज्ञानार्थ अनुवाद आदि की अपेक्षा मूल पाठ अधिक उपयुक्त होता है।

(च) पदक्रम के अध्ययन के लिए अलंकृत काव्यात्मक भाषा की अपेक्षा सरल सुबोध भाषा अधिक उपयुक्त है। इसके अन्तर्गत भाषा का स्वाभाविक प्रवाह देखने को मिलता है।

(छ) पदक्रम के अध्ययन के लिए लिखित भाषा की अपेक्षा उच्चरित भाषा का अधिक महत्त्व है। उच्चरित भाषा में भाषा के स्वाभाविक रूप का साक्षात्कार होता है।

4.5.5.2. स्वर परिवर्तन (Modulation)

वाक्यों में संगीतात्मक तथा बलात्मक स्वराघातों का प्रभाव एवं उनसे होने वाले अर्थभेद का अध्ययन पदिम का विषय है। वाक्यों में बलाघात आदि के कारण स्वरों में कहीं आरोह, कहीं अवरोह होता है। हम जिस ध्वनि पर बल देते हैं वह उदात्त हो जाती है। आरोह में ऊँची आवाज से बोलते हैं। जिस ध्वनि पर बल नहीं देते वह मध्यम या निम्न ध्वनि में बोली जाती है। स्वर परिवर्तन के आधार पर ही चला (चला गया – क्रिया) तथा चला (संचालन – कार्यक्रम दो घंटे चला), पढ़ा (पढ़ लिया) पढ़ा (पढ़ावो) में अर्थान्तर हो जाता है। 'आपने खाना खा लिया है न' – में निषेधात्मक 'न' (नहीं) शब्द उच्चारण में स्वर-भेद के कारण ही विधि-वाचक हो गया है। यहाँ 'न' का निषेध अर्थ नहीं है।

4.5.5.3. ध्वनि परिवर्तन (Phonetic Modification)

वाक्य में दो ध्वनियों के समीप आने से उनमें कुछ ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। इसे सन्धि कहते हैं। जैसे – जगत् + ईश = जगदीश। रमा + ईश = रमेश। पुनः + जन्म = पुनर्जन्म। इसी प्रकार महात्मा, महोदय, अध्यात्म आदि में ध्वनि-परिवर्तन है। बोलचाल में ध्वनि-परिवर्तन के अनेक उदाहरण हैं। लिखने-बोलने में भी अन्तर होता है। जैसे – कब आओगे > कबाओगे, कब तक > कब्तक, जल लाना > जल्लाना।

4.5.5.4. चयन (Selection)

चयन का विश्लेषण वाक्य में पद-विन्यास के आवश्यक गुण के रूप में किया जाता है। भारतीय आचार्यों ने वाक्य में आकांक्षा, योग्यता तथा आसक्ति गुणों का होना आवश्यक माना है। पाश्चात्य भाषाविदों ने वाक्य में पद-विन्यास सम्बन्धी चार विशेषताओं का उल्लेख किया है। इन्हें Features of arrangement कहा जाता है। ये निम्नवत् हैं – (i) चयन (Selection), (ii) क्रम (Order), (iii) ध्वनि परिवर्तन (Modification) और (iv) स्वर-परिवर्तन (Modulation)।

(i) चयन (Selection) : चयन का अर्थ है – वाक्य में प्रयुक्त होने वाले उपयुक्त पदों का चयन। यह चयन दो प्रकार से होता है – (क) अर्थ की दृष्टि से और (ख) रूप की दृष्टि से।

(क) अर्थ की दृष्टि से चयन : भाषा तथा भाव की दृष्टि से किस वाक्य में कौन-सा शब्द या पद उपयुक्त है, उसका ही प्रयोग करना, आर्थिक चयन है। आर्थिक दृष्टि से किया गया चयन मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। किस भाव के लिए कौन-सा शब्द उपयुक्त होगा और किसका प्रयोग होना चाहिए, यह बौद्धिक प्रक्रिया है। उपयुक्त शब्दों का प्रयोग करना वक्ता की चाह होती है। वक्ता पर्यायवाची शब्दों में से उपयुक्त शब्द का प्रयोग करता है। स्त्रीवाचक शब्दों में युवती, नारी, रमणी, कामिनी, वामा, अबला, महिला आदि शब्द हैं। युवती में यौवन है, नारी में नर की संगिनी का भाव है। रमणी में रमणत्व या रति, कामिनी में काम भाव, वामा में वक्रता, अबला में असहायत्व का भाव है। जहाँ जिस भाव की अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है, वहाँ सूक्ष्मतापूर्वक शब्द या पद-चयन करना अर्थ-पक्ष है।

(ख) रूप की दृष्टि से चयन : इसका सम्बन्ध रचना से है। व्याकरण तथा प्रयोग की दृष्टि से चयनित शब्द-उपयुक्त हो, यह योग्यता तथा अन्विति का कार्य है। जैसे – 'न ऊधो का लेना न माधो का देना।', 'न घर का न घाट का', मुहावरों में 'न' का प्रयोग शिष्ट-सम्मत है, किन्तु 'मैं घर न जाऊँगा' में 'न' का प्रयोग अशुद्ध है। यहाँ पर 'नहीं' का प्रयोग होगा। इसी प्रकार व्याकरणसम्मत शब्दों या पदों का प्रयोग रूपात्मक चयन है।

4.5.6. पदिम-विज्ञान

पदिम-विज्ञान विषयक चिन्तन भारतीय भाषाशास्त्रियों, विशेषतः पाणिनि की देन है। पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों को यह विज्ञान भारत से ही प्राप्त हुआ। पश्चिम के विद्वानों ने इस ऋण को स्वीकार भी किया है। प्रो० आर. एच. रोबिन्स ने लिखा है कि "भाषाशास्त्र में पदिम के अध्ययन का महत्त्व भारतीय वैयाकरणों की ही देन है।" (General Linguistics, P. 202) जिस प्रकार स्वन (Sound) के आधार पर स्वनिम-विज्ञान नाम पड़ा है, उसी प्रकार रूप या पद (Morph) के आधार पर पदिम विज्ञान नाम पड़ा। इसे रूपिम-विज्ञान (मार्फीमिक्स) रूपग्राम विज्ञान अथवा मार्फिमी आदि भी कहा जाता है। पाणिनि ने संस्कृत भाषा के पद-विज्ञान का अति सूक्ष्म

अध्ययन एवं विश्लेषण अपने ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में किया है। वह अध्ययन विश्व के भाषाशास्त्रियों के लिए आदर्श है। इतना सर्वांगीण अध्ययन अन्य किसी भाषा का आज तक प्रस्तुत नहीं किया गया है।

पदिम विज्ञान का आधार रूप या पद है। इसमें प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त पदों (रूपों) के सार्थक अवयवों का विभाजन करके पदिम और संरूप (संपद) (Allomorph) का निर्धारण किया जाता है। इसका आधार अर्थ और वितरण होता है। यह पदिम सामान्यतया चार रूपों में प्राप्त होता है –

(i) पदिम (Free Morpheme)
(ii) बद्ध पदिम (Bound Morpheme)
(iii) संयुक्तपदिम (Complex Morpheme)
(iv) मिश्रित या समस्त पदिम (Compound Morpheme)

एक ही पदिम के समानार्थक विभिन्न रूपों या पदों को संरूप या संपद कहते हैं। संपदों में जो अधिक प्रचलित या प्रयुक्त होता है उसे रूपिम या पदिम कहा जाता है, शेष को संरूप या संपद। संयुक्त और समस्त पदिमों में पद-संघटना में कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी होते हैं जिसका अध्ययन सन्धि या पद / रूप स्वनिम विज्ञान (Morphophonemics, मार्फोफोनीमिक्स) के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार पदिम-विज्ञान के विषय निम्नवत् हैं – पदिम या रूपिम (Morpheme), संपद या संरूप(Allomorph), सन्धि तथा पद स्वोनिम विज्ञान (Morphophonemics)।

4.5.6.1. पदिम या रूपिम (रूप ग्राम, Morpheme)

4.5.6.1.1. पदिम का लक्षण

वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई को पदिम (पद ग्राम या रूप ग्राम) कहते हैं। बी. ब्लॉक और जी. एल. ट्रेगर के शब्दों में – "Any form Whether Free or bound, which can not be divided into smaller Meaningful parts is a Morpheme." (Out cines of Linguistic analysis, P. 54)

पदिम और स्वनिम में मुख्य अन्तर यह है कि स्वनिम का सार्थक होना अनिवार्य नहीं है। पदिम के चार (04) स्वनिम हैं। ये चारों निरर्थक हैं किन्तु 'राम' एक सार्थक पदिम इकाई है। यह एक सार्थक शब्द है। रूप या पद में, शब्द या धातु + प्रत्यय = रूप या पद। प्रत्येक रूप या पद को दो दृष्टियों से देखा जाता है – (i) रचना और (ii) अर्थ।

रचना की दृष्टि से पद और शब्द में अन्तर है। व्याकरण की दृष्टि से ये दोनों शब्द भिन्न अर्थ वाले हैं। सार्थक ध्वनि-समूह को 'शब्द' कहते हैं। संस्कृत में इसे 'प्रातिपदिक' कहते हैं। यह मूल रूप होता है। कोई भी शब्द जब तक पद नहीं बनेगा, उसका प्रयोग नहीं हो सकता। पद बनाने के लिए शब्द में कुछ विशेष अर्थों के

बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। इसके लगाने से वह शब्द वाक्य में प्रयोग के योग्य होता है। जैसे – राम, पुस्तक, पढ़ता है। (रामः पुस्तकं पठति।)

अर्थ की दृष्टि से प्रत्येक वाक्य में दो प्रकार के विशिष्ट तत्त्व होते हैं – (क) भावों के प्रति रूप एवं विषयानुभूति के तत्त्व, (ख) इन भावों के परस्पर विशेष सम्बन्ध के संकेतक तत्त्व। जैसे – गुरु-शिष्य सम्बन्ध।

भाव-विशेष के बोधक तत्त्वों को अर्थतत्त्व कहते हैं। दूसरे तत्त्व हैं – ने, से, भूतकाल का चिह्न आ आदि। इन्हें सम्बन्ध तत्त्व कहते हैं।

अर्थतत्त्व वे हैं जो मानसिक प्रतिभाओं के द्वारा भावों को अभिव्यक्त करते हैं। जैसे – गुरु से शिष्य ने प्रश्न पूछा। (ने, से, आ) सम्बन्ध तत्त्व से ही पद का अर्थ पूर्ण अभिव्यक्त हो सकता है। सम्बन्ध तत्त्व से ही कर्त्ता, कर्म और क्रिया का बोध होकर पद सार्थक होता है।

4.5.6.2. अंग पदिम, प्रत्यय पदिम

रचना की दृष्टि से पद को बाँटने पर दो तत्त्व मिलते हैं – धातु या प्रातिपदिक + प्रत्यय। धातु और प्रातिपदिक को Root, Stem, Base कहते हैं। संस्कृत में इसे 'अंग' (आधार, मूल तत्त्व) कहते हैं। इसमें सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि प्रत्यय जुड़ते हैं। मूल धातु या प्रातिपादिक (अंग) को धातु पदिम या अंग पदिम (Root Morpheme) कहते हैं। इनमें लगने वाले प्रत्ययों को प्रत्यय-पदिम कहते हैं। इस प्रकार रचना की दृष्टि से दो प्रकार के पदिम हैं – (i) अंग पदिम और (ii) प्रत्यय-पदिम।

(i) अंग पदिम : इसमें अंग पदिम मुक्त (Free) तथा बद्ध (Bound) दोनों प्रकार का हो सकता है। जैसे, हिन्दी में – राम, कृष्ण, बालक तथा अंग्रेजी में Cat, Rat, Man आदि मुक्त अंग पदिम हैं। (Free Root = Morpheme) इनका स्वतन्त्र रूप में प्रयोग हो सकता है। बद्ध अंग पदिम (Bound Root = Morpheme) में क्रिया या संज्ञापदों में धातु आदि से पूर्व आने वाले उपसर्ग (Prefix) या निपात हैं, जैसे, प्र + हार, आ + हार, सम् + हार, तिरस् + कार, आविस् + भाव = आविर्भाव आदि। अंग्रेजी में – Perceive, Conceive, Manly आदि। इसमें – Per, Con, ly आदि बद्ध अंग पदिम हैं। प्र अथवा Per आदि का अंग के रूप में स्वतन्त्र प्रयोग नहीं हो सकता।

(ii) प्रत्यय पदिम (Affix Morpheme) : प्रातिपदिक और धातु के अन्त में लगने वाले सुप् (सु और जस, : औ, अः आदि) तथा तिङ् (तिप्, तस्, झि, ति, तः, अन्ति आदि) प्रत्यय-पदिम हैं। इसी प्रकार कृत् (त, तवत्, ति, तव्य आदि तथा तद्धित (अ, वत्, मत्, तर, तम, त्व, ता आदि) प्रत्यय भी प्रत्यय-पदिम हैं। इसका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं हो सकता। ये अंग के साथ मिलकर प्रयुक्त होते हैं। जैसे रामः पचति, कृतम्, वासुदेवः आदि।

(iii) मुक्त-बद्ध पदिम (Free-Bound Morpheme) : इन्हें अर्द्धमुक्त, अर्द्धबद्ध, बद्धमुक्त पदिम या रूपिम नाम भी दिए गए हैं। जो पदिम मुक्त और बद्ध दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं, उसे मुक्त-बद्ध पदिम कहते

हैं। जैसे – गृह-स्वामी, राज-पुरुष, घनश्यामः आदि समस्त पद। समासयुक्त पदों में दो या अधिक अवयव होते हैं। समस्त पद में वे एक पद में बद्ध हैं, इसलिए वे बद्ध पदिम हैं। 'राजपुरुष' में राजन् और पुरुष का अलग प्रयोग नहीं कर सकते हैं। राजपुरुष: समस्त पद 'राजकीय कर्मचारी' अर्थ बताता है। 'राजन' और ' पुरुष' का स्वतन्त्र प्रयोग भी होता है, अतः यह शब्द मुक्त पदिम भी है। इसीलिए ऐसे शब्दों को मुक्त-बद्ध पदिम भी कहते हैं।

(iv) मिश्र पदिम (Complex Morpheme) : मिश्र पदिम उसे कहते हैं जहाँ पर मुक्त +बद्ध पदिम मिल कर प्रयुक्त हों। संस्कृत में प्रायः सभी सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त और तद्धित प्रत्ययान्त पद मिश्र पदिम होते हैं क्योंकि इनमें अंग + प्रत्यय = पद होते हैं। बालकः (बालक + स्), पचति (पच् + अति), सुन्दरता (सुन्दर + ता) में प्रकृति और प्रत्यय मिलकर पद बने हैं।

(v) संयुक्तपदिम (Compound Morpheme) : इसे समस्त पदिम भी कहते हैं। जहाँ पर दो या अधिक शब्द मिलकर एक समस्त (समासयुक्त) पद बन जाते हैं, वहाँ दो अंग-पदिमों के मिलने से एक स्वतन्त्र शब्द बनता है। अतः यह संयुक्तपदिम होता है। जैसे – दश + आनन = दशानन (रावण), नील + उत्पल = नीलोत्पल (नील कमल) आदि। इनमें एक से अधिक अंग रूपिम हैं। अतः इन्हें संयुक्त पदिम कहते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी में – Blackbird, Gentleman, Salesman, Playmate आदि समस्त पद हैं। अतः ये संयुक्तपदिम हैं।

अर्थ और कार्य की दृष्टि से पदिम के दो भेद हैं – (i) अर्थतत्त्व या अर्थदर्शी पदिम और (ii) सम्बन्धतत्त्व या सम्बन्धदर्शी पदिम।

(i) अर्थतत्त्व या अर्थदर्शी पदिम (Stem Morpheme) : इसे अंग पदिम या धातु पदिम भी कहते हैं। ये केवल अर्थ का बोध कराते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करते। ये मनुष्य के विचारों का साक्षात प्रतिनिधित्व करते हैं। ये संज्ञा (मोहन, बालक, पुस्तक आदि), क्रिया (भू, गम, पठ्, जा, हो, पढ़ आदि) विशेषण (सुन्दर, पटु, मृदु आदि), सर्वनाम (मैं, हम, तू आदि) आदि होते हैं।

(ii) सम्बन्धतत्त्व या सम्बन्धदर्शी पदिम (Functional Morpheme) : इन्हें सम्बन्धदर्शी रूपग्राम या कार्यात्मक रूपग्राम भी कहते हैं। ये अंग (Stem) के तुल्य (मुख्यतः अर्थ के बोधक न होकर संज्ञा, क्रिया, आदि में सम्बन्धों का बोध कराते हैं। ये हैं – सुप्, तिङ् आदि प्रत्यय, पूर्वसर्ग, मध्यसर्ग और अन्त सर्ग आदि प्रत्यय। ये कारक, वचन, लिंग, पुरुष, काल, वृत्ति (Mood) आदि का बोध कराते हैं। जैसे, रामः – एकवचन, पुलिंग, कर्त्ता आदि। पतति – वर्तमान काल, प्रथम पुरुष, एकवचन। ये व्याकरणिक कार्य करते हैं। अतः इन्हें कार्यात्मक पदिम कहते हैं। ये बद्ध पदिम हैं।

4.5.6.3. सम्बन्ध तत्त्व के भेद

सम्बन्धतत्त्व या सम्बन्धदर्शी पदिम के दो मुख्य भेद हैं –

(क) शब्दसाधक पदिम : ये पदिम अंगपदिम के साथ जुड़कर शब्द या धातु बनाते हैं। ऐसे बने शब्दों या धातुओं को धातुज, व्युत्पन्न या यौगिक शब्द (Derivative Words) कहते हैं। कृत्, तद्धित, णिच्, सन् आदि प्रत्यय इसी प्रकार के हैं। यही शब्द साधक पदिम हैं। इनके लगाने से शब्द प्रातिपदिक बनते हैं। इनमें प्रकृति और प्रत्यय को पृथक् किया जा सकता है। अतः ये बद्धपदिम हैं क्योंकि प्रत्ययों का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं किया जा सकता। इनसे बने शब्द मिश्र-पदिम (Complex Morpheme) होते हैं। जैसे, कृ + अक = कारक, देव + इक = दैविक, लोक + इक = लौकिक आदि।

(ख) रूपसाधक पदिम : ये पदिम धातु या शब्द जैसे लगते हैं। इनके लगने से शब्द रूप और धातु रूप आदि बनते हैं। ये सदा बद्ध पदिम (Bound Morpheme) हैं। इनसे बने रूपों को पद (सुबन्त या तिङ्न्त रूप) (Inflected Words) कहते हैं। ये पदिम हैं, सुप्, तिङ्, आदि, ता, गा, आ, था, ओं आदि। जैसे, राम + अम् = रामम्, पठ् + अति = पठति, जा > जाता है, जाएगा, गया, पुस्तक > पुस्तकों।

पदिम (रूपग्राम Morpheme) के दो भेद हैं। खंडीकरण के आधार पर भी पदिम के दो भेद किये जाते हैं – (क) खण्ड पदिम तथा (ख) अखण्ड पदिम।

(क) खण्ड पदिम (खण्ड रूपग्राम, Segmental) : जब पदिम या रूपग्राम को तोड़कर अलग किया जा सके तो उसे खण्ड पदिम कहते हैं। जैसे – सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि।

(ख) अखण्ड पदिम (Supra-Segmental Morpheme) : अखण्ड पदिम उसे कहते हैं जिसे तोड़कर पृथक् न किया जा सके। जैसे – बलाघात (Stress), सुर (Tone, Pitch), सुर लहरी (Intonation) आदि। स्वनिम विज्ञान और पदिम विज्ञान दोनों में इन्हें स्वीकार किया जाता है।

4.5.7. पाठ-सार

1. रूप या पद भाषा का सबसे छोटा खण्ड है। यदि पद स्वतन्त्र है तो मूल शब्द कहलाएगा। जैसे – पेड़, बच्चा, घोड़ा आदि। यदि पद बद्ध हो तो वह उपसर्ग या प्रत्यय कहलाएगा।
2. पद की संकल्पना वाक्य के अन्तर्गत परिलक्षित होती है। जैसे – इस बच्चे ने बिल्ली को मारा।
3. पदिम वाक्य का लघुतम अवयव है।
4. 'पदिम' अपने आप में वाक्य के अंग के रूप में एक प्रकार से 'पद' का ही अध्ययन है।
5. रचना के आधार पर वाक्य के प्रमुख तीन भेद हैं – सामान्य वाक्य, मिश्र वाक्य, संयुक्त वाक्य।
6. पदिम में वाक्य विश्लेषण की चार पद्धतियाँ हैं – पदक्रम, स्वर-परिवर्तन, ध्वनि परिवर्तन, चयन।
7. भाषाशास्त्र में 'पदिम विज्ञान' का अध्ययन भारतीय भाषाविदों की ही देन है।

4.5.8. अभ्यास-प्रश्न

1. पद की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
2. पदिम क्या है ?
3. वाक्य विभाजन के प्रमुख भेदों को स्पष्ट कीजिए।
4. पदिम में वाक्य विश्लेषण की पद्धतियों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
5. पदिम-विज्ञान से आप क्या समझते हैं ? उसके विविध स्वरूपों का विवेचन कीजिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : अर्थ विज्ञान

इकाई – 1 : अर्थ का लक्षण, शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

5.1.00 उद्देश्य
5.1.01 प्रस्तावना
5.1.02 अर्थ विज्ञान
5.1.03 अर्थ का महत्त्व
5.1.04 अर्थ का लक्षण
5.1.05 अर्थ की प्रकृति
 5.1.05.1 नाम तथा रूप
 5.1.05.2 अर्थग्रहण पद्धति
 5.1.05.3 आर्थी घटकों का विश्लेषण
 5.1.05.4 आर्थी क्षेत्र
 5.1.05.5 आर्थी सम्बन्ध
5.1.06 शब्द और अर्थ का सम्बन्ध (संकेतग्रह)
 5.1.06.1 अन्वय-व्यतिरेक पद्धति
 5.1.06.2 बिम्ब निर्माण
 5.1.06.3 दार्शनिक दृष्टि
 5.1.06.4 अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व का संयोग
 5.1.06.5 सम्बन्धतत्त्व की अधिकता
5.1.07 संस्कृत में सम्बन्धतत्त्व
5.1.08 हिन्दी में सम्बन्धतत्त्व
5.1.09 पाठ-सार
5.1.10 अभ्यास प्रश्न

5.1.00. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. अर्थ की प्रकृति और लक्षण को समझ सकेंगे।
ii. भाषा के अन्तर्गत अर्थ संरचना के घटक का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
iii. शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
iv. अर्थ की संकल्पना में नाम और रूप के महत्त्व को समझ सकेंगे।
v. आर्थी क्षेत्र के अन्तर्गत शब्द / शब्द-समूह के मध्य आन्तरिक सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

vi. अर्थ के महत्त्व को समझ सकेंगे।

5.1.01. प्रस्तावना

पिछले पाठों में आपने वाक्यविज्ञान के अन्तर्गत वाक्यविज्ञान का स्वरूप, पद और वाक्य, वाक्य की परिभाषा, वाक्यों के प्रकार, उपवाक्य तथा पदिम आदि के विषय में ज्ञानार्जन किया।

प्रस्तुत पाठ अर्थविज्ञान के सम्बन्ध में है। इसमें आप, 'अर्थ क्या है !', 'अर्थ की प्रकृति या लक्षण क्या हैं !' तथा 'शब्द एवं अर्थ के सम्बन्ध' के विषय में अध्ययन करेंगे। मानवीय सभ्यता के विकास के साथ भाषा का विकास होता रहा। आज हमारे भाषा प्रतीक अद्वितीय हैं। भाषा हमारे मनन-चिन्तन का आधार है। शब्द का उच्चारण करते हुए उसका प्रतीकात्मक चित्र हमारे मानस-पटल पर अंकित हो जाता है। भाषा-प्रतीक ही हमें अर्थबोध कराते हैं।

5.1.02. अर्थ विज्ञान

अर्थ शब्द में आत्मा की तरह स्थित है। शब्द शरीर है। ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान तथा वाक्य विज्ञान भाषा के प्रमुख अवयव है। ये भाषा के बाह्य रूप हैं। अर्थ अन्तःस्थित तत्त्व है। अर्थविज्ञान में शब्दार्थ के आन्तरिक पक्ष का विवेचन, विश्लेषण तथा भावपक्ष को महत्त्व दिया जाता है। 'अर्थ' का क्या अर्थ है ? अर्थबोध कैसे होता है ? शब्द तथा अर्थ किस प्रकार परस्पर सम्बद्ध हैं ? संकेतग्रह कैसे होता है ? मन में बिम्ब-निर्माण किस प्रकार होता है ? बिम्ब से अर्थ ज्ञान तक की प्रक्रिया का अध्ययन भाषा का आन्तरिक अथवा भावनात्मक पक्ष है। शब्दों का अर्थगत विकास, अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ, अर्थ परिवर्तन के कारण, एकार्थक एवं अनेकार्थक शब्द, संकेतग्रह के साधन आदि अर्थविज्ञान का सैद्धान्तिक पक्ष है। ध्वनि, पद और वाक्य आदि के सैद्धान्तिक अध्ययन के पश्चात् अर्थ विषयक व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान होना आवश्यक है।

भाषाविज्ञान में अर्थ-विषयक अध्ययन को अंग्रेजी में Semantics (सीमेंटिक्स) कहा जाता है। यह नामकरण फ्रेंच विद्वान् मिशेल ब्रेआल (Michel Breal) द्वारा प्रचारित हुआ है। हिन्दी में इसके लिए अर्थविचार, शब्दार्थ विचार, शब्दार्थ विज्ञान आदि नाम भी प्रचलित रहे हैं। सम्प्रति, अर्थविज्ञान नाम ही प्रमुखता से प्रचलित है।

5.1.03. अर्थ का महत्त्व

आचार्य पाणिनि के अनुसार "भाषा का सार अर्थ है।" अतः अर्थवान् या सार्थक शब्दों को ही 'प्रातिपदिक' माना गया है। 'प्रातिपदिक' अर्थात् मूल संज्ञा शब्द या प्रकृति। यथा – "अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्।" (अष्टा. 1.2.45)

यास्क द्वारा रचित ग्रन्थ 'निरुक्त' में निर्वचन, निरुक्ति (Etymology) का आधार ही अर्थ को माना गया है। सम्पूर्ण अध्ययन एवं विवेचन आदि अर्थ पर ही आश्रित है। यथा – "अर्थ नित्यः परीक्षेत।" (निरुक्त 2–1)

यास्क का कथन है कि जो वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जानता, वह ठूँठ है, भारवाहक पशु है। इसके विपरीत जो अर्थ का ज्ञान रखता है, उसे ही समस्त कल्याण प्राप्त होता है। पतंजलि ने भी महाभाष्य में यही भाव व्यक्त किया है कि, "अर्थज्ञान के बिना जो शब्द मूलपाठ के रूप में दुहराया जाता है, वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रज्ज्वलित नहीं करता है, जैसे बिना अग्नि में डाला हुआ सूखा ईंधन।"

ऋग्वेद के एक मंत्र में अर्थ को अजेय योद्धा बताया गया है तथा अर्थज्ञानहीन को बिना दूध वाली गाय एवं फल-फूलहीन वाणी का संग्रहकर्त्ता बताया है। (ऋग्वेद 010.71.5)

अतः स्पष्ट है कि अर्थ ही भाषा को सार्थकता प्रदान करता है। अर्थ ही भाषा की आत्मा है।

5.1.04. अर्थ का लक्षण

अर्थ के अनेक लक्षण बताए गए हैं। भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में 18 तथा ओग्डेन तथा रिचर्ड्स ने 'Meaning of Meaning' में अर्थ के 16 लक्षण बताए हैं। भर्तृहरि ने संक्षेप में लिखा है, "शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं।" अर्थ का अन्य लक्षण नहीं है। इस कथन से स्पष्ट है कि अर्थ का सामान्य लक्षण 'प्रतीति' है। वास्तव में किसी शब्द को सुनने के पश्चात् उसका कुछ अर्थ निकलता है। श्रोता को उस अर्थ की अनुभूति होती है। यह अनुभूति ही 'प्रतीति' है जो उस शब्द का अर्थ होता है।

संसार की प्रत्येक भाषा में एक ही अर्थ के लिए अलग-अलग शब्द हैं। शब्दों के अर्थ स्वाभाविक नहीं बल्कि सांकेतिक तथा यादृच्छिक होते हैं। एक ही शब्द का विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। प्रत्येक भाषा में वक्ता तथा श्रोता अपनी भाषा में ही सांकेतित अर्थ को ग्रहण करता है। अतः अर्थ का प्रमुख लक्षण उसकी प्रतीति या अनुभूति है जो अलग-अलग भाषा-भाषियों को अलग-अलग शब्दों से होती है। यथा – जल, Water, आब आदि 'पानी' के ही प्रतीक शब्द हैं किन्तु संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी और फारसी में अलग-अलग शब्द प्रतीक के रूप में संकेतित होते हैं। इन संकेतित प्रतीको की जो 'प्रतीति' अनुभूति के स्तर पर श्रोता को प्राप्त होती है, वही शब्द का अर्थ है।

5.1.05. अर्थ की प्रकृति

भाषावैज्ञानिकों के लिए यह एक विचारणीय प्रश्न रहा है कि 'अर्थ' का क्या अर्थ है। अर्थ के अर्थ को समझने के लिए मुख्य समस्या यह भी रही है कि अर्थ को परिभाषित करते समय कहीं 'अतिव्याप्ति' और कहीं 'न्यूनव्याप्ति' का दोष आ गया। सामान्य रूप से भी कोई व्यक्ति अपने बचपन से ही 'अर्थ की संकल्पना' से अच्छी तरह परिचित होता है। वह 'अर्थ' शब्द का सही प्रयोग व्यावहारिक दृष्टि से करता है। बच्चों में प्रत्येक

वस्तु के प्रति जिज्ञासा का भाव रहता है कि 'यह क्या है ?' बड़ों से सुनकर जो कुछ 'प्रतीति' उन्हें हो पाती है, वही अर्थ वे ग्रहण कर लेते हैं। चित्र आदि के द्वारा भी अर्थगत जिज्ञासा की पूर्ति होती है। विद्यार्थी कक्षा में अपने अध्यापक को सुनता है। वह अध्यापक से पूछता है कि इस शब्द का क्या अर्थ है। उसे 'वृक्ष' का अर्थ 'पेड़', 'सरिता' का अर्थ 'नदी' और Lion का अर्थ 'शेर' बताया जाता है। इस प्रकार बाल्यावस्था से ही शब्द और उनके अर्थ की 'प्रतीति' होती रहती है। यह एक अलग बात है कि एक ही वस्तु के लिए अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग प्रतीक होंगे। शब्द अलग होने पर भी अर्थ एक होगा। उस अर्थ की 'प्रतीति' भी एक ही होगी।

5.1.05.1. नाम तथा रूप

अर्थबोधन की दृष्टि से 'नाम' और 'रूप' को समझना आवश्यक है। इस सम्पूर्ण विश्व में हम नित्य अनेक प्रकार के प्राणियों, व्यक्तियों तथा वस्तुओं को देखते हैं। सभी वस्तुओं की अपनी-अपनी सत्ता होती है। इसीलिए सभी वस्तुएँ अलग-अलग प्रकार, रूप आकार आदि की हैं। यह विविधता ही उनकी पहचान है। इसी पहचान को 'रूप' कहा जाता है। इस 'रूप' को हम देखते हैं। संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्राणि जगत् या वस्तु जगत् में दृष्य 'रूपों' को मनुष्य किसी न किसी नाम से पुकारता है। हिन्दीभाषी 'गाय-रूप' के लिए 'गाय' या 'गो' का प्रयोग करते हैं। 'घोड़ा' प्राणी के लिए 'घोड़ा' नाम का प्रयोग होता है। 'नाम' सुनते ही 'रूप' का प्रयोग होने लगता है। 'नाम' और 'रूप' के मध्य जो सम्बन्ध होता है वह बुद्धि में स्थित होता है। बुद्धि स्थिति इस सम्बन्ध तत्त्व को ही अर्थ कहते हैं। शब्द ध्वनि और पदार्थ रूप का सीधा सम्बन्ध अर्थ से होता है। यथा – 'चीनी' शब्द 'चीनी' पदार्थ का अर्थबोध उत्पन्न कर देता है। साथ ही 'चीनी-रूप' देखते ही 'चीनी-नाम' स्मृति में आता है। संस्कृत में 'कारण' तथा 'कार्य' पर समुचित चिन्तन किया गया है। यथा – 'चीनी' नाम का श्रवण कारण है और 'चीनी वस्तु' को बोध कार्य है। इसके विपरीत 'चीनी-वस्तु' कर रूप दर्शन 'कारण' है और 'चीनी-शब्द' की स्मृति कार्य है। संस्कृत दर्शन में इस कारण-कार्य सम्बन्ध की प्रक्रिया को 'व्यापार' शब्द से अभिहित किया गया है। 'नाम' और 'रूप' के मध्य जो वाचक-वाच्य व्यापार होता है वही 'अर्थ'-व्यापार है। अतः वाचक-वाच्य सम्बन्ध ही अर्थ है। इसी दृष्टि से कुछ विचारणीय बिन्दु निम्नवत् हैं –

(i) ध्वन्यात्मक एवं भाषाई शब्द

भारतीय भाषा चिन्तन में भौतिक ध्वनियों के दो वर्ग बताए गए हैं – 'ध्वन्यात्मक' तथा 'वर्णात्मक'। ध्वन्यात्मक वर्ग में हॉर्न बजाना, या अन्य किसी प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करना आता है। वर्णात्मक वर्ग किसी भाषा का भाषाई अवयव होता है जिसे हम लिख भी सकते हैं। किसी शब्द का उच्चारण ध्वन्यात्मक होता है। अपने-अपने भाषाई संस्कार से जब शब्द लिखित भाषा का रूप लेता है तो वह वर्ण बन जाता है। भाषाई संस्कार से ही 'गो' ध्वनि समूह को अंग्रेजी भाषा 'Go' माना जाएगा और संस्कृत में गो (= धेनु)। श्रोता सामान्यतः वाक्य ही सुनता है। सन्धि-विच्छेद द्वारा 'पद' स्तर पर पहुँच कर तिङ्, सुप् आदि प्रत्ययों को अलग करके प्रातिपदिक आदि (शब्द) पर पहुँचना 'वर्णात्मक ध्वनि' है।

(ii) व्यक्तिवाचक से जातिवाचक बोध

संसार में जो कुछ भी दृश्य है, वह मूर्त, इन्द्रियगोचर तथा व्यक्ति या व्यष्टिपरक होता है। उसी से 'जाति' की संकल्पना जुड़ जाती है। जैसे 'खिलौना' एक विशेष प्रकार का व्यष्टिपरक भी हो सकता है लेकिन 'खिलौना' शब्द अमूर्त रूप में 'जाति'सूचक बन जाता है, किसी भी प्रकार का, किसी भी रंग का या कोई भी खिलौना जो बच्चा खेल सके। नाम से सम्बद्ध अनेक व्यष्टि रूप और व्यष्टि रूप से जाति रूप का अनुभव होता है।

इस प्रकार का व्यक्तिपरक और जातिपरक सम्बन्ध प्राणियों एवं वस्तुओं(संज्ञा शब्दों) की दृष्टि से अत्यन्त स्पष्ट है किन्तु यह सम्बन्ध गुणों तथा क्रियाओं (क्रिया-प्रक्रिया) में भी मिलता है।

शब्द-बोध की प्रक्रिया में हम पहले ध्वन्यात्मक नाम से भाषाई नाम तक पहुँचते हैं। तत्पश्चात् अमूर्त नाम से अमूर्त रूप तक पहुँचते हैं। यही 'अर्थ-व्यापार' है। इसी स्तर पर वाचक-वाच्य सम्बन्ध स्थापित होकर अर्थ की प्रतीति कराता है। अन्तिम स्तर पर मूर्त-प्रत्यक्ष वाच्य तक पहुँचते हैं। यही पदार्थ ज्ञान है। इस प्रकार अमूर्त नाम तथा अमूर्त रूप के बीच का सम्बन्ध है, 'अर्थ'। इसी के आधार पर हम नाम से रूप अथवा रूप से नाम की ओर चलते हैं।

5.1.05.2. अर्थग्रहण पद्धति

भारतीय भाषा चिन्तन में अर्थग्रहण पद्धति पर गहन अध्ययन किया गया है। अर्थग्रहण पद्धति को 'संकेतग्रह' नाम से भी जाना जाता है। इसके आठ साधन प्रतिपादित किये गए हैं। इसका विवेचन यहाँ निम्नलिखित क्रम से प्रस्तुत है –

(क) <u>लोक व्यवहार</u> : हम बचपन से ही समाज में भाषा-व्यवहार सुनते रहते हैं और तदनुसार क्रियाओं का भी अवलोकन करते हैं। इससे शब्द तथा अर्थबोध होता रहता है। भाषा सीखने का यह एक मुख्य आधार होता है। सुनकर कोई भी भाषा धीरे-धीरे अर्थ ग्रहण के स्तर तक आत्मसात हो जाती है। जनसाधारण में सदैव किसी भाषा के व्यवहार से उसकी शब्दावली का भी विकास होता रहता है। लोक-व्यवहार अर्थग्रहण पद्धति का प्रमुख आधार है।

(ख) <u>शब्दकोश</u> : किसी भी भाषा के शब्दों और उसके अर्थ का समझने के लिए ही शब्दकोश बनाए जाते हैं। अपरिचित शब्दों या उनके अर्थ को जानने के लिए शब्दकोश सहायक होते हैं। विद्यार्थियों के विद्या अध्ययन में कोश प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

(ग) <u>व्याकरण</u> : शब्दार्थ-विवेचन में व्याकरण का ज्ञान सर्वोपरि है। व्यापरण के द्वारा शब्दार्थ ज्ञान शीघ्र और सही तरीके से हो जाता है। संस्कृत जैसी भाषाओं में जहाँ प्रचुर मात्रा में यौगिक शब्द हैं, समास-प्रत्यय-उपसर्ग-सन्धि की जानकारी अर्थ ग्रहण में सहायक सिद्ध होती है। यह सहायता व्याकरण से ही मिलती है। जैसे – क्रिया करने वाला (पढ़ने वाला) आदि।

(घ) आप्त वाक्य : विषय विशेषज्ञ व्यक्ति को आप्त कहते हैं। शास्त्रों में आए शब्दों के मानक एवं प्रामाणिक परिभाषा आधारित अर्थ को जानने का यह प्रमुख स्रोत है। आप्त ऋषियों के ग्रन्थों से भी ज्ञान प्राप्त होता है। कक्षा में अध्यापक द्वारा बताए गए अर्थ को बालक ग्रहण करता है।

(ङ) उपमान : किसी वस्तु की कल्पना और प्रत्यक्ष दर्शन में अन्तर होता है। अतः किसी अप्रस्तुत विधान की प्रस्तुत विधान से तुलना (उपमान) के द्वारा अर्थ ग्रहण सरलता से हो जाता है। बताने वाला समीपतम परिचित वस्तु से तुलना या उसका उल्लेख करते हुए कहता है कि अमुक वस्तु या व्यक्ति इसके समान है।

(च) विवृत्ति : विवृत्ति का अर्थ है विवरण देना अर्थात् व्याख्या देना। संस्कृत में भी भाष्य, टीका आदि का बहुत प्रचलन था। साहित्यिक रचनाओं पर भी टीकाएँ मिलती थीं। इसके आधार पर अभिधा के अतिरिक्त लक्षणा और व्यंजना आदि को स्पष्ट किया जाता है। विवृत्ति के द्वारा शब्द के अर्थ को और उसके विविध पक्षों को उदाहरण, भेद-उपभेद आदि के द्वारा सम्यक् रूप से समझाया जाता है।

(छ) सिद्ध पद सान्निध्य : यह वाक्यगत साधन है। यदि वाक्य में से अनेक शब्दों में केवल दो-एक शब्दों का अर्थ नहीं आता है तो ज्ञात (सिद्ध) पदों के सामीप्य से उनका अर्थ निकाला जा सकता है। यथा – 'बसन्त ऋतु में मयूर नृत्य कर रहा है।' वाक्य में 'मयूर' शब्द का अर्थ ज्ञान नहीं है किन्तु सांसारिक जानकारी से मालूम है कि बसन्त में मोर ही नाचता है अतः 'मयूर' शब्द' का अर्थ 'मोर' ही होगा।

(ज) वाक्य शेष : इसका अर्थ है 'बचा हुआ अथवा बचे हुए वाक्य'। यदि किसी वाक्य का अर्थ किसी अन्य वाक्य के अर्थ पर आधारित है तो वह वाक्य शेष है। जैसे – "हाल ही में नरेन्द्र मोदी चीन गए थे। यह कदाचित पहला अवसर था कि भारत का प्रधानमंत्री चीन जाए।" यहाँ 'नरेन्द्र मोदी भारत के प्रधानमंत्री हैं', यह जानकारी वाक्य शेष से मिल जाती है।

5.1.05.3. आर्थी घटकों का विश्लेषण

शब्द और उसके अर्थ के घटकों का निर्धारण तथा विश्लेषण ध्वनियों के घटकों के निर्धारण तथा विश्लेषण के ही समान करने के सम्बन्ध में पाश्चात्य चिन्तक काफी समय से प्रयत्नशील थे। यह कार्य कठिन था। कारण यह कि ध्वनियों के विवेचन-विश्लेषण में भारतीय ध्वनिशास्त्रियों ने और भौतिकशास्त्र में ध्वनिकी पर हुए विविध अध्ययनों ने पर्याप्त सहायता पहुँचाई थी किन्तु शब्दार्थ विज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार की कोई सहायता प्राप्त नहीं थी। फिर भी विश्व स्तर पर ज्ञान मीमांसा के मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय अनुसन्धान निष्कर्षों और भारतीय न्याय तथा मीमांसा की वैचारिक उपलब्धियों के द्वारा इस दिशा में काफी सहायता प्राप्त हुई।

जिस प्रकार भाषा ध्वनि अनेक ध्वनि तत्त्वों के संयोजन से बनती है (जैसे 'प' ध्वनि में अनेक ध्वनि तत्त्व जैसे – व्यंजन, स्पर्श, द्वयोष्ठ्य, अघोष, अल्पप्राण, निरनुनासिक आदि हैं) उसी प्रकार प्रत्येक शब्द का अर्थ अनेकानेक अर्थतत्त्व के संयोजन से बनता है। 'बालक-बालिका' में केवल लिंग घटक (पुल्लिंग-स्त्रीलिंग) का अन्तर है, 'कटोरा-कटोरी में बृहत्-लघु-भाव का अन्तर है। 'दौड़ना' में तेज वेग है आदि। अतः प्रत्येक अर्थ में अनेकानेक 'अर्थतत्त्व' संपुटित (Encapsulated) हैं।

घटकीय विश्लेषण में द्विआधारी पद्धति (binary system) की भाँति (+) (–) का प्रयोग एक के बाद एक होता है। संसार की सत्ताएँ +'चेतन' या –'चेतन' हैं। आयु-अवस्था के भी कई लक्षण हैं। अतः –

लड़का = + चेतन – जन्तु, + मानव, + पु + प्रथम बाल्यावस्था बछड़ा = + चेतन, + जन्तु, + गौ, + पु, + बाल्यावस्था।

5.1.05.4. आर्थी क्षेत्र

मनुष्य तार्किक चिन्तन में आर्थी-लक्षणों (घटकों) को दृष्टिगत रखते हुए सत्ताओं के वर्ग, उपवर्ग आदि समूह करता रहता है। समावेशिता (inclusiveness) के उत्तरोत्तर क्रम निरन्तर बनते रहते हैं। आगे छोटी शाखाओं में बँटने वाली प्रत्येक शाखा आर्थी क्षेत्र, आर्थी उपक्षेत्र, आदि का निर्माण करती रहती है। यथा –

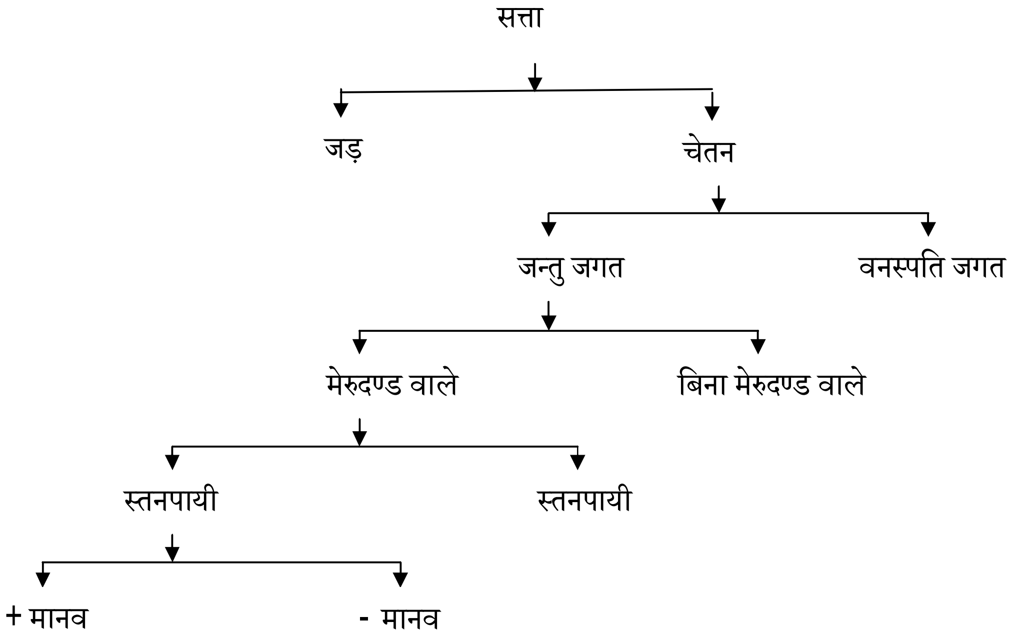

इस उत्तराधर क्रम-विभाजन में जन्तुजगत् एक आर्थी क्षेत्र बना, वनस्पति जगत् दूसरा आर्थी क्षेत्र बना। मानव एक आर्थी उपक्षेत्र बना, पशु-पक्षी आदि अन्य आर्थी उपक्षेत्र बने।

इन आर्थी क्षेत्रों से शब्दावली वर्गीकरण, थेसारस (अर्थ कोश) का निर्माण होता है। यह भाषाशिक्षण की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इन आर्थी क्षेत्रों के कोटिकरण की दिशा में कोई विशेष अध्ययन नहीं हुआ है। हिन्दी के समान्तर कोश (थेसारस) में कोटिकरण का एक प्रयास किया गया है। अंग्रेजी थेसारसों ने सौ साल से अधिक पुराने Rogets Thesaurus को ही मुख्य आधार बनाया है। प्राचीन दर्शनों में प्राप्त कोटिकरण तथा आधुनिक पाश्चात्य ज्ञानमीमांसा आधारित कोटिकरण को ध्यान में रखते हुए एक कोटिकरण प्रस्तुत है –

110 ब्रह्म, ईश्वर

120 प्रकृति, 121 आकाश, 122 पृथ्वी, 123 जल, 124 वायु, 125 अग्नि, तेजस्, 210 वनस्पति जगत्, 211 वृक्ष, 212 पुष्प, 213 फल, 220 जन्तु जगत्, 221 पशु, 222 पक्षी, 223 कीट, 224 सरीसृप, 225 जलचर, 230 मानव, 331 जीवन-अवस्थाएँ, 332 शरीरांग, 333 शारीरिक क्रियाएँ, 334 रोग एवं निवारण, 335 मन और मनोभावनाएँ आदि, 336 मनोविकार एवं उनके निवारणोपाय, 410 आहार-उपादान-साधन-प्रक्रियाएँ-उत्पाद, 420 आवास, भवन, फर्नीचर, प्रकाश, वायु, स्वच्छता, 430 आच्छादन, वस्त्र, आभूषण-रत्न, शृंगार-प्रसाधन, 440 आमोद-प्रमोद-उत्सव, समारोह, सम्मेलन, 450 कला-शिल्प, ललित-कलाएँ, उपयोगी कलाएँ-शिल्प, 460 विनिर्माण, यंत्र, उपकरण, साधन आदि उपादान-साधन-प्रक्रिया-उत्पाद, 510 परिवार-कुटुम्ब-गोत्र, 520 इष्ट-मित्र, समुदाय, 530 सामाजिक सम्बन्ध एवं क्रियाएँ, (आज्ञा, निवेदन आदि), 610 शिक्षण-प्रशिक्षण, स्थलनाम, साधन, विषय, 620 चिन्तन – गणना एवं मापन, काल-स्थान, दिशा, वर्गीकरण-कोटिकरण, 630 धार्मिक क्षेत्र-स्थल नाम, ग्रन्थ, कृत्य, गुरु, मान्यताएँ देवादि, 640 आजीविका, वाणिज्य-व्यापार, स्थल-प्रक्रिया, साधन-मुद्रा आदि, 650 आजीविका – अन्य धंधे, 710 यातायात – यात्रा साधन, यात्रा मार्ग आदि, 720 सन्देश-प्रेषण – पत्रवाहक, डाक, 730 सन्देश-प्रेषण – यांत्रिक साधन – टेलीफोन, टी.वी., रेडियो, इंटरनेट, 810 रक्षा-सुरक्षा, सेना-पुलिस, अस्त्र-शस्त्र, सैन्य व्यवस्था, 820 राज्य-शासन-व्यवस्था, विधायी, राजनैतिक, 830 प्रशासन – देश-प्रान्त आदि, अधिकारी, प्रशासन तंत्र, 840 विधि – विधि ग्रन्थ, न्याय व्यवस्था, दण्ड, कारागार आदि।

5.1.05.5. आर्थी सम्बन्ध

उपर्युक्त आर्थी क्षेत्रों के अन्तर्गत जो शब्द / शब्द-समूह आते हैं उनके मध्य एक विशिष्ट आन्तरिक सम्बन्ध अवश्य होता है। जैसे 'फूल' शब्द एक वर्ग विशेष का नाम है। यदि अलग-अलग फूलों का नाम लें तो कमल, गुलाब, गेंदा आदि उस वर्ग के सदस्य-नाम हैं। अतः 'फूल' और 'कमल', 'गेंदा' आदि में आर्थी सम्बन्ध है। साथ ही अलग-अलग फूलों के नाम-शब्दों में परस्पर सहवर्गी सम्बन्ध है। इसी प्रकार 'देश', 'प्रान्त', 'कमिश्नरी', 'जिला', 'तहसील', 'परगना', आदि में उत्तराधर-समावेशी सम्बन्ध है। देश कई प्रान्तों में बँटा रहता है, प्रान्त कई कमिश्नरियों में, कमिश्नरी कई जिलों में आदि। भाषाविज्ञान के अन्तर्गत संरचना में भी उत्तराधर क्रम मिलता है – प्रोक्ति, वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद, शब्द, शब्दांश, रूपिम, व्याकरणिक उत्तराधर क्रम हैं। इसी प्रकार अंगागी-सम्बन्ध भी होता है। शरीर के कई अंग हैं – शीर्ष, वक्ष, उदर, हस्त, पाद आदि। यदि 'भुजा' को अंगी मानें तो 'बाहु' और 'उँगलियाँ' दो प्रमुख अंग हैं। अंगी बिना अंग के रह सकता है। जैसे– अंगुलीकटा हाथ, हथकटी भुजा, भुजाकटा शरीर आदि। इसी प्रकार उपादान-उत्पाद सम्बन्ध है। जैसे – मिट्टी के घड़े, कुल्हड़ आदि से या मिठाई का चीनी, सीरा आदि से। वास्तव में आर्थी क्षेत्र, वर्ग, उपवर्ग के व्यष्टि किसी न किसी आर्थी सम्बन्ध में आबद्ध रहते हैं।

5.1.06. शब्द और अर्थ का सम्बन्ध (संकेतग्रह)

भाषा में किसी भी शब्द का अर्थ निश्चित कैसे होता है। शब्द एवं अर्थ का क्या सम्बन्ध है ? यह प्रश्न सदैव ही भाषाविदों के चिन्तन का विषय रहा है। 'गाय' कहने से 'गाय' पशु का ही अर्थ क्यों होता है ? अश्व आदि अन्य पशु क्यों नहीं ? विद्वानों ने इस प्रश्न का उत्तर यह दिया है कि प्रत्येक सार्थक शब्द से किसी न किसी विशेष वस्तु का बोध होता है। किस शब्द से किस वस्तु का अर्थबोध होगा, यह संकेतग्रह पर आधारित होता है। संसार की प्रत्येक भाषा में कोई शब्द किसी अर्थ की प्रतीति कराता है। किस भाषा में किस शब्द का क्या अर्थ होगा, यह संकेतित है। यह संकेत सामान्य रूप से सामाजिक स्वेच्छा या याद्रेच्छिकता से उत्पन्न होता है। किसी शब्द का प्रयोग प्रारम्भ में किसी विशेष अर्थ में हो गया तो बाद में वह शब्द उस समाज में उसी अर्थ में प्रचलित या लोकप्रिय हो जाता है। वही उस शब्द का सांकेतित अर्थ बन जाता है। एक ही शब्द (या ध्वनि-समूह) से विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग अर्थबोध होता है। जैसे, अंग्रेजी – Know (नो, जानना) संस्कृत और हिन्दी में निषेधार्थक 'नो' माना जाएगा। संस्कृत-हिन्दी में 'आम' (आम = फल) तथा अरबी भाषा में आम (= सार्वजनिक, सामान्य) अलग-अलग अर्थबोधक शब्द है। अंग्रेजी Knee (नी, घुटना) तथा संस्कृत में 'नी' (ले जाना) होगा।

इससे स्पष्ट है कि किसी एक ध्वनि का कोई एक अर्थ नहीं है। किसी शब्द का किसी अर्थ से सम्बन्ध स्थापित होना ही 'संकेतग्रह' कहलाता है। साथ ही किसी ध्वनि-समूह से किसी वस्तु का सम्बन्ध स्थापित होना भी संकेतग्रह है। यह संकेतग्रह लोक व्यवहार पर आधारित होता है।

5.1.06.1. अन्वय-व्यतिरेक पद्धति

जिस शब्द के होने पर जो अर्थ बना रहेगा, उसे 'अन्वय' कहते हैं। जिस शब्द के न होने पर जो अर्थ नहीं रहेगा, उसे 'व्यतिरेक' कहते हैं। 'अन्वय' को 'आवाज' तथा 'व्यतिरेक' को 'उद्वाप' कहा जाता है। एक बालक अन्वय-व्यतिरेक की पद्धति से ही कोई भाषा सीख पाता है। 'पुस्तक लाओ', 'पुस्तक ले जाओ', 'कॉपी लाओ', 'कॉपी ले जाओ' – इन वाक्यों से चार शब्द बालक सीखता है – पुस्तक, कॉपी, लाओ, ले जाओ। बालक को स्पष्ट हुआ कि 'पुस्तक' शब्द का अर्थ – शिक्षा या अध्ययन से सम्बद्ध है। 'कॉपी' शब्द का अर्थ लेखन से सम्बद्ध है। 'लाओ' = ले आना और 'ले जाओ' = हटाना होता है। इस अन्वय-व्यतिरेक पद्धति से बालक एक-एक शब्द के अर्थ को ग्रहण कर लेता है।

5.1.06.2. बिम्ब निर्माण

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह माना जाता है कि प्रत्येक शब्द का एक चित्र (बिम्ब) मानव-मस्तिष्क पर अंकित होता है। यह व्यक्ति विशेष पर उसके समाज विशेष का प्रभाव होता है। यह बिम्ब मस्तिष्क में स्थायी रूप से बना रहता है। किसी भी वस्तु को देखने पर उसका बिम्ब अंकित हुआ। बार-बार देखने पर हम उसे पहचान लेते हैं कि यह अमुक वस्तु है। इसी प्रकार मन पर भी वस्तु का बिम्ब अंकित होता है। साथ ही उस वस्तु का वाचक शब्द भी संस्कार रूप में अंकित हो जाता है। 'गाय' शब्द और उसके अर्थ (गाय-पशु) के स्थिर मानसिक

संस्कार को बिम्ब-निर्माण कहते हैं। इस बिम्ब-निर्माण के परिणामस्वरूप ही 'गाय' शब्द और उसका अर्थ 'गाय पशु' सम्बद्ध हो गया। इसीलिए 'गाय पशु' को देखते ही 'गाय' शब्द प्रस्तुत हो जाता है।

5.1.06.3. दार्शनिक दृष्टि

भाषा विषयक दार्शनिक दृष्टिकोण को भाषा दर्शन कहते हैं। भाषा दर्शन के आधार पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि शब्द और अर्थ परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। शब्द शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा है। दोनों को मिलाकर ही 'सार्थक' शब्द निर्मित होता है। अर्थ के न होने पर शब्द 'निर्जीव' है और शब्द न हो तो 'अर्थ' अग्राह्य या अप्रयोज्य है। अर्थ शब्दरूपी शरीर में चेतना प्रदान करता है। अतः शब्द एवं अर्थ के समन्वित रूप में भाषा की सार्थकता है। भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में शब्द एवं अर्थ को एकतत्व माना है। जो दो होते हुए भी अभिन्न अंग हैं। भर्तृहरि ने शब्द-अर्थ सम्बन्ध को वाचक-वाच्य रूप में माना है। वे 'अभिधा' शक्ति के अंदर ही 'लक्षणा' तथा 'व्यंजना' का भी अन्तर्भाव मानते हैं। यथा –

अस्याऽयं वाचको वाच्य इति षष्ठ्या प्रतीयते।
योगः शब्दार्थयोस्तत्त्वमप्यतो व्यपदिश्यते॥

(वाक्यपदीय – 3-3-3)

5.1.06.4. अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व का संयोग

अर्थतत्त्व (Semanteme) तथा सम्बन्धतत्त्व (Morpheme) सभी भाषाओं में एक प्रकार का नहीं है। मुख्यतः यह संयोग तीन प्रकार का परिलक्षित होता है –

(क) पूर्ण संयोग : अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व कुछ भाषाओं में इस प्रकार मिल जाते हैं कि दोनों को अलग दिखाना सम्भव नहीं होता। वे 'नीरक्षीर-न्याय' के अनुसार दूध-पानी की तरह मिल जाते हैं। यथा –

संस्कृत	–	भूत > भौतिक, आत्मन् > आत्मिक, नदी > नद्यः
अंग्रेजी	–	Rum > Ram, Bring > Brought, Get > Got
अरबी	–	क् त् ब् > किताब, कातिब, मकतब, कुतुब, किताबत

भारोपीय सेमिटिक (Semitic, सामी) परिवार की भाषाओं में पूर्ण संयोग का बाहुल्य है।

(ख) अपूर्ण संयोग : कुछ भाषाओं में अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व इस प्रकार मिले रहते हैं कि वे एक होने पर भी अलग-अलग देखे जा सकते हैं। इसे 'तिल-तन्डुलन्याय' कहना चाहिए। जैसे तिलों में चावल अलग दिखाई देता है, उसी तरह अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व अलग-अलग दिखाई देते हैं। जैसे –

संस्कृत – देव+त्व > देवत्व, मानवता > मानव+ता, सिंहवत् > सिंह+वत्, धनवान् > धन+वान्, आयुष्मान > आयुष+मान्

हिन्दी – उसको > उस+को, कृति > कृ+ति, भूत > भू+त, जीवन > जीव+अन्, मैंने > मैं+ने, गाड़ीवान् > गाड़ी+वान्

अंग्रेजी – Boys > Boys+s, Walked > walk+ed, Manly > Man+ly, Playing > Play+ing, Childish > Child+ish

तेलुगू – गुर्रम् (पेड़) > गुर्रम्+उ (पेड़ का), गुर्रम्+उनु (पेड़ को), गुर्रम्+उनकु (पेड़ के लिए)

तुर्की – एव् (घर) > एव्+इ (घर को)। एव्+लेर्+इ (घरों को), एव्+इन (घर का), एव लेटिन (घरों का)। लेर् = बहुवचन।

(ग) दोनों स्वतन्त्र : कुछ भाषाओं में अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व दोनों स्वतन्त्र होते हैं। इन्हें पृथक् किया जा सकता है। जैसे –

(i) चीनी भाषा में दो प्रकार के शब्द होते हैं – पूर्णशब्द, रिक्त शब्द। अर्थतत्त्व को पूर्ण शब्द तथा सम्बन्धतत्त्व को रिक्त शब्द कहते हैं। रिक्त शब्दों पर कभी उदात्त स्वर (Accent) नहीं होता। सम्बन्धतत्त्व के रूप में 'ति' का अर्थ है – का, मेन – बहुवचन चिह्न, लि – भूतकाल का चिह्न।

पूर्ण शब्द : वो (Wo) – मैं, नी (Ni) – तू, था (Ta) – वह।

फु (Fu) – पिता, मु (Mu) – माता, फु-चिन (पिता) और मु-चिन (माता)।

'चिन' का स्वतन्त्र अर्थ 'सम्बन्धी' है।

फु-चिन (पितृ-सम्बन्धी, पिता)।

पूर्ण शब्द	रिक्त शब्द	शब्द	अर्थ
वो (Wo मैं)	ति (Ti, का)	वोति	मेरा
फुचिन (पिता)	–	वोति फुचिन	मेरे पिता
लाइ (Lai, आना)	ला (La, भूतकाल)	लाइला	लाया

इस प्रकार वो–मेन–ति मु–चिन (हमारी माँ), नी–मेन–ति फू चिन (तुम्हारे पिता)।

(ii) कुछ भाषाओं में अर्थतत्त्व एक स्थान पर इकट्ठे कर दिए जाते हैं और सम्बन्धतत्त्व दूसरी जगह। अमेरिका की चिनकू भाषा में सम्बन्धतत्त्व पहले रख दिया जाता है और अर्थतत्त्व बाद में। जैसे – उस आदमी ने औरत को चाकू से मार दिया। इस वाक्य को लिखेंगे –

वह (मनुष्य) – वह (स्त्री) – यह – से। मारना – आदमी, औरत – चाकू।

5.1.06.5. सम्बन्धतत्त्व की अधिकता

कुछ भाषाओं में सम्बन्धतत्त्व प्रत्येक शब्द के साथ लगता है। इसीलिए सम्बन्धतत्त्व की अधिकता हो जाती है। जैसे – सूबी भाषा में 'ब' बहुवचन सूचक है। यथा, लड़कियाँ चलती हैं – ब कजन ब एंदा।

'मु' – एकवचन का चिह्न है। यथा –

सुन्दर व्यक्ति – मु – न्तु मु – लोतु।

संस्कृत में विशेष्य के अनुसार सभी विशेषणों में लिंग, वचन, विभक्ति लगते हैं। यथा – पुस्तकानि, वीराः, योद्धाः, कोमलाङ्ग्यः, युवतयः।

इस प्रकार सभी शब्दों में सम्बन्धतत्त्व लगते हैं।

5.1.07. संस्कृत में सम्बन्धतत्त्व

सम्बन्धतत्त्व के सभी नौ प्रकार संस्कृत में मिलते हैं –

(1) शून्य तत्त्व – बालिका, वारि, मधु, वाक्, पयः।
(2) स्वतन्त्र शब्द – इति, व, वा, कृते, अर्थम्।
(3) पदक्रम – पतिगृह – गृहपति, राजगृह – गृहराज।
(4) द्विरुक्ति – दृश् > ददर्श, युद्ध > युयुत्सुः।
(5) आगम – इसके तीनों भेद पूर्वसर्ग, मध्यसर्ग और अन्तसर्ग में मिलते हैं। जैसे – विजय, युद्ध – युध्यते, देव – दैव।
(6) आन्तरिक परिवर्तन – इसके भी तीनों भेद मिलते हैं। जैसे, गुण – गौण, भोज्य – भोग्य, भज् – अभाक्षीत, अभक्त।
(7) आदेश – दृश् > पश्य, अस् > भू।
(8) ध्वनि वियोजन – दा + सन् > दिदासति के स्थान पर दित्सति।
(9) स्वराघात – इन्द्रशत्रुः।

5.1.08. हिन्दी में सम्बन्धतत्त्व

सम्बन्धतत्त्व के अधिकांश प्रकार हिन्दी में भी मिलते हैं –

(1) शून्य तत्त्व	–	कर, जा, खा, उठ, बैठ आदि।
(2) स्वतन्त्र शब्द	–	कारक चिह्न – ने, को, से, में, पर आदि।
(3) पदक्रम	–	राम आया – आयाराम, राम गया – गयाराम। (दलबदलू)
(4) द्विरूक्ति	–	थपथपाना, खटखटाना, बड़बड़ाना।
(5) आगम	–	इसके तीनों भेद मिलते हैं। जैसे – संविधान, परछाईं, विक्रय > विक्री, गिरना > गिरवाना, पढ़ना > पढ़वाना, उठना > उठवाना, उस > उसको, तू > तूने, मैं > मैंने।
(6) आन्तरिक परिवर्तन	–	उठ > उठा, करना > कराना, लिखना > लिखाना।
(7) आदेश	–	जा > गया।
(8) स्वराघात	–	काकु, व्यंग्य आदि में स्वराघात के कारण अर्थ परिवर्तन। 'उठा > उठा', 'जला > जला'।

5.1.09. पाठ-सार

01. अर्थ के सम्बन्ध में भारतीय भाषा चिन्तन की परम्परा प्राचीन तथा समुन्नत है।
02. नाम तथा रूप के सम्बन्ध को भाषा की अर्थ संरचना के अध्ययन का आधार माना गया है।
03. भाषा का सारतत्त्व अर्थ ही है।
04. शब्द के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है, उसे ही अर्थ कहते हैं।
05. ध्वनियों के दो वर्ग हैं – ध्वन्यात्मक तथा वर्णात्मक।
06. व्यष्टिपरक शब्द से 'जाति' की संकल्पना जुड़ जाती है। जैसे – 'खिलौना'।
07. लोक-व्यवहार अर्थग्रहण पद्धति का आधार है।
08. प्रत्येक शब्द का अर्थ अनेकानेक अर्थतत्त्वों के संयोजन से बनता है। जैसे – 'बालक-बालिका', 'कटोरा-कटोरी' आदि।
09. आर्थी क्षेत्रों के अन्तर्गत जो शब्द या शब्द-समूह आते हैं उनके मध्य एक आन्तरिक सम्बन्ध अवश्य होता है। जैसे, फूल (वर्ग नाम) – कमल, गेंदा आदि उस वर्ग के सदस्य नाम।
10. किसी एक ध्वनि का कोई एक अर्थ नहीं है। किसी शब्द का किसी अर्थ से सम्बन्ध स्थापित होना 'संकेतग्रह' कहलाता है।
11. अन्वय-व्यतिरेक पद्धति से शब्दार्थ ग्रहण होता है।
12. अर्थतत्त्व तथा सम्बन्धतत्त्व का संयोग सभी भाषाओं में अलग-अलग होता है।

5.1.10. अभ्यास प्रश्न

1. शब्द की संकल्पना को स्पष्ट कीजिए।
2. अर्थ की प्रकृति या लक्षण स्पष्ट कीजिए।
3. शब्दार्थ सम्बन्ध से आप क्या समझते हैं ?
4. अर्थग्रहण में सम्बन्धतत्त्व की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. संस्कृत तथा हिन्दी के सम्बन्धतत्त्व की तुलना कीजिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : अर्थ विज्ञान

इकाई – 2 : अर्थबोध (संकेतग्रह) के साधन, अर्थबोध (संकेतग्रह) के बाधक तत्त्व

इकाई की रूपरेखा

5.2.0 उद्देश्य
5.2.1 प्रस्तावना
5.2.2 अर्थविज्ञान का भारतीय सन्दर्भ
5.2.3 अर्थबोध कैसे होता है ?
5.2.3.1 आश्रय
5.2.3.1.1 वक्ता
5.2.3.1.2 श्रोता
5.2.3.2 प्रत्यय या प्रतीति
5.2.3.2.1 आत्म-प्रत्यक्ष
5.2.3.2.1.1 बाह्य-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान
5.2.3.2.1.2 अन्तःइन्द्रिय-जन्य ज्ञान
5.2.3.2.2 पर-प्रत्यक्ष
5.2.4 अर्थबोध (संकेतग्रह) के साधन
5.2.5 शब्द-शक्ति
5.2.6 बौद्धिक नियम
5.2.7 अर्थबोध (संकेतग्रह) के बाधक तत्त्व
5.2.8 पाठ-सार
5.2.9 अभ्यास-प्रश्न

5.2.0. उद्देश्य

विगत पाठों में आपने अर्थ की प्रकृति, लक्षण, नाम तथा रूप, शब्द-अर्थ-सम्बन्ध आदि का अध्ययन किया। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. अर्थबोध के विषय में समझ सकेंगे।
ii. संकेतग्रह (अर्थ ज्ञान) के साधनों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
iii. अर्थबोध के बाधक तत्त्वों को जान सकेंगे।
iv. शब्द-शक्तियों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2.1. प्रस्तावना

मानवीय सभ्यता में बहुआयामी विकास का मुख्य स्रोत भाषा है। भाषा के साथ ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य और अर्थ का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शब्द या भाषा की आत्मा है अर्थ। अर्थ की प्रकृति, लक्षण, क्षेत्र के साथ ही अर्थबोध के साधनों का भी विशेष महत्त्व है। हम अर्थ कैसे ग्रहण करते हैं ? अर्थबोध में हमें कब, कहाँ कैसे कठिनाई अनुभव होती है ? आदि बातों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

5.2.2. अर्थविज्ञान का भारतीय सन्दर्भ

अर्थविज्ञान को अनेक भाषाविदों ने प्रारम्भ में दर्शन से सम्बद्ध विषय मानकर इसे भाषाविज्ञान से अलग ही रखा था। कालान्तर में यह भाषा-शास्त्र का ही अभिन्न अंग बनकर आज अर्थविज्ञान के रूप में पढ़ा और पढ़ाया जाता है। भारतीय भाषा चिन्तन में शब्द-अर्थ-विवेचन दर्शनशास्त्र का विषय रहा है। न्यायदर्शन तथा मीमांसा दर्शन में शब्द-शक्ति, शब्दार्थ ज्ञान, स्वतः प्रामाण्य – परतः प्रामाण्य आदि का गम्भीर अध्ययन किया गया है। वैदिक साहित्य में इन्द्र, वृत्र, वृत्रहा, नदी, उदक, तीर्थ आदि शब्दों की निरुक्ति (Etymology) मिलती है। ऋग्वेद में अर्थ के महत्त्व पर कुछ मंत्र हैं। यास्क-कृत 'निरुक्त' ही अर्थविज्ञान का सर्वप्रथम भारतीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में निर्वचन के नियम, अर्थ का महत्त्व, मंत्रार्थ विधि, प्रकरण आदि की महत्ता वर्णित है। पतंजलि द्वारा रचित 'महाभाष्य' तथा भर्तृहरि द्वारा रचित 'वाक्यपदीय' महत्त्वपूर्ण योगदान है। पाश्चात्य विद्वान् – फ्रांस के मिशेल ब्रेआल, जर्मनी के पाल. के. रीजिंग, ए. बेनरी, पोस्टगेट, ब्रुगमान, स्वीट आदि ने भी अर्थविज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

5.2.3. अर्थबोध कैसे होता है ?

भाषा का एक मानसिक पक्ष भी होता है। इस मानसिक पक्ष को ज्ञान, प्रत्यय या प्रतीति कहते हैं। हमारे मन-मस्तिष्क में कुछ भाव-विचार उत्पन्न होते हैं। शब्दों के द्वारा वक्ता उन भावों को प्रेषित करता है। श्रोता श्रवणेन्द्रिय से उन शब्दों को सुनता है। मन-मस्तिष्क को अर्थों की प्रतीति होती है।

5.2.3.1.आश्रय

भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषा के दो आश्रय होते हैं – वक्ता और श्रोता।

5.2.3.1.1.वक्ता

किसी भी विषयवस्तु के प्रति मानव-मन में कुछ विचार उत्पन्न होते हैं। उन विचारों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की इच्छा भी होती है। अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही होती है। मन-मस्तिष्क में उत्पन्न भाव या विचार को प्रत्यय (Concept) कहा जाता है। वह विचार वाग्यंत्र द्वारा ध्वनित होता है। यही भाषा का अभिव्यक्ति पक्ष है। इस भावात्मक अभिव्यक्ति का आधार मनुष्य का ज्ञानार्जन है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी

है। समाज में ही वह शब्दों को सुनकर ग्रहण करता है। वह सन्दर्भित अर्थ को भी आत्मसात करता है। अर्थ का वस्तु से संकेत क्या है, इसे भी ग्रहण करता है। शब्द-अर्थ दोनों ही मनुष्य के मन-मस्तिष्क में संचित होता जाता है। परिणामस्वरूप वह स्वयं स्वतन्त्र रूप से अधिकार के साथ भाषा के प्रयोग में सक्षम हो जाता है। भाषा के अन्तर्गत दो प्रकार की प्रक्रिया हर समय होती रहती है। इसे अभिव्यक्ति पक्ष तथा बोधपक्ष कहते हैं। अभिव्यक्ति पक्ष के अन्तर्गत भाषा का उच्चारण, ध्वनन या प्रकाशन आता है, तथा बोधपक्ष के अन्तर्गत भाषा को ग्रहण करना, तथा तदनुकूल बोधता को प्रदर्शित करना आता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि वक्ता और श्रोता सदैव अलग-अलग व्यक्ति ही हों। समय, परिस्थिति एवं आवश्यकतानुसार एक ही व्यक्ति वक्ता तथा श्रोता दोनों हो सकता है। वह जब भावों को अभिव्यक्त करता है तो वक्ता होता है और जब दूसरे के भावों को स्वयं सुनता है तो उस समय वही व्यक्ति श्रोता भी होता है। संलाप आदि के समय यह प्रक्रिया कभी-कभी इतनी तेजी से घटित होती है कि वक्ता या श्रोता के रूप में पहचान कठिन हो जाती है।

5.2.3.1.2.श्रोता

सर्वप्रथम मन में आये हुए विचार (प्रत्यय) के आधार पर जो शब्द-बिम्ब ध्वनि-प्रक्रिया के माध्यम से उच्चरित होते हैं, वह ध्वनि-तरंगों के द्वारा श्रोता तक पहुँचता है। श्रोता की कर्णेन्द्रिय उसे ग्रहण करके ध्वनि बिम्ब के रूप में परिवर्तित करती है। वह बिम्ब श्रोता के मन-मस्तिष्क में प्रत्यय या संकेत उत्पन्न करता है। इसके परिणामस्वरूप ही श्रोता को अर्थबोध होता है। इस प्रक्रिया का आरम्भ तथा अन्त दोनों प्रत्यय है। वागेन्द्रिय के द्वारा प्रत्यय की अभिव्यक्ति होती है और कर्णेन्द्रिय के द्वारा प्रत्यय बोधगम्य होता है। वक्ता के द्वारा प्रकट किये गए भावों को श्रोता ने उसी रूप में ग्रहण कर लिया। इस प्रक्रिया की तुलना वायरलेस (Wireless), टेलीग्राफ (Telegraph) तथा टेलीविजन (Television) से भी कर सकते हैं। इन यंत्रों में भी ध्वनियों को विद्युत-तरंगों के द्वारा प्रेषित करते हैं। सांकेतिक भाषा (Code words) के माध्यम से प्रेषित ध्वनियाँ ग्रहण किये जाने पर पुनः सांकेतिक रूप में परिवर्तित होती हैं। उससे उनका अर्थबोध हो जाता है। अभिव्यक्ति तथा अर्थबोध ही भाषा की मूल प्रक्रिया है। इसी से भाषा संचालित होती है। सन्देश का आदान-प्रदान ही भाषा का उद्देश्य एवं कार्य है। विचारों की अभिव्यक्ति के समय हम वक्ता हैं और अर्थबोध के समय श्रोता। दूरदर्शन की तरह जब हम परिचित वक्ता की ध्वनि को ग्रहण करते हैं तो उसकी आकृति भी हमारे समक्ष मानसिक स्तर पर साकार हो जाती है।

इस प्रकार भाषा का उद्भव तथा अर्थबोध दोनों ही भाषा के मानसिक पक्ष से सम्बद्ध है। वक्ता से लेकर श्रोता तक और आदि से लेकर अन्त तक, भाषा मनुष्य के मानसिक स्तर से जुड़ी हुई है।

5.2.3.2.प्रत्यय या प्रतीति

प्रत्यय या प्रतीति के रूप में अर्थबोध होता है। इस प्रतीति के दो साधन हैं – आत्मा-प्रत्यक्ष (आत्मानुभूति) और पर-प्रत्यक्ष (परानुभूति)।

5.2.3.2.1.आत्म-प्रत्यक्ष

स्वयं किसी वस्तु को देख-सुनकर अनुभव करना आत्म-प्रत्यक्ष है। पशु-पक्षी, मनुष्य आदि को देखकर स्वयं उस विषय में ज्ञानार्जन स्वानुभव है। इसी प्रकार स्वयं किसी वस्तु को खाकर उसका रस अनुभव करना आत्म-प्रत्यक्ष है। आत्म-प्रत्यक्ष अधिक स्पष्ट, प्रामाणिक तथा स्थायी होता है। आत्म-प्रत्यक्ष के भी दो भेद हैं – बाह्य-इन्द्रिय-जन्य और अन्तःइन्द्रिय-जन्य।

5.2.3.2.1.1.बाह्य-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान

मनुष्य की बाह्य इन्द्रियाँ – आँख, नाक, कान, त्वचा तथा जिह्वा है। इन इन्द्रियों से क्रमश: देखने, सूँघने, सुनने, स्पर्श करने तथा चखने या स्वाद ग्रहण करने का कार्य होता है। यह बाह्य-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान या अनुभव है। इनका स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

5.2.3.2.1.2.अन्तःइन्द्रिय-जन्य ज्ञान

यह अन्तःकरण या मन का विषय है। कुछ सूक्ष्म अनुभव बाह्य इन्द्रियों से न होकर मन के द्वारा होता है। जैसे – सुख-दुःख, शोक, क्रोध, भूख-प्यास आदि का अनुभव मनुष्य स्वयं अपने मन से करता है। यह अन्तःइन्द्रिय-जन्य आत्म-प्रत्यक्ष है। यह सूक्ष्म होता है। इसलिए यह कम स्पष्ट होता है। इसका वर्णन कुछ सीमा तक ही किया जा सकता है।

5.2.3.2.2.पर-प्रत्यक्ष

पर-प्रत्यक्ष का तात्पर्य है, 'जिसे दूसरे ने देखा है।' जिन देशों, स्थानों, पर्वतों, समुद्रों को हमने स्वयं नहीं देखा है, उनका ज्ञान हम दूसरों के प्रत्यक्ष अनुभव से ही करते हैं। जिन्होंने स्वयं उसे देखा या अनुभव किया है। पर-प्रत्यक्ष के आधार पर ही हम भूगोल में विश्व के देशों, नगरों, समुद्रों, दर्शनीय स्थानों आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं। पर-प्रत्यक्ष में ही आप्त वाक्य, आप्त वचन तथा प्रामाणिक व्यक्तियों के कथन आते हैं। अतः सम्पूर्ण वैदिक साहित्य, पुराण एवं स्मृति-ग्रन्थ हमें पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि आध्यात्मिक तथा भौतिक ज्ञान प्रदान करते हैं। हम उसे मानते हैं क्योंकि वह ज्ञान पर-प्रत्यक्ष किन्तु प्रामाणिक है।

5.2.4. अर्थबोध (संकेतग्रह) के साधन

आचार्य जगदीश ने 'शब्दशक्ति प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ में संकेतग्रह या अर्थबोध के आठ साधन बताए हैं – (1) व्याकरण, (2) उपमान, (3) कोश, (4) आप्त वाक्य, (5) व्यवहार, (6) वाक्यशेष, (7) विवृत्ति (विवरण, व्याख्या) और (8) प्रसिद्ध पद का सान्निध्य ।

(1) व्याकरण : शब्दों के अर्थज्ञान का प्रमुख साधन व्याकरण है। प्रकृति-प्रत्यय, शब्द. रूप, समास, तद्धित, कृत, स्त्रीलिंग प्रत्ययों आदि का ज्ञान व्याकरण के द्वारा ही प्राप्त होता है। कर्त्ता – कृ (करना) + तृ (ता प्रत्यय वाला अर्थ) कर्त्ता – करने वाला अर्थबोध हुआ। पत् से पतति, पठ् से पठति, अपठत्, पठिष्यति, – पढ़ता है, पढ़ा, पढ़ेगा का अन्तर व्याकरण से ही स्पष्ट होता है।

(2) उपमान : उपमान का तात्पर्य है, 'सादृश्य'। सदृश वस्तु को बताकर किसी शब्द का अर्थ स्पष्ट करना उपमान कहलाता है। जैसे, गौरिव गवयः (गाय के तुल्य नील गाय होती है)। इस उपमान से नील गाय का अर्थ ज्ञात हो गया।

(3) कोश : शब्दार्थ बोध का प्रमुख साधन शब्दकोश है। कोश-ग्रन्थों से शब्दों का अर्थ समझने में अत्यधिक सहायता प्राप्त होती है। वृत्रहा, त्रिपुरारि, मध्वरि, काय आदि के अर्थ कोश-ग्रन्थ की सहायता से ज्ञात होते हैं।

(4) आप्तवाक्य : वेद, शास्त्र, गुरु, माता-पिता आदि आप्त में गिने जाते हैं। 'आप्त' का अर्थ है, 'प्रामाणिक', वेद आप्त ग्रन्थ हैं। सम्पूर्ण प्रामाणिक आध्यात्मिक तथा भौतिक ज्ञान हमें वेदों से प्राप्त होते हैं।

(5) व्यवहार : व्यवहार का तात्पर्य है, 'लोक-व्यवहार'। मनुष्य को बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक लोक-व्यवहार के द्वारा ही अर्थ-बोध होता है। यही अर्थबोध, 'संकेतग्रह' कहलाता है। सम्बन्धियों के नाम – भाई, चाचा, काका, मामा आदि, पशु-पक्षियों के नाम, बाजार की सभी वस्तुओं के नाम आदि का ज्ञान हमें लोक-व्यवहार से ही प्राप्त होता है।

(6) वाक्यशेष (प्रकरण) : वाक्यशेष का तात्पर्य है, 'प्रसंग' या 'प्रकरण'। प्रकरण के द्वारा अनेकार्थक शब्दों का अर्थ-निर्णय होता है। प्रसंग के अनुसार शब्दार्थ-निर्णय होता है। 'रस' शब्द का अर्थ – आनन्द, काव्य-रस, भोज्य षड् रस, आदि होता है। इसी प्रकार 'ध्वनि' शब्द का अर्थ भी प्रसंगानुसार – व्यंजना, शब्द या कूजन (जैसे – 'कोकिलध्वनि') आदि होता है।

(7) विवृत्ति (व्याख्या) : व्याख्या या विवरण के द्वारा अनेक शब्दों का अर्थ स्पष्ट होता है। पारिभाषिक, तकनीकी अथवा दार्शनिक शब्दों को बिना व्याख्या के नहीं समझा या समझाया जा सकता है। जैसे – तन्त्र-विधान, विधि, शासन-पद्धति, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण-दर्शन, अद्वैत-द्वैत, त्रैत, विशिष्टाद्वैत आदि विषयक शब्दों का अर्थबोध व्याख्या या विवरण के द्वारा ही प्राप्त होता है।

(8) प्रसिद्ध (ज्ञात) पद का सान्निध्य : प्रसिद्ध या ज्ञात पदों की समीपता से अज्ञात शब्द का अर्थ ज्ञात होता है। जैसे, 'बलाहक और विद्युत का संयोग' में विद्युत (बिजली) का अर्थ ज्ञात होने से 'बलाहक' का अर्थ बादल हुआ। 'पयोधि में मगर' में मगर का अर्थ ज्ञात होने से 'पयोधि' का अर्थ 'समुद्र' ज्ञात हुआ। 'सुधा' के दो अर्थ हैं – 'अमृत' और 'चूना'। 'सुधासिक्त भवन' में भवन के सान्निध्य से 'सुधा' का 'चूना' अर्थ लिया जाएगा। (चूना से पुता मकान), 'सुधा-पान' में 'पान' के सान्निध्य से 'सुधा' का अर्थ 'अमृत' होगा।

पाश्चात्य विद्वानों ने अर्थबोध के तीन साधन माने हैं –

(1) व्यवहार (Demonstration) : किसी वस्तु का बोध उसे बार-बार देखने-दिखाने या संकेतित करने से होता है। जैसे – ब्लैकबोर्ड, पेंसिल, कलम, किताब, काजी आदि शब्दों का बोध होता है।

(2) विवरण (Circumlocution) : किसी वस्तु का विवरण देकर उसका बोध कराने से अर्थबोध हो जाता है। जैसे – पहाड़, जंगल, समुद्र, किला, ताजमहल आदि का ज्ञान उसके विषय में विवरण देने से होता है।

(3) अनुवाद (Translation) : एक ही भाषा के कठिन शब्दों को या अन्य भाषा के शब्दों को अनुवाद के द्वारा अर्थबोध कराया जाता है। वर्तमान समय में अंग्रेजी-हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद अर्थबोध की दृष्टि से प्रचलित है।

आचार्य जगदीश निर्देशित उपर्युक्त आठ साधनों की अपेक्षा ये तीन साधन अर्थबोध की दृष्टि से काफी कम प्रतीत होते हैं।

5.2.5. शब्द-शक्ति

शब्द तथा अर्थ में शब्द 'बोधक' है और अर्थ 'बोध्य'। किसी भी शब्द से अर्थबोध होना उसका अभीष्ट है। 'गाय' शब्द से गाय-पशु तथा 'दूध' शब्द से दूध-वस्तु का बोध होता है। अर्थ (या वस्तु) ही उपयोगी है, केवल शब्द नहीं। शब्द का कार्य केवल अर्थ (वस्तु) का बोध कराना है। इसीलिए भाषा की दृष्टि से अर्थ सर्वोपरि है। शब्द-अर्थ-सम्बन्ध को वाच्य-वाचक या बोध्य-बोधक सम्बन्ध कहते हैं। शब्द वाचक या बोधक है, अर्थ वाच्य या बोध्य।

संस्कृत काव्यशास्त्र में शब्द-अर्थ के विषय में पर्याप्त चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इस विषय को 'शब्दशक्ति' या 'वृत्ति-निरूपण' नाम से जाना जाता है। शब्दों के द्वारा होने वाला अर्थ-बोध तीन प्रकार का है – वाचक, लक्षक तथा व्यंजक। इन तीनों में विद्यमान शक्ति या वृत्ति को अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना कहते हैं।

शक्ति या वृत्ति	शब्द	अर्थ	उदाहरण
अभिधा	वाचक	वाच्य (मुख्य)	मनुष्य, गाय
लक्षणा	लक्षक	लक्ष्य (गौण)	'गंगा किनारे घर'
व्यंजना	व्यंजक	व्यंग्य (प्रतीयमान)	'उगते सूरज को सभी प्रणाम करते हैं'

(1) अभिधा : अभिधा के द्वारा बताया जाने वाला अर्थ प्रमुख या मूल अर्थ होता है। यह मुख्य वृत्ति या शक्ति है। अभिधा के द्वारा शब्द का लौकिक एवं व्यावहारिक अर्थ प्रकट होता है। यथा – 'घोड़ा दौड़ता है', 'गाय दूध देती है', 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' आदि वाक्यों के द्वारा लोकप्रचलित प्रमुख अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसमें घोड़ा, गाय, मनुष्य शब्दों के वाचक तथा गाय, घोड़ा (पशु), मनुष्य (मानव) आदि अर्थों को वाच्य कहते हैं। इस अर्थ बताने वाली शक्ति को 'अभिधा' कहते हैं।

(2) लक्षणा : लक्षणा में तीन बातें होती हैं –

(i) मुख्य अर्थ में बाधा

(ii) मुख्यार्थ से सम्बद्ध अर्थ ग्रहण करना

(iii) रूढ़ि या प्रयोजन कारण

संस्कृत का प्रसिद्ध उदाहरण है, 'गंगायां घोष:' (गंगा में कुटी)। गंगा जल की धारा है। जल की धारा में कुटी नहीं हो सकती। अतः गंगा के किनारे कुटी अर्थ होता है। 'मोहन गधा है' में आदमी को गधा या पशु कहा गया है। आदमी गधा नहीं हो सकता। अतः इसका अर्थ है कि वह आदमी गधा पशु के तुल्य मूर्ख है। गंगा आदि शब्द लक्षक हैं, गंगातीर आदि अर्थ लक्ष्य हैं। इसमें बोधक शक्ति 'लक्षणा' है।

(3) व्यंजना : व्यंजना में व्यंग्यार्थ प्रमुख होता है। इसे प्रतीयमान अर्थ या ध्वनि कहा जाता है। यह वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ से आगे की कोटि है। व्यंग्यार्थ अनेक प्रकार का हो सकता है। 'गंगायां घोष' (गंगा में कुटी) में शीतलता, पवित्रता आदि अर्थ व्यंग्यार्थ है। 'सुबह के सूरज' के सैकड़ों अर्थ हैं। 'गंगा' आदि शब्दों व्यंजक तथा पवित्रता आदि अर्थों को व्यंग्य और शब्द-शक्ति को व्यंजना कहते हैं।

इस प्रकार ये शब्द-शक्तियाँ अर्थबोध के विविध आयाम प्रस्तुत करती हैं।

5.2.6. बौद्धिक नियम

अर्थबोध में मुख्यतः अर्थ विस्तार, अर्थ संकोच तथा अर्थादेश का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इसी के अनुसार कुछ बुद्धिगत नियम भी कार्य करते हैं। इसे 'बौद्धिक नियम' कहा जाता है। ब्रील ने ही सर्वप्रथम अर्थ के अध्ययन के सन्दर्भ में बौद्धिक नियम की चर्चा की थी। कुछ परम्परागत बौद्धिक नियम निम्नवत् हैं –

(1) विशेषीकरण या विशेष भाव का नियम : किसी एक भाव, रूप या सम्बन्ध आदि को व्यक्त करने के लिए कभी अनेक शब्द या प्रत्यय आदि प्रयुक्त होते हैं फिर धीरे-धीरे उनमें केवल एक-दो शेष रह जाते हैं तो इसे विशेष भाव या नियम कहते हैं क्योंकि प्रयोक्ता एक या दो को ही उन सारे के स्थान पर विशेष रूप से प्रयुक्त करने लगता है। संस्कृत में तुलनात्मक प्रत्यय तरप् (तर – कुशलता, लघुतर, महत्तर, धनितर) और इयिसुन् (ईयस – पट्ट > पटीयस्, धनिन > धनीयस्, गुरु > गरीयस, पिय > प्रेयस् आदि) दो थे। इसी प्रकार सर्वाधिकता-सूचक प्रत्यय भी तमप् (तम – कुशलतम, लघुतम, महत्तम, धनितम) और इष्ठन् (इष्ठ – घनिष्ठ, गरिष्ठ, श्रेष्ठ) दो थे। बाद में 'तर' और 'तम' का प्रचलन कम हो गया। 'ईयस' और 'इष्ठ' अधिक प्रयुक्त होने लगा। अर्थबोध की दृष्टि से यह बौद्धिक प्रयोग बन गया।

(2) अर्थोद्योतन का नियम : 'उद्योतन' (Irradiation) का अर्थ है – 'चमकना'। जब शब्द में एक नया अर्थ चमक जाता है तो उसे इस नियम में रखते हैं। इसके अन्तर्गत कई प्रकार के अर्थबोध की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं – (i) कभी-कभी कोई प्रत्यय किसी अच्छे अर्थ से सम्बद्ध हो जाता है। (ii) कभी प्रत्यय किसी बुरे अर्थ से भी सम्बद्ध हो जाता है। (iii) कभी-कभी नया अर्थ निकल आता है। (iv)

कभी-कभी सादृश्य के आधार पर एक शब्द के समानान्तर बहुत से शब्द बन जाते हैं। (V) कभी-कभी पूरी प्रकृति प्रत्यय बन जाती है। ये सभी अर्थबोध के ही विविध रूप हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

जर्मन प्रत्यय Hand का विकसित रूप and है। यह फ्रांसीसी और अंग्रेजी में प्रयुक्त होता है। मूलतः इसका अर्थ खराब नहीं था। अंग्रेजी में भी Standard या Play card में इसका अर्थ बुरा नहीं है। लेकिन संयोग से इसका प्रयोग बुरे शब्दों के साथ विशेष हुआ जैसे – Dullard, Coward, Sluggard, Drunkard, Bustard आदि। ish की भी यही दशा है। प्रारम्भ में यह विशेषण बनाने का सामान्य प्रत्यय था। जैसे – Foloish (= Popular) या English, Danish, British आदि। बाद में रंगों को हलका रूप देने के लिए इसका प्रयोग होने लगा। जैसे – Reddish, Brownish, Whitish. अब इसका प्रयोग बुरे अर्थों के प्रत्ययों के रूप में होने लगा, जैसे – Helish, Devilish, Knavish, Fiendish, Foolish, Thievish, Childish, Boyish, Girlish, Foppish तथा Swinish आदि। हिन्दी का 'हा' प्रत्यय पहले सामान्य अर्थ देता था, जैसे – बइरहा, मरकहा, कटहा, पछवँहा, किन्तु अब इसका प्रयोग घमण्ड के अर्थ में विशेष हो रहा है। 'रूपयहा' का अर्थ केवल 'रुपये वाला' नहीं है, बल्कि 'जिसे अपने रुपये का घमण्ड हो', मोटरहा, कुर्सिहा, कितबहा भी ऐसे ही हैं। 'देहात' में 'ई' लगाने से 'देहाती' शब्द बना। 'ई' के स्थान पर 'आती' प्रत्यय लगने लगा और 'शहराती' शब्द बन गया। 'पश्चात्' से बने शब्द 'पाश्चात्य' में 'आत्य' प्रत्यय समझा गया और इसी आधार पर लोगों ने दाक्षिणात्य और पौर्वात्य शब्द चला दिए हैं। अंग्रेजी और ग्रीक में तथा लैटिन में 'ic' प्रत्यय है। जैसे – Civic, Linguistic. ऐसे शब्द भी पर्याप्त हैं जिनमें ic के पहले 't' भी आता है। जैसे – Rustic, Cosmetic, Accoustic आदि। दोनों को मिलाकर लोगों ने 'टिक' प्रत्यय समझ लिया और बलिया से 'बलियाटिक' बना डाला। यह शब्द लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस में अभी भी 'मूर्ख' के अर्थ में चलता है। इसी प्रकार Asiatic भी है।

(3) <u>विभक्तियों के अवशेष का नियम</u> : संयोगात्मक भाषा में अर्थबोध की ऐसी स्थिति आ जाती है कि ध्वनि लोप के कारण विभक्तियों का लोप हो जाता है। उस विभक्ति के भाव या अर्थ को व्यक्त करने के लिए अलग से शब्द जोड़े जाने लगते हैं। संस्कृत की कारण विभक्तियाँ इसी प्रकार समाप्त हो गई और उनके स्थान पर कारक-चिह्न या परसर्गों का प्रयोग हिन्दी आदि में चलने लगा। अब भी कुछ पुराने रूप चल रहे हैं। जैसे – कृपया, हठात्, दैवात् आदि। यही विभक्तियों के अवशेष का नियम है। आज 'कृपया' को 'कृपा' के कारण के रूप में नहीं लिया जाता बल्कि 'कृपा करके' के अर्थ में उसे एक शब्द के रूप में लेते हैं।

(4) <u>भ्रम या मिथ्या प्रतीति का नियम</u> : कभी-कभी किसी शब्द के रूप के कारण हम उसे और का और समझ लेते हैं, फलतः अर्थबोध बदल जाता है। यही मिथ्या प्रतीति का नियम है। 'असुर' हमारा पुराना शब्द है। इसका अर्थ है, देवता। हमारे 'असुरोमेधास्' ही पारसियों में देवता 'अहुरमज्दा' (Ahuromazda) थे। आर्यों और पारसियों के संघर्ष के बाद हमारे यहाँ 'असुर' का अर्थ 'राक्षस' हो गया। 'अ' का नकारात्मक उपसर्ग पहले से था। 'असुर' के 'अ' को वही समझा गया। परिणामस्वरूप 'सुर' का अर्थ 'देवता' मान लिया गया। 'अ' + सुर = सुर या देवता के विपरीत 'असुर' हो गया। संस्कृत के बहुत से

शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय का ज्ञान न होने से उन्हें सामान्य समझ लिया गया। इससे उनका अर्थबोध भी बदल गया। 'श्रेष्ठ' का मूल अर्थ है 'सबसे अच्छा', यह 'पशस्य' में 'इष्ठन्' प्रत्यय जोड़ कर बना है। इसमें प्रत्यय-प्रकृति का स्वरूप स्पष्ट नहीं था, अतः इसे मूल शब्द समझ लिया गया। अब प्रयोग मिलता है, 'सबसे श्रेष्ठ' या श्रेष्ठतम या सर्वश्रेष्ठ। 'ज्येष्ठ' की भी यही स्थिति है।

भ्रम के कारण कभी-कभी दुहरे प्रयोग भी चल पड़ते हैं। इसके कारण भी अर्थबोध प्रभावित होता है। जैसे – परन्तु, फिर भी, लेकिन, फिर भी, गुलाबजल (जल-आब एक ही हैं), गुलरोगन का तेल (रोगन = तेल), गुलमेंहदी का फूल (गुल = फूल), हिमाचल पर्वत (अचल = पर्वत) आदि। यह बौद्धिक नियम का स्पष्ट उदाहरण है।

(5) <u>भेदभाव का नियम</u> : पर्याय या समानार्थी शब्द जब अपनी आन्तरिक अभेदता अर्थात् एकार्थता छोड़ देते हैं और उनके अर्थों में अन्तर आ जाता है तो इस प्रवृत्ति या प्रक्रिया को भेदीकरण या भेदभाव का नियम कहते हैं। यथा – डॉक्टर, हकीम, वैद्य यथार्थतः एक ही अर्थ रखते हैं किन्तु चिकित्सा पद्धति के आधार पर इनका अर्थबोध अलग-अलग हो जाता है।

अंग्रेजी में Child, Tot, Mile, Imp, Brat, Calf, Kid, Cold, Cut, Urchin आदि का अर्थ 'बच्चा' है किन्तु अब इनका प्रयोग एक अर्थ में नहीं होता। उम्र या अच्छाई-बुराई आदि की दृष्टि से अर्थबोध में अन्तर हो गया है। Child, Calf, Colt, Cut, Kid आदि विभिन्न जीवों के बच्चों के नाम हो गए हैं। यही भेदीकरण है। एक तत्सम शब्द से विकसित तद्भव शब्दों में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है। जैसे, सं० वत्स > बच्चा (आदमी), बछेड़ा (घोड़ा) बाछा (गाय)। सं० पत्र > पत्ता (पेड़ या ताश), पत्तर (धातु), पतरी (खाने वाली पतरी), पत्तल (पत्ते का बना)। इसी प्रकार अर्थबोध को प्रभावित करने वाले कई शब्द हैं। 'जल' और 'पानी' समानार्थी माने जाते हैं किन्तु 'जलपान कर लो' के स्थान पर 'पानी पान कर लो' कभी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार 'दिल बाग-बाग हो गया' के स्थान पर दिल 'बगीचा-बगीचा' या 'उपवन-उपवन' हो गया, नहीं कहा जा सकता। यह अर्थबोध की सीमाएँ या भेदीकरण है।

(6) <u>सादृश्य का नियम</u> : इसके सम्बन्ध में ब्रील का कथन है कि "मनुष्य स्वभावतः अनुकरणप्रिय प्राणी है। यदि उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए कोई नया शब्द बनाना होता है, तो वह किसी पहले से वर्तमान शब्द के सादृश्य पर नए शब्द का निर्माण कर लेता है।" पुराने शब्दों या रूपों के आधार पर नए शब्दों या रूपों को गढ़ लेना ही सादृश्य का नियम है। यथा – हिन्दी में धातु 'आ' जोड़कर भूतकालिक कृदन्त बनाते हैं। जैसे – 'पढ्' से 'पढ़ा', 'लिख्' से 'लिखा', 'रुक' से 'रुका' आदि। इसी आधार पर लोग 'कर', 'करा' बना लेते हैं। यों 'कर' का परम्परागत रूप 'किया' होता है। ब्रील के अनुसार अर्थबोध की दृष्टि से इस प्रकार के रूप – (i) अभिव्यक्ति की कठिनाई दूर करने के लिए, (ii) अभिव्यक्ति में अधिक स्पष्टता लाने के लिए, (iii) असमानता या समानता पर बल देने के लिए, (iv) किसी प्राचीन अथवा नवीन नियम से संगति मिलाने के लिए, इन चारों में से किसी एक या अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाए जाते हैं। प्रथम में वे सारे रूप आते हैं जो अपवादों को छोड़कर सामान्य नियमों या रूपों के सादृश्य पर बनाए जाते हैं, जैसे – अंग्रेजी में क्रियाओं के – 'ed' वाले रूप। इसमें अर्थबोध तथा अभिव्यक्ति की

कठिनाई दूर होती है। रूप सरलता से बन जाते हैं। अनजान में ऐसे रूप सादृश्य के आधार पर बनते हैं और मुँह से निकल आते हैं। ऐसे प्रयोग मूलतः अशिक्षित लोगों से ही प्रारम्भ होते हैं।

(7) नवप्राप्ति का नियम : इसे 'नए लाभ' आदि अन्य नामों से भी अभिहित किया गया है। ब्रील का कहना है कि जिस प्रकार भाषा में पुराने अर्थ, रूप, शब्द, प्रयोग आदि समाप्त होते रहते हैं, उसी प्रकार नए अर्थ, रूप, शब्द आदि विकसित भी होते रहते हैं। इसके उदाहरण सभी भाषाओं में मिलते हैं। हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में कारक विभक्तियों के घिस जाने से स्वतन्त्र शब्दों का परसर्ग रूप में प्रयोग होने लगा है। इसी प्रकार संयोगात्मक क्रियारूपों के घिसने पर सहायक क्रिया तथा कृदन्तों के आधार पर संयुक्तकाल बनने लगे हैं।

(8) अनुपयोगी रूपों के विलोप का नियम : अर्थबोध की दृष्टि से जैसे नए रूप आदि भाषा में आते रहते हैं, उसी प्रकार पुराने रूप किसी न किसी कारण से विलुप्त होते रहते हैं। जैसे – संस्कृत में 'या' और 'गम्', जाना अर्थ में दो धातुएँ थीं। दोनों के रूप अलग-अलग चलते थे। हिन्दी में भी दोनों रूप हैं, किन्तु 'गम्' के सभी रूप नहीं हैं। 'या' धातु से बनने वाले रूप सभी हैं, किन्तु भूत कृदन्त का रूप होते हुए भी सामान्यतः प्रयुक्त नहीं होता। वह 'जाया जाता', 'जाया करता' आदि में ही आता है। 'वह जाया' (He went) नहीं होता। दूसरी ओर 'गम्' धातु से बनने वाला रूप कोई नहीं है। केवल भूत कृदन्त रूप ही रह गया है – 'गया'। इस प्रकार 'या' धातु का एक रूप अल्पप्रयुक्त हो गया और दूसरी ओर 'गम्' के एक रूप को छोड़कर सारे रूप विलुप्त हो गए। वास्तव में भाषा समाज से उत्पन्न होती है, समाज में प्रयुक्त होती है और मनुष्य भी एक सामाजिक प्राणी है। अतः अर्थबोध के विविध आयामों को प्रस्तुत करते हुए भाषा में परिवर्तन एक सहज प्रक्रिया के रूप में घटित होता रहता है और मनुष्य की बुद्धि उसे आत्मसात करती रहती है। यही उसका बौद्धिक नियम बन जाता है।

5.2.7. अर्थबोध (संकेतग्रह) के बाधक तत्त्व

अर्थबोध (संकेतग्रह) के बाधक तत्त्व निम्नलिखित हैं –

(1) समरूपता का अभाव : अर्थबोध की दृष्टि से, वक्ता और श्रोता में सम-रूपता, एक प्रकार का स्तर या समानाधिकरण्य (समान – एक, अधिकरण-आश्रय) का अभाव संकेतग्रह में बाधक होता है। यह तीन प्रकार का होता है –

(क) भाषागत समरूपता : वक्ता और श्रोता यदि एक दूसरे की भाषा समझते हैं, तभी अर्थबोध या संकेतग्रह होगा, अन्यथा नहीं। अतः रूसी, चीनी जापानी भाषा बोलने वाले से हिन्दी बोलने वाले का वार्तालाप दुभाषिए के बिना असम्भव होता है। दोनों में भाषा की समता नहीं है।

(ख) बौद्धिक समरूपता : वक्ता और श्रोता का बौद्धिक स्तर समान होगा तभी दोनों एक दूसरे का अभिप्राय ठीक से समझ सकेंगे। गँवार के समाने रस-निरूपण, ध्वनि-सिद्धान्त या वक्रोक्ति की चर्चा 'भैंस के आगे बीन बजाना' होगा। यहाँ दोनों का बौद्धिक स्तर समान नहीं है।

(ग) भावात्मक समरूपता : वक्ता तथा श्रोता में यदि भावात्मक या हार्दिक समानता नहीं होगी तो अर्थबोध नहीं होगा। 'सहृदय' ही रस-ध्वनि को समझ सकेगा। नीरस व्यक्ति के लिए ऐसा काव्य अर्थहीन है।

(2) अशुद्ध अर्थज्ञान : यदि शब्द का अशुद्ध अर्थ समझ रखा है तो उससे अर्थबोध नहीं होगा। जैसे – यदि किसी ने 'वर्णी' का 'ब्रह्मचारी शिष्य' के स्थान पर 'रंगवाला' अर्थ समझा है, या 'श्रोत्रिय' (वेदविद्) का अर्थ 'सुन्दर कानवाला' या 'शालीन' (शिष्ट) का अर्थ 'सुन्दर मकान वाला' समझा है, तो उससे अर्थबोध नहीं होगा।

(3) संकेत का भूल जाना : यदि अनाभ्यास के कारण शब्द का अर्थ विस्मरण हो गया है तो उससे अर्थबोध नहीं होगा। 'अन्वय व्यतिरेक', 'अपोद्धार' (विश्लेषण), 'परिवेदना (विलाप)' का अर्थ भूल गया है तो इन शब्दों के प्रयोग से अर्थबोध नहीं होगा।

(4) आवृत्तिजन्य दृढ़ता का अभाव : बार-बार आवृत्ति न करने पर शब्द का अर्थ विस्मृत हो जाता है। आवृत्ति से शब्द का अर्थ मस्तिष्क में बद्धमूल हो जाता है। मस्तिष्क में शब्द का अर्थ बद्धमूल न होने से अर्थ तुरन्त उपस्थित नहीं होगा। इससे अर्थबोध नहीं होगा।

ईश्वर कृष्ण ने सांख्यकारिका में प्रत्यक्ष ज्ञान के बाधक आठ कारण गिनाए हैं। उन्हें भी अर्थबोध के बाधक तत्त्वों के रूप में लिया जा सकता है। ये हैं –

(1) अतिदूरता : वक्ता और श्रोता यदि बहुत दूर हैं तो आवाज नहीं पहुँचेगी और अर्थबोध नहीं होगा।

(2) अतिसमीपता : कोई कान के पास भी बहुत जोर से बोले तो शब्द स्पष्ट नहीं होंगे और अर्थबोध नहीं होगा।

(3) इन्द्रियघात : इसका अर्थ है, ज्ञानेन्द्रिय में किसी प्रकार की न्यूनता आ जाना। शब्द कान से सुना जाता है। यदि कान से सुनाई न दे तो शब्द न सुन पाने के कारण अर्थबोध नहीं होगा।

(4) मन की अस्थिरता : रूप, रस, शब्द सभी प्रकार के ज्ञान के लिए मन की एकाग्रता आवश्यक है। यदि वक्ता या श्रोता का मन एकाग्र नहीं है तो, एक दूसरे की बात ध्यान से न सुनने के कारण अर्थबोध नहीं होगा।

(5) अतिसूक्ष्मता : वक्ता की ध्वनि यदि बहुत धीमी है तो श्रोता के कानों तक नहीं पहुँचती और अर्थबोध नहीं होता।

(6) व्यवधान : वक्ता और श्रोता के मध्य किसी प्रकार का पर्दा या अवरोध है तो भी शब्द न सुन पाने के कारण अर्थबोध नहीं होता।

(7) अभिनव : इसका अर्थ है, तिरस्कृत होना, दब जाना। शोरगुल के बीच वक्ता की आवाज दब जाती है और न सुन पाने के कारण अर्थबोध नहीं होता।

(8) समानाभिहार : इसका अर्थ है, समान अर्थात् सदृश वस्तु में अभिहार – मिल जाना। यदि एक साथ कई बाजे बज रहे हैं तो प्रत्येक की ध्वनि स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ेगी क्योंकि सभी की आवाज मिल जाती है। यदि

एक साथ कई लोग बोलने लग जाएँ तो भी किसी की बात स्पष्ट समझ में नहीं आएगी। अतः अर्थबोध नहीं होगा।

इसीलिए भर्तृहरि ने वाक्यपदीय (1.56) में कहा है कि शब्द केवल सत्ता मात्र से अर्थबोधक नहीं होते। वे जब तक कान और मन का विषय नहीं बन जाते, तब तक अर्थबोध नहीं कराते।

5.2.8. पाठ-सार

1. यास्क-कृत 'निरुक्त' अर्थविज्ञान का सर्वप्रथम भारतीय ग्रन्थ है।
2. पाश्चात्य विद्वान् – फ्रांस के मिशेल ब्रेआल, जम्रनी के पाल. के. रीजिंग, ए. बेनरी, पोस्टगेट, ब्रुगमान, स्वीट आदि ने भी अर्थविज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।
3. भाषा के मानसिक पक्ष को ज्ञान, प्रत्यय या प्रतीति कहते हैं।
4. भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषा के दो आश्रय होते हैं – वक्ता तथा श्रोता।
5. भाषा का उद्भव तथा अर्थबोध दोनों ही भाषा के मानसिक पक्ष से सम्बद्ध हैं।
6. अर्थबोध के साधन आठ बताए गए हैं – व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्य-शेष, विवृत्ति तथा प्रसिद्ध पद-सान्निध्य।
7. शब्द-शक्तियाँ (अभिधा, लक्षणा, व्यंजना) अर्थबोध के विविध आयाम प्रस्तुत करती हैं।
8. अर्थबोध की दृष्टि से बौद्धिक नियम भी महत्त्वपूर्ण हैं।
9. अर्थबोध के बाधक तत्त्वों में – वक्ता तथा श्रोता से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ आ जाती हैं।

5.2.9. अभ्यास-प्रश्न

1. अर्थविज्ञान के भारतीय सन्दर्भ से आप क्या समझते हैं?
2. अर्थबोध के साधनों पर प्रकाश डालिए।
3. शब्द-शक्तियों का अर्थबोध की दृष्टि से महत्त्व निरूपित कीजिए।
4. अर्थबोध विषयक बौद्धिक नियम से आप क्या समझते हैं?
5. अर्थबोध के बाधक तत्त्वों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/

❖❖❖

खण्ड – 5 : अर्थ विज्ञान

इकाई – 3 : एकार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय, नानार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय

इकाई की रूपरेखा

5.3.0 उद्देश्य
5.3.1 प्रस्तावना
5.3.2 एकार्थक और पर्यायवाची शब्द
5.3.2.1 पर्यायता
5.3.2.2 पर्याय का आविर्भाव
5.3.2.3 ऐतिहासिक कारण
5.3.2.4 विदेशी कारण
5.3.2.5 अमंगल या अश्लील परिहार-कारण
5.3.2.6 साहित्य लेखकीय स्रोत
5.3.2.7 छन्दबद्धता हेतु पर्याय-चयन
5.3.2.8 सांस्कृतिक विभेदयुक्तपर्याय
5.3.2.9 व्याकरणिक पर्यायता
5.3.3 पर्याय के प्रकार
5.3.3.1 वाक्यस्तरीय पर्यायता
5.3.4 एकार्थक शब्दों का अर्थ-निर्णय
5.3.5 नानार्थक या अनेकार्थक (Poly semia) शब्द
5.3.5.1 कल्पनाजन्य अनेकार्थता
5.3.5.2 पारम्परिक अनेकार्थता
5.3.5.3 ध्वनैक्यजन्य अनेकार्थता
5.3.5.4 नवशब्दजन्य अनेकार्थता
5.3.5.5 अनेकार्थी प्रत्ययों के कारण अनेकार्थता
5.3.5.6 कुछ अन्य प्रकार की अनेकार्थता
5.3.5.7 शब्द संयोग स्तर पर अनेकार्थता
5.3.5.8 वाक्य स्तर पर अनेकार्थता
5.3.6 नानार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय
5.3.7 पाठ-सार
5.3.8 अभ्यास प्रश्न

5.3.0. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. एकार्थकता या पर्यायता को समझ सकेंगे।
ii. पर्याय का अविर्भाव तथा बहुभाषिकता की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
iii. विदेशी शब्दों के अनुवाद, अश्लील परिहार और साहित्यिक लेखन आदि की दृष्टि से पर्यायता के विकास का अध्ययन कर सकेंगे।
iv. अनेकार्थता या नानार्थकता क्या है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
v. शब्द के स्तर पर, ध्वनैक्यता के स्तर पर अनेकार्थता को परिभाषित कर सकेंगे।
vi. नव शब्द-निर्माण, प्रत्ययों की अनेकार्थता आदि अन्य स्रोतों की जानकारी प्राप्त होगी।
vii. नानार्थक या एकार्थक शब्दों का अर्थ-निर्णय कैसे हो, इसका ज्ञान प्राप्त होगा।

5.3.1. प्रस्तावना

पिछले पाठ में आपने अर्थबोध के विविध पक्षों का अध्ययन किया था। साथ ही अर्थबोध के बाधक तत्त्वों की जानकारी भी आपको हुई थी। प्रस्तुत पाठ में हिन्दी में विद्यमान पर्यायता या एकार्थकता, अनेकार्थकता तथा उसके आधार पर अर्थ निर्णय का अध्ययन कर सकेंगे।

5.3.2. एकार्थक और पर्यायवाची शब्द

एकार्थक शब्दों का एक ही प्रमुख अर्थ होता है। यथा – पेड़, पुस्तक, नदी आदि। एकार्थक और पर्यायवाची शब्दों (Synonyms) में भी सूक्ष्म अन्तर है। पर्यायवाची शब्दों को 'सिनोनिम्स' (Synonyms) कहते हैं। Syn (सीन) = सदृश, समान + Onym (ओनीम) = नाम या अर्थ, अतः समानार्थक या एकार्थक। विभिन्न विचारधाराओं के कारण एक ही वस्तु के अनेक नाम पड़ जाते हैं। प्रारम्भ में इनके मध्य कुछ भावात्मक अन्तर परिलक्षित होता है, कालान्तर में वह अन्तर भी विस्मृत हो जाने से पर्याय के रूप में इनका प्रयोग होता है। यथा – भूपति, भूप, नृप, राजा आदि।

5.3.2.1. पर्यायता

नाम-रूप सम्बन्धों का नाम पर्यायता है। किसी भी भाषा में एक 'रूप' के अनेक 'नाम' मिलते हैं। यथा – हिन्दी में एक रूप 'चन्द्रमा' के लिए चाँद, चंदा, चन्द्र, रजनीकर, हिमरश्मि आदि अनेक नाम उपलब्ध हैं। ये सभी नाम परस्पर पर्याय हैं। एक शब्द की जगह दूसरा कुछ प्रतिबन्धों के साथ प्रयुक्त हो सकता है। भाषा में पर्यायता के विकास के भी कई कारण हैं।

5.3.2.2. पर्याय का आविर्भाव

हिन्दी में पर्यायता का मुख्य स्रोत बहुभाषिकता है। आदिकालीन सभ्यता से ही मानव एक स्थान से दूसरे स्थान पर आता-जाता रहा है। सभ्यता के विकास के साथ भी मनुष्य का धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक,

राजनैतिक, व्यापारिक, शैक्षिक, कलात्मक उद्देश्यों तथा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तथा एक देश से दूसरे देश, आवागमन होता रहा है। ऐसे में बहुभाषिकता की स्थिति प्रायः उत्पन्न हो जाती है। भाषिक आदान-प्रदान भी स्वाभाविक रूप से होता रहता है। जिन शब्द-रूपों से व्यक्ति या समाज परिचित नहीं होता, वे शब्द आ जाते हैं, जैसे – रेडियो, बस, चाकू आदि। इनसे पर्यायता का उद्‌भव नहीं होता किन्तु जब किसी भाषा में किसी नाम 'रूप' के लिए पहले से शब्द हैं और आगत भाषाओं के शब्द भी उसी 'रूप' के लिए प्रयुक्त होने लगते हैं तो पर्यायता का उद्‌भव हो जाता है। जैसे – न्यायालय और कचहरी। हिन्दी में प्रचुर रूप से पर्याय शब्द हैं। कारण यह है कि मुगलों और बाद में अंग्रेजी शासन के दौरान हिन्दी के नाम 'रूप' के साथ फारसी और अंग्रेजी शब्द घुल मिल गए। जैसे, पवन – हवा, पुस्तक – किताब, सुन्दर – खूबसूरत, लज्जा – शरम, उद्यान – गार्डन, मानचित्र – एटलस, डॉक्टर – वैद्य – हकीम आदि।

5.3.2.3. ऐतिहासिक कारण

हिन्दी पर्यायता का एक प्रमुख कारण ऐतिहासिक भी है। हिन्दी को संस्कृत से तत्सम शब्दों का विशाल भण्डार प्राप्त हुआ है। संस्कृत से विकसित – पालि, प्राकृत और अपभ्रंशों से होते हुए भी अनेक शब्द अपने परिवर्तित स्वरूप में हिन्दी में आ गए। हिन्दी की इस पूर्व प्रेषित विरासत के परिणामस्वरूप एक ही 'रूप' के लिए तत्सम, तद्‌भव, देशी तथा विदेशी 'नाम' हिन्दी को प्राप्त हुए। यह पर्यायता की वृद्धि, उद्‌भव तथा विकास का एक प्रमुख कारण है। यथा, मुख – मुँह, कर्ण – कान, पुष्प – फूल, विद्युत – बिजली, कृष्ण – कान्ह – कान्हा, किशन, कन्हैया आदि।

5.3.2.4. विदेशी कारण

पर्यायता का विकास विदेशी शब्दों के अनुवाद के कारण भी हुआ। प्रायः भाषा में पहले से शब्द होते हुए भी विदेशी शब्द का नया रूपान्तरण किया जाता है। इससे पर्यायता का उद्‌भव हो जाता है। यथा – Equator के लिए विषुवद्‌रेखा प्राचीन शब्द था, नया शब्द 'भूमध्यरेखा' बन गया। कभी-कभी नवसृजन दो प्रकार से होने के कारण भी पर्याय युग्म का आविर्भाव हो जाता है। यथा – Linguistics के लिए, भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र और भाषिकी।

5.3.2.5. अमंगल या अश्लील परिहार-कारण

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में हम शिष्टता, मर्यादा और शुभत्व-सूचक शब्दों का प्रयोग करते हैं। शालीनतावश बच्चों को 'शू' या 'एक उंगली ऊपर उठाना' सिखाया जाता है। 'दिशा जाना' या 'जंगल जाना' शब्दों का प्रयोग, प्रसाधन, टॉयलेट, बाथरूम, शौचालय, आदि शब्द, मृत्यु के लिए 'गोलोकवासी होना', 'स्वर्गवासी', या 'सद्‌गति', 'प्रयाण', 'देहावसान', 'परलोकगमन' आदि शब्दों का प्रयोग इसी प्रकार के हैं।

5.3.2.6. साहित्य लेखकीय स्रोत

साहित्य लेखन की दृष्टि से पर्याय शब्दों का विशेष महत्त्व है। सूर्य हमें प्रकाश देता है, उष्णता देता है। चन्द्रमा हमें प्रकाश एवं शीतलता देता है। साहित्य में इनका मानवीयकरण द्वारा इनके माता-पिता या जनक होने का भाव भी व्यक्त होता है। इस प्रकार पर्यायिता का क्षेत्र और भी व्यापक हो जाता है। यथा –

किरणें श्वेत	–	शुभ्रांशु, सितकर
अँधेरा भगाता है	–	तमोहर, तमोहन
रात से सम्बन्ध	–	रजनीकर, रजनीश
शीतलता देता है	–	हिमांशु, हिमकर
अमृत से सम्बन्ध	–	सुधाकर, सुधांशु
पौराणिक सम्बन्ध	–	नक्षत्रेश्वर, ऋक्षेश, उडुप
शिव के मस्तक पर	–	शिवशेखर

संस्कृत में मूल शब्दके अनेक पर्याय हैं। जैसे, जल – नीर, वारि, क्षीर, सलिल, आप, अंबु, तोय आदि। संस्कृत भाषा की प्रचुर पर्याय क्षमता का लाभ साहित्य में भरपूर उठाया गया। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से ऐसे शब्दों की भी नव रचना कर ली गई जो प्रायः अप्रचलित थे।

5.3.2.7. छन्दबद्धता हेतु पर्याय-चयन

आधुनिक युग में छन्दबद्ध रचना या कविता का प्रचलन नहीं है किन्तु पहले काव्य-रचना छन्दबद्ध होती थी। उस समय छन्दों में लघु या गुरु मात्रा की अनुकूलता के लिए पर्यायों में किस शब्द को प्रयोग किया जाए, यह छन्द की अनुकूलता पर निर्भर था। जैसे –

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।

यहाँ 'गगन' के स्थान पर 'अंबर' 'आकाश' या 'व्योम' शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकता।

इसी प्रकार –

नारी तुम केवल श्रद्धा हो

यहाँ 'नारी' के लिए, 'स्त्री', 'औरत' या 'महिला' आदि पर्यायों का चयन नहीं हो सकता।

5.3.2.8. सांस्कृतिक विभेदयुक्त पर्याय

भाषा में जब शुद्ध पर्यायता होती है तो एक शब्द के स्थान पर दूसरा पर्याय बिना किसी अवरोध के प्रयोग किया जा सकता है। कारण यह कि नाम रूप में एकैक सम्बन्ध होना चाहिए। साहित्य-लेखन में अपवाद स्थिति दिखाई देती है। साहित्य में पर्यायों का अर्थ-विभेदन चलता रहता है।

जहाँ कहीं द्विभाषिकता की स्थिति होती है, पर्याय बने शब्द अपनी मूल भाषा की सामाजिक-संस्कृति से जुड़े रहते हैं। इसलिए विभेदी अर्थच्छाया अवश्य रखते हैं। जैसे – वैद्य-हकीम-डॉक्टर शब्द पर्याय होते हुए भी अलग-अलग समाज-सांस्कृतिक परिवेश को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार पाठशाला-मदरसा-स्कूल, बेगम-रानी, राजा-बादशाह, राजकुमार-शहजादे, नदी-दरिया आदि।

द्विभाषिकता की स्थिति में जहाँ सांस्कृतिक विभिन्नता प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित नहीं होती, वहाँ भाषा व्यवहार में कोडमिश्रण होता है। कोड सामंजस्य से भी विभेदन का उद्भव होता है। यदि संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हो रहा है तो तत्सम पर्याय शब्द, अंग्रेजी कोड मिश्रित भाषा में अंग्रेजी पर्याय शब्द, सामान्यक अनौपचारिक भाषा में हिन्दीभाषी तद्भव शब्दों के बाहुल्य के साथ तद्भव, उर्दू, और अंग्रेजी पर्याय शब्दों का प्रयोग निर्बाध रूप से होता है।

औपचारिक लेखन में संस्कृत-तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक प्रचलित है। ऐसे में अनेक तत्सम पर्यायों में से एक के चयन की समस्या आ सकती है। प्रायः तत्सम पर्यायों में शब्द-व्युत्पत्ति के आधार पर या लोक-रूढ़ि के आधार पर अर्थ विभेदन होता है। यथा – प्रार्थना, निवेदन, विनती, अनुरोध, आदि स्थूल रूप से पर्याय होते हुए भी प्रयोग-वैभिन्य रखते हैं।

5.3.2.9. व्याकरणिक पर्यायता

व्याकरणिक दृष्टि से संज्ञा, विशेषण, क्रिया में पर्यायता अधिक होती है। क्रियाविशेषण, समुच्चयबोधकों, उद्गार शब्दों में पर्यायता मिलती है। सशक्त अभिव्यक्ति के लिए व्याकरणिक पर्यायता अत्यधिक महत्त्व रखती है। यथा – सदा, सर्वदा, हमेशा, और, तथा, एवं, किन्तु, लेकिन, पर, परन्तु, यदि, अगर आदि।

5.3.3. पर्याय के प्रकार

भाषाविज्ञान की अन्य अनेक शाखाओं की भाँति पर्याय विज्ञान भी वर्णनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक तीनों ही प्रकारों का हो सकता है। वर्णनात्मक में किसी एक काल में किसी भाषा के पर्यायों का अध्ययन करते हैं। पर्याय कोशों का निर्माण तथा पर्यायों के प्रयोग के आधार पर सूक्ष्म अर्थभेद आदि का निर्धारण भी किया जाता है। ऐतिहासिक पर्याय विज्ञान में किसी भाषा में समय-समय पर हुए पर्याय-विकासों का अध्ययन

किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन दो या अधिक भाषाओं का वर्णनात्मक या ऐतिहासिक दोनों ही रूपों में हो सकता है। इन सभी प्रकारों का अध्ययन अभी तक काफी कम हुआ है।

पर्याय शब्द प्रायः एकार्थी मान लिए जाते हैं किन्तु वस्तुतः पर्यायवाची शब्द समानार्थी अधिक होते हैं। पर्याय शब्दों के निम्नलिखित भेद हो सकते हैं – (1) पूर्ण पर्याय (एकार्थी), (2) अपूर्ण पर्याय (समानार्थी)

(1) पूर्ण पर्याय (एकार्थी) : एकार्थी या पूर्ण पर्याय वे शब्द होते हैं जो पूर्णतः एक अर्थ रखते हैं जिनकी पर्यायता पूर्ण होती है। उनमें परस्पर कोई भेद नहीं होता। जैसे, संतरा – नारंगी, भावमय – भावपूर्ण। एकार्थी की पहचान यह है कि किसी भाषा में, सारे सन्दर्भों में बिना अर्थ परिवर्तन के, एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखा जा सके। वह पूर्ण पर्याय होगा। जैसे – 'मुश्किल' और 'कठिन' देखने में पूर्ण पर्याय लगते हैं किन्तु हैं नहीं। जैसे – 'वह लड़का मुश्किल से पाँच वर्ष का होगा।' इस वाक्य में 'मुश्किल' की जगह 'कठिन' नहीं लगा सकते। अतः ये शब्द समानार्थी हैं, एकार्थी नहीं।

(2) अपूर्ण पर्याय (समानार्थी) : अपूर्ण पर्याय या समानार्थी वे शब्द हैं जिनमें अर्थ एक न होकर मात्र समानार्थी होता है। पर्याय समझे जाने वाले अधिकांश शब्द इसी श्रेणी में आते हैं। अपूर्ण पर्याय वाले शब्द जिस भाषा में बहुत अधिक होते हैं, वह उतनी ही समृद्ध होती है। अपूर्ण पर्याय या समानार्थी शब्दों में प्रायः तीन प्रकार के अन्तर परिलक्षित होते हैं – शैलिक अन्तर, वैचारिक और प्रायोगिक।

(क) शैलिक अन्तर : शैलिक अन्तर वह है जहाँ दो या अधिक शब्दों का अर्थ तो प्रायः एक होता है किन्तु प्रयोग में शैली की दृष्टि से एक रचना या वाक्य में एक ही आ सकता है या उपयुक्त प्रतीत होता है। यथा – 'सौन्दर्य' और 'खूबसूरती' शब्दों के अर्थ में अन्तर नहीं है किन्तु यदि कहें, 'वह अभूतपूर्व अप्सरा साकार सौन्दर्य थी।' इस वाक्य में सौन्दर्य के स्थान पर 'खूबसूरती' का प्रयोग अटपटा लगेगा। इसी प्रकार इजाज़त – आज्ञा, बेहद – असीम, ज़रूर – अवश्य, खुशी – प्रसन्नता, बेशक – निस्सन्देह, कठोर – सख्त आदि शब्दों का अन्तर भी इसी स्तर का है।

(ख) वैचारिक अन्तर : वैचारिक अन्तर का अर्थ है, 'अर्थ का समीप होना किन्तु पूर्णतः एक न होना।' यथा – डॉक्टर – वैद्य, हकीम, केसरिया – पीला, गन्धकी, मकतब – पाठशाला, स्कूल, ठर्रा – व्हिस्की, बियर, ब्राण्डी, दूबिया – मेंहदी, मूँगिया, घोड़ा – टट्टू, देखना – अवलोकन करना, घूरना आदि शब्द देखे जा सकते हैं।

(ग) प्रायोगिक अन्तर : प्रायोगिक अन्तर का अर्थ है, शैलिक या वैचारिक अन्तर न होने पर भी परम्परागत प्रयोग के कारण एक के स्थान पर दूसरा नहीं आ सकता। मुहावरों में प्रायः यह देखा जाता है। 'वह पानी-पानी हो गया' को 'वह जल-जल हो गया', नहीं कहा जा सकता। समासों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। जैसे – जल और नीर में प्रायः शैलिक या वैचारिक अन्तर नहीं है किन्तु 'जलपान कर लीजिए' को 'नीरपान कर लीजिए' नहीं कह सकते। बहुत से शब्दों में शैलिक एवं वैचारिक अन्तर के साथ-साथ भी प्रायोगिक अन्तर मिलते हैं। यथा – 'उसके घर जाने के कारण काम रुक गया होगा' एवं 'उसके घर जाने

की वजह से काम रुक गया होगा' में समानार्थी होने पर भी 'कारण' के साथ 'से' का प्रयोग नहीं है जबकि 'वजह' के साथ 'से' लगाना ज़रूरी है। इस प्रकार दोनों में प्रायोगिक अन्तर है।

5.3.3.1. वाक्यस्तरीय पर्यायता

एक ही प्रकार की व्याकरणिक संरचना प्रायः रोचक नहीं लगती या अनेक वैकल्पिक संरचनाओं में कोई एक किसी विशेष अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाती है, वहाँ वैकल्पिक संरचनाएँ प्रयुक्त होती हैं। पाश्चात्य भाषाविज्ञान में इसे Aagnate (आग्नेट) स्थिति कहा जाता है। वाच्य-परिवर्तन, सरल / मिश्र / संयुक्त वाक्यों में परस्पर अंतरण आदि इसके साधन हैं। शब्द तथा पदबंध का परस्पर अंतरण प्रायः विद्यार्थियों को पढ़ाया-सिखाया जाता है। यथा –

अनाथ	–	जिसके माता-पिता न हों।
विधुर	–	जिसकी पत्नी का निधन हो गया है।
विधवा	–	जिस स्त्री के पति का निधन हो गया है।

5.3.4. एकार्थक शब्दों का अर्थ-निर्णय

एकार्थक शब्दों के अर्थ भी विविध प्रकरण, प्रसंग आदि के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। 'साहित्यदर्पण' में आचार्य विश्वनाथ द्वारा 'आर्थी व्यंजना' के प्रसंग में इस तथ्य का विशद् विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उनकी 'आर्थी व्यंजना' भाषाविज्ञान के अनुसार 'अर्थ परिवर्तन' है। आचार्य विश्वनाथ ने एकार्थक शब्दों के अर्थ-निर्णय के 10 साधन बताए हैं – वक्ता, श्रोता, वाक्य, वाच्य (वक्तव्य), अन्यसन्निधि (अन्य की उपस्थिति), प्रकरण, देश, काल, काकु (व्यंयग्य), चेष्टा आदि।

(1) <u>वक्ता</u> : वक्ता के अनुसार अर्थभेद हो जाता है। जैसे – 'शाम हो गई' से भक्त के लिए 'पूजा का समय', खिलाड़ी को 'खेल समाप्त करो', सिनेमा के सन्दर्भ में 'सिनेमा का समय' आदि अर्थ निकलता है।

(2) <u>श्रोता</u> : श्रोता कौन है, किस मानसिक स्तर का है, इससे भी अर्थभेद हो जाता है। अन्योक्तियों के पद्य प्रायः इसी प्रकार के होते हैं। जैसे बिहारी के दोहे –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यो, आगे कौन हवाल॥

इस दोहे में नव-विवाहिता पत्नी पर आसक्त राजा जयसिंह के लिए चेतावनी है।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है –

कृष्ण राधा के घर जाते हैं, द्वार खटखटाते हैं। राधा पूछती हैं – "को तुम हो ?", कृष्ण कहते हैं – "घनश्याम हम", राधा – "तौ कित बरसों जाय।"

वक्रोक्ति, व्यंग्योक्ति से अर्थभेद हो जाता है। यों सामान्य रूप से भी वार्तालाप में श्रोता की स्थिति के अनुसार वक्ता के कथन का अर्थभेद हो जाता है।

(3) वाक्य-प्रयोग : वाक्य में प्रयोग से शब्द का अर्थ भिन्न हो जाता है। जैसे – 'अपि कुशलम्'? (आप सकुशल तो हैं ?) 'अपि' का अर्थ 'भी' होता है। यह इस वाक्य में प्रश्नार्थक है। 'आपने पढ़ लिया है न।' यहाँ 'न' निषेधार्थक न होकर विध्यर्थक है। यह 'न' वस्तुतः संस्कृत का 'नु' अव्यय है। इसका प्रयोग अब भी पंजाबी, भोजपुरी आदि में होता है। पंजाबी– 'त्वां नु कि दसों ?' (तुमसे क्या कहें ?), भोजपुरी– 'रउवां खइली हँ नु' (आपने खा लिया है ?)।

(4) वाच्य (वक्तव्य) : वक्ता के अभिप्रेत के अनुसार अर्थभेद हो जाता है। 'पापी दुनिया से चला गया, अच्छा हुआ।' यहाँ 'चला गया' का अर्थ है, 'मर गया'।

(5) अन्यसन्निधि : अन्य व्यक्ति की उपस्थिति से भी अर्थभेद हो जाता है। कारण यह कि किसी आगुन्तक से कोई बात छिपानी है तो संकेतों में बात होती है जो प्रत्यक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष अर्थ को व्यक्त करती है। 'अच्छा चलो', 'अच्छा' का अर्थ है – 'बात यहीं समाप्त करो'।

(6) प्रकरण : प्रकरण या प्रसंग से अर्थभेद हो जाता है। 'सूर्योदय हो गया' के प्रकरण के अनुसार सैकड़ों अर्थ होंगे – 'उठो', 'पूजा-पाठ' करो, 'नित्य कर्म करो', 'काम पर जाने के लिए तैयार हो', आदि। यास्क ने 'निरुक्त' में स्पष्ट लिखा है कि प्रकरण के अनुसार ही मन्त्र का अर्थ करना चाहिए।

(7) देश-काल : देश और काल के अनुसार भी शब्दों का अर्थभेद हो जाता है। वाक्य कब और कहाँ बोला जा रहा है, तदनुसार अर्थ होगा। 'पुलिस आ गई', 'गोली चल गई', 'आदेश आ गया' (न्यायालय का, प्रशासन का, प्रिंसीपल का आदि वाक्यों का देश-काल के अनुसार अलग-अलग अनेक अर्थ होंगे।

(8) काकु (व्यंग्य) : काकु का अर्थ है, वक्रोक्ति या ध्वनिभेद। काकु से अर्थभेद हो जाता है। जैसे – 'वाह भाई ! आप तो खूब आए' अर्थात् आप की प्रतीक्षा होती रही और आप आए ही नहीं। 'आप तो बड़े महान् पुरुष हैं', अर्थात् आप बड़े दुष्ट व्यक्ति हैं। काकु से उलटा अर्थ निकलता है।

(9) चेष्टा : संकेत या आंगिक हावभाव से अभिप्राय व्यक्त किया जाना चेष्टा कहलाता है। 'नेता का इतना बड़ा पेट', 'दो फुट का आदमी', से – क्रमश: इशारे से 'पेट निकला होने' तथा 'नाटेपन' को व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार किसी भाषा का एक-एक शब्द असंख्य अर्थों का बोधक हो सकता है। 'हाँ' से नकारात्मक तथा 'न' से सकारात्मक अर्थबोध हो सकता है। इसीलिए संस्कृत में कहा गया है कि 'सर्वे सर्वार्थवाचकाः' अर्थात् सभी शब्द सभी अर्थों का बोध करा सकते हैं।

5.3.5. नानार्थक या अनेकार्थक (Poly semia) शब्द

जो शब्द एक से अधिक अर्थों का बोध कराते हें, उन्हें नानार्थक या अनेकार्थक (Poly semia) कहते हैं। एक शब्द के अनेक अर्थ कैसे हो जाते हैं, यह एक अलग विचारणीय विषय है। ऐसा माना जाता है कि प्रायः

क्रिया के अर्थ की समानता के आधार पर, गुण-साम्य, सादृश्य, संसर्ग आदि के आधार पर शब्द नानार्थक या अनेकार्थक होते हैं। जैसे, कर – हाथ, किरण, टैक्स। शृंग – सींग, चोटी। नग – वृक्ष, पर्वत आदि।

भर्तहरि ने अपने 'वाक्यपदीय' (2-402) में लिखा है कि समानार्थक तथा नानार्थक शब्दों का कहाँ पर क्या अर्थ लिखा जाएगा, इसका निर्णय प्रयोक्ता के आधार पर होता है। जहाँ जिस अर्थ में प्रयोक्ता शब्दों का प्रयोग करना चाहता है, वहाँ वही अर्थ अभिधेय है।

प्रायः ऐसा भी होता है कि शब्द अपने नवीन अर्थ के धारण करने पर भी पुराने अर्थ को नहीं छोड़ता। ऐसी स्थिति में कभी-कभी तीन-चार अर्थ एक ही समय में चलते रहते हैं। अर्थ कभी सीमित, विस्तृत, स्थूल अथवा सूक्ष्म रूपों में प्रयुक्त होता रहता है। यथा – 'जड़' शब्द – 'पेड़ की जड़', 'रोग की जड़', 'झगड़े की जड़', आदि अर्थों में एक ही समय में प्रयुक्त हो रहा है। 'मूल' शब्द, भाषाविज्ञान, दर्शनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, गणित तथा अर्थशास्त्र में प्रयुक्त हो रहा है। 'धातु' और 'योग' की भी यही स्थिति है। अंग्रेजी शब्द 'की' (Key) का हिन्दी में 'कुंजी' असल में यंत्रशास्त्र से सम्बद्ध है। अब किताब की कुंजी, समस्या की कुंजी, सफलता की कुंजी आदि प्रयोग साथ-साथ चल रहे हैं। संस्कृत में कुछ अनेकार्थी शब्द ऐसे हैं जिनका विश्लेषण करना भी असम्भव-सा है कि उनका इतने अधिक और विभिन्न अर्थों में प्रयोग कैसे प्रचलित हो गया। उनके अर्थ भी असाधारण हैं। यथा –

सारंग – बाज, कोयल, मोर, पपीहा, चातक, भ्रमर, खंजन, सूर्य, चन्द्रमा, कृष्ण, विष्णु, हाथी, कामदेव, घोड़ा, मृग, साँप, पृथ्वी आदि 50 से भी अधिक अर्थ हैं।

हरि – विष्णु, इन्द्र, बन्दर, घोड़ा, सिंह, चन्द्रमा, पानी, साँप तथा अग्नि आदि।

हिन्दी तथा संस्कृत के कूट छन्दों में एक ही पंक्ति में ऐसे शब्दों के अनेक अर्थ मिलते हैं। इतने अर्थों की समस्या भाषाविज्ञान की दृष्टि से अवश्य विचारणीय रही है। अंग्रेजी आदि भाषाओं में भी ऐसे शब्द हैं किन्तु इतने अधिक और असम्बद्ध नहीं। हिन्दी के कुछ अनेकार्थी शब्दों के प्रचलित प्रयोग द्रष्टव्य हैं –

पक्ष – पक्षी के पक्ष (पंख), कांग्रेस पार्टी का पक्ष हार गया, कृष्ण पक्ष की काली रात

घर – धोबी का कुत्ता घर का न घाट का, गाँव में सत्तर घर, मकान में पाँच घर, वह बड़े घर का है, बुराई उसमें घर कर गई है।, वह तो झूठ का घर है।

रोटी – आजकल रोजी-रोटी के प्रबन्ध में लगा है, रोटी नमक पर गुजारा हो रहा है, गेहूँ की रोटी, जन-समस्याएँ कुछ भी हों, राजनेता बस अपनी राजनीति की रोटी सेंकते हैं।

प्रचलित प्रयोगों में अलंकार का हाथ अधिक है। संक्षेप में कहने की प्रवृत्ति भी अनेक अर्थों का प्रमुख कारण है। एक ही समय में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते रहना ही एक शब्द की अनेकार्थता का कारण है।

5.3.5.1. कल्पनाजन्य अनेकार्थता

मानवीय सभ्यता के विकास के आदिकाल से लेकर आज तक मनुष्य अत्यधिक कल्पनाशील है। अपनी इसी कल्पनाशक्ति के सहारे मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार किसी पूर्व परिचित 'रूप' या परिचित 'रूप' के किसी अवयव को कोई नया नाम समय-समय पर दिया है। 'मानवीयकरण' और मानव अंगों के नाम जड़ प्रकृति में अंतरित करने की अपार क्षमता मनुष्य में प्रारम्भ से ही रही है। पेड़ के सबसे ऊपर के भाग को 'शीर्ष' माना गया, जड़ के पास के भाग को 'पाद' माना गया और शाखाओं को 'भुजा'। सूर्य की किरणों को लम्बा हाथ कहा गया। आज भी हम कल्पनाशक्ति का सहारा लेकर भाषावैज्ञानिक विधियों द्वारा पूर्वप्रचलित शब्दों, मूलांशों, प्रत्ययों तथा इनके विविध संयोजनों को नया 'नाम' देते रहते हैं। कंप्यूटर के एक उपकरण को 'माउस' (Mouse) 'नाम' देना इसका उत्तम उदाहरण है।

5.3.5.2. पारम्परिक अनेकार्थता

हिन्दी शब्दावली का मुख्य स्रोत संस्कृत है। अनेकार्थता की दृष्टि से संस्कृत अत्यधिक समृद्ध है। वहाँ हरि के 24 अर्थ गिनाए गए हैं। क, ख, ग, घ आदि वर्णों के भी कई-कई अर्थ कोशों में मिलते हैं – 'क' के अर्थ हैं – ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, अग्नि, सूर्य, पक्षी, मन, काल आदि। ये तो मुख्यतः साहित्यिक रचनाओं और सभंगश्लेष में प्रयुक्त होते हैं, आज भी विशाल संख्या उन अनेकार्थों की है, जिनसे हम परिचित हैं जैसे – पत्र (पत्ता, चिट्ठी), अंक (गिनती, चिह्न, गोद), कर (हाथ, किरण, टैक्स), पक्ष (पंख, दोनों ओर के अवयव, अनुकूल-प्रतिकूल समूह), नव (नौ, नया) आदि।

5.3.5.3. ध्वनैक्यजन्य अनेकार्थता

हिन्दी के अनेकानेक शब्द संस्कृत – पालि – प्राकृत – अपभ्रंश और पुरानी हिन्दीसे गुजरते हुए गृहीत हुए हैं। उनमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी होते रहे हैं। इस ध्वन्यात्मक परिवर्तन को हम तद्भव कहते हैं। इन तत्सम-तद्भव तथा तद्भव-तद्भव में प्रायः ध्वनैक्य स्थिति आ जाती है। इससे अनेकार्थता उत्पन्न होती है। जैसे – काम (तत्सम) – काम (तद्भव< कर्म) बेर (तद्भव< बदर), बेर (तद्भव< वेला) आदि।

हिन्दी में दूसरी भाषाओं से आगत शब्दों की संख्या भी विशाल है। हिन्दीतर भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं (अरबी-फारसी, अंग्रेजी आदि) से भी शब्द आते रहे। ऐसे में ध्वनैक्य की स्थिति आना स्वाभाविक है। यथा – संस्कृत 'वश' का तद्भव है 'बस', अंग्रेजी 'बस' का आदान शब्द है और अरबी-फारसी 'बस' का आदान शब्द भी है। आम (तद्भव < आम्र), आम (अरबी 'सामान्य'), चंदा (तद्भव < चन्द्र), चंदा (फारसी 'चन्द्र '), पर (< परन्तु), पर (फारसी 'पक्षी का पंख') आदि।

5.3.5.4. नवशब्दजन्य अनेकार्थता

हिन्दी में नवशब्द-निर्माण की अधिकता है। उत्तर भारत के अधिकांश शिक्षा संस्थानों में हिन्दी माध्यम से अध्ययन-अध्यापन होता है। अतः शैक्षिक विषयों की तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए भारत सरकार ने एक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया है। यह पिछले पचास वर्षों से हिन्दी शब्दों का निश्चयन कर रहा है। प्रशासनिक तथा सभी मंत्रालयों से सम्बद्ध शब्दावली के हिन्दी शब्दों का विकास हो रहा है। इस कार्य में संस्कृत शब्दों, मूलांशों, प्रत्ययों तथा उनके विविध संयोजनों का सहारा लिया जाता है। अतः स्वाभाविक रूप से नवरचित शब्द का एक अर्थ संस्कृत का पुराना और एक अर्थ आज का नया होता है। जैसे – 'मंत्री' शब्द संस्कृत में आज के 'मिनिस्टर' की तरह नहीं था, वहाँ यह 'सलाह देने वाला' के अर्थ में था। अतः 'मंत्री' शब्द के आज दो अर्थ हो गए, एक पुराना और दूसरा नया। इसी प्रकार 'आकाशवाणी' के दो अर्थ हो गए। 'निकाय' शब्द का पुराना अर्थ का 'झुंड' अब यह 'Bodies, System (of equations) के लिए है।

5.3.5.5. अनेकार्थी प्रत्ययों के कारण अनेकार्थता

हिन्दी में कुछ प्रत्यय अनेकार्थी हैं। उनसे बने शब्द भी अनेकार्थी हो गए। यथा – धुलाई (धोबी की मजदूरी) – धुलाई (धोने की प्रक्रिया) – धुलाई (धोने की प्रक्रिया का परिणाम), पहाड़ी (पहाड़ पर रहने वाला), – पहाड़ी (छोटा पहाड़)। सम्बन्धवाची प्रत्यय के तो अनेक अर्थ होते हैं, जैसे – बनारसी (बनारस का रहने वला) – बनारसी (बनारस में बना या पैदा किया, जैसे – बनारसी साड़ी, बनारसी पान)। प्रेरणार्थक रूप 'खिलाना' के तीन अर्थ हैं – खाना खिलाना, खेल खिलाना, फूल खिलाना।

रूप रचना में प्रत्ययों के ध्वनैक्य के कारण भी अनेकार्थता आती है। पेड़ा+ओं = पेड़ों (मिठाई), पेड़+ओं = पेड़ों (वृक्ष), माँग (संज्ञा) + स्त्रीलिंग – बहुवचन प्रत्यय एँ – माँगें (जैसे हमारी माँगें), क्रिया धातु माँग (माँगना) + इच्छार्थक क्रिया प्रत्यय एँ – माँगें (जैसे हम उनसे माँगें) आदि।

5.3.5.6. कुछ अन्य प्रकार की अनेकार्थता

जातिवाचक शब्द से अनेकार्थता उत्पन्न होती है, जैसे – 'फल' से – केला, आम, संतरा रूप आदि अनेकानेक रूपों का संकेत मिलता है। 'मिठाई' से – जलेबी, बर्फी, पेड़ा, गुलाबजामुन, रसगुल्ला आदि। इसीलिए स्पष्ट किया जाता है कि मिठाई में अमुक मिठाई और फल में अमुक फल ले आना। 'मिठाई' और 'फल' जैसे शब्दों को आच्छादक नाम भी कहते हैं। एक और अनेकार्थता तब होती है जब व्यक्ति नाम का ही प्रयोग उसके आविष्कार के साथ किया जाता है। विज्ञान में न्यूटन, जूल, वाट आदि अनेक इकाइयों के नाम व्यक्ति नाम पर हैं।

5.3.5.7. शब्द संयोग स्तर पर अनेकार्थता

प्रायः शब्द संयोग-स्तर पर भी अनेकार्थता उत्पन्न हो जाती है। इसमें विभिन्न विग्रह पर विभिन्न अर्थ मिलते हैं। यथा –

असरकारी (अ+सरकारी) संस्थाएँ सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा अधिक असरकारी (असर+कारी) होती हैं।

God is no where. – God is now here.

आ जाऊँगा —> आज + आऊँगा। आ + जाऊँगा

संस्कृत में इन्हें सभंग श्लेष कहते हैं। संस्कृत महाकाव्यों में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है।

5.3.5.8. वाक्य स्तर पर अनेकार्थता

कभी-कभी सार्वनामिक विशेषण अथवा क्रियाविशेषण सर्वनामता किस संज्ञा के साथ है, यह स्पष्ट नहीं कर पाता है (विशेषतः तब जब विशेष्य सर्वनाम के समीप न हो) और भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्याकरणिक अनेकार्थता का उदाहरण है 'यह राम की पुस्तक है', यहाँ 'पुस्तक का विषय राम है', 'राम ने स्वयं पुस्तक लिखी है', और 'पुस्तक का स्वामी राम है' आदि अनेक अर्थ निकलते हैं। इसी प्रकार – 'सिपाही ने दौड़ते हुए चोर को पकड़ा' (सिपाही दौड़ रहा था या चोर दौड़ रहा था ?), 'मोहन को सोहन को दस रुपये देने हैं' (पता नहीं चलता कि किसे देना है और किसे लेना है) आदि।

5.3.6. नानार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय

भर्तृहरि के अनुसार नानार्थक या अनेकार्थक शब्दों के अर्थ-निर्णय के 14 साधन बताए गए हैं –

01. <u>संयोग</u> : जिससे संयोग या सम्बन्ध प्रसिद्ध हो, उसके आधार पर नानार्थक का अर्थ निर्णय होता है। 'राम' शब्द के तीन अर्थ हैं – रामचन्द्र, परशुराम, बलराम। राम का धनुष, परशुराम का परशु (कुल्हाड़ी), बलराम का हल प्रसिद्ध है। केवल 'राम' कहने से सन्देह होगा। अतः विशेषण शब्द का प्रयोग अपेक्षित है। यथा 'धनुर्धरः रामः', 'परशुधरः रामः' और 'हलधरः रामः' कहने से अर्थ स्पष्ट होगा।
02. <u>वियोग</u> : प्रसिद्ध वस्तु-सम्बन्ध का अभाव दिखलाना 'वियोग' है। इससे भी अर्थ निर्णय होता है। राम का सीता से सम्बन्ध है। अतः 'सीता वियुक्तः रामः' (सीता से वियुक्त राम) कहने पर 'रामचन्द्र' ही अर्थ लिया जाएगा। 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं – गाय, पृथ्वी, किरण आदि। अतः 'अवत्सा गौः' कहने पर 'बछड़े से हीन गाय' अर्थात् 'गो' से 'गाय' अर्थ ही लिया जाएगा। 'सशंखचक्रः हरिः' कहने पर 'हरि' का अर्थ 'विष्णु' ही लिया जाएगा, अन्य अर्थ नहीं।

03. साहचर्य : 'साहचर्य' का अर्थ हैं 'साथ रहना'। जिसका साथ रहना प्रसिद्ध है, वही अर्थ लिया जाएगा। 'रामलक्ष्मणौ' कहने पर साहचर्य के कारण 'राम' का अर्थ 'रामचन्द्र' लिया जाएगा। 'भीमार्जुनौ' कहने पर कुन्तीपुत्र अर्थ लिए जाएँगे। अन्य अर्थ नहीं। इसी प्रकार 'कृष्णार्जुनौ' में कृष्ण और अर्जुन।

04. विरोध : जिनका विरोध प्रसिद्ध है, वही अर्थ लिया जाएगा। यथा – राम-रावण का विरोध प्रसिद्ध है, अतः 'राम-रावणौ' में 'राम' से 'रामचन्द्र' अर्थ होगा। इसी प्रकार 'कर्णार्जुनौ' से कर्ण और अर्जुन।

05. अर्थ (प्रयोजन) : जिससे अर्थ या प्रयोजन सिद्ध हो, वह अर्थ लिया जाएगा। जैसे – 'दुधाय गां श्रय' (दूध के लिए गो का आश्रय लो) में दूध गाय से मिलेगा, अतः गो का अर्थ 'गाय' होगा किन्तु 'कृषये गां श्रय' (कृषि के लिए गो का आश्रय लो) में 'गो' का अर्थ पृथ्वी होगा।

06. प्रकरण (प्रसंग) : प्रकरण या प्रसंग से अर्थ निर्णय होता है। संस्कृत नाटकों में प्रायः यह वाक्य आता है – 'यथा देव आज्ञापयति' (जैसी आपकी आज्ञा) में 'देव' का अर्थ 'राजा' है, 'देवता' नहीं। 'मधु' के अनेक अर्थ हैं – बसन्त, शहद, शराब। प्रसंगानुसार – 'मधुमत्त कोयल' और 'मधु से सितोपलादि लेना' में क्रमशः 'मधु' का अर्थ 'बसन्त' तथा 'शहद' होगा।

07. लिंग (चिह्न) : यहाँ लिंग का अर्थ स्त्रीलिंग, पुलिंग नहीं है। लिंग का अर्थ प्रसिद्ध 'चिह्न' है, जिससे वस्तु की पहचान होती है। 'मानस' का अर्थ – मन और मानसरोवर है। 'मानस में कामनाएँ जाग्रत हुई' तथा 'मानस में हंस' में क्रमशः 'मानस' का अर्थ 'मन' और 'मानसरोवर' लिया जाएगा।

08. सन्निधि या समीपता : शब्दों की समीपता से अर्थ निर्णय होता है। जैसे – 'राणा-शिवा' में 'राणाप्रताप और शिवाजी' अर्थ होगा। 'मोती-जवाहर' में 'मोतीलाल नेहरू' और 'जवाहरलाल नेहरू' अर्थ होगा। 'लाल-बाल-पाल' से 'लाला लाजपतराय, बालगंगाधर तिलक तथा विपिनचन्द्र पाल' अर्थ होगा।

09. सामर्थ्य : जिसमें कार्य को करने की सामर्थ्य होगी, वह अर्थ होगा। 'बिन हरि भजन न दोष नसाहीं' में हरि से 'ईश्वर' या 'विष्णु' अर्थ होगा। क्योंकि ईश्वर में ही दोष नष्ट करने का सामर्थ्य है।

10. औचित्य : औचित्य के आधार पर भी अर्थ निर्णय होता है। यथा, द्विज का अर्थ है – ब्राह्मण, दाँत, पक्षी। 'द्विजः पठन्ति' (द्विज पढ़ते हैं) में औचित्य के आधार पर यहाँ 'द्विज' का अर्थ ब्राह्मण होगा। 'द्विजों से खाया जाता है' में 'दाँत' और 'द्विज उड़ते हैं' में 'द्विज' का अर्थ पक्षी होगा।

11. देश : देश या स्थान की विशेषता के आधार पर अर्थ निर्णय होता है। यथा, 'केदार' का अर्थ है – क्यारी और केदारनाथ। 'केदार में गाँधी सरोवर' और 'केदार में वृक्षारोपण' में 'केदार' का अर्थ क्रमशः 'केदारनाथ' और 'क्यारी' होगा।

12. काल : समय के आधार पर अर्थ निर्णय होता है। 'प्रातः हरि उदय होता है' में 'हरि' का अर्थ 'सूर्य' होगा। 'मधु में कोयल बोलती है' में 'मधु' का अर्थ 'बसन्त ऋतु' होगा।

13. व्यक्ति (पुलिंग, स्त्रीलिंग) : लिंग भेद से अर्थ भेद हो जाता है। यथा – दुर्ग (किला) – दुर्गा (पार्वती), काल (समय, यम), – काली (दुर्गा), कृष्ण (कृष्ण, काला) – कृष्णा (द्रौपदी), मुग्ध (मूर्ख) – मुग्धा (सुन्दरी)।

14. स्वर : स्वरों के भेद से अर्थभेद हो जाता है। जैसे – हिन्दी में 'आप आ गए' के स्वर भेद करके बोलने से प्रसन्नता, विस्मय, रोष, आदि भाव व्यक्त होते हैं। काकु (स्वरभेद व्यंग्य) के कारण भी अर्थभेद हो जाता है। जैसे – 'नहीं जाऊँगा' का अर्थ स्वर भेद से सकारात्मक हो जाएगा कि 'अवश्य जाऊँगा'।

अर्थ निर्णय के ये साधन केवल दिशा-निर्देश हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य साधन अर्थ निर्णय के हो सकते हैं।

5.3.7. पाठ-सार

01. एकार्थक शब्दों का एक ही प्रमुख अर्थ होता है।
02. एकार्थता और पर्यायता में सूक्ष्म अन्तर है।
03. पर्याय का आविर्भाव मुख्यतः ऐतिहासिक तथा विदेशी कारण से हुआ।
04. साहित्यिक लेखन भी पर्यायों के विकास का स्रोत है।
05. सांस्कृतिक विभेद और व्याकरणिक पर्यायता भी पर्यायों के उद्भव का स्रोत है।
06. पर्याय पूर्ण तथा अपूर्ण दो प्रकार के होते हैं।
07. एकार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय करने के 10 मुख्य साधन हैं।
08. नानार्थक या अनेकार्थक शब्द एक से अधिक अर्थों का बोध कराते हैं।
09. अनेकार्थता के कई कारण हैं, जैसे – कल्पना, परम्परा, ध्वनैक्यता, नवशब्दजन्यता, अनेकार्थी प्रत्यय, शब्द संयोग तथा वाक्यस्तरीय अनेकार्थता आदि।
10. नानार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय के मुख्यतः 14 साधन बताए गए हैं।

5.3.8. अभ्यास प्रश्न

1. एकार्थी एवं पर्यायवाची शब्दों से आप क्या समझते हैं ? पर्याय के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. पर्यायों के विकास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
3. एकार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय के प्रमुख आधारों का विवेचन कीजिए।
4. नानार्थक या अनेकार्थक शब्दों से आप क्या समझते हैं ? विवेचन कीजिए।
5. अनेकार्थता के प्रमुख स्रोत क्या हैं ?
6. नानार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय के प्रमुख साधनों का निरूपण कीजिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : अर्थ विज्ञान

इकाई – 4 : अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ तथा कारण

इकाई की रूपरेखा

5.4.1 उद्देश्य
5.4.2 प्रस्तावना
5.4.3 शब्द और अर्थ
5.4.4 अर्थ परिवर्तन का स्वरूप
5.4.5 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ
 5.4.5.1 अर्थ विस्तार
 5.4.5.2 अर्थ संकोच
 5.4.5.3 अर्थादेश
 5.4.5.4 अर्थोत्कर्ष
 5.4.5.5 अर्थापकर्ष
 5.4.5.6 अर्थापदेश
5.4.6 अर्थ परिवर्तन के कारण
 5.4.6.01 लक्षणा का प्रयोग
 5.4.6.02 सामाजिक कारण
 5.4.6.03 शिष्टाचार व नम्रता प्रदर्शन
 5.4.6.04 पीढ़ी परिवर्तन
 5.4.6.05 आगत शब्दों का प्रभाव
 5.4.6.06 वातावरण में परिवर्तन
 5.4.6.07 नई वस्तुओं का आविष्कार
 5.4.6.08 साहित्यकारों द्वारा शब्द-प्रयोग
 5.4.6.09 अशुभ के स्थान पर शुभ भाषा का प्रयोग
 5.4.6.10 सादृश्य
 5.4.6.11 पुनरावृत्ति
 5.4.6.12 मुहावरों का प्रयोग
 5.4.6.13 एक शब्द के दो रूपों का चलन
 5.4.6.14 अज्ञान व असावधानी के कारण अशुद्ध प्रयोग
 5.4.6.15 किसी जाति विशेष के प्रति मनोवृत्ति का विकास
 5.4.6.16 भावावेश
 5.4.6.17 भाषा का आधुनिकीकरण
 5.4.6.18 अन्य कारण
5.4.7 पाठ-सार
5.4.8 बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

5.4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.4.1. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. अर्थ से क्या तात्पर्य है, यह समझ सकेंगे।
ii. शब्द और अर्थ के परस्पर-सम्बन्ध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
iii. अर्थ परिवर्तन से क्या तात्पर्य है, यह जान पाएँगे।
iv. अर्थ परिवर्तन का स्वरूप क्या है, यह समझ सकेंगे।
v. अर्थ परिवर्तन की कौन-कौन सी दिशाएँ हैं, इनका परिचय प्राप्त कर सकेंगे। और
vi. अर्थ परिवर्तन के कारणों को समझ पाएँगे।

5.4.2. प्रस्तावना

शब्द और अर्थ में पारस्परिक सम्बन्ध माना जाता है। शब्द अर्थ को आकार और अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में, शब्द अर्थ को प्रकाशित करने का माध्यम हैं। अर्थ का स्वरूप शब्दों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। आवश्यकताओं के अनुरूप जैसे-जैसे शब्दों का निर्माण होता है, वैसे-वैसे भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता का भी विस्तार होता जाता है। जब किसी वस्तु के लिए कोई शब्द-विशेष प्रचलित हो जाता है, तब वह शब्द उस वस्तु का प्रतीक बनकर उसके अर्थ का वाहक बन जाता है। शब्द को सुनने के साथ-साथ हमारे मस्तिष्क में उससे सम्बन्धित एक बिम्ब उभरता है। इस प्रकार उस शब्द का अर्थ हमारी समझ में आ जाता है।

भारत में शब्दार्थ की चर्चा वैदिककाल से ही चली आ रही है। यहाँ दर्शन, व्याकरण, अलंकार-शास्त्र और काव्य-शास्त्र के सन्दर्भ में शब्दार्थ पर व्यापक चर्चा हुई है। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि भारत के महान् वैयाकरण रहे हैं। उन्होंने शब्द के अर्थ का निर्धारण उसकी व्युत्पत्ति और प्रयोग के आधार पर करने पर बल दिया। बाद में भर्तृहरि ने 'शब्दार्थ को परिकल्पनात्मक' अर्थात् 'अमूर्त्त' माना।

भाषा चूँकि परिवर्तनशील है, समय के अन्तराल में भाषा के विभिन्न अवयवों, ध्वनि, रूप तथा शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता रहता है। कभी शब्द के पुराने अर्थ का विस्तार हो जाता है तो कभी संकुचन। कभी-कभी पुराने अर्थ से असम्बद्ध कोई नया अर्थ विकसित हो जाता है कभी किसी शब्द के अर्थ का विकास उत्कर्ष के रूप में होता है तो कभी अपकर्ष के रूप में। इस प्रकार अर्थ परिवर्तन की पाँच प्रमुख दिशाओं की चर्चा की जाती है। इसके सम्बन्ध में हम विस्तार से अगले खण्ड में सोदाहरण चर्चा करेंगे।

अर्थ परिवर्तन के कारणों के बारे में विद्वानों ने चर्चा की है और इसके अनेक कारण बताए हैं। अर्थ परिवर्तन का प्रधान कारण मानव-मन माना जाता है। मानव के विचार, राग-द्वेष आदि भाषा में उजागर होते हैं।

मानसिक परिवर्तन होना एक सामान्य स्वाभाविक प्रक्रिया मानी जाती है। समाज में पीढ़ी परिवर्तन से भी शब्दों में अर्थ परिवर्तन होता है। कभी भाषा में दूसरी भाषाओं से आगत शब्द भी परिवर्तन का आधार बनते हैं। कभी भौगोलिक वातावरण में परिवर्तन, नई वस्तुओं का आविष्कार, पुनरावृत्ति, सादृश्य आदि के कारण भी भाषा के शब्दों में अर्थ परिवर्तन देखा गया है। वस्तुतः अर्थ परिवर्तन के अनेक कारण हैं। इनके बारे में हम इसी पाठ में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

5.4.3. शब्द और अर्थ

भारत में शब्दार्थ की चर्चा वैदिककाल से ही चली आ रही है। भारत में मीमांसा, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य आदि दर्शन के छह सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं। इनमें से अधिकांश में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में गम्भीर विमर्श हुआ है। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नैसर्गिक है। मीमांसकों ने 'मीमांसा-सूत्र' में यह बहस उठाई है कि अर्थ के मर्म तक पहुँचना चूँकि असम्भव है अतः यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि शब्दों के अर्थ उसी प्रकार नैसर्गिक हैं जिस प्रकार मानवेन्द्रियों में संवेदनों की क्षमता नैसर्गिक होती है। मीमांसकों ने इस क्षमता को शब्द की योग्यता कहा है। शब्द सत्तावान् है और अर्थ नित्य। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य एवं अपरिवर्तनशील है।"

भाषा की विकसित अवस्था में तो मीमांसकों द्वारा बताई गई शब्द और अर्थ की ऐसी संयुक्ति दिखाई भी देती है, क्योंकि जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं तो उसका अर्थ बिना किसी अन्तराल के ध्वनित होता है अर्थात् शब्द के उच्चारण के साथ ही वह हम तक पहुँच जाता है। लेकिन प्रश्न यह है कि आखिर शब्द में यह अर्थ आता कहाँ से है ?

इसी प्रश्न का उत्तर खोजते हुए नैयायिक और वैशेषिक दर्शन में कहा गया कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध न तो नैसर्गिक है और न ही स्थायी। इनका सम्बन्ध तो औपचारिक और पारम्परिक है। "यानी शब्द में अर्थ अन्तर्निहित या अन्तर्भूत नहीं है। अर्थ रीति और चलन से निर्धारित होता है। गौतम ऋषि का कहना है कि शब्द और अर्थ में सीधे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि हमारा आशय शब्द 'अग्नि' से जलाने वाली चीज और 'गाय' से एक पशु विशेष होता है तो ऐसा इसलिए नहीं है कि 'अग्नि' शब्द से जलाने और 'गाय' शब्द में पशु के गुण मौजूद हैं, वरन् ऐसा मात्र इस लिए है कि परम्परा और चलन से इन शब्दों के यही अर्थ निश्चित हो गए हैं। यदि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नैसर्गिक होता तो शब्द और अर्थ साथ-साथ मौजूद होते।"

भारतीय शब्दार्थ चिन्तन में स्फोट-सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। यह सिद्धान्त शब्द की प्रतीकात्मक सत्ता का भी प्रतिपादन करता है। इस सिद्धान्त का आरम्भिक प्रतिपादन भर्तृहरि के ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' में मिलता है। वाक्य को अर्थ-सम्प्रेषण की आधारभूत इकाई मानते हुए भर्तृहरि ने शब्द के उच्चारण के साथ अर्थ के 'स्फोट' का उल्लेख किया है। शब्द की रचना जिन ध्वनियों से होती है, उनका स्वतः कोई अर्थ नहीं होता लेकिन एक के बाद एक क्रमशः उच्चरित होने वाली ध्वनियों में अर्थ एक चमत्कार की तरह फूटता है।

भर्तृहरि शब्द को एक ऐसी अविभाज्य इकाई मानते हैं, जिसमें अर्थ-द्योतन बिजली की कौंध की तरह होता है। भर्तृहरि का 'स्फोटवाद' शब्द और अर्थ के ऐक्य का ही प्रतिपादक है।

स्फोटवाद के साथ गहरे से जुड़ा हुआ है शब्द-शक्तियों के सन्दर्भ में ध्वनि सिद्धान्त। 'स्फोटवाद' में जिस अर्थ की कौंध की बात कही गई है, वह व्युत्पत्ति स्थिर अर्थ की तुलना में अधिक लचीलीहै। ध्वनि सिद्धान्त शब्द के प्रत्यक्ष अर्थ के साथ ध्वनित होने वाले अतिरिक्त अर्थ को महत्त्व देता है। यह अतिरिक्त अर्थ ध्वन्यार्थ या व्यंग्यार्थ होता है। शब्द से अर्थ की प्रतीति कराने वाले तत्त्व को ही अर्थ कहते हैं। वस्तु, शब्द, अर्थ एक दूसरे से जुड़े होते हैं।

5.4.4. अर्थ परिवर्तन का स्वरूप

किसी भी भाषा में शब्दों के अध्ययन से देखा जा सकता है कि शब्दों का जो अर्थ आज प्रचलित है, वह पहले इस रूप में नहीं था। पहले उनका अर्थ कुछ और था और आज कुछ और हो गया है। इस प्रकार अर्थ परिवर्तन एक भाषिक संघटना है। इसी का अध्ययन अर्थ परिवर्तन के अन्तर्गत किया जाता है। भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। विचारों के परिवर्तन के साथ-साथ शब्दों के अर्थ में भी परिवर्तन होता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ भाषा भी बदलती है। भाषा लाक्षणिक होने लगती है और उसकी व्यंजना शक्ति बढ़ने लगती है।

इस प्रकार, अर्थ परिवर्तन एक ऐसी संघटना है, जिसके अन्तर्गत समय के अन्तराल में भाषा के शब्दों में अर्थ परिवर्तन होता है। कभी पुराने अर्थ का विस्तार हो जाता है तो कभी संकोच। कभी पुराने अर्थ से असम्बद्ध कोई नया अर्थ विकसित हो जाता है जिसे अर्थादेश की संज्ञा दी जाती है। कभी किसी शब्द के अर्थ का विकास उत्कर्ष के रूप में होता है तो कभी अपकर्ष के रूप में। इन्हों अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ कहा जाता है। अर्थ परिवर्तन की दिशाओं ओर कारणों की इस पाठ में विस्तार से चर्चा की गई है।

5.4.5. अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

अर्थ परिवर्तन की पाँच प्रमुख दिशाएँ मानी जाती हैं। अर्थ परिवर्तन की दिशाओं को अर्थ की प्रवृत्तियाँ भी कहा जाता है। अब हम अर्थ परिवर्तन की दिशाओं के बारे में विस्तार से जानें।

5.4.5.1. अर्थ विस्तार

जब किसी शब्द का पहले का सीमित अर्थ विस्तार पाता है, तो उसे अर्थ-विस्तार कहते हैं। दूसरे शब्दों में जब कोई शब्द सीमित अर्थ से व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है, तब अर्थ विस्तार की स्थिति होती है। उदाहरण के लिए – 'पत्र' शब्द का अर्थ पहले 'पेड़ का पत्ता' था, किन्तु अब 'पत्र' का अर्थ बहुत व्यापक हो गया। 'पत्र' का अर्थ – 'चिट्ठी', 'समाचार पत्र' या कोई भी पत्र हो सकता है।

इसी प्रकार 'तेल' का मूल अर्थ था – 'तिल का तेल', लेकिन अब इसका अर्थ – सरसों, मूँगफली का तेल और मिट्टी का तेल भी हो गया है। अर्थ विस्तार के कारण इसके अर्थ के प्रयोग का क्षेत्र बढ़ गया है। एक अन्य उदाहरण लीजिए – 'प्रवीण' शब्द का पहले 'वीणा बजाने में निपुण' के अर्थ में प्रयोग किया जाता था। अब इसका प्रयोग हर प्रकार के अच्छे-बुरे कार्य में निपुणता के लिए किया जाता है। यहाँ पत्र, तेल तथा प्रवीण के मूल अर्थ में विस्तार हुआ है।

5.4.5.2. अर्थ संकोच

जब किसी शब्द के विस्तृत अर्थ में पहले की तुलना में कमी आती है, तब अर्थ संकोच की स्थिति होती है। पहले की तुलना में वह किसी व्यापक अर्थ की बजाय एक विशेष अर्थ का द्योतक हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'मृग' का मूल अर्थ 'पशु' था। इसी से 'मृगया' का अर्थ 'शिकार' हुआ और 'मृगराज' का अर्थ हुआ, 'पशुओं का राजा'। लेकिन अब 'मृग का अर्थ संकुचित हो गया है और 'हिरन' का वाचक रह गया है। इसी प्रकार, पहले 'मन्दिर' का अर्थ 'कोई भी भवन' था, लेकिन अब केवल 'देवभवन' रह गया है। इस प्रकार 'मन्दिर' शब्द के अर्थ में संकोच हो गया। 'सब्ज़ी' का मूल अर्थ 'हरियाली या कोई भी हरी चीज' था, लेकिन अब सिर्फ़ 'तरकारी' है। 'गो' शब्द का पहले प्रयोग 'चलने वाला' के अर्थ में होता था, अब इसका प्रयोग केवल 'गाय' के अर्थ में संकुचित हो गया है। इस प्रकार 'मृग', 'मन्दिर' तथा 'गो' शब्दों का अर्थ संकुचित हो गया।

5.4.5.3. अर्थादेश

अर्थादेश का सामान्य अर्थ किसी शब्द को अर्थ का आदेश देना होता है। अर्थादेश के कारण किसी शब्द के सामान्य अर्थ को नया अर्थ प्राप्त होता है, जिसके कारण उसका मूल अर्थ कुछ होता है और प्रचलित नया अर्थ कुछ और हो जाता है। अर्थादेश में अर्थ का विस्तार या संकोच नहीं होता बल्कि अर्थ पूरी तरह से बदल जाता है। उदाहरण के लिए, 'मौन' शब्द का मूल अर्थ था, 'मुनियों के समान व्यवहार करना'। मुनि प्रायः चुप रहते थे। इस प्रकार अब 'मौन' का अर्थ बदल कर 'चुप रहना' हो गया। 'धूर्त' का सामान्य अर्थ 'जुआरी' था। किन्तु अब यह 'चालाक' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पहले 'असुर' का अर्थ 'देवता' और 'सुर' का अर्थ 'राक्षस' था, लेकिन अब इसका नया अर्थ उलटा हो गया है।

उदाहरण के लिए 'कल्याण' का प्रयोग पहले विवाह के अर्थ में होता था, अब हिन्दी में यह 'भलाई' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका मूल अर्थ तमिळ में 'कल्याण मण्डपम्' (विवाह मण्डप) में सुरक्षित है। इस प्रकार 'मौन', 'धूर्त', 'सुर', 'असुर', 'कल्याण' आदि अर्थादेश के उदाहरण हैं।

5.4.5.4. अर्थोत्कर्ष

कुछ शब्दों का अर्थ पहले बुरा होता है किन्तु बाद में अच्छा हो जाता है, अर्थोत्कर्ष कहलाता है। जैसे – 'गवेष्णा' शब्द का पहले अर्थ था, 'गाय को खोजना', अब इसका प्रयोग 'अनुसन्धान' या 'शोध' के अर्थ में होने

लगा है। 'साहसी' का प्रयोग पहले 'डकैत' के लिए प्रयुक्त होता था किन्तु अब यह अच्छे कार्य में 'हिम्मत का प्रदर्शन करने' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार इनके अर्थ में उत्कर्ष हो गया। इसी प्रकार 'साहस' शब्द का प्रयोग संस्कृत में 'चोरी', 'व्यभिचार' आदि बुरे अर्थ में होता था किन्तु अब इसके अर्थ को अच्छा माना जाता है। अब किसी की 'प्रशंसा' के लिए उसके 'साहस' की चर्चा की जाती है। एक और उदाहरण लें। संस्कृत में 'कर्पट' शब्द का प्रयोग 'जीर्ण या फटे हुए वस्त्र' के लिए किया जाता था, किन्तु आजकल इससे विकसित शब्द 'कपड़े' का प्रयोग 'अच्छे वस्त्रों' के लिए होता है।

5.4.5.5. अर्थापकर्ष

कुछ शब्द पहले अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होते थे, बाद में बुरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं, अर्थ परिवर्तन की यह स्थिति अर्थोपकर्ष कहलाती है। जैसे – 'शौच' शब्द का पहले पवित्र कार्य के अर्थ में प्रयोग होता था, अब मल-त्याग के अर्थ में प्रयोग होता है। 'पण्डित' शब्द पहले विद्वान् का वाचक था, अब यह 'मूर्ख ब्राह्मण' का भी वाचक हो गया है। 'गुह्य' शब्द से विकसित 'गूह' एक घृणास्पद वस्तु के लिए रूढ़ होने के कारण अब यह प्रचलन से बाहर हो चला है। इसी तरह 'जुगुप्सा' शब्द का प्रयोग छिपाने के अर्थ में होता था, अब यह 'घृणा' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ये सभी अर्थापकर्ष के उदाहरण हैं।

5.4.5.6. अर्थापदेश

कुछ विद्वान् अर्थ परिवर्तन की एक और दिशा का भी उल्लेख करते हैं। जब अपवित्र, अशुभ या अप्रिय बातों का बुरापन कम करने के लिए सुन्दर शब्दों या उक्तियों का प्रयोग करते हैं। जैसे 'शौच' शब्द का मूल अर्थ था 'पवित्रता' अथवा 'सफ़ाई'। अब शौच जाना, शौच से निवृत्त होना आदि में शौच का अर्थ 'पाख़ाना' हो गया है। इसी प्रकार 'मृत्यु' के स्थान पर 'स्वर्गवास', 'बैकुण्ठ लाभ' आदि का प्रयोग होता है। अमंगल या अशुभ से बचने के लिए लोग 'दुकान बंद करना' के स्थान पर 'दुकान बढ़ाना', 'दिया बुझाने' के स्थान पर 'दिया बढ़ाना' का प्रयोग करते हैं। धार्मिक भावनाओं के कारण भी अनेक शब्दों में अर्थ परिवर्तन हो जाता है, चेचक के लिए शीतला की कृपा, माता का आगमन या महारानी की दया का प्रयोग किया जाता है। कई बार सामाजिक प्रथाओं के कारण भी घुमाव-फिराव के शब्दों का प्रयोग होने लगता है। जैसे पहले भारतीय स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेती थीं, उसके लिए वे घुमा-फिरा कर अन्य शब्दों का प्रयोग करती थीं। ये सब अर्थापदेश के उदाहरण हैं।

5.4.6. अर्थ परिवर्तन के कारण

अर्थ के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के पीछे मानवीय वृत्तियों का प्रभाव सबसे अधिक होता है। अर्थ परिवर्तन के अनेक कारण बताए जाते हैं। अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारणों को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

5.4.6.01. लक्षणा का प्रयोग

शब्द की तीन शक्तियाँ मानी जाती हैं – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। लक्षणा और व्यंजना अर्थ के नए स्वरूप को उजागर करती हैं। लक्षणा और व्यंजना का सम्बन्ध अर्थ परिवर्तन से होता है। अपनी व्यंजना को सुन्दर बनाने के लिए व्यक्ति शब्द की लक्षणा शक्ति का प्रयोग करते हैं। लक्षणा के प्रयोग से शब्द का मूल अर्थ बदल जाता है। इसके अन्तर्गत पशुओं, पक्षियों आदि के लाक्षणिक गुणों का प्रयोग मनुष्य के गुणों को उजागर करने के लिए किया जाता है, जैसे 'बुद्धिहीन' के लिए 'बैल', 'रटने' के लिए 'तोता', 'कोमल दिल' के लिए 'मोम का दिल', 'कठोर दिल' के लिए 'पत्थर दिल', 'शूरवीर' के लिए 'शेर दिल' आदि प्रयोग लक्षणा के उदाहरण हैं।

5.4.6.02. सामाजिक कारण

मनुष्य का मनुष्य से परस्पर सम्बन्ध उनके सामाजिक आचरण के माध्यम से व्यक्त होता है। इसी आचरण को धर्म के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है। धार्मिक व्यक्ति सदाचारी और विपरीत आचरण करने वाला दुराचारी माना जाता है। समाज में दूसरों को सम्बोधित करते समय हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे शब्द हमारे सामाजिक आचरण या व्यवहार को व्यक्त करते हैं। जैसे 'फ़ादर', 'मदर', 'सिस्टर' शब्द के सामान्य अर्थ पारिवारिक हैं। परिवार से बाहर जब इन शब्दों का प्रयोग सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप होता है तब उनका अर्थ पारिवारिक न रहकर सामाजिक हो जाता है। घर में बहन को सिस्टर कहना और अस्पताल में नर्स को सिस्टर कहना और विद्यालय में अध्यापिका को सिस्टर के रूप में सम्बोधित करने में अन्तर है। इसी प्रकार भाई, मामा, काका. चाचा, चाची आदि रिश्ते-नाते के शब्दों के अर्थ भी सामाजिक कारणों से व्यापक रूप लेते हैं।

5.4.6.03. शिष्टाचार व नम्रता प्रदर्शन

शिष्टाचार की भाषा में अक्सर अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। राजदरबार की शिष्टता के कारण सम्बोधन और सामान्य बातचीत की शब्दावली अलग हो जाती है। राजा-महाराजा के लिए 'अन्नदाता', 'जहाँपनाह', 'पृथ्वीनाथ', 'सम्राट्', 'दीनानाथ' आदि शब्दों के द्वारा सम्बोधन-प्रयोग इसके उदाहरण हैं। नम्रता-प्रदर्शन के लिए अपने को छोटा तथा सामने वाले को बड़ा कहना, अपने को 'दीन', 'गरीब' कहना और सामने वाले को 'दीनानाथ', 'गरीब नवाज़' कहना शिष्टाचार के ही उदाहरण हैं। शब्दों के अतिरिक्त शिष्टाचार की शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है, जैसे – 'हुकुम कीजिए', 'फ़रमाइए', 'मेरी प्रार्थना सुनिए' आदि।

5.4.6.04. पीढ़ी परिवर्तन

एक पीढ़ी के निवर्तमान होने पर दूसरी पीढ़ी उसका स्थान ले लेती है। इस परिवर्तन के कारण अनेक क्षेत्रों में बदलाव आता है। यह अनुभव किया गया है कि पीढ़ी-परिवर्तन के कारण भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है। प्रत्येक पीढ़ी शब्दों के अर्थों को उस रूप में ग्रहण नहीं करती, जिस रूप में पुरानी पीढ़ी ने ग्रहण किया था। ध्वनि के क्षेत्र में पीढ़ी परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, इस परिवर्तन से अर्थ में भी परिवर्तन दिखाई देता है।

5.4.6.05. आगत शब्दों का प्रभाव

भाषा सम्पर्क के कारण तथा आवश्यकता के अनुसार भी भाषाओं में आदान-प्रदान होता है। ऐसा करने पर शब्द का शरीर तो ग्रहण कर लिया जाता है किन्तु उसकी आत्मा अर्थात् उसके अर्थ को उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया जाता। इस प्रकार आगत शब्द पर अपनी भाषा का अर्थ आरोपित कर लिया जाता है। इससे शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के तौर पर फ़ारसी का 'दरिया' (नदी) शब्द गुजराती में 'समुद्र' का अर्थ देने लगता है। इसी प्रकार अंग्रेज़ी का 'ग्लास' (शीशा) शब्द हिन्दी में 'गिलास' का अर्थ देने लगता है।

5.4.6.06. वातावरण में परिवर्तन

कुछ शब्दों के अर्थ में परिवर्तन वातावरण परिवर्तन के कारण भी होता है। बाह्य वातावरण का प्रभाव मानसिक भावों तथा विचारों पर पड़ता है। मानसिकता में परिवर्तन आते ही अर्थ परिवर्तन होने लगता है। वातावरण चाहे भौगोलिक या सामाजिक हो, इससे भाषा में अर्थ परिवर्तन होने लगता है।

भौगोलिक वातावरण में परिवर्तन होने पर नये स्थान के नदी, पेड़, पर्वत आदि को पुराने स्थान के नाम से पुकारा जाता है। छोटे बच्चे तो नये स्थान की वस्तुओं को पुराने नाम से ही पुकारते हैं। वेदों में 'ऊष्ट्र' शब्द का प्रयोग 'जंगली बैल' के लिए किया जाता था। आर्य जब मरु-भूमि में आए तब उन्होंने इसका प्रयोग 'ऊँट' के लिए करना शुरू कर दिया।

5.4.6.07. नई वस्तुओं का आविष्कार

जब नयी वस्तुएँ बनती हैं तब उनका नामकरण किया जाता है। इस प्रकार उस वस्तु के शब्द में नया अर्थ प्रवेश कर जाता है। भारत में 'गिलास' शीशे (Glass) से बनाया गया। बाद में अन्य धातु से बने पात्र को भी गिलास ही कहा जाने लगा।

5.4.6.08. साहित्यकारों द्वारा शब्द-प्रयोग

साहित्यकार नये-नये शब्द गढ़ते हैं और उनका प्रयोग अपनी रचनाओं में करते रहते हैं। वे पुराने शब्दों में नया अर्थ प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हैं। इसके पीछे उनका उद्देश्य अपनी शैली को अधिक आकर्षक और सम्प्रेषणीय बनाना होता है। अज्ञेय ने अपनी पुस्तक के शीघ्र प्रकाशित होने की 'आशा' के लिए शीघ्र प्रकाशित होने की 'आशंका' कहा है। इस प्रकार उन्होंने 'आशा' के अर्थ में 'आशंका' शब्द का प्रयोग किया है। यदि परवर्ती साहित्यकार भी 'आशा' के स्थान पर 'आशंका' का प्रयोग करना शुरू कर देते हैं तो 'आशा' शब्द का अर्थ परिवर्तन हो सकता है।

5.4.6.09. अशुभ के स्थान पर शुभ भाषा का प्रयोग

मानव मस्तिष्क अश्लील, अशुभ आदि भावों से दूर रहने की कोशिश करता है। ऐसे भावों को शुभ शब्दों से ढकने का प्रयास करता है। जैसे किसी की 'मृत्यु होना' को 'मर जाना' न कहकर 'स्वर्गवास होना', 'पंच तत्त्व में विलीन होना' आदि कहा जाता है। इसी प्रकार 'दुकान बंद करने' के स्थान पर 'दुकान बढ़ाना' का प्रयोग किया जाता है।

5.4.6.10. सादृश्य

सादृश्य भी कभी-कभी अर्थ परिवर्तन का कारण होता है, यद्यपि इसके उदाहरण अधिक नहीं मिलते। 'गोस्वामी' शब्द 'गायों के स्वामी' के अर्थ में प्रयुक्त होता था। साथ ही साथ गोस्वामी शब्द 'इन्द्रियों के स्वामी ईश्वर' के लिए भी प्रयुक्त होता था। ये दोनों शब्द ध्वनि और रूप में समान थे। इस प्रकार गायों का स्वामी के अर्थ वाला शब्द दूसरे गोस्वामी के सादृश्य के कारण ईश्वर के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

5.4.6.11. पुनरावृत्ति

शब्दों को दोहराकर या उनकी पुनरावृत्ति करने से उस शब्द के एक भाग में अर्थ परिवर्तन होना शुरू होने लगता है। उदाहरण के लिए 'विन्ध्याचल पर्वत' नाम चल पड़ा। इसमें 'अचल' शब्द पर्वत का बोधक है। इसी प्रकार 'मलयगिरि पर्वत' में भी 'गिरि' में विद्यमान पर्वत का अर्थ क्षीण होता जा रहा है। 'डबल रोटी' को 'पाव रोटी' कहा जाता है, जबकि 'पाव' का अर्थ भी 'रोटी' ही होता है। 'गुलदस्ता' (बुके) में 'पुष्पगुच्छ' का अर्थ निहित है। किन्तु 'फूलों का गुलदस्ता' में 'पुष्प' की पुनरावृत्ति की जाती है।

5.4.6.12. मुहावरों का प्रयोग

मुहावरों में दो या अधिक शब्दों का प्रयोग होता है, जो लाक्षणिक अर्थ को व्यक्त करते हैं। लक्षणा शक्ति का बार-बार प्रयोग होने पर वह सामान्य अर्थ का स्वरूप ले लेती है। प्रचलन के आधार पर उन शब्दों को मुहावरा कहा जाता है। अर्थ-परिवर्तन के बाद कोश में इसका नया प्रचलित अर्थ देना आवश्यक हो जाता है। जैसे – 'आँख खोलना' (सावधन करना), 'आँख का तारा (प्रिय व्यक्ति), 'आँख तरेरना' (डपटना या ललकारना) आदि मिलते-जुलते शब्दों वाले मुहावरे अनेक अर्थों के लिए व्यवहार में लाये जाते हैं।

5.4.6.13. एक शब्द के दो रूपों का चलन

भाषा में जब एक अर्थ के लिए दो शब्दों का चलन हो जाता है, ऐसी स्थिति में उनमें से एक शब्द लुप्त होने लगता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में एक ही अर्थ में शब्द के तत्सम रूप के साथ-साथ तद्भव रूप भी चलने लगे। ऐसी स्थिति में उनके अर्थ में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। तत्सम रूप से उच्च अर्थ तथा तद्भव रूप से हीन अर्थ का बोध होने लगा। जैसे 'स्तन' और 'थन' एक ही शब्द के रूप होते हुए दोनों के अर्थ में भेद हो गया।

'स्तन' का प्रयोग महिला के लिए और 'थन' का प्रयोग पशु के लिए होने लगा। 'ब्राह्मण' और 'बामन' में भी अर्थ का अन्तर हो गया। 'ब्राह्मण' का प्रयोग 'शिक्षित ब्राह्मण' और 'बामन' का प्रयोग 'निरक्षर ब्राह्मण' के लिए होने लगा। इस प्रकार कई तत्सम और तद्भव रूपों में स्पष्ट अर्थ-भेद विकसित हो गया।

5.4.6.14. अज्ञान व असावधानी के कारण अशुद्ध प्रयोग

कई बार लोग अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अज्ञानवश और असावधानीपूर्वक करते हैं। उनका अनुकरण करते हुए दूसरे व्यक्ति भी अशुद्ध प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार शब्द पर एक नए अर्थ का आरोपण हो जाता है। संस्कृत में 'धन्यवाद' शब्द का प्रयोग पहले 'प्रशंसा' के लिए किया जाता था, किन्तु अब इसका प्रयोग 'शुक्रिया' के अर्थ में होने लगा है।

5.4.6.15. किसी जाति विशेष के प्रति मनोवृत्ति का विकास

किसी समाज, जाति या राष्ट्र के प्रति जैसी भावना होती है, उसकी छाया शब्दों के अर्थों पर भी झलकती है। 'असुर' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद की ऋचाओं में देवताओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। उस समय ईरानियों के प्रति भारतीयों के विचार बुरे नहीं थे। जैसे-जैसे विचार बदले और ईरानियों के प्रति दुर्भावनाएँ पैदा हुईं, तब 'असुर' शब्द का अर्थ 'राक्षस' हो गया। साम्प्रदायिक दंगों के दौरान 'मुसलमान' और 'हिन्दू' शब्द भी घृणा और अविश्वास का सूचक बन जाते हैं। हिन्दुओं को 'काफ़िर' कहने के पीछे भी एक समुदाय की मनोवृत्ति झलकती है।

5.4.6.16. भावावेश तथा व्यंग्योक्ति

जब व्यक्ति आवेश में होता है तब वह शब्दों का प्रयोग विचित्र रूप से करने लगता है। कई बार प्रेम में पिता अपने पुत्र को 'पाजी' या 'गधा' कहते हैं। तब उनका उद्देश्य बुरा न होकर प्यार जताना होता है। इसी प्रकार अंतरंग मित्रों में एक दूसरे को 'साला', 'बेटा' आदि सम्बोधन इन शब्दों के निहित अर्थ में परिवर्तन ला देते हैं। ऐसे शब्द गाली न होकर आत्मीयता दर्शाते हैं। 'मोटी बुद्धि', 'अक्ल का धनी' का शाब्दिक अर्थ बुद्धिमान होता है किन्तु व्यंग्य के कारण इनका प्रयोग 'मूर्ख' का अर्थ देने लगता है। उद्वेग या आवेश में आकर बोलने के ढंग से भी अर्थ-परिवर्तन होता है। उदाहरण के तौर पर 'गुरु' शब्द सम्मान का बोधक है, किन्तु व्यंग्य के रूप में 'कहो गुरु' या 'वह तो बड़ा गुरु निकला' में इसका अर्थ 'चालाक' या 'मक्कार' हो जाता है।

5.4.6.17. भाषा का आधुनिकीकरण

भाषा नियोजन के अन्तर्गत भाषा के आधुनिकीकरण के फलस्वरूप वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का विकास किया जाता है। तब नये गढ़े हुए शब्दों को अर्थ प्रदान किये जाते हैं। हिन्दी भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयास के अन्तर्गत लगभग सात लाख नए शब्द विकसित किये गए। कुछ शब्द संकर शब्दावली के रूप में विकसित हुए हैं। जैसे – 'ऑक्सीकरण', 'रेडियोधर्मिता', 'कागज़पत्र', 'रेलगाड़ी' आदि।

5.4.6.18. अन्य कारण

कई बार एक भाषा को बोलने वाला समुदाय कई समूहों में बिखर जाता है तब एक ही शब्द विभिन्न समूहों में अलग-अलग अर्थ में विकसित होने लगता है। जैसे संस्कृत में 'वाटिका' शब्द का अर्थ 'बगीचा' था। भोजपुरी में यही शब्द विकसित होकर 'बादी' बगीचे का अर्थ देता है, किन्तु बांग्ला में यही शब्द 'बाड़ी' के रूप में विकसित होकर 'घर' का अर्थ देता है। कभी-कभी किसी शब्द विशेष के उच्चारण में किसी विशेष ध्वनि पर बल देने से अन्य ध्वनियाँ कमज़ोर पड़ जाती है। जैसे 'उपाध्याय' शब्द में 'ध्या' पर अधिक बल देने से यह शब्द 'झा' के रूप में विकसित हो गया।

5.4.7. पाठ-सार

समय के अन्तराल में भाषा के विभिन्न स्तरों – ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ आदि में परिवर्तन होता है। जीवन्त भाषा हमेशा परिवर्तनशाल होती है। भाषा में परिवर्तन का अध्ययन समकालिक और द्वि कालिक, दोनों स्तरों पर किया जाता है। हमने शब्द और अर्थ के परस्पर सम्बन्ध की चर्चा की। शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में वैदिक वाङ्मय में व्यापक चर्चा हुई है। पतंजलि, पाणिनि, कात्यायन, भर्तृहरि आदि विभिन्न वैयाकरणों ने शब्दों के अर्थ निर्धारण के सम्बन्ध में विशद् रूप से विचार किया है। भर्तृहरि के स्फोटवाद का तो अर्थ निर्धारण से गहरा सम्बन्ध है।

इस पाठ में हमने अर्थ परिवर्तन के स्वरूप की चर्चा करते हुए अर्थ परिवर्तन की प्रवृत्तियों को समझा। हमने अर्थ परिवर्तन की पाँच प्रवृत्तियों या दिशाओं की चर्चा की। हमने देखा कि कभी कुछ शब्दों के मूल अर्थ में विस्तार होता है तो कुछ में अर्थ संकोच। कुछ के अर्थ में अर्थ परिवर्तन होता है तो कुछ के अर्थ में अर्थोत्कर्ष अथवा अर्थापकर्ष। इन सभी दिशाओं अथवा प्रवृत्तियों के बारे में सोदाहरण चर्चा की गई।

अर्थ परिवर्तन के कारणों पर चर्चा करते हुए हमने देखा कि लक्षणा और व्यंजना अर्थ के नए स्वरूप को उजागर करती है। अर्थ परिवर्तन के लिए सामाजिक कारण भी उत्तरदायी होते हैं। पीढ़ी परिवर्तन से भी अर्थ परिवर्तन होता है। हमने यह भी पढ़ा कि वातावरण में परिवर्तन और नई वस्तुओं के आविष्कार भी अर्थ परिवर्तन को प्रेरित करता है। कई बार साहित्यकार भी कुछ शब्दों का प्रयोग नये अर्थ में करते हैं जिससे अर्थ परिवर्तन होता है। कभी-कभी समाज में विभिन्न समुदायों के प्रति विशेष मनोवृत्ति का विकास भी अर्थ परिवर्तन का कारक बनता है। मुहावरों का प्रयोग, असावधानी या अज्ञानवश कुछ शब्दों का प्रयोग तथा भाषा के आधुनिकीकरण के कारण भी अर्थ परिवर्तन होता है। इस प्रकार हमने देखा कि अर्थ परिवर्तन के कई और भी कारण हैं जिनके बारे में हमने प्रस्तुत पाठ में सोदाहरण चर्चा की है।

5.4.8. बोधात्मक प्रश्न / अभ्यास प्रश्न

(1) निम्नलिखित कथनों पर सही (√) या ग़लत (X) का निशान लगाइए –

(i) अर्थ परिवर्तन भाषा परिवर्तन के अन्तर्गत आता है। (√)

(ii) भाषा के शब्दों के अर्थ में हमेशा अर्थादेश की स्थिति होती है। (X)

(iii) भाषा हमेशा परिवर्तनशील होती है। (√)

(iv) वस्तु, शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अविच्छिन्न होता है। (√)

(v) शौच शब्द का वर्तमान अर्थ उसके मूल अर्थ से अर्थापकर्ष का उदाहरण है। (√)

(vi) भाषिक परिवर्तन में अर्थ परिवर्तन कोई विशेष भूमिका नहीं निभाते। (X)

(vii) भाषाई सम्पर्क भी अर्थ परिवर्तन का कारक बनता है। (√)

(viii) शिष्टाचार के कारण भाषा में अर्थ परिवर्तन नहीं होता। (X)

(ix) भाषा नियोजन के स्तर पर भाषा में नियोजित परिवर्तन किये जाते हैं। (√)

(x) धार्मिक कारणों से भी अनेक शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है। (√)

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर के सही विकल्प चुनिए –

(i) वे शब्द जो पहले अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होते थे, अब बुरे अर्थ में प्रयोग होते हैं। वे किसके अन्तर्गत आते हैं ?

(क) अर्थादेश

(ख) अर्थापकर्ष

(ग) अर्थविस्तार

सही उत्तर (ख)

(ii) अपवित्र तथा अशुभ बातों का बुरापन कम करने के लिए अन्य शब्दों का प्रयोग यह कहलाता है –

(क) अर्थापदेश

(ख) अर्थादेश

(ग) अर्थ-संकोच

सही उत्तर (क)

(iii) अन्नदाता, जहाँपनाह आदि शब्द किसके उदाहरण हैं ?

(क) पीढ़ी परिवर्तन

(ख) सामाजिक कारण

(ग) शिष्टाचार

सही उत्तर (ग)

(iv) गाय शब्द का आधुनिक अर्थ उसके मूल अर्थ के सन्दर्भ में किस का उदाहरण है ?

(क) अर्थोत्कर्ष

(ख) अर्थ विस्तार

(ग) अर्थ संकोच

सही उत्तर (ग)

(v) वातारण परिवर्तन से भाषा में परिवर्तन होता है। इसका उदाहरण है –

(क) फ़ारसी का दरिया शब्द का गुजराती में समुद्र के अर्थ में प्रयोग।

(ख) इंग्लैंड में कार्न (अनाज) का अमेरिका में मक्का के अर्थ में प्रयोग।

(ग) दुकान बंद करना के स्थान पर दुकान बढ़ाना का प्रयोग।

सही उत्तर (ख)

(3) निम्नलिखित का 100 शब्दों में उत्तर लिखिए –

(i) अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

(ii) वस्तु, शब्द और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध

(iii) अर्थ परिवर्तन के प्रमुख कारण

(iv) शब्द-शक्तियाँ

(v) शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

5.4.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. उदय नारायण तिवारी, हिंदी भाषा का उद्‌भव और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. कपिल द्विवेदी, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2012 (तेरहवाँ संस्करण)
3. देवेन्द्रनाथ शर्मा, (1966) भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1973 (नवम संस्करण)
5. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान, किताब महल, नई दिल्ली
6. राजमल बोरा, (सं.) भाषाविज्ञान, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2007 (दूसरा संस्करण)
7. सरिता वशिष्ठ, भाषाविज्ञान, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2014

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/

❖❖❖

खण्ड – 5 : अर्थ विज्ञान

इकाई – 5 : अर्थिम, अर्थ तत्त्व, अर्थिम और रूपिम में सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

5.5.00 उद्देश्य
5.5.01 प्रस्तावना
5.5.02 अर्थिम या अर्थतत्त्व (Semanteme)
5.5.03 अर्थ का अर्थ
5.5.04 अर्थ भेद
5.5.05 अर्थतत्त्व और कोशविज्ञान
5.5.06 अर्थिम, अर्थतत्त्व या अर्थदर्शी रूपिम (Stem Morpheme)
5.5.07 अर्थिम और रूपिम (रूपग्राम)
5.5.07.1 रूपिम और शब्द
5.5.07.2 रूपिम का सामान्य परिचय
5.5.07.2.1 रूपिम के भेद
5.5.07.2.1.1 रचना और प्रयोग की दृष्टि से
5.5.07.2.1.2 अर्थ और कार्य के आधार पर
5.5.07.3 अर्थिम
5.5.08 अर्थिम और रूपिम में सम्बन्ध
5.5.09 पाठ-सार
5.5.10 अभ्यास प्रश्न

5.5.00. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. अर्थिम या अर्थतत्त्व का अध्ययन कर सकेंगे।
ii. अर्थिम और रूपिम के भेद को समझ सकेंगे।
iii. अर्थिम तथा रूपिम के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.5.01. प्रस्तावना

पिछले पाठ में आपने एकार्थता या पर्यायता के सूक्ष्म अन्तर का ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही पर्याय के प्रकार, एकार्थक शब्दों का अर्थ निर्णय एवं अनेकार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय का ज्ञान प्राप्त किया। प्रस्तुत पाठ में

आप अर्थिम या अर्थतत्व का विवेचन समझेंगे। साथ ही अर्थिम तथा रूपिम के भेद एवं उनके सम्बन्ध का सूक्ष्म अध्ययन कर सकेंगे।

5.5.02. अर्थिम या अर्थतत्त्व (Semanteme)

अर्थिम को अर्थतत्त्व भी कहते हैं। इसे अंग्रेजी में Semanteme (सीमेन्टीम) या Sememe (सेमीम) कहते हैं। 'अर्थिम भाषा की सार्थक सूक्ष्मतम इकाई है।' सर्वप्रथम ब्राह्मण ग्रन्थों में शब्दों के अर्थ विषयक ज्ञान का अपरिपक्व प्रारम्भ हुआ। इनमें कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति तथा अर्थ ग्रहण का प्रयास किया गया है। शब्दों की व्युत्पत्तियाँ कहीं-कहीं कल्पना पर आधारित हैं। वैदिककाल में जब वैदिकभाषा और जनभाषा में अन्तर आने लगा था, तब संहिताओं की भाषा को शुद्ध बनाए रखने के लिए वैदिक ऋषियों ने पद-पाठ और प्रतिशाख्यों की रचना की तथा अर्थ के अध्ययन की दृष्टि से वैदिक शब्दों के संग्रह-ग्रन्थ बनाए। वैदिक शब्दों के इन संकलनों को 'निघंटु' कहा जाता है। आजकल केवल एक निघंटु उपलब्ध है। निघंटु की व्याख्या के लिए मुनिवर यास्क ने 'निरुक्त' की रचना की। यह निरुक्त अर्थविज्ञान पर विश्व का प्रथम ग्रन्थ है। निरुक्तकार ने 'निघंटु' के प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ पर विचार किया है।

यास्क ने अर्थ विज्ञान की मूलभूत समस्याओं पर अपना भाषावैज्ञानिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। इनमें पदार्थों के नामकरण की समस्या एक है। उनके मत से समस्त नाम धातुज हैं। किसी वस्तु को दिया गया नाम उस वस्तु की अनेक क्रियाओं में से चयनित एक क्रिया पर आधारित होता है। यास्क जिज्ञासा करते हैं कि यदि सभी नाम धातुज हैं तो जो भी प्राणी उस धातुमूलक क्रिया को सम्पन्न करे, उस प्राणी को उसी नाम से अभिहित किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्राणी को जो दौड़ता है, 'अश्व' (अश: पहुँचना, व्याप्त करना) और चुभने वाली प्रत्येक वस्तु को 'तृण' (तृ: चुभना) कहना चाहिए।

इसी प्रकार यदि सभी नाम धातुज हैं तो जो वस्तु जितनी क्रियाओं को सम्पन्न करे, उतनी ही क्रियाओं से उसके नामों का ग्रहण होना चाहिए। यदि खम्भे को खड़ा होने के कारण 'स्थूणा' (स्थात, तिष्ठतीति) कहा जाता है, तो गड्ढे में पड़ा होने के कारण 'दरशया' तथा बल्लियों को सँभालने वाला होने के कारण 'संजनी' कहा जाना चाहिए। यास्क एक और जिज्ञासा प्रकट करते हैं – एक ही प्रक्रिया को सम्पन्न करने वाली सभी प्राणी उसी एक नाम से सम्बद्ध हों, किन्तु हम देखते हैं कि उनमें से मात्र कुछ को ही उस क्रिया के कर्त्ता की संज्ञा प्राप्त होती है। 'तक्षा' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है – लकड़ी काटने वाला, किन्तु लकड़ी काटने वाले प्रत्येक व्यक्ति को तक्षा नहीं कहा जाता। मात्र 'बढ़ई' को ही 'तक्षा' कहते हैं। इसी प्रकार 'परिव्राजक' (घूमने वाला) एवं 'जीवन' (जिलाने वाला) क्रमश: 'संन्यासी' तथा 'ईख का रस' को ही कहते हैं। अतः एक वस्तु के अनेक क्रियाओं से सम्बद्ध होने पर भी उसका नाम किसी एक विशेष क्रिया के आधार पर पड़ जाता है।

नाम किसी वस्तु के एक अंश या क्रिया के आधार पर स्थित होने के कारण उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस नाम से आधेय वस्तु के समस्त गुणों या उसकी समस्त क्रियाओं का बोध नहीं होता। इसीलिए यास्क

ने नामों को अपूर्ण माना है। उनकी इस धारणा का आधुनिक अर्थ वैज्ञानिक ब्रील की मान्यता से अद्भुत साम्य परिलक्षित होता है। ब्रील भी नामों को इसीलिए अपूर्ण मानते हैं कि उसके द्वारा वस्तु के सभी आयामों को अभिव्यक्ति नहीं मिल पाती। इसके अतिरिक्त जब वह नाम आधेय क्रिया को सम्पादित नहीं करता, तब भी उसका वही नाम चलता रहता है। नाम वस्तु-जगत् के अंश मात्र को ही व्यक्त करता है। उस वस्तु के दूसरे महत्त्वपूर्ण अंश उस नाम से आच्छादित नहीं होते। 'सन्ध्या' कहने वाले मात्र रात और दिन की सन्धि को व्यक्त न करके काल, स्थान और प्राणिजगत् की नाना प्रकार की बातों की ओर संकेत करना चाहते हैं। भाषा की अपनी सीमा है। इसलिए वस्तु की क्रियाओं और गुणों को व्यक्त करते समय चुनाव को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। एक वस्तु के लिए अनेक शब्दों की रचना इसलिए हो जाती है कि उस वस्तु की समस्त क्रियाओं को अभिव्यक्त करने के लिए एक शब्द अपूर्ण प्रतीत होता है। अतः अन्य क्रियाओं के द्योतन हेतु शब्दों की रचना आवश्यक हो जाती है।

आचार्य भर्तृहरि ने 'शब्द ब्रह्म' की धारणा को पुष्ट किया है। जिस प्रकार ब्रह्म में उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का अन्तर्भाव है, उसी प्रकार शब्द में धारणा, विस्तार और प्रत्यावर्तन के गुण विद्यमान हैं। ये शब्द की शक्तियाँ हैं। ब्रह्म निराकार होकर भी सर्वशक्तिमान है। शब्द का बाह्य रूप सत्य नहीं है, वरन् प्रमुख आन्तरिक भावना है जो उसकी प्राणशक्ति है। वही अर्थतत्त्व है। शब्द निरन्तर विकासमान है। वह जिस अर्थ में आज प्रचलित है, कल भी वही रहेगा, यह अनिश्चित है। कालान्तर में पुराना अर्थ पुनः शब्दासीन हो सकता है। शब्द किसी बाह्य शक्ति पर नहीं, अपनी आन्तरिक शक्ति – अर्थ पर आश्रित है। इस अर्थ में गति, प्रतीति और विस्फीति होती है। शब्द की सार्थकता उसके वाक् तत्त्व में समाहित होने में है।

5.5.03. अर्थ का अर्थ

अर्थ एक विशिष्ट प्रकार की इकाई है। किसी अभिव्यक्ति का अर्थ वस्तुतः उसका अभिव्यक्त विचार-बोध ही है। उसका स्वरूप, प्रकरण, देश-काल, वाक्य, संगति आदि पर निर्भर करता है। इस स्थिति में केवल पद के मूल में जाकर धात्वर्थ खोजते रहना कहाँ तक न्यायसंगत है। फिर भी धात्वर्थ किसी शब्द का एक केन्द्रीय अर्थ तो है ही। अनेक कारणों से दूसरे अर्थों की छायाएँ भी शब्द के साथ प्रकट हो जाती हैं। इसीलिए यह धारणा प्रचलित हो गई है कि शब्द के दो अर्थ होते हैं – एक केन्द्रीय, दूसरा गौण। एक स्थिर रहता है, दूसरा गतिमान। कभी-कभी गौणार्थ इतना प्रमुख हो जाता है कि मूलार्थ का पता ही नहीं चलता। जैसे – प्रवीण, कुशल, आपत्ति आदि। तब विकास के सोपानों को स्पष्ट करने के लिए शब्द के अन्तःकरण तक पहुँचना आवश्यक होता है।

धात्वर्थ मूल अर्थ-भावना सें सम्बद्ध होता है। धातु से शब्द निर्मित होता है। उनके साथ नवीन अर्थ छायाएँ बनती हैं। मैक्यमूलर ने भाषा की उत्पत्ति पर विचार करते हुए धातु को भाषा का आदि तत्त्व घोषित किया। एक धातु से अनेक शब्द उत्पन्न होते हैं। जब धातु के आत्मज नष्ट होने लगते हैं तो अन्ततः वह धातु भी नष्ट हो जाती है।

भाषाओं में ऐसे शब्द भी मिलते हैं जिनकी धातुओं का पता नहीं चलता। इस श्रेणी में अनुकरणात्मक और विस्मयादिबोधक शब्द आते हैं। यथा – कलकल, फड़फड़ाना, चहचहाना, आह ! उफ ! आदि। अंग्रेजी में कुक्कू, क्लिक, हिस आदि शब्द इसी कोटि के हैं। ग्रीक में ऐसे शब्दों को आनुप्रासिक कहते थे जिससे उनका तात्पर्य कृत्रिम एवं स्वायत्त रचना से था।

यद्यपि भाषा के आदि तत्त्व के रूप में धातु सिद्धान्त की मान्यता अब खण्डित हो चुकी है फिर भी उससे दो विशिष्ट तथ्यों की ओर संकेत मिलता है–

(i) भाषा वस्तून्मुखी न होकर क्रियाओं को आधार मानकर चलती है।

(ii) शब्द का एक केन्द्रीय अर्थ है। उसका विकसित अर्थ केन्द्रीय अर्थ से किसी न किसी रूप में जुड़ा रहता है। माध्यमिक कड़ियाँ विस्मृत हो जाने से ही कभी-कभी विकसित अर्थ की सम्बद्धता खोजना कठिन हो जाता है। ऐसे में अनुमान ही लगाया जा सकता है। यह अनुमान शब्दार्थ की पुनर्निर्माण प्रक्रिया को संचालित करेगा।

कुछ शब्दों की धातुएँ शुद्ध नहीं हैं। इनमें से अधिकांश तो स्वतन्त्र प्रातिपदिक हैं जिन्हें धातु रूप में परिगणित कर लिया गया है। 'अर्थ' धातु भी इन्हीं प्रातिपदिकों में से एक है। इसकी मूल धातु की खोज में पाणिनि भी असफल रहे। फिर भी उन्होंने उसकी मूल भावना खोज निकाली। उन्होंने धातु-पाठ में उसका अर्थ 'उपयाञ्चायाम्' दिया। तात्पर्य यह है कि 'अर्थ' धातु का प्रयोग माँगने या माँगने की प्रवृत्ति दिखाने के अर्थ में होता है। इसी से 'प्रार्थना' जैसे शब्दों का निर्माण होता है। अतः 'अर्थ' का तात्पर्य 'उपयाञ्चा' रहा होगा। इसमें सन्देह नहीं कि यह धात्वर्थ एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत करता है। वक्ता और श्रोता शब्द की दिशा में 'याञ्चा' की दृष्टि से पहुँचते हैं। यह 'याञ्चा' प्रयोग भावना से जुड़ी है। इसलिए 'अर्थ' का मौलिक अर्थ हुआ 'माँग' या 'उपस्तुति'।

5.5.04. अर्थ भेद

आधुनिक अर्थविज्ञान में 'अर्थ' की सभी सम्भव दृष्टियों से व्याख्या की गई है। अर्थ की कोटियाँ निर्धारित की हैं, श्रेणियाँ बनाई हैं। उस मूल भावना तक पहुँचने का प्रयास क्यिा है जिसे अर्थ कहते हैं। स्थूल रूप से अर्थ की दो कोटियाँ हैं – (i) जन सामान्य द्वारा स्वीकृत कोशार्थ और (ii) भाषाशास्त्रीय अर्थ।

इस दूसरे वर्ग (भाषाशास्त्रीय अर्थ) के अन्तर्गत अर्थ के अनेक रूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण हुआ है।

परम्परागत तर्कशास्त्र के अनुसार शब्दार्थ के दो अंशों को स्वीकार किया गया है – (i) निहितार्थ (डिनोटेशन) और (ii) संकेतार्थ (कोनोटेशन)।

प्रायः प्रत्येक प्रतीक से दो अर्थांश निकाले जा सकते हैं। निहितार्थ वस्तु से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध है। यह वस्तु उस शब्दार्थ द्वारा सीधे व्यक्त हो जाती है। संकेतार्थ का तात्पर्य ऐसे तत्त्वों से है जो शब्द के प्रयोग को निश्चित करते हैं। ये मूल या केन्द्रीय अर्थ से भिन्न हैं। अनेकार्थी शब्दों का कारण उसकी संकेतात्मक शक्ति है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसे व्यंजना-व्यापार कहा गया है।

इन्हीं संकेतार्थों से शब्द के प्रयोग में लचीलापन आता है। निहितार्थ संकेतार्थ को निश्चित करता है, जबकि संकेतार्थ निहितार्थ को समझे जाने की ऊर्जा प्रदान करता है। अनेक शब्द – कल्पना, ज्ञान, संतुलन, विचार आदि – भाववाचक हैं जिनके अर्थ अनिवार्यतः वस्तु स्फूर्त नहीं है। अर्थ इच्छा भी नहीं है। इच्छा में वस्तुतत्त्व क्षीण है। वह व्यक्ति सापेक्ष है। अर्थ में सामाजिक तत्त्व की प्रधानता है जिसके कारण वक्ता-श्रोता के मध्य पारस्परिक समझ की रचना सम्भव है। यह सामाजिकता और इस दृष्टि से व्यक्ति निरपेक्षता भाषा का महत्त्वपूर्ण गुण है। जिससे लोक-सामान्य भूमिका का निर्माण होता है।

5.5.05. अर्थतत्त्व और कोशविज्ञान

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध तार्किक नहीं बल्कि यादृच्छिक है। संसार की भाषाओं में न तो शब्द-साम्य पूर्णतः दिखाई देता है, न अर्थ साम्य। सभी भाषाओं में अलग-अलग वस्तुओं के अलग-अलग नाम हैं। जैसे – हिन्दी का 'भाषा', अंग्रेजी – 'लैंग्वेज', फारसी – 'ज़बान', रूसी – 'यांत्रिक' आदि। 'बाड़ी' शब्द बांग्ला में 'घर' और हिन्दी में 'काँटे की बाड़ी' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। शब्द के सहारे ही बुद्धि की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। ऐसा कोई विचार नहीं है जिसमें शब्द का अनुवेद्य न हो। शब्दार्थ-सम्बन्ध और स्वरूप-विचार भाषा अथवा अभिव्यक्ति एवं विचार-प्रणाली के बीच के गहरे सम्बन्ध को व्यक्त करता है। भाषा के भौतिक पक्ष अथवा ध्वन्यात्मक पक्ष और भाषा के मानसिक पक्ष अथवा अर्थ पक्ष में जितना अन्तर तथा जितनी निकटता है, उतना ही अन्तर और उतनी ही निकटता श्रूयमाण शब्द और बोधक अर्थ में है। शब्द के द्वारा ही अर्थ अभिव्यक्त होता है, किन्तु शब्द ही अर्थ नहीं है, वह अर्थ का वाचक मात्र है।

शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से केन्द्रीय अर्थ का निर्धारण वाचक शब्द के केवल शाब्दिक-अर्थों की संख्या के आधार पर होता है। अन्य अर्थों का निर्धारण दो दृष्टियों से किया जाता है – (i) शाब्दिक दृष्टि और (ii) सांदर्भिक दृष्टि।

शब्दकोशों में केन्द्रीय अर्थ के अतिरिक्त अन्य शाब्दिक अर्थों को 'अन्य अर्थ' के प्रथम उपवर्ग 'शाब्दिक अर्थ' में रखा जाता है। अन्य उपवर्ग में शब्द के सांदर्भिक अर्थों को रखा जाता है।

कोशविज्ञान (Lexicography) और कोशकला (Lexicology) दो शब्द प्रचलित हैं। कोशविज्ञान कोश बनाने का विज्ञान है। इसमें उन सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है जिनके आधार पर कोश बनाते हैं। इस प्रकार इसका सम्बन्ध सिद्धान्त से है। दूसरी ओर 'कोशकला' सिद्धान्तपरक न होकर 'कला' या प्रयोग है। शब्दों का संग्रह करके उनको अकारादिक्रम से सजाने (रखने) की व्यवस्था उनके धातुगत अथवा व्युत्पत्तिपरक अर्थ –

लिंग निर्धारण, उच्चारण, व्याकरणिक निर्देश, पर्याय, बहुअर्थक शब्दों का संकेत तथा निर्देश, लोकोक्ति एवं मुहावरे आदि का संकलन करके – इन सबकी आर्थी व्याख्या एवं अर्थ छायाओं का उल्लेख जिस शास्त्र के द्वारा किया जाता है, उसे 'कोशकला' कहते हैं। अतः प्रत्येक सम्भावनाओं को दृष्टि में रखकर शब्दों का आर्थी विश्लेषण जिस शास्त्र के अन्तर्गत होता है, उसे कोश की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

डॉ॰ एस. एम. कत्रे के अनुसार – "सिद्धान्ततः कोशविज्ञान भाषा के सांकेतिक शब्दरूपों या पदिमों के संग्रह के साथ भाषिक समुदाय (निकाय) की वह संयोजना है जो अर्थपूर्ण स्थितियों केसन्दर्भ में प्रकट होती है। सामान्य बोलचाल में हम कहते है कि कोश का शरीर शब्दों या पदों से निर्मित होता है जो वर्णादि क्रम से शब्द सूची के साथ अर्थगत सांकेतिक स्थितियों में संयोजितकिये जाते हैं।"

विलियम जे. एन्टविस्त्वे ने कोशविज्ञान की कार्यसीमा एवं उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "सभी शाखाओं में समन्वय सम्बन्ध बनाने वाला तथा प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ निश्चित करने वाला, शब्द की प्राचीनता और उनका सम्बन्ध निरूपित करने वाला एवं विशिष्ट वाक्य-विन्यास में शब्द-प्रयोग को निर्दिष्ट करने वाला शास्त्र है।"

भाषाविज्ञान की अध्ययन पद्धतियों की तरह ही कोशविज्ञान का अध्ययन भी तीन रूपों में किया जाता है – वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक। विषय तथा सन्दर्भ के अनुसार शब्द-अर्थ के अनेक प्रकारों को दृष्टि में रखते हुए, कोशों के भी अनेक प्रकार प्रचलित हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के शब्दार्थों का संकलन तथा अर्थ-संयोजन किया जाता है। यथा – भाषाकोश, विषयकोश, लेखककोश, एकभाषीकोश, द्विभाषीकोश, पुस्तककोश, व्यक्तिकोश, पारिभाषिक कोश, पर्यायकोश, मुहावरा और लोकोक्तिकोश, बहुभाषाकोश, कथाकोश, जीवनीकोश, विश्वकोश तथा उद्धरणकोश आदि।

5.5.06. अर्थिम, अर्थतत्त्व या अर्थदर्शी रूपिम (Stem Morpheme)

इसे अंग रूपिम या धातु-रूपिम भी कहते हैं। संस्कृत व्याकरण में ये अंग, प्रातिपदिक या धातु (Stem, Root) हैं। ये केवल अर्थ का बोध कराते हैं। इसके अतिरिक्त इनका कोई अन्य कार्य नहीं है। अर्थतत्त्व या अर्थदर्शी रूपिम मनुष्य के विचारों का साक्षात् प्रतिनिधित्व या प्रस्तुतीकरण करते हैं। ये संज्ञा (मोहन, बालक, पुस्तक आदि), क्रिया (भू, पठ्, गम्, जा, हो, पढ़ आदि) विशेषण (सुन्दर, पटु, मुदृ आदि), सर्वनाम (सर्व, सब, मैं, हम, तू आदि) होते हैं। प्रत्येक भाषा में ये हजारों की संख्या में हैं। अंग्रेजी में ये अधिकतर मुक्त रूपिम (Free Morpheme) के रूप में प्राप्त होते हैं, जैसे – Boy, Man, Play आदि। लैटिन में अधिकतर अर्थदर्शी रूपिम बद्ध रूपिम (Bound Morpheme) के रूप में मिलते हैं। जैसे – Vena (बेना – शिकार करना) + For (कर्त्ता, संस्कृत तर्) Ventor (वेनातोर – शिकारी)। संस्कृत और हिन्दी में दोनों प्रकार के अर्थदर्शी रूपिम मिलते हैं। मुक्त रूपिम हैं – मणि, बाल, भू, पठ्, जा, हो आदि। बद्ध रूपिम हैं – हन्+तृ = हन्ता (मारने वाला), पठ्+अक = पाठक (पढ़ने वाला), भुज् + अन = भोजन, युज् + अ = योग, भूत + इक = भौतिक आदि।

5.5.07. अर्थिम और रूपिम (रूपग्राम)

अर्थिम का संज्ञान प्राप्त करने के लिए रूपिम का विश्लेषण आवश्यक है। स्वन-लहर कर्ण में प्रविष्ट होकर प्रतिक्रिया करते हैं। वास्तव में श्रुत-स्वन से प्रभावित होकर ही श्रोता अपना विचार व्यक्त करता है। ये विचार कतिपय स्वनों के द्वारा व्यक्त किये जाते हैं किन्तु इन स्वनों तथा व्यक्त विचारों में कोई सम्बन्ध नहीं होता। फ्रांस के प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी मार्तिने ने इसके लिए 'विषय' तथा 'रूप' शब्दों का प्रयोग किया है। उनके अनुसार व्यक्त विचार 'विषय' हैं और वह जिस रूप में व्यक्त किया जाता है, वह रूप है। यह 'रूप' प्रत्येक भाषा में अलग-अलग होता है। इसीलिए किसी भाषा में व्यक्त किया गया भाव या विचार तो दूसरी भाषा में अनूदित किया जा सकता है किन्तु किसी भाषा के रूप का अनुवाद नहीं हो सकता।

भाषा का उपर्युक्त रूप कतिपय स्वनों का क्रमबद्ध समुच्चय मात्र है। जब किसी भाषा विशेष में कुछ स्वन किसी निश्चित क्रम में सजकर आते हैं तो उनसे अर्थबोध होता है। यह अर्थबोध युक्त रूप ही रूपिम कहलाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रूपिम का अर्थ निश्चित एवं स्थिर नहीं होता। इसका कारण यह है कि रूपिम अर्थ-प्रयोग पर अवलम्बित होता है।

वास्तव में स्वनिमिक आकार वाले अर्थवान् रूप को रूपिम कहते हैं। यदि किसी उच्चार (Utterence) का विश्लेषण करें तो पहले उसे रूपिम या रूपिमों में विभक्त कर सकते हैं। पुनः यदि रूपिमों का भी आगे विश्लेषण करें तो उसे स्वनिमों (= ध्वनिग्रामों) में विभक्त कर सकते हैं। इस प्रकार किसी उच्चार में सर्वप्रथम 'रूपिम' को ही महत्त्व दिया जाता है। उच्चार में इन रूपिमों की निश्चित व्यवस्था होती है जिससे वाक्यांश तथा वाक्यों का निर्माण होता है। यथा – मानव, मानवीय, अमानवीय, मानवीयता, वरण, वरणीय, अवरणीय, ज्ञान, ज्ञातव्य, ध्यान, ध्यातव्य आदि। इसी प्रकार अवधी के – तिलक, तिलकहार एवं भोजपुरी के तिलकहरू (तिलक चढ़ाने वाले) में यह व्यवस्था परिलक्षित होती है।

5.5.07.1. रूपिम और शब्द

सन 1940-50 में रूपिम की परिभाषा और उसके स्वरूप को लेकर काफी वाद-विवाद था। प्रश्न यह था कि 'शब्द' के स्थान पर 'रूपिम' का प्रयोग क्यों किया जाए ? वाक्य-निर्माण का आधार शब्द होता है और शताब्दियों से पूर्वी तथा पश्चिमी वैयाकरणों ने इसका प्रयोग किया है। वास्तव में वाक्य में लघुतम अर्थवान् इकाई 'शब्द' होता है और 'रूपिम' का भी सम्प्रत्यय यही है, तब प्राचीनकाल से प्रयुक्त 'शब्द' का परित्याग कर एक सर्वथा नवीन 'रूपिम' शब्द का प्रयोग क्यों किया जाए ?

वास्तव में 'रूपिम' के स्थान पर पूर्व प्रचलित 'शब्द" को चालू रखने में कई कठिनाइयाँ थीं। कुछ कठिनाई वास्तविक और कुछ काल्पनिक थी। सबसे प्रमुख कठिनाई शब्द के स्वरूप-निर्धारण तथा उसके अभिज्ञान की थी।

भारतीय वैयाकरणों ने शब्द का स्वरूप-निर्धारण दो आधारों पर किया है – (1) ध्वनि और (2) अर्थ। ध्वनि के आधार पर शब्द के आकार-ग्रहण के सम्बन्ध में भर्तृहरि ने 'वाक्यपदीय' में निम्नलिखित विचार व्यक्त किया है – "प्रत्येक वर्ण के संस्कार बीज रूप से बुद्धि में अवस्थित रहते हैं। शब्द की अभिव्यंजक ध्वनियों के उच्चारण पर वे परिपाक अवस्था को प्राप्त होने लगते हैं। कायोत्पादन की विशेष शक्ति का आ जाना परिपाक है। शब्द की अभिव्यक्ति की योग्यता ही वर्ण का परिपाक है। अन्तिम ध्वनि (शब्द के अन्तिम वर्ण) के उच्चारण होते-होते वह परिपाक पूर्णता को पहुँच जाता है। बार-बार वर्ण की श्रुति से बुद्धि में भी उसका संस्कार गहरा होता जाता है।" यथा – 'गौ' शब्द के औकार के उच्चारण के साथ ही 'गौ' शब्द की अवधारणा हो जाती है। (वाक्यपदीय 1/85)।

अर्थ के आधार पर भी शब्द के स्वरूप पर विचार किया गया है। शब्द का उच्चारण अर्थ के परिज्ञान के लिए किया जाता है। अतः अर्थ के आधार पर पूरे शब्द-रूप का विश्लेषण स्वाभाविक है।

पतंजलि के अनुसार प्रतीतपदार्थक ध्वनि को शब्द कहते हैं। प्रतीतपदार्थक का अर्थ है, लोक-प्रचलित अर्थ। लोक-प्रचलित अर्थ वाले ध्वनि का नाम शब्द है। अतः प्रतीत पदार्थक शब्द स्पष्टार्थ के लिए प्राचीन समय में प्रयुक्त होता था। इसलिए स्पष्टार्थक ध्वनि को शब्द कहा जाता है।

सामान्यतः शब्द तथा रुपिम के सम्प्रत्यय (Concept) में कोई विशेष अन्तर नहीं है किन्तु भाषा-विश्लेषण के समय 'शब्द' के स्थान पर 'रूपिम' के प्रयोग से विशेष सुविधा होती है। अतः आधुनिक भाषाविज्ञानियों ने 'रूपिम' का प्रयोग उचित माना है।

वास्तव में रूपिम भाषा की न्यूनतम अर्थवान् इकाई है। इसका निर्माण किसी भाषा के एक या एकाधिक स्वनिमों को एक विशेष क्रम में रखने से होता है। किन्तु शब्द व्याकरणीय वर्ग है, इसका निर्माण एक या एकाधिक रूपिमों को विशेष क्रम में रखने से होता है। एक शब्द में कम से कम एक या एकाधिक रूपिम हो सकते हैं किन्तु एक रूपिम में एक से अधिक शब्द नहीं हो सकते।

निम्नलिखित प्रकार से रूपवर्गों से शब्द निर्मित होते हैं –

(i)	मुक्त रूप	–	राम, घोड़ा, लड़का	
(ii)	मुक्त रूप + आबद्ध रूप	–	दासता, घोड़े	(दास् + ता घोड़ + ए)
(iii)	आबद्ध रूप + मुक्त रूप	–	कुपुत्र, अपमान	(कु + पुत्र अप + मान)
(iv)	मुक्त रूप + मुक्त रूप	–	गृहदाह, डाकघर	(गृह + दाह डाक + घर)
(v)	आबद्ध + आबद्ध रूप	–	तारतम्य	(तार + तम्य)

5.5.07.2. रूपिम का सामान्य परिचय

रूपिम स्वनिमों का एक ऐसा न्यूनतम अनुक्रम है जो व्याकरणिक दृष्टि से सार्थक होता है। इसीलिए रूपिम को न्यूनतम अर्थवान् इकाई (Minimum Meaningful Unit) कहा जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रूपिम अर्थ की इकाई नहीं है। सभी रूपिम ध्वनियों के अनुक्रम होते हैं। इसके विपरीत स्वनिमों के सभी अनुक्रम रूपिम नहीं होते। यथा, प्र – चलन, प्र – कृष्ट, प्र – चण्ड, प्र– गल्भ में 'प्र' अर्थवान् इकाई है, अतः रूपिम है किन्तु 'प्रश्न' एवं 'प्रथा' में 'प्र' अर्थवान् इकाई नहीं है क्योंकि यहाँ ऊपर की भाँति 'प्र' को विखण्डित नहीं किया जा सकता।

रूपिम के परिज्ञान में सबसे अधिक कठिनाई विखण्डन (Cutting) की होती है। क्योंकि स्वनिम की भाँति ही निश्चित सन्दर्भ में ही यह उपलब्ध होती है। सन्दर्भ एवं वातावरण के अभाव में अर्थज्ञान नहीं हो पाता। तब न्यूनतम अर्थवान् इकाई को प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। जैसे, लघु – त्व, लघु – ता; हीन – त्व, हीन – ता।

दीर्घत्व, दीर्घता के आधार पर ही – त्व, – ता को विखण्डित कर सकते हैं।

रूपिम के निर्धारण में अर्थ का सहारा लेना चाहिए या नहीं इस विषय में भाषाविदों में मतभेद है। प्रसिद्ध भाषाविद् डी. सस्यूर, ब्लूमफील्ड एक ओर रूपिम के निर्धारण में अर्थ का सहारा लेने के पक्ष में हैं तो दूसरी ओर जैलिंग हैरिस एवं हिल आदि विद्वान् अर्थ का सहारा लेने के पक्ष में नहीं है। उनके अनुसार चूँकि अर्थ का सम्बन्ध सन्दर्भ पर निर्भर होता है, अतः रूपिम का निर्धारण आकृति अथवा आकार के आधार पर होना चाहिए। इस प्रणाली में हमें सूचकों की सहायता अपेक्षित होती है। व्यावहारिक रूप से भाषा के विश्लेषण के समय हमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रायः अर्थ का सहारा लेना ही पड़ता है।

रूपिम (रूपग्राम Morpheme) को रूपतत्त्व, रूपश्रेणी, पदतत्त्व, पदश्रेणी, पदिम आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। रूप या पद वे अवयव या घटक हैं जिनसे वाक्य बनता है। 'उसके रसोईघर में सफाई होगी' – इस वाक्य में पाँच पद या रूप हैं जिन्हें सामान्य भाषा में शब्द कहते हैं। इन रूपों में सभी एक प्रकार के नहीं हैं। कुछ तो छोटे से छोटे टुकड़े हैं, उन्हें और छोटे खण्डों में विभाजित नहीं कर सकते, जैसे – 'मैं'। कुछ को छोटे खण्डों में बाँटा जा सकता है, जैसे – 'रसोईघर' को 'रसोई' और 'घर' में। 'घर' के और छोटे टुकड़े करें तो 'घ' तथा 'र' होगा लेकिन ये सार्थक नहीं होंगे। भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रूपिम या रूपग्राम कहलाता है उपर्युक्त वाक्य में उस, के, रसोई, घर, में, साफ, ई, हो, ग, ई – ये दस रूपिम या रूपग्राम हैं।

5.5.07.2.1. रूपिम के भेद

रूपिम के भेद दो आधारों पर हो सकते हैं – (i) रचना और प्रयोग की दृष्टि से (ii) अर्थ और कार्य के आधार पर।

5.5.07.2.1.1. रचना और प्रयोग की दृष्टि से

रचना और प्रयोग की दृष्टि से रूपिम मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं –

(क) मुक्त रूपिम (Free Morpheme) : यह अकेले या अलग भी प्रयोग में आ सकते हैं। उपर्युक्त वाक्य में रसोई, घर, साफ इसी प्रकार के हैं। ये अलग, मुक्त या स्वतन्त्र रूप से भी प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे – 'रसोई बन चुकी है।' ये अन्य रूपिमों के साथ भी आ सकते हैं, जैसे – 'रसोईघर'।

(ख) बद्ध रूपिम (Bound Morpheme) : ये अलग से प्रयुक्त नहीं हो सकते जैसे – 'ता' (एकता, सुन्दरता) या 'ई' (जैसे – घोड़ी, लड़की) आदि।

इन दो के अतिरिक्त एक तीसरा प्रकार भी कुछ लोग मानते हैं जिसे अर्द्धबद्ध, अर्द्धमुक्त, मुक्तबद्ध या बद्धमुक्त की संज्ञा दी जा सकती है।

(ग) अर्द्धबद्ध, अर्द्धमुक्त, मुक्तबद्ध या बद्धमुक्त रूपिम : अंग्रेजी का 'From' इसी प्रकार का है। यह किसी अन्य रूपिम के साथ मिलता नहीं, सदैव अलग रहता है, इसलिए मुक्त है किन्तु यह सर्वदा किसी के आश्रित रहता है, From sum या From shop आदि। यह अकेले किसी भी प्रकार की रचना नहीं कर सकता, अतः बद्ध है। हिन्दी के परसर्ग – ने, को, से, में जब संज्ञा शब्दों के साथ आते हैं – 'राम ने', 'मोहन को', 'बाण से', 'कमरे में', तो अलग रहते हैं। यद्यपि सर्वनाम के साथ ये बद्ध रूपिम, जैसे – उसने, उसको, उससे, तुममें आदि हो जाते हैं। यह तीसरा भेद भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि स्थान की दृष्टि से अलग होकर भी अर्थ की दृष्टि से ये हमेशा बद्ध रहते हैं। बद्ध रूपिमों के तीन उपभेद करके इन्हें समाहित किया जा सकता है –

(i) मुक्त : जो अर्थ की दृष्टि से बद्ध होकर भी स्थान की दृष्टि से सदैव मुक्त रहते हैं, जैसे, अंग्रेजी में – From, with आदि।

(ii) बद्ध : जो स्थान की दृष्टि से भी सदैव बद्ध रहते हैं। जैसे, अंग्रेजी – ly, ness, ed आदि। संस्कृत – अः, अम् आदि। हिन्दी – ई, आई आदि प्रत्यय।

(iii) बद्धमुक्त : जो कभी तो बद्ध रहते हैं और कभी मुक्त। जैसे, हिन्दी परसर्ग, जो संज्ञा के साथ मुक्त रहते हैं और सर्वनाम के साथ बद्ध।

रचना और प्रयोग के आधार पर ही रूपिम के दो अन्य भेदों का उल्लेख भी किया जा सकता है। जब दो या अधिक ऐसे रूपिम एक में मिलते हैं जिनमें अर्थतत्त्व केवल एक हो, जैसे – 'उसके', 'सफाई', 'होगी', तो उस पूरे रूप को संयुक्त रूपिम कहते हैं। यदि एक से अधिक अर्थतत्त्व हो तो मिश्रित रूपिम कहते हैं, जैसे – 'रसोईघर' मिश्रित रूपिम है।

5.5.07.2.1.2. अर्थ और कार्य के आधार पर

अर्थ और कार्य के आधार पर रूपिम के दो भेद होते हैं –

(क) अर्थदर्शी रूपिम : जिनका स्पष्ट रूप से अर्थ होता है और अर्थ व्यक्त करने के अतिरिक्त जो अन्य कोई कार्य नहीं करते। इन्हीं को अर्थतत्त्व या अर्थिम भी कहते हैं। प्राचीन व्याकरण में इन्हें ही Stem, Root, धातु, मस्दर या माद्दा कहा गया है। विचारों का सीधा सम्बन्ध इन्हीं से होता है। भाषा के मूल आधार यही हैं। व्याकरणिक या प्रायोगिक दृष्टि से ये कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे – क्रिया (हो, खा, Go, भू), संज्ञा (राम, Cat, किताब), सर्वनाम (यह, वह, तुम, मैं), विशेषण (अच्छ, बड़, सुन्दर, Good) आदि। हर भाषा में इस वर्ग के रूपिमों की संख्या कई हजार होती है, दूसरे प्रकार के रूपिमों से बहुत अधिक।

(ख) सम्बन्धदर्शी रूपिम या कार्यात्मक रूपिम : इन्हें निरर्थक तो नहीं कहा जा सकता किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि इनमें अर्थ का प्राधान्य नहीं होता। इनका प्रमुख कार्य होता है, 'सम्बन्ध-दर्शन' या 'व्याकरणिक कार्य'। इसीलिए इन्हें सम्बन्धतत्व भी कहते हैं। संस्कृत में प्रत्यय, तिङ्, सुप् या हिन्दी में परसर्ग, प्रत्यय आदि यही हैं। इस प्रसंग में 'सम्बन्ध' शब्द काफी व्यापक है। इसमें यह भाव तो है ही कि ये रूपिम एक शब्द का सम्बन्ध वाक्य में दूसरे शब्द से दिखाते हैं। साथ ही ये लिंग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति या अर्थ (Mood) और भाव (बार-बार आधिक्य) आदि की दृष्टि से अर्थदर्शी रूपिम में परिवर्तन भी लाते हैं, जैसे – 'लड़क्' अर्थदर्शी रूपिम है। इसमें – 'ई', 'आ', 'इयाँ', 'इयों', 'ए', 'ओं' आदि सम्बन्धदर्शी रूपिम या सम्बन्धतत्त्वों को जोड़कर, लड़की, लड़का, लड़कियाँ, लड़कियों, लड़के, लड़कों आदि संयुक्त रूपिम या रूप या पद बना सकते हैं। इसीलिए इन्हें कार्यात्मक रूपिम (Foundational Morpheme) कहा जाता है। इस वर्ग के रूपिमों की संख्या हर भाषा में सौ से अधिक नहीं होती। अर्थदर्शी रूपिमों से इनकी संख्या कम होती है।

कुछ भाषाविदों ने खंडीकरण (Segmentation) आधार पर भी रूपिम के दो भेद किए हैं –

(i) खंड रूपिम (Segmental) : जिन्हें तोड़कर अलग किया जा सके। उपर्युक्त सारे रूपिम इसी प्रकार के हैं।

(ii) अखंड रूपिम (Supra segmental) : बलाघात (Stress), सुर (Tone, Pitch), या सुर लहर (Intonation) आदि रूप में स्वीकृत रूपिम इसी वर्ग के हैं। इन्हें दो टूक रूप में खण्डित नहीं किया जा सकता। स्वनिम या ध्वनिग्रामविज्ञान (Phonemics) में भी इन्हें अखण्ड या Supra segmental कहा जाता है।

5.5.07.3. अर्थिम

रूपिम लघुतम अर्थवान् इकाई है किन्तु रूपिम को अर्थिम का पर्याय नहीं मान सकते। यथा – परमेश्वर एक अर्थिम है, जबकि इसमें 'परम' और 'ईश्वर' दो रूपिम हैं। रूपिम वाक्य-रचना और अर्थ अभिव्यक्ति की

सहायक इकाई है। अर्थिम रूपिम का अन्तर्निहित सार्थक तत्त्व है। अर्थिम भाषा का मानसिक पक्ष है। रूपिम भाषा का साकार प्रत्यक्ष तत्त्व है, अर्थिम भाषा का अप्रत्यक्ष मनःसंकल्पित अर्थतत्त्व है। रचना की दृष्टि से जिस प्रकार रूपिम को दो भागों में बाँटा गया है –

(i) मुक्त रूपिम या मुक्तरूपग्राम (Free Morpheme) – घर, पुस्तक, नगर आदि
(ii) बद्ध रूपिम या बद्ध रूपग्राम (Bound Morpheme) – से, ने, को, ता, ती, गा, गी आदि।

उसी प्रकार अर्थ की दृष्टि से अर्थिम को भी दो भागों में बाँटा गया है –

(i) मुक्त अर्थिम (Free Semanteme) यथा – पुस्तक, घर, नगर आदि
(ii) बद्ध अर्थिम (Bound semanteme) यथा – प्रत्यय – सुप् (सु, औ आदि), तिङ् (ति, तः आदि), कृत प्रत्यय (तृ, त, ति आदि), तद्धित प्रत्यय (त्व, ता, मत्, वत्, अ आदि), स्त्री प्रत्यय (आ, ई आदि)

शुद्ध प्रातिपदिक, अंग, धातु या प्रकृति जो स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में आ सकते हैं, वे मुक्त अर्थिम या मुक्त अर्थतत्त्व या अर्थग्राम (Free Semanteme) हैं। जैसे – राम, कृष्ण, उठ, बैठ, धन आदि। प्रत्यय आदि जो शब्द या धातु से मिलकर ही प्रयुक्त होते हैं, स्वतन्त्र नहीं हैं, वे बद्ध अर्थिम (Bound Sementeme) हैं।

अर्थ की दृष्टि से अंग (धातु, प्रातिपदिक Stem, root) को दो भागों में बाँटा गया हैं –

(1) अर्थतत्त्व, अर्थदर्शी रूपग्राम (Semanteme)
(2) सम्बन्धतत्त्व या सम्बन्धदर्शी रूपग्राम (Functional Morpheme)

इसे ही अर्थ की दृष्टि से कहेंगे – (i) अर्थिम या अर्थतत्त्व और (ii) सम्बन्धदर्शी या बद्ध अर्थिम।

(i) अर्थिम या अर्थतत्त्व (Semanteme) – राम, हरि, मनुष्य, पशु, पठ्, लिख्, पढ़, लिख आदि।
(ii) सम्बन्धदर्शी या बद्ध अर्थिम (Bound Semanteme Functional Semanteme) – प्रातिपदिक और धातुओं के अन्त में लगने वाले सभी प्रकार के प्रत्यय, जिनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। जैसे – सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित, स्त्रीप्रत्यय आदि।

5.5.08. अर्थिम और रूपिम में सम्बन्ध

अर्थिम तथा रूपिम एक सिक्के के दो पहलू की तरह हैं। ये एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। रूपिम में शब्दतत्त्व का प्रतिपादन होता है और अर्थिम में अर्थतत्त्व का। दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित या पूरक हैं। सार्थक शब्द के अभाव में अर्थ निष्प्रभावी हैं और अर्थ के अभाव में शब्द अस्तित्वहीन है। रचना, पद-निर्माण या पद-विज्ञान की दृष्टि से शब्द ही रूपिम या रूपग्राम है और अर्थ की दृष्टि से वही रूपिम अर्थिम, अर्थग्राम या अर्थतत्त्व है। प्रातिपदिक, धातु, प्रकृति या अंग आधारतत्त्व हैं जैसे – वृक्ष, पेड़, फूल आदि। अतः इन्हें अर्थतत्त्व, अर्थिम कहा

जाता है। प्रत्यय आदि संयोजक या सम्बन्धतत्त्व हैं इन्हें रचना की दृष्टि से सम्बन्धदर्शी रूपिम और अर्थ की दृष्टि से सम्बन्धदर्शी अर्थिम कहा जाएगा।

5.5.09. पाठ-सार

01. अर्थिम को अर्थतत्त्व भी कहते हैं।
02. यास्क ने 'निरुक्त' में 'निघंटु' के प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ पर विचार किया है।
03. अर्थिम भाषा की सार्थक सूक्ष्मतम इकाई है।
04. किसी वस्तु को दिया गया नाम उस वस्तु की अनेक क्रियाओं में से चयनित एक क्रिया पर आधारित होता है।
05. अर्थ का मौलिक अर्थ है 'माँग' या 'उपस्तुति'।
06. अर्थ के मुख्य दो भेद हैं – निहितार्थ और संकेतार्थ।
07. अर्थ तत्त्व और कोशविज्ञान में घनिष्ट सम्बन्ध है।
08. विषय तथा सन्दर्भ के अनुसार शब्द-अर्थ के अनेक प्रकारों को दृष्टि में रखते हुए, कोशों के भी अनेक प्रकार प्रचलित हैं, जिनमें विभिन्न प्रकार के शब्दार्थों का संकलन तथा अर्थ-संयोजन किया जाता है।
09. अर्थतत्त्व या अर्थदर्शी रूपिम मनुष्य के विचारों का साक्षात प्रतिनिधित्व या प्रस्तुतीकरण करते हैं।
10. हिन्दी में दोनों प्रकार के अर्थदर्शी रूपिम मिलते हैं – मुक्त रूपिम तथा बद्ध रूपिम।
11. रूपिम भाषा का बाह्य पक्ष है तथा अर्थिम भाषा का आन्तरिक पक्ष।
12. शब्द का स्वरूप निर्धारण दो आधारों पर किया गया है – ध्वनि तथा अर्थ।
13. शब्द प्रकृति या प्रातिपदिक है, रूपिम उसका व्यावहारिक या प्रायोगिक स्वरूप।
14. रूपिम को रूपग्राम, पदतत्त्व पदिम आदि नामों से भी अभिहित करते हैं।
15. रूपिम के समान ही अर्थिम को भी मुक्त अर्थिम, बद्ध अर्थिम कहा जाता है।
16. रूपिम और अर्थिम परस्पर अन्योन्याश्रित एवं पूरक हैं।

5.5.10 अभ्यास प्रश्न

1. अर्थिम और अर्थतत्त्व से आप क्या समझते हैं ?
2. 'अर्थ का अर्थ' विषय पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
3. अर्थ की दृष्टि से कोश कला का विवेचन कीजिए।
4. रूपिम और शब्द का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. अर्थिम तथा रूपिम का सम्बन्ध निरूपित कीजिए।

❖❖❖